श्रीमातृवाणी

माताजी के पत्र

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी

माताजी के पत्र

श्रीमातृवाणी

माताजी के पत्र

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

प्रथम संस्करण १९९४

मूल्य २००.००

खंड १७

ISBN 81-7060-086-3

© श्रीअरविंदाश्रम ट्रस्ट की ओर से

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी द्वारा प्रकाशित
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी द्वारा भारत में मुद्रित
वितरक :
शब्द : श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी, पांडिचेरी—६०५००२

माताजी

जन्म

२१ फरवरी, १८७८

भारत में आगमन

२९ मार्च, १९१४

महासमाधि

१७ नवम्बर, १९७३

शताब्दी

२१ फरवरी, १९७८

मेरे वचनों को एक शिक्षा के रूप में न लो। वे हमेशा क्रियाशील शक्ति होते हैं जिन्हें एक निश्चित उद्देश्य के साथ कहा जाता है और उन्हें उस उद्देश्य से अलग कर दिया जाये तो वे अपनी सच्ची शक्ति खो बैठते हैं।

—श्रीमां

Do not take my words for a teaching. Always they are a force in action, uttered with a definite purpose, and they lose their true power when separated from that purpose.

श्रीमाताजी — १९६३

पत्रमाला १

पत्रमाला १

[एक युवा साधक के नाम जो श्रीअरविंद आश्रम में १९३० में १३ वर्ष की उम्र में आया था। आठ वर्ष के अध्ययन के बाद उसने काम करना शुरू किया। पहले गोलकुंड में काम किया जो आश्रम का आवास-गृह है फिर धान्यागार तथा भोजनालय में। १९४५ में यह नव-उद्घाटित आश्रम-विद्यालय में अध्यापक बना और फिर १९९३ तक मृत्युपर्यंत आश्रम के स्वागत-विभाग में काम करता रहा। इस साधक ने माताजी को १५ वर्ष की उम्र में पत्र लिखना शुरू किया था।

हिंदी अनुवाद में हमने साधक द्वारा श्रीअरविंद को लिखे पत्र भी जोड़कर नीचे श्रीअरविंद का नाम दे दिया है।]

> *दोपहर को सोते समय मैं सचेतन नहीं रहता; अगर कोई शोर हो तो मैं नहीं सुन सकता। लेकिन जब मैं रात को सोता हूं तो कभी-कभी मैं सचेतन रहता हूं और प्रायः सब कुछ सुन लेता हूं।*
>
> *क्या रात को न सोना ठीक है?*

नहीं, न सोना ठीक नहीं है। बहुत शांति के साथ और अच्छी तरह सोना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह स्वप्न में, अपने स्वप्नों के बारे में सचेतन होने में बाधा नहीं देता। कौन-सी चीज तुम्हें सोने से रोकती है?

तुम्हें मुझसे सब कुछ सचाई के साथ और बिना भय के कह देना चाहिये। सब कुछ एकदम स्पष्ट रूप से कह देना तुम्हें मेरे अधिक निकट ले आता है।

८ दिसबंर १९३२

> *माताजी, जानवरों के प्रतीक मुझे नहीं मालूम[1]। उदाहरण के लिये सिंह . . .*

शक्ति।

> *हिरण . . .*

गति में तेजी।

[1] साधक ने यह बात इसलिये पूछी क्योंकि जिन लिफाफों में माताजी का उत्तर आता था उनके ऊपर जानवरों के चित्र चिपके होते थे।

हंस . . .

अंतरात्मा।

पक्षी . . .

कुछ पक्षियों का अर्थ है, लेकिन सभी पक्षियों के लिये वह एक और समान नहीं है।
२३ *दिसंबर* १९३२

आपने जिस हाथी का चित्र आज मुझे भेजा है उसका प्रतीक मैं जानना चाहता हूं, और साथ-साथ तोते का भी।

तोते का अर्थ है ''वाणी का प्रवाह'' और हाथी का है ''बल''।
२५ *दिसंबर* १९३२

लिफाफे पर जो कुत्ते[1] का चित्र है उसका अर्थ है : आज्ञाकारिता।
३१ *दिसंबर* १९३२

आपने आज सुबह मुझे जो चित्र भेजा वह किसका प्रतीक है ?

वह सील मछली है—बहुत ही चालाक जानवर जिसे हर तरह के करतब सिखाये जा सकते हैं, यहांतक कि बाजीगरी भी।
३ *जनवरी* १९३३

मयूर किसका प्रतीक है ?

विजय का।
५ *जनवरी* १९३३

[1] वह स्पेनियल कुत्ते की तरह लग रहा था।

आपने जिस खरगोश का चित्र आज मुझे भेजा वह किसका प्रतीक है ?

वह खरगोश नहीं खरहा' है और खरहे का अर्थ है "सावधानी"।
६ जनवरी १९३३

अब मैं सब समझ रहा हूं। आज के बाद मैं उसी भूल को फिर से नहीं दोहराऊंगा। मैं इसके लिये बहुत दुःखी हूं। अब मैं शांत रहूंगा और यह कोशिश करूंगा कि ऐसी कोई चीज न करूं जो आपको पसंद न हो।

यह अच्छा है, मेरे बच्चे; मैं तुमपर विश्वास करती हूं और मुझे मालूम है कि तुम जान-बूझकर कभी ऐसी कोई चीज नहीं करोगे जिसे मैं पसंद नहीं करती। अतः तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिये, न ही तुम्हें भूतकाल के बारे में सोचना चाहिये बल्कि तुम्हें केवल इसी खुशी के बारे में सोचना चाहिये कि भविष्य में, इस विषय में तुम कभी कोई भूल नहीं करोगे।

और तुम इस बारे में विश्वस्त हो सकते हो कि तुम्हें उचित तरीके से क्रिया करने में सहायता देने के लिये मेरा स्नेह हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा।
१८ जनवरी १९३३

मेरे ख्याल से कल मैंने जो कुछ लिखा वह ठीक नहीं था। मैंने जो कुछ लिखा था उसके लिये अब मैं पछता रहा हूं।

तुम्हें पछताना नहीं चाहिये। स्पष्ट कहना और खुला रहना हमेशा अधिक अच्छा होता है। अपनी गलतियां सुधारने का यह सबसे अच्छा तरीका है।
२४ जनवरी १९३३

(साधक उस स्वप्न का वर्णन करता है जिसमें उसकी कई लड़ाइयां हुईं।)

इस सबका अर्थ है कि तुम प्राण जगत् में चले गये थे और वहां कुछ लड़ाइयां हुईं जिनमें तुम्हारा पल्ला भारी रहा। स्वप्न में जो घर दिखे उनमें तुम इसलिये गये क्योंकि वहां के लोगों के साथ तुम्हारा कुछ सादृश्य था।

' खरगोश खरहे की जाति का है लेकिन यह खरहे से छोटा होता है। इसके शावकों के जन्म के समय रोयें नहीं होते।

चूंकि तुम इन जगतों में और इन लड़ाइयों में जा रहे हो इसलिये यह नितांत आवश्यक है कि तुम्हारे अंदर पूर्ण सच्चाई और पूर्ण सत्यवादिता हो, क्योंकि केवल यही तुम्हारे आस-पास पूर्ण सुरक्षा रखती है।

४ फरवरी १९३३ *—श्रीअरविंद*

'क्ष' ने मुझसे कहा कि वह मेरे लिये एक भी कमीज नहीं बनायेगी, केवल कुर्ते बनायेगी। फिर बहुत लड़ाई-झगड़े के बाद, उसने मुझसे कहा कि वह एक कुर्ता और एक कमीज बनायेगी, लेकिन मैं दो रंगीन कमीजें चाहता हूं।

तुम्हारा लड़ाई करना एकदम से गलत था। मैं ऐसे व्यवहार को एकदम नापसंद करती हूं। तुम अब भी बच्चे हो और तुम्हें अपने से बड़ों का सम्मान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस तरह किसीसे कुछ भी हासिल करने का यह यथासंभव सबसे बुरा तरीका है।

तुम कहते हो, "मैं कमीजें **चाहता हूं**," यह कहने का कोई ढंग नहीं है। इस तरह किसी इच्छा या पसंद को अपने-आपको औरों पर थोपने का क्या अधिकार है भला ?

पूछताछ के बाद मैं तुम्हें बताऊंगी कि क्या किया जा सकता है।

५ फरवरी १९३३

मैंने 'क्ष' के साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं किया। मैंने उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया और मैं इतनी फ्रेंच नहीं जानता कि उसके साथ लड़ सकूं।

अगर तुमने झगड़ा नहीं किया तो ठीक है। **झगड़ा करने का अर्थ** है, उग्रता के साथ एक-दूसरे को अप्रिय बातें कहना।

६ फरवरी १९३३

क्या मैंने जिन मकानों को सपने में देखा है उनमें रहनेवालों के साथ किसी तरह का सादृश्य रखना बुरा है ?

सामान्य तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह अच्छा है या बुरा। यह व्यक्ति, उसपर पड़नेवाले प्रभावों और अन्य बहुत-सी चीजों पर निर्भर है। सामान्य नियम के अनुसार, शेष पुराने स्वभाव के साथ-साथ इन सभी सादृश्यों को परम प्रभु को

समर्पित करना चाहिये—ताकि केवल वही रखा जा सके जो भागवत परम सत्य के साथ सामंजस्य में हो। और जो तुम्हारे अंदर अपनी क्रिया के लिये रूपांतरित हो सके। औरों के साथ समस्त संबंध परम प्रभु के अंदर संबंध होना चाहिये, पुराने व्यक्तिगत स्वभाव के साथ नहीं।

६ फरवरी १९३३' —श्रीअरविंद

जो प्रार्थनाएं मैं आपको लिखता हूं कभी-कभी मैं उन्हें 'क' को दिखाना चाहता हूं। क्या यह करना गलत है ?

तुम जो प्रार्थनाएं लिखते हो वह किसीको नहीं दिखानी चाहियें, केवल फ्रेंच सीखने के लिये तुम उन्हें 'ज्ञ' को दिखा सकते हो।

७ फरवरी १९३३ —श्रीअरविंद

मान लीजिये मैंने कोई गलत काम किया और उसे करने के बाद ही मैं उसके बारे में सचेतन हो पाया। तुरंत सचेतन होने के लिये मुझे क्या करना चाहिये ताकि वह क्रिया दोहरायी न जाये ?

अगर तुम इसे बहुत तीव्रता से चाहते हो और इसके लिये अभीप्सा करते हो, तो यह चीज इन तरीकों में से किसी एक से आ सकती है—

१—तुम्हारे अंदर अपनी गतिविधियों को देखने की ऐसी आदत या ऐसी क्षमता आ जाये कि तुम क्रिया के आवेग को आता हुआ देखो और उसकी प्रकृति को भी देख सको।

२—ऐसी चेतना आ सकती है जो किसी गलत विचार, गलत क्रिया के लिये आवेग या संवेदन के आने पर एकदम बेचैनी का अनुभव करे।

३—जब तुम कोई गलत क्रिया करने जा रहे हो तो तुम्हारे अंदर की कोई चीज चेतावनी दे सकती है और तुम्हें उसे करने से रोक सकती है।

७ फरवरी १९३३ —श्रीअरविंद

मेरी चेतना ऐसी है जो मुझे बहुधा गलत रास्ते पर जाने या बुरा कार्य करने से रोकती है, लेकिन कभी-कभी वह नहीं भी रोकती। मैं ऐसी एक भी क्रिया नहीं करना चाहता जिसे माताजी पसंद न करती हों।

'इससे ऊपर की चिट्ठी की समान तारीख है क्योंकि कभी-कभी साधक दिन में एक बार से अधिक पत्र-व्यवहार करता था।

अगर तुम प्रबल रूप से चाहो और अगर तुम हमेशा सावधान रहने की कोशिश करो, तो वह भी हो जायेगा।

८ फरवरी १९३३ —श्रीअरविंद

मैं दोपहर के भोजन के बाद कुछ आराम करता हूं और बहुत बार नींद आ जाती है। रात में दिन की तरह नींद नहीं आती। रात को सोना बंद कर देना और बिना सोये आराम करना अच्छा है क्या?

सोना एकदम से अनिवार्य है। तुम्हें २४ घंटों में कम-से-कम आठ घंटे सोना चाहिये। स्वभावतः रात सोने का उचित समय है, लेकिन तुम दिन में भी एक-दो घंटे सो सकते हो।

९ फरवरी १९३३ —श्रीअरविंद

व्यक्ति निरर्थक विचारों से कैसे छुटकारा पा सकता है?

उन्हें तबतक त्यागते जाओ जबतक वे आना बंद न कर दें।

९ फरवरी १९३३ —श्रीअरविंद

लिफाफे के ऊपर जो वाहमृग (रेण्डियर) का चित्र है वह सहनशक्ति का प्रतीक है।

१५ फरवरी १९३३

(कबूतर के चित्र के बारे में)

मैं तुम्हारे नाम का पक्षी भेज रही हूं: शांति।

१६ फरवरी १९३३

बिल्ली का अर्थ है, ग्रहणशीलता।

२१ फरवरी, १९३३

जब हम किसी को स्वप्न में देखते हैं, तो वह स्वयं व्यक्ति होता है या उसका प्राणमय आकार ?

मेरे ख्याल से तुम्हारा मतलब है कि वह उसका सच्चा आकार होता है या प्राणिक स्तर पर कोई आकार। सर्व-सामान्य बात कहना असंभव है। जितनी तरह के सपने होते हैं उतने ही अर्थ होते हैं।
२२ फरवरी १९३३

अगर आप स्वीकार करें तो मैं यह चाहूंगा कि आप एक पुर्जे पर अंग्रेजी में यह लिख दें, "अनावश्यक बातें मत करो।" अगर कोई मेरे साथ अनावश्यक बातें करे तो मैं उसे वह दिखा दूंगा।

निरर्थक और व्यर्थ की बातों में रस न लो[1]।
२४ फरवरी १९३३

लिफाफे के ऊपर जो पेलिकन जल-पक्षी का चित्र है वह निष्ठा का प्रतीक है।
२५ फरवरी १९३३

एक दिन प्राण ने मुझसे एक प्रश्न पूछने के लिये कहा : श्रीअरविंद से पूछो कि माताजी कीमती और सुंदर कपड़े क्यों पहनती हैं ?

तो क्या तुम यह सोचते हो कि पृथ्वी पर भगवान् कुरूपता और दरिद्रता के प्रतिनिधित्व के रूप में आयें ?

मैंने उत्तर दिया कि इन कपड़ों को बनाकर हम उनकी अच्छी-से-अच्छी सेवा कर सकते हैं। उत्तर स्पष्ट था, अतः प्राण कुछ कह नहीं पाया।

ऐसा लग सकता है कि मैंने प्रश्न पूछा और उसका उत्तर भी स्वयं मैंने ही दिया। लेकिन वह प्राण था जिसने प्रश्न किया और परम प्रभु ने उसका उत्तर दिया।

[1] माताजी ने यह अंग्रेजी में लिखा।

प्राण ने प्रश्न किया; लेकिन परम प्रभु ने नहीं बल्कि, तुम्हारे अंदर की संवेगात्मक सत्ता की किसी चीज ने उसका उत्तर दिया।

सौंदर्य परम प्रभु की उतनी ही अभिव्यक्ति है जितना ज्ञान, शक्ति या आनंद। कोई कभी यह पूछता है कि माताजी भागवत चेतना को ज्ञान या शक्ति के द्वारा क्यों अभिव्यक्त करना चाहती हैं, अज्ञान और दौर्बल्य द्वारा क्यों नहीं ? वह प्रश्न भी उसके जितना मूर्खतापूर्ण और निरर्थक होगा जो प्राण ने कलात्मक और सुंदर कपड़ों के पहनने के विरोध में किया।

२७ फरवरी १९३३ —श्रीअरविंद

यह भौतिक थकान है या फिर यह प्राण से आ रही है ?

संभवत: दोनों का कुछ अंश है।

१ मार्च, १९३३

चूंकि आपने मुझसे कहा कि थकान प्राण से भी आती है, अत: मेरे लिये बगीचे में कार्य करना—चाहे मैं थक जाऊं फिर भी—अधिक अच्छा नहीं है क्या ?

नहीं, तुम्हें बहुत थकना नहीं चाहिये। शायद अधिक अच्छा हो कि तुम एक ही बगीचे में रहो।

मैं प्राण का विरोध करूंगा, मैं उसके साथ युद्ध करूंगा, मैं विजय प्राप्त करूंगा। एक दिन मैं सभी अंधकारमय शक्तियों पर विजय पा लूंगा। भागवत कृपा मौजूद है। मैं भला क्यों डरूं ?

हां, तुम्हें डरना नहीं चाहिये, तुम्हें भागवत कृपा पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये। दूसरी चीज है पर्याप्त नींद—२४ घंटों में से ७ घंटे—और पर्याप्त भोजन के साथ अपने शरीर को पूरी तरह से संतुलित रखना।

२ मार्च १९३३

एक प्रश्न मेरे अंदर उठा : माताजी उपस्थित हैं, अत: श्रीअरविंद जगत् में क्यों आये या वे पृथ्वी पर क्यों अभिव्यक्त हुए ?

कार्य के संपादन के लिये दोनों को आना ही था—इससे भिन्न नहीं हो सकता था।
३ मार्च १९३३ —श्रीअरविंद

कल दोपहर, मैं एक किताब पढ़ रहा था और बाद में मैं सो गया। मैं चौंककर उठा। मैंने समय देखा : करीब एक बजा था। एक बजे मेरी कक्षा थी। अतः मैं जा सका। क्या परम प्रभु ने मुझे जगाया ?

जरूरी नहीं है। अवचेतन का एक हिस्सा हमेशा जागरूक रहता है और वह भाग तुम्हें जगाये इसके लिये इतना ही पर्याप्त है कि तुम्हारे अंदर निश्चित समय पर उठने की इच्छा हो।
३ मार्च १९३३

अंधकारमय प्राण, तेजोमय प्राण में कैसे बदला जा सकता है ?

प्राण के समर्पण से, उसे प्रकाश के प्रति खोलकर और चेतना के विकास द्वारा।
४ मार्च १९३३

कल रात मुझे यह विचार आया कि मैं पूरी तरह से चुप रहने की कोशिश करूं, यहांतक कि हंसूं और सोचूं भी नहीं। केवल माताजी के बारे में सोचूं। परम प्रभु से प्रार्थना करूं।

हंसना और सोचना नहीं, यह जरा ज्यादती है !

मैंने अपने-आपसे कहा, पूरे दिन मौन क्यों न रखूं ? मैं इसे करने की कोशिश करूंगा।

यह जरा ज्यादा ही है। एकदम से चुप रहने की अपेक्षा अपनी वाणी पर संयम कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। सीखने लायक सबसे अच्छी चीज यह है कि जो उपयोगी है उसे अधिकाधिक यथार्थ और यथासंभव सच्चे तरीके से कहा जाये।
५ मार्च १९३३

कभी-कभी मैं एकदम अचंचल हो जाता हूं। मैं किसीसे नहीं बोलता। मैं परम

प्रभु के बारे में सोचता हुआ अकेला टहलता रहता हूं, अगर कोई मुझसे बोले या व्यर्थ बातचीत करे, मैं उसका उत्तर नहीं देता। इस अवस्था को हर समय रखना ठीक है क्या ?

यह उत्तम अवस्था है जो बिना किसी हानि के रखी जा सकती है, लेकिन यह निष्कपट होनी चाहिये। यानी, यह अचंचल रहने का आभास नहीं बल्कि एक सच्ची और गभीर अचंचलता होनी चाहिये जो तुम्हें सहज रूप से चुप रखे।
९ मार्च १९३३

(लिफाफे के ऊपर किसी चित्र के बारे में) क्या यह बकरी है ?

यह ऐंटीलोप (एक प्रकार का हिरण) है जिसका अर्थ है "गति में तेजी।"
बकरी 'फुर्ती' का प्रतीक है।
९ मार्च १९३३

(शूकरों के एक चित्र के बारे में)

जो लिफाफा मैं भेज रही हूं वह प्रकृति में प्राण की अंधकारमय क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करता है।
१५ मार्च १९३३

मैं यह नहीं जानता कि कौन-सा पहला है, कौन-सा दूसरा इत्यादि। उदाहरण के लिये सत्य के बाद क्या आता है ?

सत्य के बाद सत्य आता है और फिर से सत्य!
२३ मार्च १९३३

'ज्ञ' ने मुझसे माताजी से यह पूछने के लिये कहा कि मुझे क्या पढ़ना चाहिये। क्या मैं 'ज्ञ' के साथ 'आर्य' पढ़ सकता हूं ?

हां, तुम **गीता प्रबंध**[1] से शुरू कर सकते हो।

[1] गीता प्रबंध सबसे पहले आर्य में प्रकाशित हुआ था। आर्य एक दार्शनिक मासिक पत्रिका थी जो १९१४ से १९२१ तक जारी रही। इसी में श्रीअरविंद के मुख्य ग्रंथ क्रमशः प्रकाशित हुए थे।

आज सुबह मैं सोया।

दिन में न सोना ज्यादा अच्छा है और रात को पूरी नींद लेनी चाहिये।
२५ मार्च १९३३ —श्रीअरविंद

रात को मैं ग्यारह बजे के बाद ही अच्छी तरह सोता हूं। मैं साढ़े पांच बजे उठता हूं; लेकिन मैं चार साढ़े चार बजे जग जाता हूं।

जगने के बाद भी बिस्तर पर पड़े रहना अच्छा नहीं है। यह आराम देने की जगह अधिक थकानेवाली चीज है जो तमस् को भी बढ़ाती है। ज्यादा अच्छा है कि जगते ही तुम बिस्तर से बाहर निकल आओ, फिर तुम्हें रात में नींद आयेगी और तुम ज्यादा जल्दी सो सकोगे। **आधी रात से पहले के** घंटे सोने के लिये सबसे अच्छे और आरामदायक होते हैं।
२५ मार्च १९३३

प्रह्लाद की कहानी में वह मरने-मरने को था लेकिन उसने केवल भगवान् के बारे में सोचा जिन्होंने उसकी चेतना में आग का स्थान ले लिया जो उसे जला देती। मृत्यु जीवन में, हर्ष में बदल गयी और उसके द्वारा उसने भागवत प्रकाश को चरितार्थ किया। क्या इस कहानी का यह अर्थ है कि भगवान् के द्वारा या भगवान् की सहायता द्वारा, कठिन चीजें सरल चीजों में बदल सकती हैं, यहांतक कि मृत्यु जीवन में?

हां, नैतिक रूप में यह सच है और एक दिन यह भौतिक रूप में भी सच होगा।
२६ मार्च १९३३

मैं आपसे दो और बातें पूछना चाहता हूं जो मुझे अब याद हैं। मेरे लिये लिख दीजिये : "प्राण को आश्वासन देने के लिये कहानियां न पढ़ो" और दूसरी चीज है : "प्राण को संतुष्ट करने या उसे प्रसन्न करने के लिये अनावश्यक बातें मत करो।"

हल्की और अस्वस्थ चीजें पढ़ने में समय नष्ट न करो।
निरर्थक बातों में अपनी शक्ति नष्ट मत करो।
२८ मार्च १९३३

''गीता प्रबंध'' के सातवें अध्याय में श्रीअरविंद लिखते हैं :

''अर्जुन की वेगवती शंकाओं की जो पहली बाढ़ आयी—जिसमें उसका चित्त, संहार-कर्म से हट गया, जिसमें उसे दुःख और पाप ही दीखने लगा, जीवन शून्य और निस्सार प्रतीत होने लगा, पाप-कर्म से भविष्य में होनेवाले पापमय परिणाम दिखायी देने लगे—उनका एक ही उत्तर भागवत परम गुरु ने दिया और वह था एक बड़ी फटकार। उन्होंने कहा कि यह सब उसके मन की उथल-पुथल है, मन का भ्रम है, उसके हृदय का दौर्बल्य है, कापुरुषता है, उसके अपने क्षात्र तेज से, शूरवीर के पौरुष से च्युति है . . . यह आर्यों की रीति नहीं है, यह भाव न तो स्वर्ग से आया है, न स्वर्ग ले जानेवाला है। और इस लोक में वह उस कीर्ति का नाश करनेवाला है जो बल, वीर्य, पराक्रम और उदार कर्म से ही प्राप्त हुआ करती है। इसलिये यही उचित है कि वह इस दुर्बल और आत्म-केंद्रित दया को त्यागकर अपने शत्रुओं का संहार करने के लिये आ खड़ा हो।''

इसका क्या अर्थ है ? क्या इसका यह अर्थ है : जब हम योग करने के लिये मां, बाप, भाई-बहन के संबंध को त्याग देते हैं तो हमें उनके लिये किसी तरह की अनुकंपा नहीं होनी चाहिये। हमें उन्हें बिना किसी विचार के छोड़ देना चाहिये।

यह अनुच्छेद गीता में अर्जुन को दी गयी श्रीकृष्ण की पहली सलाह का वर्णन करता है—इस योग के लिये यह एक नियम के रूप में नहीं दिया गया है। तुम अपनी व्याख्या में जो कहते हो वह सच है—लेकिन वह इस अनुच्छेद के अर्थ से स्वतंत्र अपने-आपमें सच है।

२९ मार्च १९३३ —श्रीअरविंद

कुरुक्षेत्र के युद्ध में, एक ओर सत्य या धर्म था और दूसरी ओर मिथ्यात्व या अधर्म।

मानव संघर्ष में हमेशा मिश्रण होता है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि वह लड़ने में असमर्थ था, क्योंकि वह अपने संगे-संबंधियों को नहीं मारना चाहता था—उनके बिना जीवन व्यर्थ होता है।

यह सामाजिक और पारिवारिक लगाव है।

क्या वे विरोधी शक्तियां नहीं थीं जिन्होंने उससे यह कहलवाया ?

वह मानव अज्ञान था जिसने उससे यह कहलवाया और जिसके कारण उसने ऐसा सोचा।

जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपनी सलाह दी तो क्या उन्होंने उसमें कोई शक्ति नहीं डाली ताकि वह जो कह रहे थे उसे अर्जुन समझ सके ?

उन्होंने अर्जुन को प्रकाश, ज्ञान और चेतना दी और उसके अज्ञान को हटा दिया।

३० मार्च १९३३ —श्रीअरविंद

"अनुकंपा" का क्या अर्थ है ?

अनुकंपा क्षमा, दया का पर्याय है। यह बल और दयालुता से भरपूर दया है जो भूलों का परिमार्जन करती और क्षमा करती है, सभी अपराधों को मिटाती है और हमेशा वही चाहती है जो प्रत्येक के लिये अच्छे-से-अच्छा है।

३१ मार्च १९३३

मैं अपना अवलोकन कर रहा हूं और मैंने कोई विशेष गतिविधि या किसी तरह का संशय नहीं पाया और इससे बढ़कर यह कि मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। लेकिन, कभी-कभी ऐसा अवलोकन पूरी तरह से सच नहीं होता।

कभी भूल न करने की आशा करने से पहले व्यक्ति को प्रज्ञा के शिखर पर पहुंचना चाहिये। तुम सबको उसके पहले बहुत कुछ करना है।

३ अप्रैल १९३३

पिछली रात का एक स्वप्न : कुछ लड़के उस बगीचे में आये जहां मैं काम कर रहा था और उन्होंने कई सुंदर फूल चुन लिये। मैंने उनसे कुछ नहीं कहा। एक लड़का बाहर रहा, बाकी सब चले गये। वह लड़का अंदर आना चाहता था, लेकिन मैंने दरवाजा बंद कर दिया। अचानक कुछ साधक आये और मैंने दरवाजा खोल दिया। लड़का अंदर चला आया, मैंने एक चाल चली और उसे

गिरा दिया। मैं उसपर कूद पड़ा और मैंने उससे पूछा, "तुम यहां क्यों आये ?" "तुम्हें पीटने" उसने उत्तर दिया। अंत में लड़का बदल गया और मेरा मित्र बन गया। इसका क्या अर्थ है ?

बगीचा तुम्हारी अपनी आंतरिक चेतना है जिसे तुम परम प्रभु के लिये तैयार कर रहे हो; लड़के तुम्हारी प्रकृति के अंश हैं जो परिणामों का सुख भोगने अंदर आ गये। अंतिम लड़का कोई ऐसा अंश था जो पर्याप्त रूप से बदला नहीं था कि उसे प्रवेश पाने का अधिकार मिलता। वह कोई अव्यवस्था पैदा करने के लिये ही अंदर आना चाहता था, वह साधकों के साथ घुस गया, यानी, तुम्हारी प्रकृति के ये अनाध्यात्मिक प्रभाव, समान गतिविधियोंवाले दूसरे लोगों के संपर्क द्वारा तुम्हारी आंतरिक चेतना में घुस पड़े—अतः उनके साथ संपर्क दरवाजा खोल देता है। लेकिन चूंकि उससे निपटने के लिये तुम दृढ़ और मजबूत थे अतः इस भाग ने अधीनता स्वीकार कर ली और बदल गया।

३ अप्रैल १९३३ *—श्रीअरविंद*

'ख' अच्छा लड़का है, उसके चरित्र में कई सुंदर गुण हैं मुझे उसकी एक चीज बुरी लगती है, वह है उसका मिथ्याभिमान।

वह अभी बहुत छोटा है। वह इसमें से निकल आयेगा। क्या तुम्हारे अंदर मिथ्याभिमान नहीं है कि तुम इसके लिये औरों को बुरा-भला कह सको ?

३ अप्रैल १९३३

मैं औरों के बारे में अपने विचार इसलिये लिखता हूं ताकि आप उन्हें ठीक और शुद्ध कर सकें ताकि मेरे अंदर किसी के बारे में गलत धारणा न रहे। मुझे मालूम है कि मैं अहंकार से भरा हूं। मेरे अंदर मिथ्याभिमान भी है और ईर्ष्या भी, घृणा, निष्ठा का अभाव, सचाई का अभाव, कपट और आज्ञाभंग भी।

वस्तुतः निम्न प्रकृति इन सब चीजों से भरी है लेकिन हमें उसके अधीन न होना चाहिये। इसके विपरीत हमें उसे जीतना और उसपर अधिकार प्राप्त करना चाहिये।

४ अप्रैल १९३३

एक स्वप्न : मैं एक मकान के पास से गुजर रहा था। एक स्त्री ने मुझे

बुलाया। मैं अंदर गया। मकान के अंदर मैंने तैरने का एक तालाब देखा। स्त्री उसमें कूद पड़ी और मुझसे चूमने के लिये कहा। उसी समय मैं जाग गया। मैं सचेतन हो गया, मैंने कहा, "मैं नहीं चाहता"। इसका अर्थ क्या है?

स्वप्न में तुम्हारी सत्ता के दो भाग थे—एक जिसने स्त्री की प्राणिक पुकार को स्वीकार किया—यह निम्न प्रकृति की स्वभाव से ही इंद्रियासक्त शक्ति थी। दूसरा तुम्हारा उच्चतर भाग था जिसमें तुम उठ गये और तुमने निचली वृत्तियों को अस्वीकार कर दिया और अपने बाकी भाग को उनके विरुद्ध सावधान कर दिया।

५ अप्रैल १९३३ —श्रीअरविंद

(एक स्वप्न लिखकर साधक कहता है) : स्वप्न में चीज कैसे हुई इसका मैंने ठीक-ठीक वर्णन नहीं किया है क्योंकि उस तरह कहना कठिन है।

मैं तुम्हें यह सलाह दूंगी कि जो कुछ हुआ है उसे ठीक-ठीक बतलाओ, इस बारे में बहुत सावधानी और ईमानदारी बरतो। स्वप्न के बारे में कहते समय कुछ-न-कुछ गढ़ लेना बहुत आसान होता है और तब उसका कुछ मूल्य नहीं रहता।

१० अप्रैल १९३३

इस चित्र का क्या अर्थ है जिसमें एक लड़की सिंह की पीठ पर हाथ रखे खड़ी है? क्या यह मतलब है कि भगवान् की सहायता से सभी विरोधी शक्तियां स्थिर और शांत बन सकती हैं?

सिंह शक्ति का प्रतीक है। यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि भगवान् की इच्छा के नियंत्रण में हो तो शक्ति लाभदायक हो सकती है और उस नियंत्रण के बिना वह हर एक को नुकसान पहुंचाती है और भयंकर बन जाती है।

१० अप्रैल १९३३

(साधक ने कुछ शिकारियों का चित्र माताजी को भेजा था, उसके बारे में)

तुमने मुझे कैसा भद्दा चित्र भेजा है! ये मनुष्य दुष्ट जंगली जानवर और जीवित प्राणियों में सबसे अधिक क्रूर हैं।

१२ अप्रैल १९३३

भगवान् हमारे जीवन के सच्चे परम लक्ष्य हैं। हमें भगवान् की इच्छा पूरी करनी चाहिये। लेकिन भगवान् हैं कौन और भगवान् की इच्छा क्या है?

ये ऐसी बातें हैं जिनके बारे में कहा नहीं जा सकता। इन्हें निजी अनुभूति द्वारा खोजना होता है।
१३ अप्रैल १९३३

'ग' ने मुझसे कहा, तुम्हें अपनी बलि न देनी चाहिये। बहुत अधिक काम करके अपने-आपको थका न डालो। अगर नौकर है तो वह सारा काम भली-भांति कर सकता है। तुम यह काम उसके जितना अच्छा नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हारे पास काफी समय नहीं है।

हमने 'क्ष' से कहा है कि फिर से नौकर भेजना शुरू कर दे। जबतक तुम्हारे अंदर भागवत शक्ति में पूर्ण श्रद्धा न हो तबतक इस तरह काम लेने का कोई लाभ नहीं। और वह ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये जो कहीं से भी आनेवाले सुझावों से न डिगे। तब वह तुम्हारे अंदर काम करेगी, तुम्हें आवश्यक बल और डटे रहने की सामर्थ्य देगी और तुम्हारे काम की समुचित व्यवस्था करेगी। इस तरह तो तुम कुछ ही दिनों में थक जाओगे और काम को छोड़ दोगे।
१६ अप्रैल १९३३ *—श्रीअरविंद*

मुझे अपने बल पर विश्वास है और मैं समझता हूं कि मैं पूरा काम कर सकता हूं।

तुम्हें **अपने** निजी बल पर नहीं, भागवत शक्ति पर श्रद्धा होनी चाहिये। वह उन सब में कार्य करती है जो भगवान् को समर्पित हैं। वह उनके काम में उन्हें सहारा देती है।

मुझे श्रद्धा है कि मैं पूरा काम करने योग्य हूं, मुझे यह काम बहुत पसंद है, अगर आपको आपत्ति न हो तो मैं इसे जारी रखना पसंद करूंगा।

मैं दोहराती हूं : **अपने-आप** पर श्रद्धा तुम्हें बहुत दूर तक नहीं ले जा सकती और यह निश्चित है कि देर हो या सवेर, तुम्हारे अंदर प्रतिक्रिया होगी और तुम काम बंद करने के लिये बाधित होगे।

पहले **केवल भगवान्** में अपना सच्चा आधार, अपना आश्रय और सहायता पाने की सच्ची वृत्ति स्थापित करो, तब थकान की सारी संभावना गायब हो जायेगी। तबतक नौकर को काम का कुछ हिस्सा कर लेने दो, यह ज्यादा अच्छा है। तुम चाहो तो उसपर नजर रख सकते हो।

१७ अप्रैल १९३३

बिजली के मीटर देखने का काम करने के बाद मैं बहुत थक जाता हूं। मुझे लगता है कि कोई चीज मुझे अधिक काम करने से रोकना चाहती है। इसलिये मैंने अपने कान खींचे और कहा, "नहीं, तुम्हें काम करना चाहिये। श्रद्धा रखो, सब कुछ चला जायेगा" और सचमुच थकान चली गयी। शाम को मेरे पेट में सख्त दर्द हुआ। मैंने सोचा कि यह भी मुझे काम से रोकना चाहता था, मैंने अपने-आपसे कहा, "नहीं, तुम्हें काम करना चाहिये। केवल काम के द्वारा या श्रद्धा के द्वारा यह दर्द जायेगा। तुमने आराम किया तो यह और बढ़ जायेगा", मेरी आशा के अनुसार भोजन के बाद दर्द चला गया।

हे मेरी दिव्य जननी, वर दो कि तुमपर मेरी श्रद्धा अधिकाधिक दृढ़ और अटल होती जाये।

श्रद्धा तुम्हारी सक्रिय चेतना और तुम्हारी इच्छा में है, अभीतक तुम्हारे शरीर में नहीं है इसीलिये तुम्हारे शरीर को थकान लगती है और वह कष्ट पाता है। तुम्हें उसे कुछ आराम देना चाहिये। जबतक तुम अपने काम की ठीक व्यवस्था करना न सीख लो और व्यर्थ के आने-जाने का हिस्सा न निकाल दो तबतक के लिये तुम झाड़ू लगाने का काम छोड़ सकते हो। वह नौकर को कर लेने दो। अगर तुम्हें झाड़ू लगाने का आग्रह है तो अपने बगीचे की देख-भाल करने के लिये किसी और को ढूंढ़ निकालो।

१८ अप्रैल १९३३

आज शाम को मैं बहुत थक गया था। मीटर के अंक लिखना भी मुश्किल हो गया।

अगर तुम थक जाते हो तो तुम्हें अपने काम की व्यवस्था इस तरह करनी चाहिये कि व्यर्थ के आने-जाने से बचा जाये।

२६ अप्रैल १९३३

"कुछ आराम करने" का क्या मतलब है ?

इसका मतलब है कुछ समय चुपचाप बैठना।

अगर मैं कुछ किये बिना बैठा रहूं तो मैं सो जाऊंगा और अगर दिन में सोऊं तो रात को अच्छी नींद नहीं आती।

तुम चाहो तो पढ़ सकते हो।
३ मई १९३३ —श्रीअरविंद

अब मुझे कुछ और कहना है। क्या आप कृपा करके यह लिख देंगी कि मैं किसी भी परिस्थिति में कभी किसी स्त्री का स्पर्श न करूं और न किसी स्त्री को अपना स्पर्श करने दूं।

चूंकि तुम यह अनुभव करते हो कि स्त्रियों के मामले में तुम कमजोर हो, कभी स्त्री का स्पर्श न करो। कभी किसी स्त्री को अपना स्पर्श न करने दो।
४ मई १९३३

आज सवेरे मुझे कुछ कमजोरी-सी लगी। लेकिन इसके विपरीत तीसरे पहर मैं बहुत खुश था; सारी चिंता गायब हो गयी थी। यह क्या है ?

भगवान् की आज्ञा के आगे समर्पण करने से आनंद आता है।
६ मई १९३३

कुछ दिन पहले जब मैं आश्रम में आ रहा था तो मैंने 'क्ष' की चाची को अपनी ओर ताकते हुए देखा। मैं रुका नहीं लेकिन मुझे बिजली का धक्का-सा लगा। आपको इसमें कोई बात मालूम होती है ?

प्राणिक संबंधों के प्रति बहुत ज्यादा उद्घाटन।
८ मई १९३३ —श्रीअरविंद

अभीतक स्त्रियों के बारे में विचार चलते रहते हैं।

उनके बारे में न सोचना ज्यादा अच्छा होगा। अपना ध्यान किसी और तरफ मोड़ दो।

१० मई १९३३ —श्रीअरविंद

आपने मुझे लिखा है, "उनके बारे में न सोचना ज्यादा अच्छा होगा। अपने ध्यान को किसी और तरफ मोड़ दो।" लेकिन अगर कोई मुझे छुए तो क्या मुझे उसकी भी उपेक्षा करनी चाहिये या मुझे ऐसा करने से मना करना चाहिये?

अगर अचानक स्पर्श हो तो उसकी परवाह करने की जरूरत नहीं, लेकिन अगर किसीको तुम्हें छूने की आदत हो तो तुम्हें ऐसा न करने देना चाहिये।

१२ मई १९३३ —श्रीअरविंद

प्रह्लाद अपने साथियों को श्रद्धा का महत्त्व इस तरह समझाता है, "तुम्हें भगवान् की कृपा से ही भगवान् पर श्रद्धा प्राप्त होती है। तुम्हें यह श्रद्धा रखनी चाहिये और कह सकना चाहिये, भले मुझे आग में झोंक दिया जाये, मुझे श्रद्धा है कि भगवान् हमेशा मेरी रक्षा करेंगे। मुझे श्रद्धा है कि भगवान् जो कुछ भी करेंगे मेरे लिये वही अच्छा होगा।" क्या यह ठीक है? कृपया समझाइये।

परीक्षा के समय भागवत संरक्षण पर श्रद्धा और उसका आह्वान और सारे समय यह श्रद्धा कि भगवान् जो इच्छा करते हैं—यही सबसे अच्छा होता है।

प्रह्लाद एक और सलाह भी देता है, "विरोधी शक्तियां तुम्हारे मार्ग में अड़चन डाल सकती हैं, वे तुम्हें बुरे विचार भी दे सकती हैं। तुम्हें बहुत सावधानी बरतनी चाहिये, उन्हें अस्वीकार करना चाहिये।" लेकिन हम यह कैसे जानें कि यह विचार अच्छा है या बुरा?

जो तुम्हें भगवान् की ओर ले जाये उसे अच्छा मानना चाहिये और वह सब तुम्हारे लिये बुरा है जो तुम्हें भगवान् से दूर ले जाये।

१४ मई १९३३ —श्रीअरविंद

प्रह्लाद ने अपने साथियों से कहा, "कोई काम करने से पहले अपने-आपसे

पूछो, 'भगवान् इसे पसंद करेंगे या नहीं ?' " लेकिन यह कैसे मालूम हो कि उत्तर भगवान् से आ रहा है या विरोधी शक्तियों से ?

चेतना के विकास से ज्ञान आता है।

१५ मई १९३३ —श्रीअरविंद

अगर आपको आपत्ति न हो, मैं फाइल रखने के लिये एक स्टूल चाहता हूं। अभी जो है, वह बहुत नीचा है और उस पर से चीजें उठाने में जरा कठिनाई होती है।

तुम हमेशा यह क्यों चाहते हो कि चीजें आसान हों ?

१५ मई १९३३

आज मुझे कुछ अनुभव हो रहा है। पता नहीं यह अच्छा है या बुरा। मुझे लगता है कि यह शांति है। मैं बहुत खुश हूं। मुझे कोई कठिनाई या बेचैनी नहीं हो रही।

शांति अच्छे के सिवा और कुछ हो ही कैसे सकती है। शांति कभी बुरी चीज नहीं होती।

१६ मई १९३३ —श्रीअरविंद

प्रणाम के समय कभी-कभी माताजी मेरे सिर पर अपना हाथ जोर से रखती हैं और कभी बहुत धीरे से, बस दो उंगलियां। क्या इसका कुछ अर्थ है ?

जब माताजी तल्लीन होती हैं तो बहुधा पूरा हाथ नहीं रखतीं।

१७ मई १९३३ —श्रीअरविंद

क्या प्राणिक हर्ष नहीं हो सकता ? मान लीजिये कोई कहे, "तुम बहुत अच्छे आदमी हो, तुमने इतनी अच्छी-अच्छी कविताएं लिखी हैं" और सुननेवाला तारीफ सुनकर बहुत खुश होता है, तो क्या यह प्राणिक हर्ष नहीं है ?

निश्चय ही। तुमसे किसने कहा कि प्राणिक हर्ष नहीं होता? सब तरह का हर्ष हो सकता है।

१७ मई १९३३ —श्रीअरविंद

हमारे अंदर कहीं कुछ कट क्यों जाता है और खेंच क्यों लगती है? हम क्यों गिरते हैं और दर्द क्यों होता है?

यह विरोधी शक्तियों द्वारा मन, प्राण या स्वयं शरीर में पैदा की हुई अचेतना के क्षण में होता है।

१८ मई १९३३ —श्रीअरविंद

भगवान् क्या हैं? क्या "भगवान्" का अर्थ है "परम सत्य"?

भगवान् परम सत्य हैं क्योंकि वे ही परम सत्ता हैं जिनसे सब कुछ पैदा हुआ है और जिनमें सब कुछ स्थित है।

२० मई १९३३ —श्रीअरविंद

मुझे लगता है कि थकान गायब हो गयी है। क्या यह सच है?

मेरा ख्याल है।

अगर ऐसा है तो क्या दिन में आराम करना जरूरी है?

हां, दिन में थोड़ी देर आराम करना अच्छा है। इस उम्र में तुम अभी बढ़ रहे हो और तुम्हारे लिये बारी-बारी से बहुत-से आराम और कड़ी मेहनत की जरूरत है।

२२ मई १९३३

'क्ष' ने मुझसे कहा कि हम जो कुछ भी करते हैं वह भगवान् ही हमारे द्वारा करते हैं। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि हम जो कुछ करते हैं वह भगवान् द्वारा किया जाता है क्योंकि हम हमेशा ठीक चीज नहीं करते। क्या उसकी बात में कुछ सचाई है?

उसमें सचाई यह है कि वैश्व शक्ति सब कुछ करती है और विराट् पुरुष उसकी हर क्रिया को सहारा देते हैं। लेकिन यह वैश्व शक्ति एक ऐसी शक्ति है जो अज्ञान की अवस्थाओं में काम करती है—वह निम्न प्रकृति के रूप में प्रकट होती है और निम्न प्रकृति तुमसे गलत चीजें करवाती है। जबतक तुम कोई ज्यादा अच्छी चीज नहीं चाहते तबतक भगवान् इन निम्न शक्तियों की लीला होने देते हैं लेकिन अगर तुम साधक हो तो तुम निम्न शक्तियों की लीला को नहीं स्वीकारते। उसकी जगह तुम दिव्य जननी की ओर मुड़ते हो और तुम उनसे निवेदन करते हो कि निम्न शक्तियों की जगह वे तुम्हारे अंदर क्रिया करें। केवल तभी जब तुम पूरी तरह से, अपनी सत्ता के हर भाग में मां भगवती, और केवल उन्हींकी ओर मुड़ो तभी भगवान् तुम्हारे द्वारा सब काम करेंगे।

२७ मई १९३३ —*श्रीअरविंद*

आपने कहा है कि सत्य भगवान् की परम सत्ता है जिसमें हम निवास करते हैं।

सभी भगवान् में निवास करते हैं परंतु भगवान् के सत्य में नहीं जो उनकी परम सत्ता है। भगवान् की वह परम सत्ता उनके परे है। लोग यहां भगवान् में निवास करते हैं परंतु अचेतन रूप से, अज्ञान में।

२८ मई १९३३ —*श्रीअरविंद*

क्या "तुम कर सकते हो" और "अगर तुम चाहो" उत्तरों में कोई फर्क है? मुझे लगता है कि जब आप कहती हैं, अगर तुम चाहो तो उसका अर्थ होता है कि आपको वह बहुत पसंद नहीं है। क्या ऐसा ही है?

यह स्पष्ट है कि "अगर तुम चाहो" का मतलब यह है कि तुम जो करना चाहते हो, उसके बारे में यह भय है कि तुम्हारी साधना के लिये उसके परिणाम बहुत अच्छे नहीं होंगे। लेकिन साथ ही यह कि शायद अभी तुम इतनी प्रगति करने के लिये तैयार नहीं हो जो तुम्हें इस योग्य बनाये कि तुम जो करना चाहते हो उसे न करो।

२९ मई १९३३

उचित गतिविधि क्या है और अनुचित गतिविधि क्या है?

जो भी गतिविधि तुम्हें भगवान् की ओर मोड़े या ले जाये वह ठीक है और जो भी भगवान् से विमुख करे या दूर ले जाये वह अनुचित क्रिया है।

अगर हम भगवान् के परे, परम सत्य में चले जायें तो वहां क्या पाते हैं ?

तुम परम सत्य तक पहुंचकर भगवान् के परे नहीं जाते, तुम सिर्फ भगवान् के परम सत्य तक जा पहुंचते हो।

२९ मई १९३३ *—श्रीअरविंद*

एक सांझ को मैं स्वागत-कक्ष में लगे श्रीअरविंद के फोटो को देख रहा था। मैंने उसके चारों ओर काले बादल आते देखे। फोटों के चारों ओर सब जगह अंधेरा था, लेकिन अपने प्रकाश के साथ फोटो दिखलायी दे रहा था। ये काले बादल क्या थे ?

मेरा ख्याल है कठिनाइयों के बादल। साधकों की वैयक्तिक कठिनाइयां या वातावरण में फैली सामान्य कठिनाइयां—कठिनाइयां हमेशा मौजूद रहती हैं।

३० मई १९३३ *—श्रीअरविंद*

भगवान् क्या हैं ?

भगवान् वह हैं जिनसे सब कुछ आता है, जिनमें सब कुछ निवास करता है और जो जीवन में अंतरात्मा का लक्ष्य हैं . . .। परम सत्य में भगवान् निरपेक्ष, अनंत शांति, चेतना, जीवन, शक्ति और आनंद हैं।

क्या भगवान् एक बहुत बड़ी शक्ति नहीं हैं जो प्रकाश और सत्य की अवस्थाओं में काम करती है ?

भगवान् एक बड़ी शक्ति से अधिक हैं। तुम जो कुछ कहते हो वह सब तो भगवान् हैं ही साथ ही उस सबसे अधिक भी।

३१ मई १९३३ *—श्रीअरविंद*

आज मैंने माताजी के चेहरे के चारों ओर प्रकाश देखा। वह क्या था ? वह मेरी कल्पना थी या कोई वास्तविक चीज ?

माताजी के चारों ओर हमेशा प्रकाश रहता है।

हम ईर्ष्या को कैसे पहचान सकते हैं और उससे कैसे पिंड छुड़ा सकते हैं ?

पहचानना आसान है। वह जब कभी आये उसे दूर फेंक देना चाहिये।

१ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

अभीप्सा का क्या अर्थ है ?

यह सत्ता में भगवान् या भागवत चेतना की उच्चतर चीजों के लिये पुकार है। (हमेशा 'अभीप्सा' करने का अर्थ होता है, उच्चतर चीजों को बुलाना।)

४ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

क्या मैं समर्पण का अर्थ जान सकता हूं ? समर्पण कैसे किया जाये ?

समर्पण है अपने-आपको भगवान् के हाथों में दे देना, तुम जो कुछ हो, या तुम्हारे पास जो कुछ है, उसे भगवान् को देना और किसी भी चीज को अपना न मानना, केवल भगवान् की इच्छा का पालन करना और किसी की इच्छा का नहीं, अहंकार के लिये नहीं, भगवान् के लिये जीना।

६ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

आज सवेरे साढ़े दस बजे मैंने स्वागत कक्ष में शांत आध्यात्मिक वातावरण का अनुभव किया। जब मैं बाहर निकला तो 'क्ष' ने, जो उस समय फाटक पर बैठा था, मेरे साथ बातें करनी शुरू कर दीं। तब मैंने देखा कि मेरे अंदर आध्यात्मिक प्रभाव घट गया।

स्पष्ट है कि जब ऐसी अनुभूति हो तो मौन रहना ज्यादा अच्छा है।

संवेदन क्या है और उसे सुंदर सामंजस्यपूर्ण ढंग से व्यक्त करने का क्या तरीका है ?

यह चेतना में खुलनेवाली अभिव्यक्ति की शक्ति पर निर्भर है।

७ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

हम प्राणिक आवेशों और कामनाओं के पूर्ण रूप से स्वामी कैसे बन सकते हैं ?

उनसे अपने-आपको दूर रखो, उनके आगे मत झुको, उनके अनुसार क्रिया न करो, उन्हें आते ही अस्वीकार कर दो।

माताजी के चारों ओर के प्रकाश का रंग कैसा है ? आज मैंने नीला प्रकाश देखा।

माताजी का विशेष प्रकाश सफेद है। लेकिन और सब रंग भी उन्हींके हैं।
८ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

कुछ स्वप्नों का अर्थ होता है और कुछ का नहीं, क्यों ?

जो स्वप्न अवचेतना के संस्कारों के ऊटपटांग अवचेतन (मन, प्राण, शरीर) संयोजन से बनते हैं उनका या तो कोई अर्थ नहीं होता या कोई ऐसा अर्थ होता है जिसे पाना कठिन है। और अगर वह जान भी लिया जाये तो वह खास जानने लायक नहीं होता। अन्य स्वप्न सीधे रूप में या तो मन, प्राण या सूक्ष्म भौतिक जगतों की घटनाएं होते हैं या अधिक विस्तृत मन, प्राण और सूक्ष्म शरीर के स्तर से आते हैं और उनका कुछ अर्थ होता है जिसे स्वप्न की आकृतियां बतलाना चाहती हैं।

प्राणमय लोक क्या है ?

जीवन-शक्तियों का, संवेदनों, कामनाओं, गतिशील आवेगों आदि का लोक।
९ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

हम सतत सचेतन कैसे रह सकते हैं ?

मन में हमेशा अचंचल और सचेत रहकर।

हम स्वप्न किस अवस्था में देखते हैं ?

तुम नींद में हमेशा ही स्वप्न देखते हो।

हम स्वयं अपने स्वामी कैसे बन सकते हैं और आत्म-नियंत्रण कैसे रख सकते हैं ?

अपना अवलोकन करो ताकि तुम्हारे सचेतन हुए बिना कोई चीज होने न पाये। अपने-आपको आंतरिक स्वीकृति के बिना प्रकृति की शक्तियों द्वारा परिचालित न होने दो। हमेशा माताजी की इच्छा का पालन करो। शक्तियों की गतिविधि को तुम्हारी स्वीकृति या अस्वीकृति माताजी के सत्य के अनुकूल हो।

१० जून १९३३ —श्रीअरविंद

माताजी ने मुझसे कहा, "तुम्हारी दृष्टि शक्तियों की गतिविधि को देखना शुरू कर रही है।" वे किस दृष्टि से और कौन-सी शक्तियों की बात कर रही थीं ?

आंतरिक दृष्टि और जो भी शक्तियां कार्यरत हों। आंतरिक दृष्टि वस्तुओं को देख सकती है—वह उनके साथ ही वस्तुओं में कार्य करनेवाली शक्तियों के स्पंदनों को भी देख सकती है।

माताजी का संगीत सुनने से हमें क्या मिलता है ?

इसका उत्तर तो तुम्हें देना चाहिये।

११ जून १९३३ —श्रीअरविंद

प्राणिक समर्पण क्या है और हम अपना प्राण भगवान् को कैसे अर्पित कर सकते हैं ?

समस्त प्राणिक प्रकृति और उसकी गतिविधियों को भगवान् के प्रति इस तरह अर्पण करना कि उसे शुद्ध किया जा सके। फिर केवल सत्य गतिविधियां रह जायेंगी जो भागवत संकल्प के अनुकूल होंगी और सभी अहंकारजन्य कामनाएं और आवेग गायब हो जायेंगे।

१२ जून १९३३ —श्रीअरविंद

निश्चल-नीरवता क्या है और उसे कैसे बनाये रखा जा सकता है ?

निश्चल-नीरवता चेतना की एक अवस्था है जो ऊपर से अपने-आप तब आती है जब तुम भागवत चेतना की ओर खुलते हो—तुम्हें अभी उसके बारे में चिंता करने की जरूरत नहीं।

जरूरत है एक अचंचल मन की जो तेजी या बुदबुदाहट के बिना चीजों को देखता है, न हड़बड़ी करता है और न ऊटपटांग बातें सोचता है।

हमें आपके पत्र को कैसे ग्रहण करना चाहिये ?

उसे अचंचल मन के साथ ग्रहण करो। बस।

१३ जून १९३३ —श्रीअरविंद

हमेशा स्थिर, अछूता और अप्रभावित रहने के लिये क्या करना चाहिये ?

जबतक सफल न होओ, कोशिश किये जाओ।

हम अपनी चेतना को शुद्ध, सरल और प्रकाशमय कैसे रख सकते हैं ?

जो कुछ ऐसा न हो उसे त्यागकर।

१३ जून १९३३ —श्रीअरविंद

योगी को क्या वृत्ति अपनानी चाहिये ?

यह इसपर निर्भर है कि वह कौन-से योग-मार्ग को अपनाता है।

सूक्ष्म शक्तियां क्या हैं ?

जो शक्तियां भौतिक नहीं हैं वे सूक्ष्म शक्तियां कहलाती हैं।

हम अपनी अभीप्सा को सदा जाग्रत्, सतर्क और जीवंत कैसे रख सकते हैं ?

सतत जागरूकता द्वारा।

हम लालसाओं और भयों से कैसे पिंड छुड़ा सकते हैं ?

उन्हें हमेशा अस्वीकार करो, भयों को त्यागो। माताजी के संरक्षण पर भरोसा रखो और हमेशा अपने-आपको उनके प्रति खुला रखो।

१४ जून १९३३　　　　　　　　　　—श्रीअरविंद

कभी तो हम स्वप्नों को स्पष्ट देखते हैं और कभी अस्पष्ट ?

यह उस समय की चेतना की अवस्था पर निर्भर है। या वह निर्भर हो सकता है चेतना के उस अंश पर जो सक्रिय है, उस स्तर पर जिससे स्वप्न आता है। इसके और भी कई कारण हो सकते हैं।

हम मानसिक रचनाओं से कैसे मुक्त हो सकते हैं ?

अचंचल मन पाकर।

हम भगवान् के साथ एक कैसे हो सकते हैं ?

अपने-आपको माताजी की शक्ति के प्रति खोलो और अभीप्सा करो—अपने समय पर तुम भगवान् के साथ एक हो जाओगे।

लोग ऐसा क्यों कहते हैं कि प्राण खराब नहीं है ? कितनी ही बुरी कामनाएं और आवेग वहीं से आते हैं।

प्राण का उचित रूप से उपयोग किया जाये तो वह अच्छा होता है—वह क्रिया के लिये आवश्यक यंत्र है। लेकिन साधारणतः अपनी निम्न क्रिया में यह अहं और कामना का यंत्र होता है—इसी कारण इसमें बह जाने की जगह इसे कठोर शासन में रखना चाहिये।

१५ जून १९३३　　　　　　　　　　—श्रीअरविंद

हम अपनी रात और अपने दिन के बारे में सचेतन कैसे हो सकते हैं ?

जैसे-जैसे तुम्हारी चेतना बढ़ेगी यह चीज आती जायेगी।

हम भगवान् में डुबकी कैसे लगा सकते हैं ?

तीव्र अभीप्सा और एकाग्रता द्वारा।

भगवान् को निरंतर याद रखने के लिये हमें क्या करना चाहिये ?

अभीप्सा करो और हमेशा कोशिश में लगे रहो।

१६ जून १९३३ —श्रीअरविंद

"प्राकृतिक शक्तियों" का क्या अर्थ है ?

प्राकृतिक शक्तियां ? उदाहरण के लिये : मन में विचार-शक्ति, हृदय में प्रेम, प्राण में कामना, क्रोध, आवेग, भौतिक में स्वास्थ्य और बीमारी।

केंद्रीय सत्ता क्या है और हम उसे किस तरह भगवान् के अर्पण कर सकते हैं ?

केंद्रीय सत्ता अपनी ही क्रिया द्वारा स्वयं को भगवान् के अर्पण करती है। अभी के लिये तुम चैत्य को ही अपने अंदर केंद्रीय सत्ता मान सकते हो।

खुलने का क्या अर्थ है ? क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि माताजी से कोई चीज गुप्त न रखो ?

यह खुलने के प्रति पहला चरण है।

कल मुझे ऐसा लगा कि मुझे बुखार चढ़ेगा, और आज मुझे जुकाम हो गया। क्या यह जुकाम उस धारणा के कारण आया ?

धारणा ने जुकाम के अंदर आने का रास्ता खोल दिया।

हम प्राण को कठोर अनुशासन में कैसे रख सकते हैं ?

उसे मनमानी न करने देकर।

हम अहंकार से कैसे पिंड छुड़ा सकते हैं ?

वह जहां कहीं आये तुम्हें उसे खोजकर निकाल बाहर फेंकना होगा।

१७ जून १९३३ —श्रीअरविंद

व्यक्ति "खुलता" कैसे है?

नीरव-निश्चल मन में श्रद्धा और समर्पण द्वारा।

हम कैसे जान सकते हैं कि कोई प्रभाव अच्छा है या बुरा?

तुम्हें अवलोकन करना और देखना होगा।

और हमें क्या करना चाहिये ताकि बुरे प्रभाव अंदर न घुसने पायें?

जाग्रत् बनो।

निष्ठा का क्या अर्थ है?

निष्ठा का अर्थ सुपरिचित है।

१८ जून १९३३ —श्रीअरविंद

हम माताजी की दी हुई शक्ति का उपयोग उसी तरह कैसे कर सकते हैं जैसे वह आती है?

सचाई और समर्पण द्वारा।

क्या यह सच नहीं है कि हर बार जब हम माताजी को देखते हैं तो वे हमें शक्ति देती हैं?

हां।

सामंजस्य क्या है?

जब सब कुछ एक ही सत्य के साथ सहमत हो या उसकी अभिव्यक्ति हो तो वह है सामंजस्य।

१९ जून १९३३ —श्रीअरविंद

भागवत चेतना के प्रति खुलना क्या है ?

यह वह उद्घाटन है जब चेतना भागवत चेतना या शक्ति (या वह जिस किसी चीज के प्रति खुले) को प्राप्त और उसके प्रभावों को अनुभव कर सके।

"प्राणिक प्रकृति" का क्या अर्थ है ?

ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर आश्रम में कोई भी दे सकता है। यह और "निष्ठा का क्या अर्थ है" इस तरह के प्रश्न। ज्यादा अच्छा हो अगर तुम किसीसे गुजराती में समझ सको और जब कभी आवश्यकता हो तो अपनी समझी हुई चीज का उपयोग कर सको। अगर मुझे दार्शनिक रूप में उत्तर देना हो तो हर प्रश्न के लिये दस पृष्ठ लग जायेंगे और तुम कुछ न समझ पाओगे। अन्यथा मुझे चलता-सा उत्तर देना होगा और ऐसा उत्तर भी तुम्हारे लिये किसी काम का न होगा। तुम अपने अनुभवों के बारे में व्यावहारिक प्रश्न पूछ सकते हो और मैं उनके उत्तर देने की कोशिश करूंगा।

१९ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

सच्ची चेतना क्या है ?

केवल भागवत चेतना ही पूरी तरह सच्ची है।

२० जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

हम उस भागवत चेतना को कैसे पा सकते हैं ?

माताजी की शक्ति के प्रति खुलकर।

२१ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

माताजी की शक्ति क्या है और हम उसके प्रति कैसे खुल सकते हैं ?

वह भागवत शक्ति है जो स्वभाव को बदलती है। अपने-आपको अचंचल बनाओ और केवल माताजी की ओर मुड़ो।

कल शाम मैंने बाग को सींचा, यद्यपि मुझे लग रहा था कि पानी बरसेगा। रात

को बारिश हुई। हम यह कैसे जान सकते हैं कि इस तरह की धारणा सच है या नहीं ?

इसके लिये कोई नियम नहीं है। तुम्हें तबतक निरीक्षण करते जाना होगा जबतक तुम सहज रूप से सच्चे अंतर्भास और मात्र धारणाओं के बीच भेद न कर सको।
२२ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

जब कभी कोई गलत क्रिया करता है तो मुझे कैसा-कैसा लगता है। जब कभी कोई गलत समय पर मजाक करता है उस समय भी मुझे कैसा-कैसा लगता है ? क्या इन चीजों का अनुभव करना अच्छा है ?

इसका यह अर्थ है कि इन मामलों में तुम्हारी चेतना चैत्य रूप से संवेदनशील है। ऐसा अनुभव करना बिल्कुल ठीक है—बशर्ते कि कोई अशांति न हो।
२३ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

"सत्य क्या है", "भगवान् क्या हैं" आपसे इस तरह के प्रश्न पूछना अच्छा है क्या ?

मुझे नहीं लगता कि यह बहुत लाभदायक है। तुम्हारी अपनी अनुभूतियों के बारे में प्रश्न अधिक उपयोगी हैं।

मैं "मां" का अर्थ जानना चाहूंगा।

इसकी जगह मैं स्वयं प्रश्न का अर्थ जानना चाहूंगा।
२३ जून १९३३ —*श्रीअरविंद*

यह कहना बहुत कठिन है कि भगवती मां कौन हैं; व्यक्ति इसकी कल्पना नहीं कर सकता और मुझे यह मालूम नहीं। अगर आप आवश्यक समझें तो कृपया मुझे समझा दें।

भगवती मां भगवान् की चेतना और शक्ति हैं—जो सभी चीजों की मां हैं।

कई बार भगवान् और सत्य के बारे में विचार और प्रश्न आते रहते हैं। क्या यह अच्छा नहीं है कि इन चीजों के बारे में आपको लिखूं ?

शर्त यह है कि तुम हमेशा मुझसे उत्तर की अपेक्षा न करो। लोग मानसिक सूचना या प्रश्न के उत्तर के लिये मुझे नहीं लिखते बल्कि मेरे सामने अपने अनुभव और अपनी समस्याएं रखते हैं और मेरी सहायता पाते हैं। जब आवश्यक होता है मैं प्रश्नों का उत्तर देता हूं, लेकिन मैं हर समय वही नहीं कर सकता।

२४ जून १९३३ —श्रीअरविंद

मैं स्वागत-कक्ष में श्रीअरविंद का चित्र देख रहा था। मैंने दायीं ओर से बादलों को आते देखा जो बायीं ओर विलीन हो गये। जब मैंने आंखें बंद कीं तो मैंने एक ऐसे मनुष्य को, जिसके शरीर के चारों ओर प्रभामंडल था, अंधकार में चलते देखा। क्या इसका कोई अर्थ है ?

यह अज्ञान में चलते हुए साधक की प्रगति का प्रतीक है लेकिन उसकी सत्ता के चारों ओर ऊपर का कुछ प्रकाश है।

२४ जून १९३३ —श्रीअरविंद

आज 'ख' ने 'त्र' के कंधे पर हाथ रखा। मैं उससे कहना चाहता था, ऐसा करना अच्छा नहीं है। लेकिन मेरे अंदर के एक और भाग ने मुझसे कहा, "उससे यह कहनेवाले तुम कौन होते हो ? माताजी मौजूद हैं और जो कुछ आवश्यक होगा वही कहेंगी।" मेरे मन के ये दो भाग क्या हैं ? और कौन-सा ठीक है ?

ये मन के दो भाग हैं। जिसने बोलने के लिये मना किया वही ठीक था।

२४ जून १९३३ —श्रीअरविंद

कल शाम को मैं ठीक समय पर दतौन लेना भूल गया। 'ख' ने मुझसे कहा, "जाओ, अब ले आओ।" मैंने कहा, "मुझे अब नहीं जाना चाहिये। समय हो गया है।" क्या यह ठीक है ?

इस तरह यह अच्छा अनुशासन है। नियम काम के उचित सामंजस्य और सुविधा के

लिये बनाये जाते हैं। अगर तुम उनकी अवहेलना करते हो तो तुम अव्यवस्था, अक्षमता और ढील पैदा करते हो, और तुम अपने-आप भी शिथिल बने रहते हो। अपने अंदर शिथिलता ले आते हो। शिथिल, लापरवाह, अनियंत्रित और अपूर्ण रह जाते हो।

२५ जून १९३३ —श्रीअरविंद

नींद में भी हम भगवान् को कैसे याद रख सकते हैं?

यह चेतना के विकास पर निर्भर है, लेकिन पहले तुम्हें अपनी जाग्रत् अवस्था में भगवान् को सदा याद रख सकना चाहिये।

२७ जून १९३३ —श्रीअरविंद

पढ़ते समय भी भगवान् को कैसे याद रखा जा सकता है?

यह जरा कठिन है।

तुम शुरू में याद कर सकते हो और अपना पढ़ना भगवान् को अर्पित कर सकते हो और फिर अंत में भी याद कर लो। चेतना की एक ऐसी स्थिति है जिसमें उसका एक भाग ही पढ़ता या काम कर रहा होता है और उसके पीछे सदा भगवान् की चेतना बनी रहती है।

२८ जून १९३३ —श्रीअरविंद

क्या कहानी की किताबों और उपन्यासों से योगी को नुकसान पहुंच सकता है?

योगी को किसी चीज से आसानी से नुकसान नहीं पहुंच सकता है। लेकिन कहानियों और उपन्यासों के अतिरिक्त और भी तो बहुत-सी पुस्तकें हैं।

मैं कौन-सी पुस्तकें पढ़ सकता हूं?

जो पुस्तकें तुम समझ सको और जो तुम्हारे मन के विकास में सहायता दें।

१ जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

योगी और साधक में क्या फर्क है?

योगी वह है जो अपनी सिद्धि में प्रतिष्ठित हो चुका है—साधक वह है जो अभी सिद्धि पा रहा या पाने की कोशिश कर रहा है।

२ जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

मुझे अपनी फ्रेंच की पढ़ाई के लिये क्या करना चाहिये ? मैं प्रगति नहीं कर रहा।

ब्यौरे की बातों पर ज्यादा ध्यान दो। जब भूलें सुधारी जायें तो उन्हें ध्यान से देखो ताकि फिर से वही या वैसी ही भूलें न हों।

जो शांति आती है वह ज्यादा समय नहीं रहती।

शुरू में कभी नहीं रहती—बाद में उसकी अवधि बढ़ती है।

३ जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

क्या मासिक पत्र पढ़ने चाहियें ?

यह मासिक पत्रों पर निर्भर है।

४ जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

'ख' ने मुझसे कहा कि अनुशासन बहुत जरूरी नहीं है, किन्हीं अवस्थाओं में हमें अनुशासन भंग करना चाहिये क्योंकि यह केवल एक मानसिक नियम है। क्या यह सच है ?

नहीं। अनुशासन माताजी ने लगाया है—उसे भंग करना माताजी की आज्ञा भंग करना है।

हम मन, प्राण और शरीर में भय से कैसे छुटकारा पा सकते हैं ?

इन्हें वाहियात समझो और भागवत रक्षण पर श्रद्धा रखो।

सच्चा ध्यान क्या है ?

मन को पूरी तरह भगवान् की ओर मोड़ना।

५ जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि हमारे मन में ऐसे प्रश्न न आयें कि मैं योग क्यों कर रहा हूं ?

यह ज्यादा अच्छा होगा।

चैत्य पुरुष सामने कैसे आता है ?

माताजी के लिये भक्ति, उनकी आज्ञा मानने और उनके प्रति समर्पण से।

सचाई या निष्कपटता क्या है ?

केवल भगवान् का अनुसरण करना, अहंकार का या भगवान् के सिवा किसी और का नहीं।

गलत गतिविधियां ठीक गतिविधियों में कब बदल सकती हैं ?

नहीं बदल सकतीं। उन्हें गायब होना होगा और उनके स्थान पर ठीक गतिविधियों को आना होगा।

५ जुलाई १९३३ —*श्रीअरविंद*

क्या योग का ज्ञान अपने-आप नहीं आता ?

हां, सच्चा ज्ञान भगवान् के स्पर्श से अपने-आप अंदर से आता है।

अगर ऐसा है तो क्या पढ़कर ज्ञान पाने की जगह यही ज्ञान पाना ज्यादा अच्छा नहीं है ?

पढ़ना मन को तैयार करने में थोड़ी-सी सहायता दे सकता है लेकिन सच्चा ज्ञान पढ़ने से नहीं आता। कुछ तैयारी सहायता करती है—लेकिन मन को बहुत ऊपरी ढंग से सक्रिय न होना चाहिये या केवल उत्सुकता के लिये जानने की कोशिश न करनी चाहिये।

६ जुलाई १९३३ —*श्रीअरविंद*

मैं ध्यान कैसे करूं ?

अपने मन को अभीप्सा पर जमा दो और बाकी चीजों को दूर भगा दो।

अगर विचार आयें तो मैं क्या करूं ?

उन्हें दूर भगा दो।

आजकल पता नहीं लगता कि क्या लिखूं। मुझे जो कुछ जानने की जरूरत होती है वह आप अंदर से बता देती हैं। मुझे किस तरह सुनना चाहिये ?

सारी सत्ता की—मन, प्राण और शरीर की—पूर्ण निश्चल-नीरवता में।
६ जुलाई १९३३

उदारता क्या है ?

वह गुण जो कृपण नहीं है।
८ जुलाई १९३३

मैं जब भोजनालय में खाने जाता हूं तो कभी-कभी वे मुझे अतिरिक्त शाक देते हैं, क्या उसे लेना ठीक है ?

हां, यह ठीक है, अगर वह दिया जाये। जो चीज अच्छी नहीं है वह है मांगना।
१४ जुलाई १९३३

हम ऐसी चीजों से पूरा छुटकारा कैसे पा सकते हैं जो अंधकार की सत्ता को लाती या उन्हें हम पर अपनी इच्छा लादने देती हैं।

यह पूरी तरह तभी हो सकता है जब सारी सत्ता माताजी को समर्पित हो जाये—तब उनकी इच्छा के सिवा कोई चीज मन, प्राण या शरीर पर शासन नहीं कर सकती।
१९ जुलाई १९३३ —*श्रीअरविंद*

मैं अच्छी फ्रेंच-शैली कहां सीखूं ?

यह व्याकरण के उच्चतर पाठ्यक्रम में सिखायी जाती है, इसके लिये विशेष पुस्तकें भी

हैं। शैली का एक मुख्य नियम यह है कि गद्य लेखन में "मैं" का उपयोग तबतक न किया जाये जबतक उससे बचना एकदम असंभव न हो। बहरहाल, एक के बाद एक दो वाक्य कभी मैं के साथ शुरू न किये जायें। इससे तुम्हें कुछ ख्याल आयेगा कि तुम अपनी दैनिक रिपोर्ट किस तरह लिखो!
२० जुलाई १९३३

मैं पुस्तकालय से व्याकरण की एक पुस्तक लाया हूं। क्या आप चाहेंगी कि मैं किसी के साथ मिलकर उसका अध्ययन करूं?

तुम्हें जो करने की विशेष आवश्यकता है वह है व्याकरण का अभ्यास। उनमें से एक पुस्तक ले लो। उसके प्रश्नों के उत्तर लिखो और मैं कोई आदमी ढूंढ़ दूंगी जो उन्हें ठीक कर दे। इस तरह के अभ्यासों की किताबें कई लोगों के पास हैं। तुम्हें आसानी से कोई ऐसा मिल जायेगा जो अपनी किताब कुछ समय के लिये तुम्हें दे सके।
जुलाई १९३३

तुम्हें मिताहार करना चाहिये यानी बहुत अधिक नहीं खाना चाहिये क्योंकि पेटूपन हमेशा बुरा होता है।
२६ जुलाई १९३३

हम माताजी के प्रति अंतरात्मा को कैसे खोल सकते हैं?

तुम केवल उनकी ओर मुड़ो और अपने-आपको उनके प्रति खोल दो। यह आंतरिक क्रियामात्र है।

आनंद क्या है?

यह भागवत आनंद है जो ऊपर से आता है। यह खुशी या सुख नहीं है। यह स्वयंभू और शुद्ध है तथा खुशी और सुख जो हो सकते हैं उससे पूरी तरह परे है।
२७ जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

सीमित चेतना के बंधन तोड़ दो। चेतना को प्रकाश से, अग्नि से भर दो, उसे ज्योतिर्मय बना दो। आपको यह तेजी से करना चाहिये।

जो काम जल्दी में किया जाता है वह कभी अच्छी तरह नहीं किया जाता।
२९ जुलाई १९३३

प्रायः हर रोज सवेरे मेरे पेट में दर्द होता है। साधारणतः वह खाने के बाद चला जाता है। क्या इस दर्द का शारीरिक कारण है या फिर कोई और कारण है?

यह शारीरिक है।

दर्द क्यों आता है?

ये खाली पेट के दर्द हैं जो खाने के बाद चले जाते हैं।
जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

कल रात मुझे बिल्कुल नींद नहीं आयी। सवेरे जब मैं उठा तो थका हुआ था। कौन-सी चीज मुझे सोने से रोकती है?

तुम्हारे अंदर की बेचैनी तुम्हें भीतर और बाहर निश्चल रहने से रोकती है। अच्छी तरह सोने के लिये प्राण और शरीर तथा मन को भी अपने-आपको शिथिल करना और शांत रहना सीखना चाहिये।
जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

अब भी मेरे अंदर कोई ऐसी चीज है जिसे स्त्रियां अच्छी लगती हैं। मुझे क्या करना चाहिये?

केवल एक ही चीज करनी है, भगवान् की ओर अधिकाधिक मुड़ो और इन दूसरी चीजों में रस न लो।
जुलाई १९३३ —श्रीअरविंद

हम समस्त कामना और स्वार्थी अहंकार से पूरी तरह कैसे छुटकारा पा सकते हैं?

तुम्हें जब कभी उनका भान हो, उन्हें अस्वीकार करो।

जुलाई १९३३ *—श्रीअरविंद*

भक्ति क्या है?

(यहां श्रीअरविंद अंग्रेजी पर्याय 'डिवोशन' बताते हैं)

सहनशीलता क्या है?

थके, अवसादग्रस्त, हतोत्साह हुए या अधीर हुए बिना, प्रयास छोड़े बिना और अपने लक्ष्य या दृढ़ निश्चय को छोड़े बिना, बिना किसी कठिनाई या कष्ट के प्रयास किये जाने की शक्ति।

अनुशासन क्या है?

नियंत्रण में या औचित्य के मानदंड के अनुसार जीना और कार्य करना। प्राण और शरीर को अपनी मरजी के अनुसार न करने देना और मन को सत्य या सुव्यवस्था की परवाह किये बिना अपनी सनक के अनुसार दौड़-भाग न करने देना। और जिनकी आज्ञा माननी चाहिये उनकी आज्ञा मानना।

जुलाई १९३३ *—श्रीअरविंद*

अब भी मेरी समझ में नहीं आता कि भगवान् अपनी शक्ति द्वारा समस्त क्रियाओं के अंदर कैसे निवास करते हैं? भगवान् मिथ्यात्व और अज्ञान में कैसे रह सकते हैं?

तुम्हारे अंदर मिथ्यात्व और अज्ञान का वास इसलिये है क्योंकि तुम अपने अंदर स्थित भगवान् से अलग हो गये हो।

कोई भी चीज भगवान् के बिना रह कैसे सकती है? भगवान् सर्वव्यापक हैं, अगर ऐसे न होते तो जगत् का अस्तित्व न होता।

जुलाई १९३३ *—श्रीअरविंद*

मन के रूपांतर के बाद व्यर्थ और अहितकर विचार नहीं आते, आते हैं क्या?

नहीं, तब वे नहीं आते।

४ अगस्त १९३३

कृतज्ञता क्या है ?

यह वह भावना है जो तुम्हारे अंदर उनके लिये होती है या होनी चाहिये जो तुम्हारे साथ भलाई करते हैं।

क्या यह ठीक नहीं है कि प्रणाम के बाद या माताजी से मिलने के बाद हमें चुपचाप रहना चाहिये ?

अगर संभव हो तो, यह ज्यादा अच्छा है।

४ अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

मुझे नहीं लगता कि मैं बहुत प्रगति कर रहा हूं।

माताजी कहती हैं कि तुम प्रगति कर रहे हो। शुरू-शुरू में बहुत तेज या सतत प्रगति हमेशा संभव नहीं होती।

६ अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

मानसिक और प्राणिक भक्ति क्या है ?

प्राणिक भक्ति अहंकारपूर्ण होती है। वह साधारणतः भगवान् पर अधिकार या उनसे की गयी मांगों से भरी रहती है और जब-जब उनकी तृप्ति न हो तो वह विद्रोह करती है। मानसिक भक्ति विचारों और भावों में पूजा होती है परंतु हृदय में प्रेम नहीं होता।

चैत्य कब जागता है ?

जब चेतना तैयार हो।

६ अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

तब सच्ची भक्ति क्या है ?

चैत्य भक्ति जो अपने-आपको देती है, जो भगवान् के सिवा और कुछ नहीं मांगती, वह हमेशा भगवान् की ओर मुड़ी रहती है।

हम चैत्य पुरुष को कैसे पहचान सकते हैं ?

अगर वह हो तो तुम उसे पहचाने बिना नहीं रह सकते।

७ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

हम भागवत आनंद कैसे पा सकते हैं ?

पहले शांति और शुद्धि पा लो।

८ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

अगर कोई शास्त्र पढ़े फिर भी भगवान् से बहुत दूर हो और दूसरा एकदम से मूर्खतापूर्ण, तथाकथित साहित्यिक रचनाएं पढ़े फिर भी भगवान् के साथ संबंध बनाये रखे तो इससे हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं ?

कि पढ़ाई संपर्क नहीं लाती, सत्ता के अंदर संकल्प और अभीप्सा से ही संपर्क आता है।

११ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

भगवान् हमें सत्य की ओर कब ले जा सकते हैं ?

जब तुम तैयार हो।

१८ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

मैं जानना चाहूंगा कि अग्नि का अर्थ क्या है ?

अग्नि अभीप्सा की आग या तपस्या की आग है।

मेरे अंदर स्त्रियों को छूने से जो भाव पैदा होता है उससे पिंड छुड़ाने का क्या तरीका है ?

स्त्रियों के बारे में नहीं, किसी और चीज के बारे में सोचो। अध्ययन करो, अपने मन को विकसित करो, ज्ञान में रस लो, विकसित मन और इच्छा-शक्ति ऐसे तुच्छ संवेदनों के प्रभुत्व से बचाते हैं।

१९ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

आज सवेरे मैंने यूं अभीप्सा की, "मुझसे लैंगिक शक्तियों को दूर रख।" अभीप्सा का असर हुआ। मेरे अंदर सेक्स के विचार नहीं आये, मुझे बहुत अच्छा लगा। क्या आप इस बारे में कुछ लिखेंगे?

यह बहुत अच्छा है। अगर तुम हमेशा ऐसी अभीप्सा करो और उन विचारों को अस्वीकार करो तो अंत में वे चले जायेंगे और सच्चे आनंद के लिये स्थान छोड़ देंगे।

२० अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

हम मन को अपना खिलवाड़ करने से और प्राण को भावों के आवेग में बहने से कैसे रोक सकते हैं?

दोनों से पीछे हटकर, अपने संकल्प का उपयोग करो।

मानसिक समर्पण क्या है?

मन और मन में स्थित संकल्प द्वारा समर्पण।

चैत्य भक्ति कहां से आती है?

चैत्य पुरुष को छोड़ और कहां से आ सकती है भला?

२० अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

ज्ञान में रस लो—किस प्रकार के ज्ञान में?

किसी भी प्रकार के अच्छे और उपयोगी ज्ञान में।

क्या भक्ति हृदय से नहीं आती?

हां, परंतु प्राणिक भक्ति भी वहीं से आती है—चैत्य भक्ति चैत्य पुरुष से आती है।

२१ अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

क्या आप चाहते हैं कि मैं लैंगिक संवेदनों के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करूं? ये कहां से आते हैं, कैसे कार्य करते हैं, पहले मेरे अंदर क्यों नहीं थे?

कुछ शक्तियां प्राणिक और भौतिक प्रकृति से आती हैं और स्नायुओं और मन पर कब्जा कर लेती हैं तथा कामनाएं और संवेदन उत्पन्न करती हैं। पहले इन्हें अनुभव करने के लिये तुम बहुत छोटे थे। ये अमुक आयु और शारीरिक विकास के बाद आती हैं।

२१ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

"भागवत प्रेम" शब्द पर एकाग्रता—यह कैसी एकाग्रता है और इसे कैसे किया जाये ?

अगर तुम किसी विचार या शब्द पर एकाग्र होओ तो तुम्हें उस शब्द के तात्त्विक भाव पर इस अभीप्सा के साथ विस्तारपूर्वक निरूपण करना चाहिये कि तुम उस चीज को अनुभव कर सको जिसे वह शब्द व्यक्त करता है।

२२ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

क्या यह सच नहीं है कि मेरे लिये केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही उपयोगी हो सकता है ?

इस संसार की चीजों से अनभिज्ञ रहना आध्यात्मिक ज्ञान में सहायता नहीं करता।

२२ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

एक स्वप्न : मैं आश्रम जा रहा था। मुख्य द्वार के सामने चौराहे पर मैंने अपनी ओर आती हुई एक नदी को देखा। मेरी प्रार्थना-पुस्तक और एक पत्र नदी में बह गये। मैं उनकी तलाश में गया और आखिर मैंने उन्हें पा लिया। इस स्वप्न का क्या अर्थ है ?

मेरा ख्याल है कि यह किसी प्राणिक शक्ति की धारा थी जिसने कुछ समय के लिये प्रार्थनाओं और पत्रों के असर को गुम कर दिया या भुला दिया। लेकिन तुमने उन्हें फिर ढूंढ़ निकाला।

२३ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

अगर हम अपने निजी पत्र किसी और को दिखलायें तो क्या इससे उसे नुकसान नहीं होता ?

हो सकता है और नहीं भी। ज्यादा नुकसान तो तुम्हें है।

चैत्य प्रेम क्या है ?

यह वह प्रेम है जो सीधा अंतरात्मा से आता है, वह प्राणिक कामनाओं या अहंकार से मिला नहीं होता।

अगर हम आपको (माताजी को) या श्रीअरविंद को स्वप्न में देखें तो हमें यह कैसे पता लगे कि कोई और सत्ता आपका रूप धारण किये हुए नहीं है ?

यह तुम्हारे विवेक पर निर्भर है।

२४ अगस्त १९३३ *—श्रीअरविंद*

क्या आप मुझे विचार के बारे में कुछ ज्ञान दे सकेंगी ? वे कहां से आते और कैसे कार्य करते हैं ?

वे और सभी चीजों की तरह प्रकृति से आते और मन में रूप धारण करते हैं।

भावमय भक्ति क्या है ?

भगवान् के लिये प्रेम और पूजाभरा भाव।

कुछ दिन पहले 'क्ष' ने 'त्र' से भोजन के समय कुछ अपशब्द कहे। मैंने उन शब्दों को सुना, वे मेरे अंदर प्रवेश कर गये और अब वे कभी-कभी मुझे विचलित करते हैं।

यह यांत्रिक मन है जो चीजों को व्यर्थ में दोहराता रहता है—तुम्हें शांति से इन्हें निकाल बाहर करना चाहिये। वे जब कभी आयें तो तुम किसी और चीज के बारे में सोचने लगो।

२५ अगस्त १९३३ *—श्रीअरविंद*

क्या हमारे अंदर किसी और व्यक्ति के लिये चैत्य प्रेम हो सकता है ?

ज्यादा अच्छा यह है कि इसकी कोशिश मत करो। बहुधा यह प्राणिक नाता जोड़ने के लिये एक बहाना होता है।

२६ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

अंतरात्मा मन, प्राण और शरीर से जुड़ी हुई है। हम उसे अलग कैसे कर सकते हैं और उसे कैसे ऊंचा उठा सकते हैं ताकि वह इनपर शासन कर सके?

वह जुड़ी हुई नहीं है, वह उनके पीछे है—अगर तुम्हारा मतलब चैत्य पुरुष से है। मन, प्राण और शरीर की विकृतियों के साथ चैत्य की क्रिया घुल-मिल जाती है, स्वयं चैत्य सत्ता नहीं। चैत्य को थोड़ी बहुत जितनी भी चैत्य अनुभूति पर्दे में से निकल सके उसे प्रकट करने के लिये इनका उपयोग करना होता है। भगवान् के प्रति हृदय की अभीप्सा द्वारा चैत्य पुरुष अपनी इन असमर्थताओं से मुक्त हो सकता है।

२७ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

एक आदमी दूसरे के विचारों को कैसे जान लेता है?

इसमें "कैसे" का सवाल नहीं है। या तो तुम जानते हो या नहीं जानते। यह संपर्क की, विचारों को ग्रहण करने या विचारों को देख सकने की शक्ति है जो चेतना में खुलती है।

(एक शंख के चित्र के बारे में जिसपर माताजी ने लिखा था "आध्यात्मिक पुकार")

"आध्यात्मिक पुकार" का क्या अर्थ है?

आंतरिक सत्ता में भगवान् को खोजने की पुकार।

२८ अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

अनासक्ति का क्या अर्थ है?

किसी चीज के साथ आसक्त न होना—ताकि उसके न होने से तुम्हें कष्ट न हो या उसके होने से तुम उत्तेजित न हो उठो।

३० अगस्त १९३३ —श्रीअरविंद

मुझे नहीं लगता कि अंतरात्मा और चैत्य एक-सी चीजें हैं।

चैत्य और अंतरात्मा एक ही चीज है।

कभी-कभी कुछ साधक कुछ अस्वाभाविक चीजें करते हैं और पागल होकर यहां से भाग जाते हैं ?

क्योंकि वे मूर्ख हैं और वही करना चाहते हैं जो उन्हें ठीक लगे, वह नहीं जो माताजी कहें।

३१ अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

लोग राजनीति के बारे में इतना अधिक क्यों सोचते हैं ?

क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जिसके बारे में तुम सोचे बिना बोल सकते हो।

३१ अगस्त १९३३ —*श्रीअरविंद*

हम विचारों को मन में आने से कैसे रोक सकते हैं ? मेरा मतलब उन विचारों से है जो प्रकृति से आते और मन में रूप धारण करते हैं।

तुम उन्हें केवल एक-दो तरीकों से रोक सकते हो।

१ —मन में पूर्ण शांति और निश्चलता को बुलाकर।

२ —विचार व्यक्तिगत मन में आ पायें उससे पहले दूर से ही उनके बारे में जागृत होकर। और तबतक तुम्हें उन्हें अस्वीकार ही करना होगा।

क्या मैं तपस्या का अर्थ जान सकता हूं ?

तपस्या उसे कहते हैं जब संकल्प और ऊर्जा को मन, प्राण और शरीर को वश में करने के लिये और उन्हें बदलने के लिये या उच्चतर चेतना को नीचे उतारने के लिये या किसी और यौगिक प्रयोजन या उच्चतर हेतु के लिये एकाग्र किया जाये।

१ सितंबर १९३३ —*श्रीअरविंद*

आज दोपहर को दो बजे के लगभग मुझे बहुत अच्छा अनुभव हुआ। मेरे

अंदर शक्ति जैसी किसी चीज का अवतरण हुआ। मैंने मकान के अंदर टहलना और प्रार्थना करना शुरू किया। उसमें शांति भी थी। यह कैसी क्रिया है ?

जैसा तुम कहते हो, वह ऊपर की शक्ति होगी क्योंकि वह शांति और प्रार्थना को लायी।

६ सितंबर १९३३ —श्रीअरविंद

आज सवेरे प्रणाम के समय मैं प्रणाम के कमरे में बैठा था। मधुर, विनम्र आंसू बहने लगे। गहरी तीव्र प्रार्थनाएं उठीं। प्रेम और आनंद भी मौजूद थे। क्या आनंद था ! यह क्या गति है ?

यह चैत्य अर्थात् सच्ची अंतरात्मा के साथ संपर्क था।

८ सितम्बर १९३३

एक अनुभूति : आज शाम को मैंने छत को धरती से दो-तीन मीटर ऊंचा उठते देखा। उसका रंग गुलाबी और सुनहरा था।

भौतिक में अभिव्यक्त दिव्य प्रकाश लाल-सुनहरा होता है।

९ सितम्बर १९३३ —श्रीअरविंद

मन, प्राण और शरीर से पीछे हटने का क्या अर्थ है ?

उनकी गतियों के साथ अपने-आपको एक न करना—उन पर ऐसे नजर डालना जैसे तुम अपने बाहर की किसी चीज को देखते हो।

१० सितम्बर १९३३ —श्रीअरविंद

"अतः चैत्य जीवन-शक्ति हमारी अनुभूतियों के आगे एक प्रकार के कामना-मन के रूप में प्रकट होती है। हमें अपनी सच्ची आत्मा तक वापिस पहुंचने के

लिये उसे जीतना होता है।" (आर्य[1]) चैत्य जीवन-शक्ति क्या है और हम उसे कैसे जीत सकते हैं? उसका उचित कार्य क्या है?

इसका अर्थ है ऐसी जीवन-शक्ति जो भीतर से आती है और चैत्य पुरुष के साथ सामंजस्य रखती है—यह सच्चे प्राण-पुरुष की शक्ति है लेकिन साधारण अज्ञानी प्राण में वह विकृत होकर कामना बन जाती है।

तुम प्राण को शांत और शुद्ध करके सच्चे प्राण को उभरने दो। या तुम्हें चैत्य पुरुष को सामने लाना चाहिये तब चैत्य प्राण को शुद्ध करके उसे चैत्य भाव देगा, तब तुम्हारे अंदर सच्ची प्राणिक शक्ति होगी।

११ सितम्बर १९३३ —*श्रीअरविंद*

आजकल मैं यौगिक साधन[2] पढ़ रहा हूं परंतु कुछ बातें मेरे लिये स्पष्ट नहीं हैं। "मानस की वैचारिक क्रिया" क्या है? क्या हम उसे शांत कर सकते हैं?

वास्तविक वैचारिक क्रिया सचमुच बुद्धि की क्रिया है—मानस केवल दर्शन और संस्कार को विचार का रूप देता है। इस क्रिया को विशेष रूप से शांत करने की कोई जरूरत नहीं है—यह मन की सामान्य शांति के साथ भली-भांति आ जाती है।

१२ सितम्बर १९३३ —*श्रीअरविंद*

"मानस बुद्धि से चित्त में जाते हुए विचारों को रास्ते में ही पकड़ लेता है लेकिन वह उन्हें पकड़कर संवेदन के पदार्थ में बदल देता है" (यौगिक साधन) क्या मानस को इन विचारों को पकड़ने का अधिकार है? अगर हां, तो उसे रोकने का क्या तरीका है ताकि ये संवेदन के पदार्थ में न बदल जायें? मानस बुद्धि से चित्त की ओर जाते हुए विचारों का वाहन कैसे बन सकता है?

मानस आदि परिभाषाएं सामान्य मनोविज्ञान की हैं और इनका उपयोग ऊपरी चेतना के लिये होता है। हम अपने योग में इससे भिन्न वर्गीकरण अपनाते हैं जिसका आधार यौगिक अनुभूति है। मानस की इस गति के साथ मेल खानेवाली दो अलग-अलग

[1] श्रीअरविंद आर्य नामक एक दार्शनिक पत्र का संपादन करते थे। उनके अधिकतर महत्त्वपूर्ण गद्य-ग्रंथ पहले इसी में क्रमशः प्रकाशित हुए थे।

[2] यौगिक साधन एक छोटी-सी पुस्तक है जो १९११ में छपी थी। यह श्रीअरविंद के हाथ ने स्वतः-लेखन द्वारा लिखी थी। १९३४ में श्रीअरविंद ने यह घोषणा की थी कि यह उनकी रचना नहीं है।

चीजें हैं—भौतिक मन का एक भाग जो भौतिक प्राण के साथ संबंध रखता है। वह भौतिक इंद्रियों से प्राप्त करता है और बुद्धि या वैचारिक मन के किसी अंश की ओर भेजता है, फिर वह बुद्धि से वापिस जाता है और विचार तथा इच्छा को ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की ओर भेज देता है। चेतना की सामान्य गति में यह सब अनिवार्य है परंतु साधारण चेतना में सब कुछ घुल-मिल जाता है और कोई स्पष्ट नियम या व्यवस्था नहीं रहती। योग में व्यक्ति भिन्न-भिन्न भागों और उनकी उचित क्रियाओं से अवगत होता है और हर एक को या तो उच्चतर चेतना के आधीन या भागवत शक्ति के आधीन अपने उचित स्थान और उचित क्रिया में लगाता है। उसके बाद सब कुछ आध्यात्मिक चेतना से भर जाता है और अलग-अलग भागों में अपने-आप उचित दर्शन और उचित क्रिया आ जाती है क्योंकि तब वे पूरी तरह ऊपर से नियंत्रित होते हैं और उसके आदेशों को न तो मिथ्या बनाते न उसका प्रतिरोध करते और न ही उसमें गड़बड़ करते हैं।

१३ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

प्राण और मन का क्या कार्य है ?

यह प्रश्न इतना बड़ा है कि कुछ पंक्तियों में इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। लेकिन मन का मुख्य कार्य है दर्शन, विचार और समझ। प्राण का मुख्य कार्य है संवेदन, आवेग और कामना।

१३ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

सूक्ष्म प्राण और भौतिक प्राण का क्या अर्थ है ? उनकी क्या क्रिया है ?

सूक्ष्म प्राण के बारे में मैं नहीं जानता। हम सूक्ष्म शरीर स्थूल जड़ भौतिक शरीर से भेद करने के लिये कहते हैं क्योंकि हमारी साधारण अनुभूति के लिये सारा भौतिक ही स्थूल है। प्राण स्वभावतः अभौतिक है इसलिये उसके साथ यह विशेषण व्यर्थ है। भौतिक प्राण से हमारा मतलब होता है ऐसा प्राण जो भौतिक में इस तरह अंतर्लीन हो कि वह उसकी गतिविधि से और उसके भौतिक स्वभाव से बंध जाये। उसका कार्य होता है शरीर को सहारा देना, उसमें ऊर्जा भरना तथा जीवन, वृद्धि, गति आदि की क्षमता बनाये रखना और यह भी कि वह बाहर के संघातों के प्रति संवेदनशील रह सके।

"प्रायः एक अविकसित धर्म से विकसित धर्म और निचले से ऊपर के धर्म

की ओर जाने के लिये अधर्म रास्ते या तैयारी के रूप में जरूरी है।" (यौगिक साधन) लेखक का क्या आशय है?

मुझे प्रसंग याद नहीं है लेकिन मेरा ख्याल है कि उसका मतलब है कि जब आदमी को निचले धर्म से छुटकारा पाना होता है तो प्रायः उसे तोड़ना पड़ता है ताकि वह ज्यादा बड़े धर्म पर आ सके। उदाहरण के लिये, सामाजिक कर्तव्य, ऋण-मोचन, परिवार की देखभाल, देशसेवा में सहायता आदि। जो आदमी आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ता है उसे इन सब चीजों को पीछे छोड़ देना पड़ता है और अपने इस अधर्म के लिये बहुत-से लोग उसे बुरा-भला कहते हैं लेकिन अगर वह यह अधर्म न करे तो वह हमेशा के लिये निम्नतर जीवन के साथ बंधा रहेगा क्योंकि हमेशा ही कोई-न-कोई कर्तव्य पूरा होने के लिये बना रहेगा, इसलिये वह आध्यात्मिक जीवन नहीं अपना सकता या फिर तभी अपना सकता है जब बूढ़ा हो जाये और उसकी क्षमताएं घिस जायें। यह एक उदाहरण का तथ्य है।

१४ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

इसके लिये हमें क्या करना चाहिये कि प्राण मन की क्रियाओं में गड़बड़ न कर पाये और केवल वही करे जो भगवान् द्वारा स्वीकृत है।

मिलावट के बारे में सचेतन होओ और उसे त्याग दो।

१५ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

क्या चित्त मन का एक भाग है या उससे भिन्न है?

यह मन और प्राण के नीचे स्थित आधारभूत चेतना है।

मनोमय पुरुष का क्या अर्थ है?

चेतना के हर स्तर की एक तात्त्विक सत्ता होती है जिसे पुरुष कहते हैं, जैसे हर एक की अपनी प्रकृति से कार्य और गतिविधि की विशेष शक्ति होती है वैसे ही हर एक का पुरुष होता है। वह सत्ता का एक भाग होता है जो सहारा देता, अवलोकन और अनुभव करता और प्रकृति की गतिविधियों का नियंत्रण भी कर सकता है।

१५ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

"अब मैं प्राण पर आता हूं जो मनुष्य में स्नायविक या प्राणिक तत्त्व है, जो सूक्ष्म शरीर में मानस और चित के नीचे केंद्रित है और स्थूल देह के साथ नाभि से संबद्ध है"। (यौगिक साधन) यह सूक्ष्म शरीर क्या है। मैं "स्थूल देह के साथ नाभि से संबद्ध" का अर्थ भी नहीं समझ पाया।

यह कैसी बात है कि तुम ये प्रारंभिक बातें भी नहीं जानते! मनुष्य की केवल एक स्थूल दृष्टिगोचर देह ही नहीं है, एक सूक्ष्म देह भी होती है। मरने पर वह स्थूल देह से सूक्ष्म देह में चला जाता है।

नाभि भौतिक शरीर में प्राणिक केंद्र है—लेकिन प्राण का निवास-स्थान सूक्ष्म शरीर के प्राणमय कोष में होता है, वह इस कोष में व्याप्त रहता है परंतु स्थूल देह द्वारा क्रिया के लिये उसकी क्रिया नाभि और उसके नीचे केंद्रित होती है।

१६ *सितंबर* १९३३ —श्रीअरविंद

कृपया बतलाइये कि जब 'क्ष' नाराज हुआ तो मुझे कांपने का अनुभव क्यों हुआ?

प्राणिक गतिविधियां (कामना, क्रोध, भय आदि) ऐसे स्पंदन पैदा करती हैं जो वातावरण में बिजली की लहरों की तरह फैलते हैं और जो लोग खुले हुए, संवेदनशील या दुर्बल हों उनपर प्रहार करते हैं।

१६ *सितम्बर* १९३३

एक स्वप्न: मैंने अपने-आपको आश्रम से बहुत दूर किसी शहर में पाया। मैं वहां साधकों के साथ खेल रहा था। मैं माताजी को पूरी तरह भूल गया था। कुछ समय बाद मैंने उन्हें याद किया और "मां, मां" कहने लगा। मैं आश्रम में लौट आया। इसका क्या मतलब है?

यह उसका प्रतीक है जब तुम माताजी और सत्य चेतना (आश्रम) को भूलकर किसी अन्य दूर की चेतना (दूसरे शहर प्राण) में जाकर अन्य साधकों के साथ प्राणमय संबंध (खेल) स्थापित करते हो।

१७ *सितंबर* १९३३ —श्रीअरविंद

आध्यात्मिक सुख का क्या अर्थ है?

ऐसा सुख जो बाहरी या भौतिक चीजों अथवा मन और प्राण की कामनाओं की तुष्टि पर निर्भर न हो बल्कि स्वयंभू हो या अपने भीतर स्थित भगवान् या चीजों के अंदर स्थित भगवान् के साथ संपर्क से आता हो।

१८ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

"हमें केवल मन और इंद्रियों के जाल को ही नहीं काटकर फेंक देना है बल्कि विचारक के जाल, धर्मगुरुओं और संप्रदायों के जाल, शास्त्र के फन्दों और विचार की दासता से भी निकल भागना चाहिये।" (आर्य) क्या आप इसका अर्थ मुझे समझा सकेंगे?

यह बहुत समय लेगा। तुम किसी और से समझ सकते हो, यह कठिन नहीं है। इसमें केंद्रीय विचार यह है कि भागवत सत्य किसी भी धर्म, सिद्धांत, शास्त्र, विचार या दर्शन से महान् है—अतः तुम्हें इनमें से किसीसे भी बंधना नहीं चाहिये।

"जब संकल्प क्रिया करना आरंभ करता है तो स्वभाव आड़े आता है, अतः जबतक तुम स्वभाव पर क्रिया नहीं कर सकते तबतक तुम्हें संकल्प को जीवन में नहीं उतारना चाहिये।" (यौगिक साधन) यह मेरी समझ में नहीं आया।

मुझे अनुच्छेद याद नहीं है। संभवतः इसका अर्थ यह है कि जबतक तुम अपने अंदर के सच्चे स्वभाव पर क्रिया न कर सको और सच्चे संकल्प और चेतना को व्यवहार में न ला सको, तबतक तुम्हें यह करने की कोशिश करते रहना चाहिये। किसी अपूर्ण संकल्प और अपूर्ण साधन द्वारा जीवन को रूप देने की कोशिश नहीं करनी चाहिये।

१८ सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

अंतर्दृष्टि क्या है?

जब तुम भौतिक दृष्टि से नहीं बल्कि आंतरिक दृष्टि से देखते हो उसे अंतर्दृष्टि कहा जाता है।

२० सितंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

चैत्य शांति क्या है?

शांति, जो हृदय के भगवान् को समर्पण से आती है।

२१ *सितंबर* १९३३ —*श्रीअरविंद*

पुरुष प्रकृति की गतिविधि को कब नियंत्रण में रख सकता है?

जब वह ऐसा करना चाहेगा करना आरंभ कर देगा। उसी मात्रा में प्रकृति भी उसकी इच्छा का उत्तर देना सीख जायेगी।

२३ *सितंबर* १९३३ —*श्रीअरविंद*

यौगिक साधन के लेखक का इससे क्या मतलब है "जब मनुष्य स्वयं भगवान् बन जाता है?"

उसका मतलब है "जब वह भगवान् के साथ तादात्म्य पा लेता है", या "जब वह स्वयं को केवल भगवान् का एक अंश मानता है और उसी तरह सोचता और क्रिया करता है।"

२४ *सितंबर* १९३३ —*श्रीअरविंद*

लोग क्यों मरते हैं?

शरीर घिस जाता है।

संवेग और कामनाएं कहां से आती हैं—अंदर से या बाहर से?

पहले बाहर से आती हैं, फिर वे अंदर रूप लेकर ऊपर उठती हैं।

२५ *सितंबर* १९३३ —*श्रीअरविंद*

सपने में मैंने किसी घर के सामने एक सांप देखा, वह गोल-गोल घूम रहा था।

सांप किसी तरह का कोई गलत सुझाव है, जो हमेशा अपने-आपको दोहराता रहता है।

आज मैं एक तरह की व्याकुलता और उदासी महसूस कर रहा हूं। क्यों, कैसे और किसके द्वारा यह उदासी भेजी गयी है ?

हो सकता है सांप को देखने का परिणाम हो।

२५ सितंबर १९३३ —श्रीअरविंद

आज मैं थकान महसूस कर रहा हूं, शायद मैंने काफी आराम नहीं किया—लेकिन मैं क्या करूं ? मुझे समय ही नहीं मिलता !

अगर तुम अपने दिन को ज्यादा समझदारी से व्यवस्थित करो, व्यर्थ के आने-जाने से बचो तो निश्चय ही तुम्हें आराम करने का समय मिल जायेगा।

३० सितंबर १९३३

आजकल मुझे एकदम से भूख नहीं लगती। रोटी के एक छोटे टुकड़े और जरा-सी सब्जी से ही मेरा पेट भर जाता है।

यह केवल प्राण की कोई सनक होगी—तुम्हें इससे ज्यादा खाना चाहिये, खासकर तुम्हारी उम्र में अच्छी तरह न खाना शरीर के लिये खराब है।

६ अक्तूबर १९३३ —श्रीअरविंद

एक सपना : चार-पांच लोग माताजी के दर्शन के लिये इंतजार कर रहे थे। मेरी बारी 'ग' के बाद थी। चूंकि मुझे कुछ देर हो गयी इसलिये कोई और माताजी के पास चला गया। कुछ देर बाद माताजी सीढ़ियों से नीचे उतरीं। मैं 'घ' से बातें करने लगा। जब मैं सीढ़ियों तक गया तो माताजी अंदर जा चुकी थीं। इसका क्या मतलब है ?

और कुछ नहीं बस यही कि तुम अपना अवसर बार-बार खो रहे थे क्योंकि तुम और चीजों में लगे थे।

आज सुबह मैंने बहुत उदासी महसूस की : मैं साधना में कोई प्रगति नहीं कर रहा, उल्टे, "मैं पीछे गिरता जा रहा हूं।"

यह निम्न प्राण और भौतिक प्रकृति में तमस् की क्रिया है।

१५ अक्तूबर १९३३ —श्रीअरविंद

एक सपना : मैं समुद्र तट पर गया जहां मेरा घर था। पानी बहुत ऊपर उठ गया था। एक बड़ी लहर प्रचंड रूप से मेरे पास आ रही थी। मैं पीछे दौड़ा। मैंने ध्यान के कमरे का दरवाजा खुला देखा, मैं अंदर चला गया और 'क्ष' ने दरवाजा बंद कर दिया। कुछ देर बाद मैं बाहर आया और मैंने देखा कि वहां पानी का नाम-निशान तक न था : समुद्र सूख गया था। क्या इसका कोई अर्थ है ?

समुद्र प्राणिक शक्ति है जो तुम्हारे बस के बाहर है। जब तुम वातावरण में शरण लेते हो तो वह पीछे हटती और सूख जाती है।

१९ अक्तूबर १९३३ —श्रीअरविंद

हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारे विचार वैश्व प्रकृति से आ रहे हैं या अंदर से ?

तुम अनुभव कर सकते हो, और अगर तुम अनुभव न करो तो तुम उनके स्वरूप से जान सकते हो।

२८ अक्तूबर १९३३ —श्रीअरविंद

ऐसे कितने जगत् हैं जिनमें मनुष्य सपनों में जा सकता है ?

असंख्य जगत् हैं—लेकिन हम उन्हें सूक्ष्म भौतिक, प्राणिक, मानसिक, चैत्य और उच्चतर जगतों में बांट देते हैं।

२९ अक्तूबर १९३३ —श्रीअरविंद

क्या यह सच है कि अगर कोई किसी चीज को खो डाले या तोड़ दे तो उसे बेचैनी और दुःख का अनुभव करना चाहिये ?

मेरी समझ में नहीं आता कि बेचैनी या दुःख का अनुभव किस तरह उस खोयी हुई चीज को ढूंढ़ सकता या टूटी हुई चीज को जोड़ सकता है!
१ नवंबर १९३३

लोगों के साथ हुई बातचीत को अपनी रिपोर्ट में लिखने के बाद मैंने एक तरह की खुशी, छुटकारे का अनुभव किया। क्यों?

बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि तुमने सब कुछ माताजी के सामने रख दिया।
२ नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

सहज रूप से मैंने निम्नलिखित शब्द कहे: "मेरा छोटा-सा बगीचा भागवत चेतना की ओर खुल रहा है।"

पेड़-पौधे भी भगवान् के प्रति खुल सकते हैं।
५ नवंबर १९३३

कीड़ों को मारने के लिये क्या मुझे थोड़ा-सा मिट्टी का तेल और थोड़ा साबुन मिल सकता है?

हां, लेकिन पौधों के लिये मिट्टी का तेल खतरनाक है—सावधान रहना कि कीड़ों के साथ-साथ तुम कहीं पौधों को भी न मार डालो।
७ नवंबर १९३३

अगर कोई बचपन से यहीं रहा हो तो क्या यह सच है कि उसके अंदर सेक्स की कठिनाइयां न होंगी?

यह अपने-आप सच नहीं है—यह केवल संभव है—लेकिन इस शर्त पर कि व्यक्ति पूरी तरह से माताजी के प्रभाव में रहे, दूसरे साधकों के वातावरण के प्रति ज्यादा न खुले जिनके अंदर यह है, नाजुक उम्र में विचलित न हो और न शृंगारपूर्ण साहित्य पढ़कर अपने-आपको विचलित करे। ऐसा कोई नहीं है जो अबतक यह सब कर सकने में समर्थ हुआ हो।

—श्रीअरविंद

जब उदासी आये, तो हमें क्या करना चाहिये ?

उसे उसी तरह झाड़ दो जिस तरह तुम अपने पैरों से धूल झाड़ देते हो।
८ नवंबर १९३३

क्या यह सच है कि किसी शक्ति, प्रकाश, शांति या आनंद के अवतरण के ठीक पहले, विरोधी शक्तियां हमारे ऊपर कोई रचना, उदासी या अवांछित चीज फेंकती हैं ?

हमेशा नहीं—वे कभी-कभी ऐसा करती जरूर हैं या अवतरण के बाद प्रहार करती हैं ताकि उसमें बाधा दें। लेकिन अगर तुम उनके साथ संपर्क रखना अस्वीकार कर दो तो वे कुछ नहीं कर सकतीं।
९ नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

(साधक के लिये लिखी गयी प्रार्थना)

मैं सर्वांगीण और पूर्ण रूप से सच्चा और निष्कपट बनने की अभीप्सा करता हूं।
११ नवंबर १९३३ —माताजी

यहां आश्रम में, क्या साधक और साधिकाएं आपस में भाई-बहन हैं ? या केवल मित्र हैं ?

वे केवल साथी साधक हैं।
१४ नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

आज दोपहर को जब मैं सोकर उठा तो मुझे ऐसा महसूस हुआ मानों मेरे ऊपर कोई उदासी आ गिरी। मुझे इसका कोई कारण नहीं दीखता।

नींद में मनुष्य बहुत बार अवांछनीय शक्तियों और चीजों के संपर्क में आता है जो तुम्हारी प्राणिक ऊर्जा को खींच लेती हैं जिससे जब तुम उठते हो तो अपने-आपको कमजोर और उदासी से भरा हुआ अनुभव करते हो।
१५ नवंबर १९३३

सच्चा सुख क्या है और यह कब आता है ?

जब तुम मिथ्या सुख के लिये आकर्षण का अनुभव नहीं करते।

सच्चा सुख भागवत स्रोत से आता है, वह शुद्ध, **बिना शर्त** होता है। साधारण सुख का मूल प्राण है, वह अशुद्ध होता है और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।
१८ नवंबर १९३३

अगर अंतरात्मा अपने कार्यों में मुक्त होना चाहती है तो उसके लिये निम्न प्रकृति की स्वाभाविक क्रिया के परे जाना अनिवार्य है। इसका क्या मतलब है ?

निम्न प्रकृति मनुष्य की साधारण चेतना है जिसमें अज्ञान, कामना और बंधन होते हैं। मेरे ख्याल से तुम्हें मालूम है कि अगर मनुष्य मुक्त होना चाहता है तो उसे निम्न प्रकृति की इस चेतना को पार करके उच्चतर भागवत चेतना में पहुंचना होगा।
१९ नवंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

आज सुबह जब मैंने प्रार्थना[1] पढ़ी तो मुझे किसी अच्छी चीज का अनुभव नहीं हुआ। ऐसा लगा मानों मैंने कोई साधारण चीज पढ़ी। काम खत्म करके मैंने उसे फिर से पढ़ा और मुझे बहुत अच्छा अनुभव हुआ, हमेशा की तरह, ऐसा क्यों है ?

यह तुम्हारी चेतना में भेद है प्रार्थना में नहीं। संभवतः पहली बार नींद के बाद तुम्हारी चेतना मंद और धुंधली थी—बाद में वह जगी थी और उसने अनुभव किया।
२५ नवंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

सक्रिय और निष्क्रिय निश्चल-नीरवता का क्या अर्थ है ?

निष्क्रिय निश्चल-नीरवता वह है जिसमें आंतरिक चेतना रिक्त और विश्राम में रहती है, वह बाहरी चीजों और शक्तियों के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करती।

[1] माताजी की 'प्रार्थना और ध्यान' से।

सक्रिय निश्चल-नीरवता वह है जिसमें महान् शक्ति होती है जो निश्चल-नीरवता में बाधा दिये बिना बाहर चीजों और शक्तियों पर उतरती है।
२६ नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

शांति और स्थिरता में क्या भेद है?

अधिक नहीं। शांति स्थिरता से ज्यादा सकारात्मक है—नकारात्मक स्थिरता हो सकती है जो केवल बाधा और कष्ट का अभाव है, लेकिन शांति हमेशा कोई सकारात्मक चीज होती है जो स्थिरता की तरह न केवल छुटकारा लाती है बल्कि अपने साथ कुछ सुख और आनंद को भी लाती है। एक सकारात्मक स्थिरता भी होती है, ऐसी चीज जो उन सभी चीजों का डटकर सामना करती है जो कष्ट देना चाहती हैं, वह नकारात्मक स्थिरता की तरह कमजोर और निष्क्रिय नहीं होती बल्कि बलशाली और ठोस होती है। बहुत बार दोनों शब्द समान अर्थ के लिये उपयोग में आते हैं, लेकिन जैसा ऊपर कहा गया है तुम उनके सच्चे अर्थ में भेद कर सकते हो।
२७ नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

हम तमस् से कैसे छुटकारा पा सकते हैं?

शक्ति के अवतरण द्वारा।

शांति कब उतर सकती है?

यह शरीर के ऊपर की चेतना के प्रति खुलने पर निर्भर है।
२९ नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

कृपया मुझे हर्ष और आनंद का भेद बता दीजिये।

हर्ष प्राणिक है, आनंद है आध्यात्मिक।
३० नवंबर १९३३ —श्रीअरविंद

जीवन-ऊर्जा का क्या अर्थ है?

यह वह ऊर्जा है जो देह में प्राण की रचना करती और उसे सहारा देती है; यह वह ऊर्जा है जो, यदि भगवान् के अर्पित हो तो शरीर और उसकी क्रियाओं के रूपांतर के लिये उपयोग में लायी जाती है।
१ दिसंबर १९३३

'त्र' ने मुझसे कहा : "व्यंग्य करना बुरा नहीं है, अगर तुम कभी व्यंग्य न करो तो तुम रसहीन पेड़ बन जाते हो" क्या यह सच है ?

नहीं, यह सच नहीं है, व्यंग्य करना किसी बौद्धिक श्रेष्ठता का नहीं बल्कि अज्ञानी मानसिक दर्प का चिह्न है। चैत्य कभी व्यंग्य नहीं करता।
२ दिसंबर १९३३

क्या यह सच है कि विवाहित लोगों की कठिनाइयां अविवाहितों से ज्यादा होती हैं ?

यह चरित्र पर निर्भर है, विवाह पर नहीं।
३ दिसंबर १९३३ —*श्रीअरविंद*

मैंने कहा, " 'ग', हमें लोगों का खराब पहलू नहीं, हमेशा अच्छा पहलू देखना चाहिये।" उसने जवाब दिया, "नहीं, हमें दोनों पहलू देखने चाहियें और फिर उनमें भेद करना चाहिये।"

दूसरों के दोषों के बारे में बोलना निस्संदेह बहुत बुरा है। सबके अपने दोष होते हैं और अपने विचारों में उनपर जोर देना निश्चय ही उन्हें ठीक करने में सहायता नहीं देता।
४ दिसंबर १९३३

'ज्ञ' ने मुझसे कहा कि अगर मेरे पास अखबार पढ़ने को समय न हो तो मुझे कम-से-कम उसपर एक सरसरी नजर डाल लेनी चाहिये। मैंने पूछा, "क्या ऐसा कोई नियम है कि अखबार पढ़ना ही चाहिये ?" उसने जवाब में कहा,

"संसार में जो कुछ हो रहा है उसका पता होना चाहिये, तुम संन्यासी तो नहीं हो।"

मैं संन्यासी नहीं हूं और मैं कभी अखबार नहीं पढ़ती! मेरे पास उसके लिये समय नहीं है।

चेतना के एकदम सामान्य स्तर पर गिरे बिना अखबार पढ़ना बहुत कठिन है। जब चेतना दृढ़ता से भगवान् के साथ ऐक्य में प्रतिष्ठित हो गयी हो केवल तभी निम्न चेतना में गिरने के जोखिम के बिना अखबार पढ़ना संभव होता है।
५ दिसंबर १९३३

शरीर पर बहुत-से आक्रमण हो रहे हैं। क्या आप बता सकेंगी क्यों?

क्योंकि तुम बहुत अधिक शारीरिक चेतना में रह रहे हो—इसलिये वे शरीर पर आते हैं।

शारीरिक चेतना में रहने का क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है चीजों को केवल उसी तरह देखना जैसी वे बाहरी मन और इंद्रियों को दीखती हैं, अपनी आंतरिक सत्ता या ऊपर की चीजों के बारे में अभिज्ञ हुए बिना केवल यही जानना कि तुम शरीर में जी रहे हो। यह तब होता है जब तुम केवल शारीरिक चेतना में रहते हो।
५ दिसंबर १९३३ —श्रीअरविंद

लेकिन आक्रमणों को आने से रोकने के लिये मुझे क्या करना चाहिये ताकि मैं उच्चतर चेतना में उठ सकूं?

अधिक विशाल चेतना के लिये अभीप्सा करो—निम्न प्रकृति के सुझावों का त्याग करो—या अधिक पूरी तरह से माताजी की शक्ति के प्रति खुलो।
६ दिसंबर १९३३ —श्रीअरविंद

इसका क्या अर्थ है: "प्रभु के लिये मेरे उत्साह ने मुझे खा लिया है?"
(आर्य)

इसका अर्थ है कि उसने उसकी समस्त चेतना को भर दिया है और दूसरी चीजों और व्यक्तित्व की सामान्य क्रियाओं के लिये कोई स्थान नहीं छोड़ा।

किसी साधक की इच्छा और बल का भागवत इच्छा और बल में घुल-मिल जाना और उच्चतर शक्ति के साथ एक होना कब संभव होता है?

भागवत इच्छा और बल की सहायता और स्वीकृति के बिना नहीं।

७ दिसंबर १९३३ —श्रीअरविंद

मजाक करना अच्छा है क्या? क्या इससे हमें सहायता मिलती है?

यह साधना में सहायता नहीं देता—यह केवल मन या प्राण का खेल है।

८ दिसंबर १९३३ —श्रीअरविंद

ऐसा लगता है कि 'क' हमेशा मुझसे बात करने का संयोग ढूंढ़ती रहती है। क्या आप बता सकेंगी कि वह मुझसे क्या चाहती है?

संभवतः अपनी प्राणिक भूख को शांत करने के लिये तुम्हारी शक्तियों के कुछ अंश को खाना चाहती हो।

९ दिसंबर १९३३

एक सपना : एक बहुत बड़ा बगीचा था। मैं और कई साधकों के साथ घूम रहा था। मैंने मनमोहक गुलाबों से—जिनका अर्थ था "आत्मदान"—लदा एक छोटा-सा पौधा देखा। उनका एक गुच्छा था। क्या इसका कोई अर्थ है?

यह तुम्हारी अपनी चेतना के अंदर का बगीचा है जहां 'आत्म-दान' का वृक्ष पनपता है।

१० दिसंबर १९३३ —श्रीअरविंद

श्रीअरविंद ने 'ग' को लिखा कि माताजी नहीं चाहतीं कि 'ग' और मैं 'क्ष' की

दी किसी भी वस्तु को स्वीकार करें। क्या आप बतायेंगी कि अगर कोई किसी व्यक्ति से कोई चीज लेना स्वीकार करता है तो क्या होता है?

अगर तुम योग में उन्नति करना चाहते हो तो तुम्हें केवल भगवान् से ही चीजें लेनी चाहियें।
१० दिसंबर १९३३

कुछ दिन पहले, मुझे महसूस हुआ कि मैं सुखद चेतना में ऊपर उठ गया हूं, लेकिन कुछ दिनों के बाद मैंने एकदम से उल्टा अनुभव किया। मैं फिर से बहुत नीचे गिर गया। अब मैं ठीक अनुभव कर रहा हूं। क्या आप मुझे इस गतिविधि को समझायेंगी?

यह चेतना की बहुत सामान्य गतिविधि है जो अपनी सामान्य अवस्था से ऊंची अवस्था में बने रहने में कुछ कठिनाई का अनुभव करती है।
१२ दिसंबर १९३३

निम्न का उच्च के प्रति समर्पण कब संपन्न हो सकता है?

जब निम्न समर्पण के लिये अपनी पूरी सहमति दे दे।

''काम का समर्पण बाहरी और भीतरी दोनों क्रियाओं को अपने आलिंगन में ले लेता है।'' (आर्य) ''आंतरिक क्रियाएं कौन-सी हैं?''

मन, अंतरात्मा, आंतरिक प्राण और सूक्ष्म भौतिक की क्रियाएं।
१२ दिसंबर १९३३ —*श्रीअरविंद*

सपने क्या दिखाते हैं? यह कि चीज होगी, हो रही है या हो चुकी है?

सपना बहुत कम ही ऐसी घटना के बारे में होता है जो भौतिक रूप से हो चुकी है या होगी।

अगर 'क' अपनी प्राणिक भूख को न शांत कर पाये तो उसका क्या होगा?

इसके साथ तुम्हारा किसी तरह का कोई संबंध नहीं, इससे तुम्हारा कोई मतलब नहीं और तुम्हें इसके बारे में नहीं सोचना चाहिये।

१४ दिसंबर १९३३

क्या आप मुझे कृपा करके तूफान का कारण बतायेंगी ?

तूफान विरोधी शक्तियों के उग्र आक्रमण का परिणाम था।

१८ दिसंबर १९३३

आज सुबह जब मैंने यह कापी खोलकर पढ़ी तो मैंने अपने अंदर एक तरह की गंभीरता का अनुभव किया। क्या यह एक तरह की स्थिरता या शांति है ?

हां, यह स्थिरता का एक रूप है।

२२ दिसंबर १९३३

क्या आपका ख्याल है कि केवल तीव्र अभीप्सा द्वारा हम सारी सत्ता की निश्चल-नीरवता पा सकते हैं और उस निश्चल-नीरवता से साधना कर सकते हैं ?

हां।

क्या मन, प्राण और भौतिक की सारी अशुद्धियां इस निश्चल-नीरवता के अवतरण से विलीन हो सकती हैं ?

निश्चल-नीरवता सारी अशुद्धियों को ठीक तो नहीं कर सकती लेकिन वह उनमें से बहुतों को घटा देती है।

२३ दिसंबर १९३३

मेरा मन आपको समर्पित है या नहीं ?

हां, कुछ भागों में है, लेकिन पूरी तरह से नहीं।

२४ दिसंबर १९३३

मन के कौन-से भाग अबतक आपको समर्पित नहीं हैं ?

भौतिक मन के वे भाग जो अबतक मिथ्या और अज्ञान के प्रभाव तले हैं। वे अभीप्सा की पूर्ण निष्कपटता के द्वारा प्रदीप्त हो सकते हैं।
२५ *दिसंबर* १९३३

तीसरे पहर, तीन बजे मुझे हर्ष का अनुभव हुआ, लेकिन कुछ देर बाद मैंने ललाट से ठोड़ी तक किसी चीज के उतरने का, फिर उसके मुंहतक उठने का अनुभव किया—उसके बाद वह गायब हो गयी—यह एक संवेदना थी।

किस तरह की संवेदना ?
२५ *दिसंबर* १९३३

मैं संवेदना का वर्णन नहीं कर सकता। विशेष रूप से मैंने ऊपर से नीचे आते हुए एक दबाव का अनुभव किया।

जिसका तुम वर्णन कर रहे हो वह सामान्यतः ऊपर से आनेवाली माताजी की शक्ति का दबाव होता है।

आप मेरी प्राणिक सत्ता के बारे में कुछ कहेंगी ?

वह बहुत चंचल है और उसे अधिक स्थिर और शांत रहने की आवश्यकता है।
२६ *दिसंबर* १९३३ —*श्रीअरविंद*

कृपया बताइये कि प्राण को स्थिर और शांत करने और उसे आपको समर्पित करने के लिये मुझे क्या करना होगा ?

उसे शांत रहने की शिक्षा दो। यह केवल आदत की बात है। उसकी सचेतन और अचंचल रहने की आदत डालो।
२७ *दिसंबर* १९३३ —*श्रीअरविंद*

क्या यह सच नहीं है कि मासिक पत्र और कहानियां पढ़ने के लिये व्यक्ति को एकदम पूरी तरह सामान्य चेतना में डूबना पड़ता है ?

यह **अनिवार्य** नहीं है, लेकिन इससे उल्टा करना बहुत कठिन है।
२८ दिसंबर १९३३

हे मां ! वर दो कि मेरा प्राण स्थिर हो जाये। वह घड़ी निकट है जब प्राण . . .

एकाग्र, बलशाली और स्थिर हो जायेगा।
२९ दिसंबर १९३३ *—श्रीअरविंद*

यह कब संभव होता है कि भगवान् अपना प्रेम प्राण में उंडेल सकें और प्राण केवल उन्हींसे प्रभावित हो ?

जब प्राण बदल जाये—यानी, जब वह भगवान् को **चाहे**।
३० दिसंबर १९३३

क्या मनोमय पुरुष मानसिक सत्ता पर नियंत्रण रखता है ?

मनोमय पुरुष स्वयं मानसिक सत्ता है। उसे मानसिक प्रकृति को नियंत्रित करना चाहिये। लेकिन बहुधा वह उसपर नियंत्रण करती है।
३ जनवरी १९३४ *—श्रीअरविंद*

आज शाम 'ज्ञ' ने मुझसे योग के बारे में बातें कीं। मैं जानता हूं कि उससे बातें करना बहुत अच्छा नहीं था। ज्यादा अच्छा होता कि मैं न करता। लेकिन क्या आपको लगता है कि इस चीज से मुझे कोई हानि पहुंची है ?

हमें उन गलतियों पर संताप नहीं करना चाहिये जो हमने की हैं; केवल **अपनी अभीप्सा में पूर्ण निष्कपटता को** बनाये रखने की आवश्यकता है—तब अंत में सब कुछ अच्छा होगा।
४ जनवरी १९३४

३१ दिसंबर को जब 'प' बीमार थी तो आपने डा० बाबू से कहा, "क्या 'प' आज रात तक अच्छी नहीं हो सकती ?" अगर "यह असंभव है" कहने की बजाय उन्होंने कहा होता, "अगर यह आपकी इच्छा है तो हो सकता है", तो शायद 'प' नववर्ष के आधी रात के ध्यान के लिये आ पाती।

घटनाओं के चक्र को बदलने के लिये केवल उत्तर पर्याप्त नहीं है। केवल अभीप्सा या श्रद्धा ही इसे कर सकती है—क्योंकि अभीप्सा और श्रद्धा ही भागवत कृपा को कार्य करने देती हैं।
९ जनवरी १९३४

आज मैं उदासी का अनुभव कर रहा हूं। लेकिन मुझे इसका कोई कारण नहीं दीखता।

तब तुम्हें उदासी को केवल झाड़ फेंकना होगा।
९ जनवरी १९३४

'हमारा योग और उसका उद्देश्य' पुस्तक में श्रीअरविंद ने लिखा है, "जो भगवान् से मांग करते हैं भगवान् उन्हें वही देते हैं जो वे मांगते हैं।" क्या यह सच है ?

इसका यह अर्थ नहीं कि कोई कुछ भी मांगे वह उसे हमेशा देते हैं—बल्कि यह कि वे केवल वही देते हैं जिसकी व्यक्ति मांग करते हैं—वे उससे अधिक कुछ नहीं पा सकते।

और फिर: "लेकिन जो अपने-आपको उन्हें दे देते हैं और किसी चीज की मांग नहीं करते उन्हें वे सभी चीजें देते हैं जिनकी उन्होंने अन्यथा मांग की होती या जिनकी उन्हें आवश्यकता होती और इसके साथ-साथ वह स्वयं को और अपने प्रेम के सहज वरदानों को भी देते हैं।" लेकिन शांति, चेतना इत्यादि के लिये अभीप्सा करना जरूरी नहीं है क्या ?

अभीप्सा और मांगना एक चीज नहीं है।
९ जनवरी १९३४	—श्रीअरविंद

माताजी, क्या यह सच नहीं है कि प्राण शीघ्र ही आपको समर्पित हो जायेगा ?

हां, अगर वह अपनी अभीप्सा में निष्कपट हो तो वह शीघ्र ही बदल सकता है।
११ जनवरी १९३४

"निष्कपट अभीप्सा" का क्या अर्थ है ?

वह अभीप्सा जो किसी भी अहंकार या स्वार्थपरताभरे हिसाब-किताब से मिली न हो।
१२ जनवरी १९३४

मेरे और 'ग' के बीच प्रेम' के बारे में आपकी क्या राय है ?

केवल भागवत उपस्थिति पर आधारित प्रेम ही अमिश्रित रह सकता है और साधना में कोई बाधा नहीं डालता।
१७ जनवरी १९३४

आज मैंने इस विचार से कुछ पत्रिकाएं पढ़ीं कि वे मन के विकास में सहायता पहुंचाती हैं। लेकिन क्या वे आपके ख्याल से उपयोगी हो सकती हैं ?

यह इसपर निर्भर है कि उनमें क्या होता है।
१७ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

उनमें साधारणतः कहानियां, इतिहास, विज्ञान, कविता होती है। लेकिन मेरे ख्याल से उन्हें न पढ़ना ही ज्यादा अच्छा है।

मुझे इसका कोई कारण नहीं दीखता कि तुम्हें इतिहास, विज्ञान इत्यादि के लेख क्यों नहीं पढ़ने चाहियें। तुम कहानियों को छोड़ सकते हो क्योंकि वे बहुधा मानसिक रूप से विकसित या विकसनशील चरित्र से नहीं आतीं।
१८ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

' प्रेम से साधक का मतलब है अपने ही संगी साधक के साथ मित्रता का गहरा नाता।

क्या आपके विचार से मेरे और 'ग' के बीच का प्रेम चैत्य हो सकता है ?

संभवतः उसमें चैत्य तत्त्व है, लेकिन एकमात्र वही नहीं है।
१८ जनवरी १९३४

लेकिन क्या ऐसे पारस्परिक प्रेम का अनुभव करना संभव है जो भागवत उपस्थिति पर आधारित हो ?

यह संभव है।
१९ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

मेरे ख्याल से ज्यादा अच्छा होगा अगर मेरे और 'ग' के बीच प्रेम न हो क्योंकि वह भागवत उपस्थिति पर आधारित नहीं है।

उसे, कुछ भी हो, प्राणिक मिलावट से मुक्त रखना चाहिये।

आपके ख्याल से यह प्रेम हानिकर है क्या ?

यह उसे मिलावट से मुक्त रखने पर निर्भर है।
१९ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा और 'ग' का परस्पर प्रेम मिलावट से मुक्त है। इसलिये मैं इसे छोड़ रहा हूं। क्या यह अच्छा है ?

इतना उग्र होने की आवश्यकता नहीं है, उसे अपने-आप मिलावट से शुद्ध होने दो।
१९ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

. . . अतः मैं 'घ' के लिये किसी विकर्षण का अनुभव नहीं करता।

विकर्षण हमेशा बुरी चीज है और यह आकर्षण का दूसरा पहलू है।
१९ जनवरी १९३४

मैंने 'ह' को व्यायाम करने से मना किया क्योंकि उसका शरीर कमजोर है।

किसी व्यक्ति से यह कहना कि वह कमजोर है कभी अच्छा नहीं होता, —यह उसे मजबूत बनाने का तरीका नहीं है—विपरीत है!

२० जनवरी १९३४

ऐसा लगता है कि मैं लोगों की मदद करने पर जोर देता हूं और मैं सचमुच मदद करना चाहता हूं, लेकिन अब मुझे पता है कि यह बहुत अच्छी चीज नहीं है, मैंने यह बंद कर दिया है। अगर संभव हो तो आपस में एक-दूसरे की मदद करना अच्छा नहीं है क्या?

दूसरों की मदद करने का विचार अहं का सूक्ष्म रूप है। केवल भागवत शक्ति ही मदद कर सकती है। तुम उसका यंत्र बन सकते हो, लेकिन पहले तुम्हें उपयुक्त और निःस्वार्थ यंत्र बनना सीखना होगा।

२० जनवरी १९३४ *—श्रीअरविंद*

मधुर मां! यह बताइये कि 'घ' के प्रति इस आसक्ति से पीछा छुड़ाने के लिये मुझे क्या करना चाहिये?

सबसे अच्छी चीज है कि उसके बारे में सोचना बंद कर दो।

२० जनवरी १९३४

जब मैं यह मानता हूं कि मेरे अंदर कोई गड़बड़ है, कोई आसक्ति इत्यादि, तो मैं उसे बहुत गहराई से अनुभव करता हूं। मेरे अंदर का कौन-सा भाग यह अनुभव करता है?

जो तुम्हारे अंदर सचेतन है।

२२ जनवरी १९३४

आज कुछ थकान आयी।

उसे खदेड़ दो।
२३ जनवरी १९३४

मैं उसे कैसे खदेड़ सकता हूं? और किस चीज से—क्या इच्छा, अभीप्सा की अग्नि से?

हां, दोनों अच्छे हैं।
२३ जनवरी १९३४

आज मैं 'ग' के साथ बेचैनी का-सा अनुभव कर रहा हूं, मानों मुझे वह बहुत अच्छा नहीं लगा। भला क्यों?

प्राण का उतार-चढ़ाव—केवल चैत्य प्रेम ही निर्विघ्न रहता है।

क्या मैं अबतक भौतिक चेतना में रह रहा हूं?

हर एक रहता है—जबतक शरीर है।
२३ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

मेरी समझ में नहीं आता कि व्यक्ति को औरों से प्रेम क्यों करना चाहिये। क्या यह कहीं अधिक अच्छा नहीं कि यह प्रेम भगवती मां के अर्पण हो?

एक ऐसा प्रेम है जिसमें संवेग बढ़ती हुई ग्रहणशीलता और विकसनशील ऐक्य के साथ भगवान् के प्रति मुड़ता है। वह भगवान् से जो कुछ प्राप्त करता है उसे मुक्त रूप से बदले में बिना कुछ मांगे दूसरों पर बहा देता है। अगर तुम यह करने में समर्थ हो तो वह प्रेम करने का सबसे ऊंचा और सबसे संतोषजनक तरीका है।
२३ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

इस प्रेम को पाने के लिये मुझे क्या करना चाहिये?

पहले तुम्हें इसे निरंतर चाहना होगा।
२४ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

आंतरिक मन और आंतरिक प्राण क्या हैं ?

बृहत्तर मन और बृहत्तर प्राण जो सतह पर नहीं हैं।
२६ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

आंतरिक मन और आंतरिक प्राण का क्या कार्य है ?

मन और प्राण की ही क्रियाएं, लेकिन, अधिक बड़े पैमाने पर, जो वैश्व शक्तियों के संपर्क में अधिक हो, जो उच्चतर चेतना के साथ अधिक आसानी से संपर्क में आये।

इसका क्या अर्थ है : "ज्ञान का कमल अपने-आपको चमकती हुई दीप्ति की शक्ति में से प्रकट करता है जो हृदय-कमल के निवासी से आता है।" (आर्य)

ज्ञान हमारे अंदर छिपा है, चैत्य सत्ता द्वारा, अंदर के भगवान् के दबाव से पर्दे के पीछे से निकलना आरंभ करता है।
२६ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

मेरे ख्याल से माताजी यह पसंद नहीं करतीं कि कोई उनके काम को छोड़कर और किसी कारण से दूसरे के घर जाये।

यह इसलिये कि जब लोग अपने काम के सिवा मिलते हैं तो अधिकतर वे व्यर्थ की गपशप करते हैं और यह उनके हित में नहीं है।
२७ जनवरी १९३४

प्यारे प्रभु, अगर मैं आपसे 'आर्य' के विषय में प्रश्न पूछूं तो क्या यह ठीक रहेगा ?

मेरे लिये यह संभव नहीं है कि मैं इन प्रश्नों के उत्तर लिखूं—क्योंकि बहुत लंबे उत्तर देने होंगे। आर्य इसलिये लिखा गया था कि लोग उसमें उत्तर पा सकें। मैं उन्हें फिर से नहीं लिख सकता।
३१ जनवरी १९३४ —श्रीअरविंद

मेरी बड़ी बहन ने मुझसे पूछा, "क्या तुम मेरे घर आओगे?" मैंने जवाब में कहा, "देखूंगा, माताजी से पूछूंगा।"

उसके मामले में तुम्हें वही नियम लागू करना चाहिये जो और साधकों पर लागू होता है। उससे केवल तभी मिलो जब आवश्यक हो और केवल तभी बातचीत करो जब अनिवार्य हो।
१ फरवरी १९३४

क्या मैं अपनी बहन से कह दूं कि ज्यादा अच्छा हो कि वह मुझसे केवल तभी बातचीत करे जब अनिवार्य हो?

तुम उससे हमेशा कह सकते हो कि मुझे व्यर्थ की गपशप में रस नहीं है।
३ फरवरी १९३४

'क्ष' ने मुझसे पूछा : "जब कोई व्यक्ति सिद्ध हो जाये, तो वह क्या करेगा? शायद वह कहीं जाकर एक आश्रम खोल देगा और माताजी उसके द्वारा काम करेंगी।"

हमारा लक्ष्य एकदम से भिन्न है। हमारी पूरी स्वीकृति के साथ अभी काफी समय तक ऐसी कोई संभावना नहीं है कि नये केंद्रों की स्थापना हो—हम जो चरितार्थ करना चाहते हैं उसके लिये विस्तार की अपेक्षा एकाग्रता की आवश्यकता है।
५ फरवरी १९३४

माताजी! क्या आपका यह ख्याल नहीं है कि जबतक शरीर का अस्तित्व है हम गलतियां करते रहेंगे और कभी-कभी चीजें भूल जायेंगे?

आवश्यक नहीं है। यह सब चेतना के विकास पर निर्भर है।
६ फरवरी १९३४

क्या मैं जान सकता हूं कि प्राण किस तरह क्रिया करता है? मेरे ख्याल से वह अभीतक अशुद्धियों से भरा है।

अपनी अशुद्धियों के बारे में बहुत सोचना सहायता नहीं करता। तुम जो पवित्रता, प्रकाश और शांति पाना चाहते हो, उसपर अपने विचार को स्थिर रखना ज्यादा अच्छा है।

७ फरवरी १९३४

अभी-अभी मैं अनुभव कर रहा हूं कि सब कुछ शांत है। यह कैसी अवस्था है—सच्चा आराम या एक रचना?

व्यर्थ के प्रश्नों से आराम में क्यों बाधा डालो? मन को भी शांत रहना चाहिये।

८ फरवरी १९३४

आज सुबह सामान्य ध्यान के समय मैंने कुछ दबाव का अनुभव किया। मैं आशा करता हूं कि यह मेरी पढ़ाई में बाधा न बनेगा। इस हालत में ज्यादा अच्छा होगा कि मैं ध्यान न करूं।

मुझे इसका कोई कारण नहीं दीखता कि उचित रूप से किया गया ध्यान पढ़ाई में बाधक बने—एकदम विपरीत। अगर तुम जिसे "ध्यान" कहते हो वह ध्यान बिलकुल न हो बल्कि **जड़ निष्क्रियता** और तंद्रिलता की अवस्था हो तो वह तुम्हारी पढ़ाई को नुकसान पहुंचा सकती है, और चूंकि हर एक दृष्टिकोण से वह अवस्था पूरी तरह अवांछनीय होती है, इसलिये निश्चित रूप से ज्यादा अच्छा है कि तुम इसमें रस न लो।

१२ फरवरी १९३४

फिर सच्चा ध्यान क्या है?

वह भागवत उपस्थिति पर संकल्प के साथ की गयी एकाग्रता है और उस परम सद्वस्तु का सतत, जागरूक निदिध्यासन है।

यह दबाव कैसे और क्यों आता है?

अगर तुम्हारा मतलब जड़ निष्क्रियता से है तो यह निम्नतर प्राण और जड़-भौतिक

प्रकृति के अंधकार के प्रतिरोध से आती है। अथक इच्छा और अभीप्सा द्वारा इस पर विजय पायी जा सकती है।
१२ फरवरी १९३४

माताजी, क्या मैं इस अवसाद के बारे में कुछ जान सकता हूं—यह कैसे आता है?

सामान्य वातावरण में अवसाद था और उसने उन सब पर आक्रमण किया जो उसके प्रति खुले थे।
१ मार्च १९३४

तो, अवसाद के आक्रमण से बचने के लिये क्या किया जा सकता है?

उस पर एकदम से ध्यान न दो और इस तरह व्यवहार करो मानों वह है ही नहीं।

लेकिन, सबसे पहले, वह हमारे अंदर प्रवेश करे इससे पहले हम यह कैसे जान सकते हैं कि वातावरण में अवसाद है?

यह ठीक नहीं है। तुम उन चीजों को दूर से देख और अनुभव कर सकते हो जो चीजें तुम्हारे बाहर हैं। उसी तरह इससे पहले कि वह तुम्हें छुए तुम वातावरण में अवसाद का अनुभव कर सकते हो।
१ मार्च १९३४

एक पत्र में मैंने कहा था, "भौतिक पर बहुत-से प्रहार आ रहे हैं" और आपने उत्तर दिया था, "चूंकि तुम अधिकतर भौतिक चेतना में रहते हो—इसलिये वे भौतिक पर आते हैं।" एक दूसरे पत्र में मैंने पूछा था, "क्या मैं अब भी भौतिक चेतना में रहता हूं?" आपने जवाब दिया, "हर एक रहता है—जबतक शरीर है।" मैं यह नहीं समझ पाया।

यह उन प्रश्नों पर निर्भर है जो तुम पूछते हो। जबतक तुम्हारा शरीर है, तुम भौतिक चेतना के बिना रह ही नहीं सकते, लेकिन तुम अधिक केंद्रीय भाव से चैत्य और दूसरे

भागों में निवास कर सकते हो और उनके द्वारा भौतिक का रूपांतर कर सकते हो।

६ मार्च १९३४ —*श्रीअरविंद*

प्यारी मां! मैं सोचता हूं कि चैत्य और मन—भौतिक मन के अलावा—आपको समर्पित हो चुके हैं।

लेकिन प्राण और भौतिक अब भी विद्रोह कर रहे हैं।

कृपया उन्हें बदलने के लिये कुछ सुझाव दीजिये।

प्राण में यह व्यक्तिगत अहंकार और कामना के त्याग से ही आ सकता है। इनके स्थान पर भगवती माता की इच्छा स्थापित हो जाये।

भौतिक के लिये—नमनीयता, अपने अभ्यासगत विचारों, संवेदनों, आवश्यकताओं, लिप्साओं पर जोर न देना बल्कि स्वयं को यंत्र के रूप में भगवती माता के अर्पण कर देना।

१० मार्च १९३४ —*श्रीअरविंद*

मेरी समझ में नहीं आता कि 'क्ष' अब भी मेरा संपर्क क्यों चाहती है। क्या वह कभी बंद न करेगी? कोई बात नहीं—मुझे अपनी तरफ से केवल दृढ़ता के साथ सावधान रहना चाहिये।

हां, यही करना है। जब तुम्हारे अंदर स्त्रियों के लिये कोई दुर्बलता न रहेगी तब वे तुम्हारा पीछा छोड़ देंगी।

प्यारी मां! इस दुर्बलता पर विजय पाने का सबसे तेज तरीका कौन-सा है?

दूसरी वस्तुओं के बारे में सोचो।

१२ मार्च १९३४

ऐसा लगता है कि अब मुझे 'ख' से ईर्ष्या का अनुभव नहीं होता, इसके विपरीत मैं उसे चाहता हूं। क्या यह सच है?

मैं पूरे हृदय से इसकी आशा करती हूं। जिस दिन तुम समस्त ईर्ष्या से मुक्त हो जाओगे उस दिन तुम बहुत महान् प्रगति कर लोगे।
१९ मार्च १९३४

मेरी ईर्ष्या को नष्ट होना चाहिये, हे प्यारी मां! वर दे कि मैं ईर्ष्या के बारे में अभिज्ञ हो जाऊं और तुरंत उसका त्याग कर दूं।

अगर तुम एक बार यह समझ लो कि मैं जो करती हूं वह **हमेशा प्रत्येक के और सभी के** भले के लिये होता है, वह कभी कुछ को नुकसान पहुंचाकर कुछ थोड़े-से व्यक्तियों के भले के लिये नहीं होता, तो तुम बहुत जल्दी ही ईर्ष्या पर विजय पा लोगे और इस पीड़ादायक व्रण से मुक्त हो जाओगे।

इस बात पर विश्वास रखो कि तुम्हारे लिये मैं जो करती हूं वह हमेशा यथार्थ रूप से वही होता है जिसकी तुम्हें पथ पर आगे बढ़ने के लिये आवश्यकता होती है; तब समस्त ईर्ष्या और द्वेष विलीन हो जायेंगे।
२० मार्च १९३४

माताजी कृपया यह बताइये कि 'च' से बात करने में मुझे कुछ हिचकिचाहट क्यों महसूस हुई?

वह उसकी बाहरी इच्छा का प्रभाव था जो तुम्हारे मन और प्राण पर क्रिया कर रहा था।
२० मार्च १९३४

हर एक की बाहरी इच्छा का प्रभाव दूसरों पर क्रिया क्यों नहीं करता, जिस तरह 'च' और मेरे साथ हुआ? उदाहरण के लिये मुझे अपनी बहन से बातें करना अच्छा नहीं लगता, लेकिन वह मुझसे बातें करती है; यह चीज दिखाती है कि मेरी बाहरी इच्छा का प्रभाव न उसके प्राण पर क्रिया करता है न उसके मन पर। क्यों?

यह सिद्ध करता है कि उसकी इच्छा तुम्हारी इच्छा के जितनी ही मजबूत है—और यह बहुत अच्छी चीज है। तुम किस अधिकार से यह चाहते हो कि तुम्हारी इच्छा दूसरों पर क्रिया करे? हर एक को स्वतंत्र रहना चाहिये। केवल गुरु को अपनी इच्छा उस शिष्य पर आरोपित करने का अधिकार होता है जिसने उन्हें चुना है।
२१ मार्च १९३४

माताजी, अगर यह विचार, "आप जो करती हैं वह हमेशा मेरे भले के लिये होता है" मेरे मन में अच्छी तरह से बैठ जाये, तो क्या मन प्राण-सत्ता को प्रभावित नहीं कर सकता ?

निश्चय ही; लेकिन बदले में प्राण-सत्ता बहुधा मन को प्रभावित कर उसमें संशय उत्पन्न करती है।
२१ मार्च १९३४

आज सुबह प्रणाम के समय चैत्य अवसाद था।

चैत्य कभी दुःखी नहीं होता।

अवसाद के समय मैंने प्रार्थना की, "प्राण कितना कृतघ्न है ! माताजी मेरे लिये कितना कुछ करती हैं, फिर भी वह विद्रोह करता है। प्रेममयी मां, वर दे कि प्राण फिर से विद्रोह न करे और केवल भगवान् पर ही विश्वास करने लगे।" इस क्रिया को कौन देखता है ?

यह मन का भाग है जो बदल गया है; वह औरों से अपने-आपको अलग करके सामान्य मन और अपुनरुज्जीवित प्राण के व्यवहार का निरीक्षण करता, उसको आंकता और दुःखी होता है।
२१ मार्च १९३४

क्या यह सच नहीं है कि तीन तरह के अवसाद हैं : मन का अवसाद, प्राण और चैत्य का भी अवसाद ?

मैं तुमसे कहती हूं कि **चैत्य अवसाद को नहीं जानता** क्योंकि वह प्रकृति से भागवत है, और **भगवान् में कोई अवसाद नहीं है**।

जब मन और प्राण अपनी मनमानी करते और भगवान् की आज्ञा नहीं मानते या उनके विरुद्ध विद्रोह करते हैं तो क्या चैत्य अवसाद से नहीं भर जाता ?

नहीं, नहीं, नहीं। समझ गये ?

चैत्य सत्ता के दूसरे भागों की मूर्खता को देख सकता और शोक कर सकता है लेकिन अपनी प्रकृति के अनुसार उसके लिये अवसादपूर्ण होना असंभव है।
२२ मार्च १९३४

कल आपने लिखा था, "इससे सिद्ध होता है कि उसकी इच्छा तुम्हारी इच्छा के जितनी ही मजबूत है—और यह बहुत अच्छी चीज है।" मैं यह नहीं समझ पाया कि "यह बहुत अच्छी चीज है" से आपका क्या अभिप्राय है?

किसी व्यक्ति में मजबूत इच्छा-शक्ति हो तो यह हमेशा अच्छा होता है।
२२ मार्च १९३४

'च' की इच्छा मेरे ऊपर क्रिया क्यों करती है, जब कि मेरी अपनी बहन के ऊपर नहीं करती?

इससे यह पता लगता है कि तुम्हारी बहन तुम्हारे प्रभाव के प्रति जितनी खुली है, तुम उससे अधिक 'च' के प्रभाव के प्रति खुले हो। यह हमेशा शोचनीय होता है कि कोई किसी दूसरे व्यक्ति के प्रभाव के प्रति खुला हो। तुम्हें भगवान् के प्रभाव के सिवाय और किसीके प्रभाव को स्वीकार नहीं करना चाहिये।
२२ मार्च १९३४

क्या मानसिक सत्ता के लिये कोई ऐसा उपाय है जिससे वह प्राण के प्रभाव से बची रहे?

मन को ऊपर से प्रकाश प्राप्त करने दो और प्रभावित होने से इंकार करो।
२२ मार्च १९३४

मैं प्राणिक सत्ता को यह कैसे समझाऊं कि माताजी कभी पक्षपात नहीं करतीं?

एक उपाय है माताजी पर पूर्ण श्रद्धा रखना, दूसरा है यह मानना कि वे तुमसे अधिक बुद्धिमान् हैं और जो कुछ करती हैं उसके पीछे जरूर कारण होते हैं जो तुम्हारे मन के निर्णयों से ज्यादा अच्छे होते हैं।

मैं इसे मन में दृढ़ता से किस तरह बिठा सकता हूं ?

इसे प्रतिष्ठित करना होगा—बस इतना ही। जबतक प्राण और मन यह समझते हैं कि वे माताजी से अधिक बुद्धिमान् हैं और वे उनका मूल्यांकन कर सकते हैं तबतक तुम इन मूर्खताओं के विलीन होने की आशा कैसे कर सकते हो ?
२२ मार्च १९३४ —श्रीअरविंद

मैं आपसे पूछता हूं कि अगर प्राण और मन अपने-आपको माताजी से अधिक बुद्धिमान् समझें और उनके बारे में निर्णय करें तो मैं उन्हें यह कैसे अनुभव कराऊं कि यह सच नहीं है ?

तुम उन्हें उनके दावे की हास्यास्पद मूर्खता नहीं दिखा सकते क्या ?
२३ मार्च १९३४ —श्रीअरविंद

'च' से प्रभावित होने के बारे में मैं क्या कर सकता हूं ?

विचार और क्रिया में उसपर कोई ध्यान न दो।

उससे मैं कैसे प्रभावित होता हूं ?

क्योंकि तुम उसके लिये आकर्षण का अनुभव करते हो, और उसकी इच्छा तुम्हारी इच्छा से अधिक मजबूत मालूम होती है।

चूंकि मेरी बहन की मुझसे बातें करने की प्रबल इच्छा होती है, मैं यह नहीं समझ पाता कि यह भला किस तरह अच्छी है ?

यह इच्छा की अपेक्षा कामना या सहजवृत्ति है।

मैं यह नहीं कहती कि यह अच्छा है कि वह तुमसे बात करना चाहती है, मैं कहती हूं कि सामान्यतः मजबूत इच्छा-शक्ति होना अच्छा है। जब तुम्हारी इच्छा-शक्ति मजबूत होती है तो तुम्हें बस उसे उचित रूप से निर्देशन देना होता है। अगर तुम्हारे अंदर इच्छा-शक्ति ही न हो तो पहले तुम्हें उसका विकास करना होता है जो हमेशा समय लेता है और कभी-कभी कठिन होता है।

ऊटपटांग प्रश्न पूछने से पहले ज्यादा अच्छा रहेगा कि तुम जरा सोचो और खुद ही समझने का प्रयास करो।
२३ मार्च १९३४

मैं प्रणाम के बाद ठहर गया था क्योंकि आपने मुझसे कहा था कि अगर कुछ लोग रह जायें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। आज मैं नहीं रुका क्योंकि 'ह' ने मुझसे कहा कि माताजी ने मना किया है।

यह सूचना मैंने उस समय लगवायी थी जब बहुत-से बाहर के अतिथि आये हुए थे और सभी रुके रहते थे, और इसलिये भी क्योंकि ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को प्रणाम के बाद बैठने और दूसरों को देखने की आदत होने लगी थी, मानों यह कोई प्रदर्शन हो। लेकिन अगर थोड़े-से लोग रहें तो मुझे आपत्ति नहीं।
२४ मार्च १९३४

आज शाम से मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि एक काला बादल हट गया है और मैं खुशी का अनुभव कर रहा हूं। क्या यह सच है?

तुम्हें **इच्छा** करनी चाहिये कि यह सच और स्थायी हो।
२४ मार्च १९३४

अपनी इच्छा को मजबूत बनाने के लिये मैं क्या कर सकता हूं?

उसे शिक्षित करो, उसे प्रशिक्षित करो—जिस तरह उपयोग द्वारा तुम अपनी मांसपेशियों को प्रशिक्षित करते हो।
२६ मार्च १९३४

क्या आप मुझे बतायेंगी कि अब संदेह क्यों आने लगे हैं जब कि शुरू में एकदम नहीं थे।

संभवतः तुम जिनके साथ मिलते-जुलते हो उनके संदेहों की तुम्हें छूत लग गयी है।
२६ मार्च १९३४ —श्रीअरविंद

क्या मैं यह जान सकता हूं कि जिन लोगों से मैं मिलता हूं उनमें से किनके अंदर संदेह हैं ? मैं उनसे मिलना एकदम बंद कर दूंगा, क्योंकि ये संदेह मुझे बहुत परेशान करते हैं ?

यह तुम्हें स्वयं ढूंढ़ निकालना चाहिये। बहुत-से हैं जो संदेहों को सतत सहचर की भांति रखते हैं।

२६ मार्च १९३४ —श्रीअरविंद

माताजी, क्या आप चाहती हैं कि मैं रोज एक प्रार्थना लिखूं ?

तुम्हें केवल तभी लिखना चाहिये जब प्रार्थना सहज रूप से आये।

३१ मार्च १९३४

महीने तेजी से गुजर रहे हैं और मेरी कमजोरी बढ़ती जा रही है। मैं कितनी बेचैनी का अनुभव कर रहा हूं ! कितना अवज्ञाकारी, कपटी, ईर्ष्यालु, कमजोर, आवेशों, अज्ञान और मिथ्यात्व से घिरा हूं ! मैं अपनी निम्न प्रकृति को देख ही नहीं सकता। हे मां, मैं क्या करूं ?

उसकी ओर बहुत अधिक न देखना ही ज्यादा अच्छा है। अपना ध्यान ज्यादा मजेदार चीजों की ओर मोड़ लो। तुम जो सोचते हो वही बन जाते हो। तुम्हें शक्ति, ईमानदारी और निष्कपटता के बारे में सोचना चाहिये, जो तुम बनना चाहते हो।

मार्च १९३४

यह देखते हुए कि निम्न प्रकृति को शुद्ध करने के लिये कोई उग्र प्रयास नहीं, मेरे लिये कोई आशा हो ही कैसे सकती है ? मैं औरों के बारे में सोचता ही क्यों हूं ? इससे मेरा क्या भला होगा ? हे मां, मैं किसी भी चीज के लिये अयोग्य हूं ! मां, अभीतक कोई सच्ची और निष्कपट अभीप्सा नहीं है। हे मां, मुझे कोई सलाह दो। मैं अज्ञानी, अंधकारमय बालक हूं। मेरा पथप्रदर्शन करो, मुझे सच्चा रास्ता दिखाओ।

ऐसा लगता है कि तुम इस बारे में अभीसे बहुत सचेत हो कि क्या होना चाहिये और

क्या नहीं। लेकिन तुम्हारी मुश्किल शुरू होती है व्यावहारिक प्रयोग में। तुम्हें अधिक ज्ञान के लिये मांग न करनी चाहिये, तुम्हें मांगना चाहिये बल और साहस ताकि जो कुछ थोड़ा बहुत ज्ञान पहले से तुम्हारे पास है उसका सचाई और ईमानदारी के साथ उपयोग कर सको।

४ अप्रैल १९३४

माताजी, मैं आज सवेरे से बेचैनी का अनुभव कर रहा था। जब मैं तीसरे पहर साढ़े तीन के लगभग जागा तो बेचैनी गायब हो गयी थी और उसकी जगह खुशी ने ले ली। मैं इस प्रक्रिया को नहीं समझता।

यह कोई प्रक्रिया हर्गिज नहीं है। यह केवल तुम्हारी अवस्था में उतार-चढ़ाव है। जबतक प्राणिक स्थिरता न आ जाये ये चीजें होती रहती हैं।

४ अप्रैल १९३४ —श्रीअरविंद

पता नहीं मेरे अंदर ऐसी क्या चीज है जो 'ब' को कष्ट देती है। चूंकि मेरी प्रकृति 'ब' से घटिया है इसलिये मैंने सोचा, कहीं उसपर इसका असर न पड़े।

किसने कहा कि तुम्हारी प्रकृति 'ब' से घटिया है। हर एक की अपनी प्रकृति होती है। और हर एक अपने पथ पर चलता है। औरों के साथ तुलना करना हमेशा व्यर्थ और प्रायः संकटपूर्ण होता है।

४ अप्रैल १९३४

वह कौन-सी चीज है जिससे 'ब' को कष्ट पहुंचता है?

तुमसे किसने कहा कि 'ब' को किसी चीज से कष्ट पहुंचता है? बहरहाल तुम्हारे अंदर एक ही चीज है जो 'ब' को कष्ट पहुंचा सकती है और वह है तुम्हारी ईर्ष्या।

५ अप्रैल १९३४

इस ईर्ष्या को दूर करने के लिये मुझे क्या करना चाहिये? यह किस प्रकार की ईर्ष्या है?

ईर्ष्या के प्रकार नहीं हुआ करते—ईर्ष्या सब जगह वही पुरानी चीज है।
५ अप्रैल १९३४ —श्रीअरविंद

कमजोरी: कल रात 'द' ने मुझसे पूछा, गुजराती में 'मुझे पानी दो' कैसे कहेंगे? मैंने उसे बतला दिया। मैं किसी को नाराज नहीं कर सकता। मुझे अपना स्वभाव बचकाना लगता है। कैसी कमजोरी है! इस कमजोरी के कारण मैं अपने लिये अनगिनत कठिनाइयां खड़ी कर लेता हूं।

तुम्हें इन छोटी-मोटी चीजों को बहुत अधिक महत्त्व न देना चाहिये। महत्त्वपूर्ण बात है उस आदर्श को कभी अपनी आंखों से ओझल न होने दो जिसे तुम सिद्ध करना चाहते हो और उसे सिद्ध करने के लिये अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करो।
६ अप्रैल १९३४

'राधा की चेतना' फूल का अर्थ क्या है?

प्रेम का समर्पण।
६ अप्रैल १९३४

मेरी बहन मेरे साथ बातचीत करना चाहती है, लेकिन मैं उसके साथ बहुत गंभीर रहता हूं। जब हम मिलते हैं तो मैं कभी मुस्कराता नहीं। लेकिन प्राय: सभी के साथ ऐसा ही है।

अगर तुम औरों को देखकर मुस्कराते हो तो उसको देखकर भी मुस्करा सकते हो। एक तरह से 'क' और 'झ' की ओर मुस्कराने से बहन की ओर मुस्कराना कम संकटापन्न है।
१० अप्रैल १९३४

माताजी, मैं यह जानकर बहुत खुश हूं कि मुस्कान भी संकटापन्न हो सकती है। अब से मैं किसी स्त्री की ओर देखकर न मुस्कुराऊंगा।

यह निश्चय शायद कुछ कठोर है। मेरे वाक्य का यह उद्देश्य न था, बल्कि यह कि

तुम्हें अपनी बहन के साथ बहुत बुरा व्यवहार न करना चाहिये—वह उससे कुछ नहीं समझ पाती। सत्य तो यह है कि भगवान् के प्रति तुम्हारा समर्पण इतना पक्का होना चाहिये कि तुम औरों के साथ इन संबंधों को कोई महत्त्व न दो।
११ अप्रैल १९३४

आपने मुझसे कहा है, "सत्य तो यह है कि भगवान् के प्रति तुम्हारा समर्पण इतना पक्का होना चाहिये कि तुम औरों के साथ इन संबंधों को कोई महत्त्व न दो।" मैं इसे व्यवहार में कैसे ला सकता हूं?

तुम और लोगों के साथ अपने संबंध के ब्योरों पर ध्यान देने की जगह अपने-आपको भगवान् के प्रति समर्पण के लिये ज्यादा मजबूत बनाने में लगाओ।

दिव्य जननी, कल आक्रमण का दिन है। यह प्राणिक विद्रोह लगभग सात बजे आता है।

मेरी समझ में नहीं आया कि तुम्हारा मतलब क्या है। तुम एक बुरी आदत को क्यों स्वीकार करते और मान्यता देते हो?
२१ अप्रैल १९३४

मैंने यह इसलिये लिखा था कि पिछले रविवार को और उससे पिछले रविवार को भी आक्रमण हुआ था, अतः मैंने सोचा कि वह इस रविवार को भी हो सकता है।

इन विचारों को त्यागना ज्यादा अच्छा है क्योंकि वे आक्रमण को लाने में सहायता देते हैं।
२१ अप्रैल १९३४

मुझे नहीं लगता है कि 'ब' और मैं अपनी दोस्ती का सदुपयोग कर रहे हैं। हम बहुधा व्यर्थ और खतरनाक बातचीत करते हैं। क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि मैं उससे ज्यादा न मिलूं?

मेरा ख्याल है कि यह कहीं अधिक उपयुक्त होगा कि तुम अपनी **वाणी का संयम**

करो और दूषित और खतरनाक विषयों पर बोलने से इंकार करो। लेकिन स्पष्ट है कि अगर तुम्हारे मिलने से तुम दोनों में ठीक वही चीजें जागती हैं जिनपर तुम विजय पाना चाहते हो तो निश्चय ही मिलने से बचना ज्यादा अच्छा है।
२६ अप्रैल १९३४

साधारणतः 'ब' योग के बारे में बातें करता है। उदाहरण के लिये " 'क्ष' का संगीत प्राण से आता है इसलिये माताजी ने उसे गाने के लिये मना कर दिया है।"

अगर तुम्हारी बातचीत इस प्रकार की बातों तक सीमित रहती है तो उनका उन अनगिनत अज्ञानभरी बातों से अधिक महत्त्व नहीं है जिनके आदान-प्रदान की आश्रमवालों को आदत है, जब वे यह समझते हैं कि वे यह जानने में समर्थ हैं कि मैं क्या करती हूं और क्यों करती हूं।
२७ अप्रैल १९३४

मधुर मां, आज रात मैंने कुछ बेचैनी का अनुभव किया। क्या यह बेचैनी मेरे 'द' के साथ संपर्क के कारण आयी थी या उसका कोई और कारण था?

संभवतः, लेकिन सामान्य नियम के तौर पर इस तरह की बेचैनी के कोई बुद्धिसंगत कारण नहीं होते, सिवाय इसके कि प्राण में असंतोष या विद्रोह की एक छोटी-सी गति होती है।
१ मई १९३४

मुझे कागज के कुछ टुकड़े मिले जिन पर श्रीअरविंद के अक्षर थे। उन्हें 'ट्रेजर हाउस'[1] के कूड़ेदान में फेंक दिया गया था।

मैं आशा करती हूं कि तुमने उन्हें उठाकर रख लिया है।
४ मई १९३४

मैं आज सवेरे से बेचैनी, थकान और उदासी का अनुभव कर रहा हूं। मैंने बहुत-सा समय जड़ता में गंवाया। मैं निष्कपट नहीं हूं और बेचैन हूं।

[1] आश्रम का एक मकान।

बाहरी प्रकृति हमेशा अपूर्णता से भरी रहती है जबतक कि भागवत उपस्थिति उसका रूपांतर न कर दे। लेकिन इन बातों से उदास होना गलत है।
४ मई १९३४

जब मैंने अपनी चादर उठायी तो फर्श पर एक बिच्छू गिरा। वह भाग निकले इससे पहले मैंने उसे अपनी चप्पल से मार डाला। कुछ दिन पहले मैंने ठीक यही चीज सपने में देखी थी।

इसे पूर्व-सूचक स्वप्न कहते हैं। जो होनेवाला था उसे तुमने पहले ही देख लिया था।

तो इसका कोई अर्थ नहीं है?

अर्थ से तुम्हारा क्या मतलब है? तथ्य तथ्य है।
७ मई १९३४

आज रात मुझे कुछ सुझावों और संदेहों का अनुभव हुआ, लेकिन मैं जानता था कि वे विरोधी शक्तियों से आये थे। मैंने अपने-आपसे कहा, "माताजी जो कुछ करती हैं वह हमेशा मेरे भले के लिये होता है, चले जाओ!"

यह अच्छा है, यही करना चाहिये।

लेकिन बहुधा मैं औरों के सुझावों से धोखे में आ जाता हूं। वे प्रायः मुझे ठीक मालूम होते हैं परंतु बहुधा गलत होते हैं।

यह बिल्कुल ठीक है।

उदाहरण के लिये मैं बिच्छूवाले सपने का अर्थ न पूछना चाहता था। 'न' ने सुझाव दिया कि मैं आपसे पूछूं।

हां, ज्यादा अच्छा यह है कि केवल वही करो जो तुम्हारे अंतर की गहराई से आये।
९ मई १९३४

कल रात मैं व्याकरण के अभ्यास कर रहा था जिससे मैं पौने बारह तक काम में लगा रहा। मुझे नींद नहीं आ रही थी। क्या यह अच्छा है?

नहीं, मुझे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। तुम्हें अधिक-से-अधिक दस बजे तक सो जाना चाहिये। नींद आदत की बात है। अगर तुम हमेशा एक ही समय सोने की आदत डाल लो, तो नींद अपने-आप आयेगी।
९ मई १९३४

दो दिन हुए मैं फूल बीनने के लिये 'ह' के स्थान पर गया था। जब मैंने उसे देखा तो मुझे कंपकंपी-सी आयी और उसके तुरंत बाद बेचैनी हुई। मेरा ख्याल है कि प्राण में बेचैनी आयी थी। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि उसे देखकर मेरे अंदर बेचैनी क्यों आयी?

कुछ लोग अपने साथ निराशा और अवसाद के विचार लिये फिरते हैं और उनसे परेशान रहते हैं। ये विचार बीमारी की तरह छुतहा होते हैं और तुम उन्हें उसी तरह पकड़ लेते हो जैसे किसी और बीमारी को।
१४ मई १९३४

मैं इन जंगली और विरोधी विचारों के आक्रमण से कैसे बच सकता हूं?

जब वे आयें तो उन्हें अस्वीकार करना तुम्हें सीखना होगा।

जो लोग इन्हें लिये फिरते हैं उनके संपर्क में न आना?

यह असंभव है। तब तुम्हें बहुत अधिक लोगों से बचना होगा।

लेकिन प्रश्न यह है कि यह कैसे जाना जाये कि कौन इन्हें लिये फिरते हैं?

यह किसी भी बाहरी साधन से असंभव है—केवल आंतरिक विवेक प्राप्त करने से ही ये चीजें जानी जा सकती हैं।
१५ मई १९३४

आपने मुझसे कहा, ''मुझे आश्चर्य होगा यदि 'ह' तुम्हारी सलाह को गंभीरता से ले।'' क्या इसका यह मतलब हुआ कि हमें किसी और की सलाह गंभीरता से न लेनी चाहिये ?

एक सामान्य नियम के तौर पर जबतक कोई तुमसे मांगने न आये, सलाह न देना ज्यादा अच्छा है। लेकिन अगर तुम्हें किसीसे कोई सलाह मिले तो तुम्हें उसपर सावधानी से विचार करना चाहिये और उससे लाभ उठाने की कोशिश करनी चाहिये।
१६ मई १९३४

जहांतक मेरा सवाल है, मैं हमेशा सलाह सुनने के लिये तैयार रहता हूं और अगर मुझे ठीक लगे तो आलोचना या विवाद के बिना उससे लाभ उठाता हूं। अगर कोई मेरी अशुद्धियां दिखलाये तो मैं उसे बहुत सराहता हूं।

यह बहुत अच्छा है परंतु हर एक ऐसा नहीं है।
१६ मई १९३४

मधुर मां, हम आप पर संदेह क्यों करते हैं ? क्या कोई चीज आपसे अच्छी या कोई व्यक्ति आपसे अधिक बुद्धिमान् है ? हम आप पर विश्वास क्यों नहीं करते ?

क्योंकि बाहरी प्रकृति अज्ञानी, अंधकारपूर्ण और मूर्ख है और निश्चय ही उसकी सत्ता के तरीके और उसके कार्य भी अज्ञानभरे, अंधेरे और मूर्खतापूर्ण हैं।
१६ मई १९३४

आज सवेरे जब मैंने 'क' को देखा तो मुझे कंपकंपी-सी आ गयी लेकिन शाम को ऐसा नहीं हुआ। यह क्यों है ?

शायद शाम को तुम सवेरे की अपेक्षा अधिक सक्रिय और प्राणिक संपर्कों के प्रति कम खुले हुए थे।

अगर हम दिन भर की सभी गतिविधियों का निरीक्षण साक्षी रूप में अलग खड़े रहकर कर सकें तो, मेरा ख्याल है कि हम शीघ्र ही निम्न प्रकृति से ऊपर उठ सकते हैं। लेकिन सच्चा विवेक पाने के लिये हमें पहले वह चेतना पानी चाहिये जो सत्य और मिथ्या में फर्क कर सके। मैं अपनी गतिविधियों का

निरीक्षण करता हूं लेकिन मैं अब भी अंधेरे और प्रकाश में ठीक-ठीक फर्क कर सकने में असमर्थ हूं।

हां, यह सच है। लेकिन विवेक अभ्यास और संयम द्वारा बढ़ता है। मतलब यह कि तुम मुझसे पूछो कि तुमने जो कुछ देखा है वह ठीक है या नहीं और तब मेरे उत्तरों की मदद से तुम अपने निरीक्षण को ठीक कर सकते हो।
१७ मई १९३४

आज सवेरे 'क' ने मुझसे पूछा " 'न' ने कोको क्यों नहीं पी और वह क्यों चहलकदमी कर रहा है ?" मैंने जो कुछ सोचा वह उसे बता दिया।

औरों के बारे में बोलना न केवल उपयोगी नहीं होता, बल्कि हानिकर होता है।

हम दूसरों के कामों का हेतु क्यों जानना चाहें ? पता नहीं, ऐसे मामलों में क्या करना चाहिये। अगर कोई पूछे तो मुझे उत्तर देना पड़ता है।

तुम हमेशा कह सकते हो "माताजी नहीं चाहतीं कि हम औरों के बारे में गप्पें लगायें।"
१८ मई १९३४

लेकिन यह सब उस व्यक्ति पर निर्भर है जिससे हम यह बात कहते हैं। और अगर वह विद्रोह करे ?

तो उसीके लिये बुरा होगा !

मुझे क्या करना चाहिये ताकि मैं प्राणिक संपर्कों की ओर न खुलूं ?

अपनी चेतना को प्राण से ऊपर स्थिर करो।
१८ मई १९३४

मैंने निश्चय कर लिया है कि कुछ लोगों को छोड़कर कभी किसी के आगे नहीं मुस्कुराऊंगा, किसी स्त्री के सामने तो कभी नहीं। क्या यह बिल्कुल ठीक है ?

कठोर नियम बनाने की अपेक्षा दिव्य जीवन पर केंद्रित रहने की वृत्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राणिक आदान-प्रदान की आशा में न मुस्कराने का निश्चय ज्यादा अच्छा होगा।
२१ मई १९३४

हमेशा गहरी अभीप्सा में रहना, अपनी चेतना को नीचा न करना, अपने मन को भटकने न देना, अपनी प्राणिक सत्ता पर संयम रखना। मधुर मां, इन्हें पाने के लिये . . .

तुम्हारे अंदर धीरज और अध्यवसाय होना चाहिये।
२१ मई १९३४

क्या यह सच नहीं है कि मनुष्य को अपनी सारी अशुद्धता जाननी चाहिये ?

उन्हें जानना निश्चय ही जरूरी है, लेकिन लगातार उन्हींपर अपना ध्यान लगाये रखना अच्छा नहीं है; यह चीज उन्हें हटाने में मदद नहीं देती—बल्कि इसके विपरीत होता है।
२१ मई १९३४

'क' ने मुझसे पूछा, ''वह क्या है ?'' मैंने जवाब दिया, ''माताजी ने मेरे जन्मदिन के लिये कुछ लिखकर दिया है।'' ''क्या मैं देख सकती हूं ?'' उसने कहा, मैंने उसे पढ़ने के लिये दे दिया। मेरा ख्याल है मैंने ठीक नहीं किया।

निश्चय ही, जब मैं ऐसे किसी अवसर के लिये प्रार्थना देती हूं तो मैं उसमें अमुक शक्ति को एकाग्र करती हूं। प्रार्थना दूसरों को दिखाकर तुम इस शक्ति के प्रभाव के बहुत बड़े हिस्से को नष्ट कर देते हो।
२२ मई १९३४

मेरे ख्याल से आपके पत्रों में भी कुछ शक्ति होती है, इसलिये ज्यादा अच्छा है कि उन्हें किसीको न दिखाया जाये।

हां, और सिद्धांत रूप में मैं दूसरों के बारे में प्रश्नों के उत्तर देना पसंद नहीं करती। योग में हर एक को स्वयं अपनी प्रगति करनी चाहिये—दूसरों की प्रगति से उसका कोई वास्ता नहीं।
२३ मई १९३४

क्या यह ज्यादा अच्छा नहीं है कि दूसरे के बारे में हमारे जो विचार हैं उन्हें आपसे कह दिया जाये ताकि आप उन्हें ठीक कर सकें? क्योंकि अगर वे विचार गलत हैं तो बहुत खतरनाक होते हैं।

निश्चय ही, और यथार्थ रूप से सबसे अच्छी चीज है लोगों के बारे में सभी विचारों से दूर रहना। इस तरीके से गलत विचारों के होने का कोई खतरा ही नहीं रहता।

निश्चय ही, सबसे अच्छी चीज है दूसरों के बारे में कोई विचार न होना, लेकिन मेरे ख्याल से यह तबतक संभव नहीं है जबतक मन शुद्ध नहीं हो जाये।

हां, यह बिल्कुल संभव है अगर मन किसी ज्यादा उपयोगी चीज में रस ले और उसमें तल्लीन रहे।
२३ मई १९३४

तब दूसरों के बारे में मेरे जो विचार हैं उन्हें त्याग देना और उनके बारे में मानसिक रचनाएं बनाना बंद करना ज्यादा अच्छा है?

हां, यह ज्यादा अच्छा है।

मेरे लिये 'ब' से मिलना अच्छा है क्या?

यह इसपर निर्भर है कि उसके साथ मिलने से तुम्हारा क्या मतलब है—अगर यह कुछ शब्दों के आदान-प्रदान, कभी-कदास कोई सामान्य काम के लिये मिलना हो तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन लंबी बातचीत से बचना चाहिये।
२४ मई १९३४

दूसरों की हंसी उड़ाने में आदमी को क्या मजा आता है?

सचमुच, मेरी समझ में नहीं आता कि दूसरों के भावों को चोट पहुंचाकर मनुष्य को क्या मजा आता है ? यह ठीक चीज नहीं है और यह कितनी मिथ्याभिमानी मूर्खता दिखलाती है।
२४ मई १९३४

क्या मेरा आपको यह लिखना उचित था : ''जब 'क्ष' जैसा व्यक्ति जो अपने-आपको बहुत अनुशासनपूर्ण समझता है वह यूं कहता है तो उसका अनुशासन कहां होता है ?'' क्या मेरे अंतिम शब्दों में अतिशयोक्ति नहीं है ?

उनमें शायद अतिशयोक्ति न हो। बहरहाल, ये बहुत दयापूर्ण नहीं हैं और चेतना के विस्तार और प्रबोधन की ओर जाने के लिये दयालुता एक अनिवार्य कदम है।
२५ मई १९३४

मधुर मां ! प्राण भगवान् के लिये कब उत्कंठित होगा ? वर दे कि उसका आवेग चैत्य प्रेम में बदल जाये, उसका क्रोध

समचित्तता में

उसकी ईर्ष्या

विश्वास में

उसका दंभ

विनम्रता में

उसकी स्वार्थपरता

आत्मोत्सर्ग में।
२६ मई १९३४

'ब' दोपहर के खाने के बाद मेरे साथ घर जाया करता था, लेकिन कल वह

मेरे बिना चला गया। उसने मुझसे कहा कि इसका कोई कारण न था। क्या यह सच है ?

यह बहुत संभव है कि वह बिना किसी कारण ही चला गया। आदमी कितनी चीजें बिना किसी सचेतन अभिप्राय के करता है।
२६ मई १९३४

आपने लिखा है कि आदमी कितनी चीजें बिना किसी सचेतन अभिप्राय के करता है। लेकिन यह चीज सचमुच वांछनीय है क्या ? मेरे ख्याल से किसी भी चीज को भली-भांति सोचे बिना करना ठीक नहीं है।

निश्चित रूप से यह अधिक वांछनीय है।
२८ मई १९३४

एक सपना : रात का समय था, मैं एक कविता लिख रहा था। अचानक 'क' आयी, उसने मेज पर रखे मिट्टी के तेल के लैंप को बुझा दिया। कुछ देर बाद उसने बत्ती भी बुझा दी। इस सपने का कोई अर्थ है क्या ?

अगर इस सपने का कोई अर्थ है (जो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता) तो इसका मतलब यह होगा कि किसी विरोधी शक्ति ने तुम्हारी चेतना में 'क' के जैसा रूप ले लिया। बत्ती का बुझना हमेशा चेतना के अचेतना में उतरने का प्रतीक होता है।

मधुर मां, मैं जानना चाहूंगा कि मेरी चेतना बाहर की ओर क्यों जा रही है और यह भी कि मेरी अभीप्सा कम क्यों हो गयी है ?

संभवतः तुम्हारी प्रकृति का अभीतक अपरिवर्तित कोई भाग ऊपर सतह पर उठ आया है और वही इस समय सक्रिय है।
२९ मई १९३४

अतः जब कोई अपरिवर्तित भाग ऊपर उठ आये तो मुझे क्या करना चाहिये ?

धीरज के साथ तबतक उसपर प्रकाश और ज्ञान डालो जबतक वह परिवर्तित न हो जाये।
२९ मई १९३४

माताजी, आपने लिखा कि मुझे अपरिवर्तित भाग पर तबतक प्रकाश और ज्ञान डालना चाहिये जबतक वह परिवर्तित न हो जाये। मेरे ख्याल से आप ही इसे कर सकती हैं।

मेरे कहने का मतलब ठीक यही है; तुम्हें केवल श्रीअरविंद या मुझे पुकारना चाहिये और यह कहना चाहिये कि यह अंधेरा हिस्सा प्रकाशित और परिवर्तित हो जाये।
३० मई १९३४

आज सुबह अच्छी अभीप्सा थी। लेकिन प्रणाम के बाद मुझे कुछ बेचैनी-सी लगी। इस समय कभी मैं स्वयं को खुश तो कभी दुःखी अनुभव कर रहा हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे क्या हो रहा है।

इसमें कोई असाधारण बात नहीं है। ऐसे बहुत-से लोग हैं।
३१ मई १९३४

'त्र' बहुत बार मुझसे व्याकरण के प्रश्न पूछता है। मैं फ्रेंच अच्छी तरह नहीं जानता। इसलिये अगर वह प्रश्न न पूछे तो ज्यादा अच्छा होगा।

तुम थोड़ा-बहुत जो भी जानते हो, वह दूसरों को बता सकते हो, लेकिन इस बात का ध्यान रखो कि उन्हें सचेत कर दो कि तुम्हें फ्रेंच बहुत नहीं आती और तुम अपने उत्तरों की शुद्धता के बारे में निश्चित नहीं हो।
३१ मई १९३४

कल रात मैं नौ से दस तक पढ़ता रहा। मैं और भी पढ़ना चाहता था, लेकिन मैंने सोचा कि आप इसे पसंद नहीं करेंगी।

हां, तुम ठीक हो। तुम्हें बहुत रात तक काम नहीं करना चाहिये।
१ जून १९३४

मंदिर में जाना अच्छा है क्या? यह विचार मेरे अंदर इसलिये आया कि अगर

कोई निराकार भगवान् में विश्वास रखता है तो उसे साकार भगवान् में—मेरा मतलब है मानव सत्ता के रूप में—विश्वास न होगा।

तुम्हारा मतलब है कि अगर किसी को किसी धर्म के भगवान् पर श्रद्धा है तो उसे किसी देहधारी भगवान् पर कैसे श्रद्धा होगी ? यह बात एकदम ठीक है।
१ जून १९३४

मैं भूगोल की पुस्तकें घर ले जा सकता हूं क्या ? मैं इन्हें अपने कमरे से बाहर नहीं जाने दूंगा।

हां, तुम भूगोल की पुस्तकों को ले जा सकते हो, लेकिन तुम्हें उन्हें बहुत संभालकर रखना होगा ताकि वे फट न जायें, उनपर कोई धब्बे न लगें या कीड़े उन्हें न खा जायें।
२ जून १९३४

मेरी समझ में नहीं आता कि 'ज' को स्नेह के कारण क्यों और कैसे कठिनाई होती है ? मुझे नहीं हुई। शायद इसलिये कि मैं उन कठिनाइयों के बारे में सचेत नहीं हूं।

इसलिये क्योंकि उसमें स्नेह एक आसक्ति पैदा करता है, और समस्त आसक्ति योग के विपरीत है।

मेरे मन में आपको रविवार को भी लिखने का विचार आया। लेकिन मैंने अपने-आपसे कहा, "हर्गिज नहीं। मैं माताजी से नहीं पूछूंगा।" क्या यह कोई प्राणिक आवेग था, और क्या मन ने जवाब दिया ?

मन के एक अधिक प्रदीप्त भागने दूसरे हिस्से को जवाब दिया जो अभीतक प्राण की कामनाओं का समर्थन करता है।
४ जून १९३४

मेरे अंदर स्नेह आसक्ति पैदा करता है क्या ?

स्नेह हमेशा आसक्ति पैदा करता है, जबतक कि तुम योगी न होओ।

ऐसा लगता है कि प्राण-लोक में बिल्कुल बिजली नहीं है—सपने हमेशा अंधेरे होते हैं।

तुम्हें यह विचित्र कहानी किसने सुनायी ?

निश्चित रूप से वहां वह रोशनी नहीं है जिसका मनुष्य भौतिक जगत् में उपयोग करते हैं। लेकिन वहां तुम जितने प्रकाशों की इच्छा कर सकते हो उतने प्रकाश हैं—यहांतक कि सबसे सुंदर, चमकदार प्रकाश हैं। अगर तुम्हें पहले से सचेत न कर दिया जाये तो तुम अपने-आपको बहुत ऊंचे स्तर पर मान सकते हो।

४ जून १९३४

आपने कहा कि प्राण जगत् में उतने प्रकाश हैं जितने की मनुष्य इच्छा कर सकता है—लेकिन क्या वे सच्चे प्रकाश हैं, या वे प्राणिक सत्ताओं द्वारा रचे गये हैं ?

प्राण-जगत् के प्रकाश निश्चय ही प्राणिक प्रकाश हैं।

सपने में मैं यहां की तरह दिन का प्रकाश नहीं देखता। मैं सब कुछ बहुत धुंधला देखता हूं।

यह इसलिये कि उस जगत् में तुम्हारी दृष्टि पूरी तरह विकसित नहीं है या फिर इसलिये कि तुम वहां के अंधेरे स्थानों में जाते हो। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि सारा प्राण जगत् अंधकारमय है!

५ जून १९३४

मैं अपने मन के सबसे प्रबुद्ध भाग को हमेशा ऊपर कैसे रख सकता हूं ?

इच्छा करो, और जब-जब अंधकारमय, अज्ञानी और अहंकारी भाग तुम्हारी सत्ता पर अधिकार करने की कोशिश करे तब-तब प्रबुद्ध भाग को हस्तक्षेप करने के लिये पुकारो।

जब आप किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देतीं तो क्या कारण होता है? क्या इसलिये कि प्रश्न सच्चा नहीं होता?

सामान्यतः इसलिये कि प्रश्न बुरी तरह से पूछा गया होता है, बहुधा इसलिये कि उत्तर देना अच्छा नहीं होता।
६ जून १९३४

कुछ दिनों से मुझे ऐसा लग रहा है कि कोई पर्दा फट गया है—शायद संदेह और ईर्ष्या का पर्दा, लेकिन मैं निश्चित नहीं हूं।

चीजों को ज्यादा स्पष्ट होने के लिये तुम्हें कुछ अधिक प्रतीक्षा करनी होगी।
६ जून १९३४

पिछले दो दिनों से मैं ईर्ष्या के बारे में दुःखी रहता हूं।

दुःखी होने का कोई फायदा नहीं। तुम जितनी शक्ति दुःख के अनुभव में नष्ट करते हो उसका ज्यादा अच्छा उपयोग गलत गतिविधि को रूपांतरित करने में होगा।

लेकिन आज सुबह प्रणाम के बाद मैंने बहुत खुशी महसूस की। क्या साधारण मन के लिये तीव्र अभीप्सा के बावजूद भगवान् की तरफ आसानी से मुड़ना असंभव है!

तत्काल परिवर्तन के लिये कुछ भी असंभव नहीं है; मुश्किल है उसे बनाये रखना।
९ जून १९३४

बहुधा जब कुछ करना होता है तो दो उत्तर आते हैं। एक भाग कहता है, मत करो, दूसरा कहता है, इसमें कोई हर्ज नहीं। इसका कौन निश्चय करता है कि कौन-सा भाग गलत है और कौन-सा सही।

अगर चैत्य चेतना पूरी तरह जागी हो तो वही निश्चय करेगी। लेकिन इस मामले में मन का एक हिस्सा दूसरे हिस्से के साथ तर्क करता है, और सबसे अच्छा होगा कि मनोमय पुरुष हस्तक्षेप करके निर्णय ले।
११ जून १९३४

मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि आपका इससे क्या मतलब है, "तत्काल परिवर्तन के लिये कुछ भी असंभव नहीं है; मुश्किल है उसे बनाये रखना।" वह क्षण भर के लिये बदल जाता है और फिर से उसी पुरानी अवस्था में जा गिरता है।

हां, अचानक मन स्पष्ट रूप से देखता है और बदल जाता है, लेकिन फिर अंधकार उसपर आक्रमण करता है और वह अपनी पुरानी आदतों में जा गिरता है।

साधारण मन के परिवर्तन को किस तरह बनाये रखा जा सकता है?

जबतक परिवर्तन स्थायी न हो जाये तबतक साधारण मन को प्रकाश के संपर्क में लाने का आग्रह करो।

कुछ हफ्तों से मैं देख रहा हूं कि सब कुछ मन के विषय में हो रहा है, प्राण को क्या हो रहा है? क्या वह अब भी अपनी अशुद्ध और अंधकारमय अवस्था में है?

संभवतः, लेकिन जैसे-जैसे मन बदलता है प्राण भी उसके प्रभावों को अनुभव करता है।

११ जून १९३४

ऐसा लगता है कि स्त्रियों में एक ऐसी आकर्षण शक्ति होती है जिसे वे पुरुषों पर फेंकती हैं—यह सामान्य गतिविधि है—और पुरुष जाल में फंसी मछली की तरह फंस जाता है और बहुत बार बाहर नहीं निकल पाता। क्या यह सच है? इस शक्ति के स्पर्श से पूरी तरह बचने का क्या तरीका है, या हमें इससे बचने के लिये क्या करना चाहिये?

मेरे ख्याल से यह पारस्परिक प्रभाव है—उधर स्त्रियों की यह शिकायत होती है कि पुरुष उनके साथ ठीक यही करते हैं। चेतना को केवल भगवान् की तरफ मोड़ना ही इसका सच्चा इलाज है।

११ जून १९३४

मधुर मां, पिछले दो दिन मैंने सपना देखा कि मुझे जेल में बंद कर दिया गया। इसका क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है कि निम्नतर चेतना तुम्हारी चैत्य सत्ता को बंदी बनाना चाहती है।
१२ जून १९३४

'क्ष' ने मुझसे कहा कि गला खराब होने पर चाय या काफी लेना बहुत अच्छा है और वह दिन में दो या तीन बार पीता है।

हर एक का अपना उपचार और अपनी आदतें होती हैं जो उसके लिये अच्छी हो सकती हैं लेकिन उन्हें व्यापक बनाना और दूसरों पर लागू करने की कोशिश करना बहुत बड़ी गलती होगी।
२६ जून १९३४

मैंने तीन चौथाई रात जागकर बितायी। मेरे ख्याल से अंतर्दर्शन मुझे सोने से रोक रहे हैं।

बहरहाल यह अशांत और अस्थिर प्राण है।
२८ जून १९३४

आज दोपहर मैं १२.३० से ३.३० तक सोया; मेरे ख्याल से जरूरत से ज्यादा सोया।

नहीं, यह ठीक है क्योंकि तुम बहुत बुरी तरह सो रहे हो।
२८ जून १९३४

ज्यादा अच्छी तरह सोने के लिये मैं प्राण को कैसे शांत कर सकता हूं? अभीप्सा द्वारा?

और एकाग्रता द्वारा, अशांति को त्यागने की इच्छा द्वारा।

भूत-प्रेतों के बारे में निश्चय करते समय मैं यह जानना चाहूंगा कि वह कौन-सा भाग है जो दूसरे भागों के तर्क पर संदेह करता है।

ये मन के विभिन्न अंश हैं जो एक-दूसरे का विरोध और खंडन करते हैं, और वे सब विकास के समान स्तर पर नहीं होते।
२८ जून १९३४

भगवद्‌विरोधी भूत-प्रेतों के बारे में सचेतन होना बहुत रुचिकर होगा।

जबतक कि यह उन्हें त्यागने या उनपर विजय पाने के लिये ही हो।
२९ जून १९३४

ये भूत-प्रेत हमें रास्ते से भटकाते हैं, लेकिन क्या ऐसे भूत-प्रेत नहीं होते हैं जो हमारी साधना में सहायता करते हों ?

मैं समझती थी कि "भूत-प्रेत" शब्द से तुम्हारा मतलब प्राणिक सत्ताओं से है। निश्चय ही ये तुम्हारी साधना में सहायता देनेवाली सत्ताएं नहीं हैं।

अगर आज्ञा हो तो मैं यह जानना चाहूंगा कि इन भगवद्‌विरोधी भूत-प्रेतों पर विजय कैसे पायी जाये ?

इच्छा करके, और हमेशा इनके सुझावों पर विश्वास करने से इंकार करके।
२९ जून १९३४

जी हां, माताजी, ये सत्ताएं हमें मार्ग से भटका देती हैं, लेकिन क्या ऐसी सत्ताएं नहीं हैं जो हमारी सहायता कर सकती हों, हमें फिर से ठीक रास्ते पर ला सकती हों।

हां, वे जरूर हैं, लेकिन, चूंकि वे प्राण-जगत् की सत्ताएं नहीं हैं, जो भौतिक के सबसे निकट हैं, इस कारण उनके लिये मानव सत्ताओं के साथ संपर्क में आना ज्यादा कठिन होता है। कभी-कभी उनकी क्रिया मन में देखी जा सकती है, और चैत्य में बहुत स्पष्ट होती है।

एक सपने में मैं अपने घर के बगीचे से फूल चुन रहा था। अचानक दरवाजा

खुला और तीन महिलाएं अंदर आयीं। एक ने मुझसे फूल मांगे। मैंने उत्तर दिया, "सभी सुंदर फूल माताजी के पास भेजे जायेंगे। तुम उन फूलों को ले सकती हो जो सुंदर नहीं हैं।" लेकिन मैं इन महिलाओं से क्षुब्ध हो गया।

संभवतः, यह निम्न चेतना की अमुक शक्तियों का प्रतीक है जो उसपर अधिकार करना चाहती हैं जिसे पहले से ही भगवान् को अर्पित किया जा चुका है।
३० जून १९३४

कल मैं बहुत अजीब अवस्था में था : पांच मिनट के लिये मैंने दुःख का अनुभव किया, पांच मिनट बाद खुशी का, यह सिलसिला तीन घंटे चला। फिर मैं यह सारा खेल समझ गया और मैंने इसे संकल्पशक्ति और प्रार्थना द्वारा त्यागा। लेकिन मैं इस क्रिया को बिल्कुल नहीं समझ पा रहा हूं।

प्राण-सत्ता के दो भाग आपस में संघर्ष कर रहे थे, हर एक अपनी बारी में दूसरे पर हावी हो रहा था।

'ग' ने मुझसे कहा कि मानसिक और प्राणिक जगतों में ऐसी सत्ताएं हैं जो भगवद्‌विरोधी सत्ताओं की विरोधी हैं और हमारी सहायता करती हैं।

ठीक उसी तरह जैसे पृथ्वी पर ऐसे मनुष्य हैं जो दूसरों की मदद करना चाहते हैं।
२ जुलाई १९३४

आज मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। मैं यह जानना चाहूंगा कि यह प्रसन्नता आध्यात्मिक है या नहीं?

अपने-आपसे ऐसे प्रश्न पूछने की जगह ज्यादा अच्छा होगा कि तुम शांत, एकाग्रचित्त और अचंचल रहो, ताकि प्रसन्नता बनी रह सके।
३ जुलाई १९३४

हे प्यारी मां, जब कोई मुझसे बातें करे तो मुझे अचंचल रहना सिखाइये, क्योंकि, बाद में मेरा मन भटकता है।

अपने-आपको बातचीत के साथ एक न कर लो। उसे ऊपर से, दूर से देखो, मानों कोई दूसरा सुन और बोल रहा है, और एकदम से अनिवार्य शब्दों के अतिरिक्त और कुछ न बोलो।
४ जुलाई १९३४

आज मैंने अपने अंदर शक्ति को कार्य करते अनुभव किया। मुझे आश्चर्य होता है कि मैंने इतने परिश्रम का काम कैसे किया—बिल्कुल आराम किये बिना एक घंटे तक खुदाई। लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आता कि काम के खत्म हो जाने पर कुछ कंपन क्यों रहा?

संभवतः, शरीर के लिये शक्ति कुछ अधिक थी जिसे सह सकना उसके लिये कठिन हो गया—इसलिये कंपन हुआ।

आपने मुझे लिखा: "जितना अनिवार्य हो उसके अतिरिक्त एक शब्द भी मत बोलो" लेकिन अगर कोई मुझसे व्यर्थ का प्रश्न पूछे तो मुझे क्या करना चाहिये?

उसे कोई महत्त्व न देते हुए, उपेक्षा-भाव के साथ दो एक शब्दों में जवाब दे दो।
४ जुलाई १९३४

प्यारी मां, आपकी शक्ति को सहने के लिये मैं अपने शरीर को किस तरह तैयार कर सकता हूं?

सहने की शक्ति अचंचलता और स्थिरता में है।
५ जुलाई १९३४

'ग' ने मुझसे कहा कि संदेह पर श्रीअरविंद के संदेश पढ़ना बहुत अच्छा है। "संदेह पर पढ़ना बिल्कुल आवश्यक नहीं है" मैंने उसे उत्तर दिया। उसने कहा कि मेरे ख्याल से इस स्तर पर समस्त संदेह से मुक्त होना संभव नहीं है।

समस्त संदेह से मुक्त होना न केवल पूरी तरह संभव है बल्कि यह एकदम से

अनिवार्य शर्त है, लेकिन विश्वास के साथ यह कह सकने के लिये कि व्यक्ति संदेह से मुक्त है उसे इस बात की निश्चिति के लिये कम-से-कम कुछ महीने प्रतीक्षा करनी चाहिये।

बहरहाल, इस तरह की चर्चा एकदम से व्यर्थ है—यह संदेह पर विजय लाने में सहायता नहीं करती।

९ जुलाई १९३४

मेरे अंदर से समस्त दौर्बल्य निकाल दो . . . जैसा कि लोग सोचते हैं, हे दिव्य मां, पूरी तरह से और पूर्ण रूप से आपका बालक बनना इतना आसान नहीं है। इसे करने के लिये . . .

व्यक्ति को बहुत निष्कपट और सीधा होना चाहिये, अपने अंदर ऐसी किसी चीज को सहन न करो जिसे तुम बिना भय के दिखा न सको, और ऐसा कोई काम न करो जिसे मेरे सामने करने में तुम्हें लज्जा आये।

११ जुलाई १९३४

ऐसा लगता है कि चेतना के हर स्तर पर अहं है; उदाहरण के लिये, मानसिक अहं, प्राणिक अहं, भौतिक अहं।

आध्यात्मिक अहं भी है, यहांतक कि अधिमन में रहनेवाले देवों के भी अपने अहं होते हैं।

और भागवत आनंद को पाने के लिये प्रत्येक को अपने अहं से मुक्त होना चाहिये।

केवल समर्पण काफी नहीं है; अहं को विघटित करना होगा, भगवान् के अंदर डुबा देना, उनके अंदर विलीन करना होगा।

१२ जुलाई १९३४

आपने लिखा कि केवल समर्पण काफी नहीं है; अहं को विघटित करना होगा, भगवान् के अंदर डुबा देना होगा, उनके अंदर विलीन करना होगा। मुझे यह नहीं मालूम कि इसे कैसे किया जाये।

फिलहाल यह प्रश्न नहीं उठता, पहले समर्पण को सर्वांगीण और पूर्ण बनाना होगा।

मेरे ख्याल से अतिमानस देवों में अहं नहीं होता। अतः मैं सोचता हूं कि स्वयं धरती पर हमें उनकी तरह निरहंकारी बनना चाहिये और फिर भागवत निर्देशन के अनुसार क्रिया करनी चाहिये।

मेरे ख्याल से अतिमानस में क्या हो सकता है इसके बारे में अभीसे अटकलबाजी करना व्यर्थ है।
१२ जुलाई १९३४

आरूमे की छत से फ्रेंच गणतंत्र दिवस समारोह देखने के लिये मैं पांच बजे तैयार हो गया लेकिन यह सोचकर कि मेरा न जाना आप अधिक पसंद करेंगी मैं वापस आ गया।

इस या दूसरे किसी भी मामले में मेरी कोई अभिरुचि नहीं है। हर एक के लिये निश्चय उसकी अपनी आवश्यकता पर निर्भर है।
१४ जुलाई १९३४

मेरी समझ में नहीं आया कि इस बात से आपका क्या मतलब है "मेरी कोई अभिरुचि नहीं है..." क्या इसका यह मतलब है आपसे बिना पूछे हमें अपने-आप ही यह निश्चय करना चाहिये कि चीज करनी चाहिये या नहीं ?

नहीं। मैंने वाक्य खतम नहीं किया। मेरा मतलब था कि मैं **अभिरुचियों के** अनुसार नहीं बल्कि प्रत्येक की आवश्यकता के अनुसार निश्चय करती हूं।
१६ जुलाई १९३४

मेरी समझ में नहीं आता कि आज सुबह प्रणाम के समय मैंने अपने अंदर किसी विशेष रुचि या उत्साह का अनुभव क्यों नहीं किया ?

सब ठीक है मेरे बच्चे, चिंता मत करो। चेतना को अपने अंदर विकसित होने दो, इसीकी आवश्यकता है—चेतना के साथ सब कुछ ठीक होगा।
१९ जुलाई १९३४

माताजी, पिछली बार मेरी बहन ने मुझसे किसी व्याख्या के बारे में नहीं पूछा था बल्कि श्रीअरविंद के पत्रों के विषय में कुछ पूछा था। भौतिक जीवन और अपना घर छोड़ने के बारे में उसने जो लिखा जब मैंने वह पढ़ा तो मैं विचलित हो गया—इसीलिये मेरी अभीप्सा में बाधा आयी। मेरी प्यारी मां, मैं वही करूंगा जो आप चाहेंगी।

अगर यह चीज तुम्हें अशांत करे तो वह जो कहती है उसपर कान न दो और न श्रीअरविंद के पत्रों की व्याख्या करो।

आज शाम मैंने विचलित हुए बिना उसे समझाया।

हां, यह स्पष्ट है कि अगर तुम उस दुर्बलता पर विजय पा लो जो तुम्हें विचलित करती है तो यह ज्यादा अच्छा है, क्योंकि यह सच्चा उपचार है।
२३ जुलाई १९३४

मेरी प्यारी नन्हीं मां,

कल शाम, ध्यान के समय मैंने कितने प्रेम का अनुभव किया—मैंने प्रेम की लहरों, स्पंदनों का अनुभव किया। लेकिन यह प्रेम अपने-आपको दूसरों पर उंडेलता है। पहले, जब मैं अधिक प्रेम का अनुभव करता था तो वह नीरव रहता था, मैं अधिक गंभीर हो जाता था, मैं उसे अभिव्यक्त नहीं करता था। लेकिन इस बार, इसके विपरीत, मैंने इसे अपने-आपको अभिव्यक्त करने दिया क्योंकि मैंने इसे अवांछनीय नहीं समझा। अगर आप आवश्यक समझें तो मैं इसे अंतर्मुख कर दूंगा।

जिस प्रेम को तुम नीरवता में प्राप्त करते हो वह तुम्हारे अंदर शुद्धि और रूपांतर के लिये कार्य करता है। जो प्रेम तुम बहिर्मुख करते हो—अगर तुम इसे पवित्र और निस्स्वार्थ तरीके से करो—वह कभी-कदास दूसरों की मदद कर सकता है। लेकिन बहुधा लोग उसे गलत तरीके से लेते हैं... इसलिये तुम्हें अपनी सहजवृत्ति के निर्देशानुसार काम करना चाहिये।
२४ जुलाई १९३४

आज मैंने २४ व्यक्तियों से बातें कीं। मेरे ख्याल से यह बहुत ज्यादा है। आज

सुबह से मैं आनंद के अभाव का अनुभव कर रहा हूं। कोई बुरा भाव नहीं है लेकिन मैंने जिस प्रेम का अनुभव किया था वह अब नहीं है।

वह एकदम से स्वाभाविक है—तुमने उसे बेतहाशा बरबाद किया; जो कुछ भगवान् से आया था उसे भगवान् पर एकाग्रचित्त करने की बजाय तुमने उसे दूसरों पर नष्ट कर गंवा दिया।
२४ जुलाई १९३४

मधुर मां, आपका उत्तर पढ़ने के बाद मैं गंभीर हो गया। मैंने सोचा कि मुझे चुपचाप रहना चाहिये—कम-से-कम आजके लिये। क्षण भर बाद सत्ता के एक भाग ने कहा, "यह सच्ची नीरवता नहीं है बल्कि प्राण की अतृप्ति है, क्योंकि तुम भली-भांति देख सकते हो कि इसमें बहुत सुख और उत्साह नहीं है।" मैंने सोचा कि दूसरे भाग की बात सही थी।

दोनों अंशतः सच्चे और अंशतः झूठे हैं। नीचे उतरनेवाली शक्ति को नीरवता और एकाग्रता में ग्रहण करना बुद्धिमत्ता है, लेकिन प्राण को उसकी सनकों के पीछे जाने की अनुमति न देने की वजह से उसकी कुढ़न के कारण यह नीरवता और एकाग्रता न आनी चाहिये।

यह एकाग्रता और नीरवता न केवल **महान् शांति** से भरी होनी चाहिये बल्कि **बहुत तीव्र सुख** से भी भरपूर होनी चाहिये। तभी तुम जानते हो कि क्रिया सच्ची और अमिश्रित है।
२४ जुलाई १९३४

आज ११ बजे मैंने अपने सिर पर बहुत दबाव का अनुभव किया और मैं अपने गणित को आगे न चला सका। मुझे मालूम नहीं कि क्या करना चाहिये?

शांत रहो, क्षुब्ध मत हो—यह गुजर जायेगा।
२५ जुलाई १९३४

हे मां, मैं आपका पूरी तरह से आज्ञाकारी बालक बनना चाहता हूं, आपके

अभिव्यक्त करने से पहले मैं आपकी इच्छा जानना चाहता हूं। इसे पाने के लिये मेरे अंदर . . .

भागवत इच्छा को चरितार्थ करने के सिवाय किसी भी चीज के लिये कोई अभिरुचि नहीं होनी चाहिये।
२८ जुलाई १९३४

माताजी, क्या आप मुझे बतायेंगी कि अहंकार से छूटने के लिये क्या करना चाहिये ?

आग्रह के साथ इसकी इच्छा करने से तुम इसे पा सकते हो।
३१ जुलाई १९३४

मेरी प्यारी मां, एक सपने में मैंने आपको विभिन्न रूपों में देखा। आप एकदम से किशोरी थीं, मेरी उम्र की, करीब सतरह-अठारह साल की, फिर भी मैंने आपसे वैसा ही व्यवहार किया मानों मैं आपका बालक हूं। लेकिन मुझे शंका है कि किशोरी जिसे मैंने माताजी कहा, वह एक ऐसी सत्ता से बढ़कर और कुछ न थी जिसने आपका रूप धारण कर लिया था।

यह बिल्कुल असंभव नहीं है कि मैं विभिन्न रूपों में प्रकट होऊं, यहां तक कि किशोरी के रूप में भी।
१ अगस्त १९३४

माताजी, मेरी समझ में नहीं आता कि मैं सपने में बहुधा बिच्छू और सांप क्यों देखता हूं ?

ये बुरे विचारों और विकृत या अंधकारमय ऊर्जाओं के प्रतीक हैं।
१ अगस्त १९३४

माताजी, मुझे नहीं मालूम कि जब दबाव हो तो अपनी पढ़ाई के बारे में क्या किया जाये क्योंकि मेरा मन काम कर देना बंद कर देता है।

तबतक प्रतीक्षा करो जबतक तुम्हारा मन फिर से काम करना शुरू न कर दे।
२ अगस्त १९३४

क्या मन के भागों के लिये दूसरों की क्रियाओं के कारणों के बारे में चर्चा करना वांछनीय है ?

मेरे ख्याल से यह एकदम उपयोगी नहीं है, लेकिन मन की यह बहुत सामान्य आदत होती है।
७ अगस्त १९३४

वर दे कि परम प्रभु[1] का जन्मदिन मेरे लिये . . .

पूर्ण आत्मोत्सर्ग का दिन हो।
१३ अगस्त १९३४

माताजी, दुर्भावनाओं का यह तांता क्यों ?

यह बाहर के व्यक्तियों के आक्रमण का परिणाम है। बस अचंचल बने रहो।

मैं योग में गहरा नहीं उतरा हूं। मेरी चेतना अब भी इतनी छितरी हुई क्यों है ?

अवलोकन ठीक है, लेकिन इस अवलोकन को तुम्हें योग में अधिक गहरे और स्थिर रूप से प्रवेश करने की इच्छा की ओर ले जाना चाहिये।
१६ अगस्त १९३४

वर दे कि मैं गहराई के साथ योग में प्रवेश करूं, अपने समस्त . . .

अध्यवसाय और गतिशील उत्साह के साथ।
१६ अगस्त १९३४

[1] श्रीअरविंद का जन्मदिन (१५ अगस्त)।

मैं देखता हूं कि आपके पास इतना काम है, इसलिये अगर आप चाहें तो कुछ दिनों तक मैं सुबह के पत्र न लिखूं।

मन के भागों का वार्तालाप :

"चूंकि माताजी ने कुछ नहीं कहा, तुम्हें लिखना जारी रखना चाहिये।"

"नहीं, उत्तर तुम्हें स्वयं पाना चाहिये।"

"लेकिन मेरे ख्याल से मेरा न लिखना माताजी का अधिक समय न बचायेगा।"

"यह तुम्हारे ऊपर है—अगर तुम सोचते हो कि यह आवश्यक है तो तुम्हें लिखना चाहिये।"

"निश्चय ही, जब मुझे पत्र मिलता है तो बहुधा मैं कुछ अच्छा अनुभव करता हूं।"

वस्तुतः मैंने उत्तर इसलिये नहीं दिया ताकि तुम अपने अंदर उत्तर पा सको।

तुम्हें नमनीय होना चहिये, केवल इस कारण इसे नियमित रूप से नहीं लिखना चाहिये कि तुमने लिखने की आदत बना ली है। तुम्हें पत्र तभी लिखना चाहिये जब सचमुच तुम उसकी आवश्यकता का अनुभव करो, या सचमुच तुम्हें कुछ कहना हो।

१७ अगस्त १९३४

आज शाम, मैंने बेमतलब की बातें कीं जिससे जब आप आयीं तो मैंने कुछ अनुभव नहीं किया।

बाहर जाते समय जब मैंने तुम्हें देखा तो तुम्हारा वातावरण बहुत विक्षुब्ध और चेतना बहुत छिछली थी। मैं यह स्पष्ट रूप से देख सकती थी कि उन महिलाओं के साथ संपर्क तुम्हारा कोई भला नहीं कर रहा।

१८ अगस्त १९३४

मुझे यह विश्वास है कि निस्संदेह एक दिन मैं प्रेम पाऊंगा; लेकिन प्रेम के बिना भला मैं एक दिन भी कैसे बिता सकता हूं? आपके लिये प्रेम के बिना जीने से बेहतर मर जाना है—यह वह सुझाव है जो मेरे अंदर आया।

यह बकवास है।

मर कर नहीं बल्कि जी कर तुम प्रेम को चरितार्थ कर सकते हो।

२० अगस्त १९३४

मैं अपने अंदर हर जगह अंधकार और अज्ञान के सिवा और कुछ नहीं देखता। समय नष्ट करना मैं कब बंद करूंगा ? कहां गयी मेरी आज्ञाकारिता और मेरी निष्कपटता ? कहां है शांति और सुख ? मेरा उत्साह सूख क्यों गया ? मैं कहां हूं मां ?

विचलित या व्यथित होने से कोई लाभ नहीं। केवल स्थिरता और शांति में सुंदर अनुभव वापिस आ सकते हैं।
२२ अगस्त १९३४

दूसरों के साथ के संबंधों के बारे में कृपया आप मुझे कुछ बतायेंगी, क्योंकि मेरे लिये यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है।

कोई बाहरी नियम बताना असंभव है, क्योंकि हर एक को अपना विशेष हल पाना चाहिये। आंतरिक वृत्ति **सच्ची** और पूरी तरह निष्कपट होनी चाहिये।
२३ अगस्त १९३४

मुझे ऐसा लग रहा है कि 'क्ष' के बारे में 'ग' मुझसे झूठ बोली। अतः मेरे ख्याल से ज्यादा अच्छा है कि उसके साथ मेरा कोई संपर्क न हो।

निश्चित रूप से ज्यादा अच्छा होगा कि उसे झूठ बोलने के लिये प्रोत्साहित न किया जाये।
२३ अगस्त १९३४

दूसरों के साथ संबंध के बारे में आपने मुझे लिखा, "आंतरिक वृत्ति सच्ची और पूरी तरह निष्कपट होनी चाहिये।" चूंकि अभी तक मेरे अंदर यह वृत्ति नहीं है इसलिये मेरे ख्याल से ज्यादा अच्छा होगा कि मैं किसी के साथ संबंध नहीं रखूं और उस वृत्ति के आने तक प्रतीक्षा करूं।

इस वृत्ति को पाने के लिये तुम्हें प्रयास करना होगा—प्रतीक्षा करना पर्याप्त नहीं है।
२५ अगस्त १९३४

'त्र' के प्रति मेरी वृत्ति अवांछनीय नहीं है क्या ? कभी-कभी मैं उसे फूल देकर तंग करता हूं।

इन ढिठाइयों में मैं कोई लाभ नहीं देख सकती—निश्चय ही चेतना को उठाने में ये तुम्हारी मदद नहीं करतीं।
२७ अगस्त १९३४

किसी ने कहा कि मासिक पत्रिका ''थियोसोफिकल पाथ'' ने श्रीअरविंद की बहुत सहायता की।

यह कैसी बकवास है !!
क्या कोई व्यक्ति या वस्तु श्रीअरविंद की सहायता कर सकता है ? वे **सहायता करते हैं,** उन्हें सहायता दी नहीं जाती !

जब मैं 'ख' के घर से बाहर निकला तो प्रेम और खुशी गायब हो चुके थे। इसके अतिरिक्त, उसके साथ संपर्क से मैं यह पहली बार विचलित नहीं हुआ। अतः मेरे अंदर उससे मिलना बंद करने का विचार आया।

वहां पर सब कुछ खो बैठने के बार-बार के समान अनुभव के बाद मेरी समझ में नहीं आता कि तुमने अपना जाना जारी क्यों रखा !

जब आप उत्तर नहीं देतीं तो सामान्यतः मन के दो भागों के बीच संघर्ष होता है।

जब मैं उत्तर नहीं देती तो इसका कारण यह है कि चीज न अच्छी है न बुरी, न सच्ची है न झूठी, और सत्य को समझाने में बहुत समय लगेगा।

मुझे अपना प्रेम दीजिये, माताजी।

मैं प्रेम तुम्हें निरंतर दे रही हूं लेकिन तुम्हें बार-बार एक ही भूल करके हमेशा उसे गंवा नहीं देना चाहिये।
३० अगस्त १९३४

माताजी, कृपया मुझे बताइये कि मैं क्या करूं ताकि कोई चीज या कोई व्यक्ति मुझे विचलित न कर सके।

संपूर्ण सत्ता पर चैत्य सत्ता का, केवल उसी का शासन हो।
३१ अगस्त १९३४

माताजी, मेरी समझ में नहीं आता कि आज सुबह मुझे क्या हुआ—मानों मेरी सारी सत्ता अंधकारमय और अचेतन बन गयी। ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये ?

अपने अंदर बहुत अचंचल और स्थिर रहो और विश्वास के साथ उसके गुजर जाने की प्रतीक्षा करो।
४ सितम्बर १९३४

मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं क्योंकि, पिछली रात से सत्ता पर आक्रमण हो रहा है। अभी, इस वक्त मैं विचलित, दुःखी, अंधकार और अज्ञान में होने का अनुभव कर रहा हूं। इससे भी बढ़कर, चेतना अनुपस्थित है।

तुम इन अंधेरे कालों को जितना कम महत्त्व दोगे उतनी जल्दी ये समाप्त हो जायेंगे।
५ सितम्बर १९३४

माताजी, मुझे लगता है कि अभी मैं अधिक अवज्ञाकारी और अधिक विचलित हो रहा हूं, इसका कारण यह है कि मेरी चेतना यहां आध्यात्मिक जीवन में नहीं है बल्कि सामान्य जीवन में भटक रही है।

तुम्हें अपनी चेतना को सामान्य जीवन से आध्यात्मिक जीवन में वापिस बुलाना भर है।

तुम जानते हो कि इसके लिये मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है।
७ सितम्बर १९३४

माताजी, आज मैं अपने-आपको ज्यादा कमजोर अनुभव कर रहा हूं। अगर मैं आपके प्रेम को अधिक दृढ़ता के साथ पाना चाहूं तो सभी बाहरी सुखों को पूरी तरह त्यागना होगा।

डरो मत—अपनी कमजोरियों पर विजय पाने के लिये तुम्हारे अंदर शक्ति है।
८ सितम्बर १९३४

इस समय मेरी चेतना कहां है! इस अवसाद की कैसी प्रकृति है और यह इतना अधिक खिंचता क्यों चला जा रहा है? माताजी, पहले आपकी शक्ति आकर उसे भगा देती थी। अब कहां है वह शक्ति? हाय, मैंने उसे खो डाला!

शांत और अचंचल रहो, यह मात्र एक संकट-काल है जो चेतना के बढ़ने के साथ-साथ चला जायेगा।
१० सितम्बर १९३४

प्यारी मां, मुझे लगता है कि मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम कर रहा हूं। यह अपरिचित चीज विरोधी है और मुझे दुःखी बनाती है।

मुझे ऐसी किसी विशेष चीज का पता नहीं जो मेरी इच्छा के विरुद्ध की जा रही है। लेकिन तुम्हें अपने-आपको विचलित नहीं होने देना चाहिये। तुम्हें अधिकाधिक ईमानदार और निष्कपट बनने का संकल्प करना चाहिये, बाकी के लिये, भागवत कृपा पर भरोसा रखो।
११ सितम्बर १९३४

मन यह जानना चाहता है कि यह संकट कैसे आया और इतने दिनों तक क्यों रहा। ऐसा होने पर हमें क्या करना चाहिये?

यह काफी व्यापक आक्रमण था। जब ऐसा हो तो सबसे अच्छी चीज है, अंदर या बाहर से विचलित हुए बिना अचंचल रहना।
१४ सितम्बर १९३४

जब मैं चेतना की अच्छी अवस्था में होता हूं तब भी मन हमेशा शांत नहीं रहता। हर तरह के बेतरतीब विचार आते हैं।

मन के परे, प्राण के परे, चैत्य केंद्र के अंदर तुम उस अचंचलता को पा सकते हो जो कभी डगमगाती नहीं।

१५ सितम्बर १९३४

दबाव निरंतर मौजूद है। मुझे अचंचलता प्रदान करो, मेरी मधुर मां।

मैं तुम पर शांति, अचंचलता, स्थिरता उड़ेलना कभी बंद नहीं करती—तुम उन्हें स्वीकारते क्यों नहीं ?

१७ सितम्बर १९३४

वार्तालाप के दौरान 'क' ने मुझसे पूछा, ''आखिर तुम अपने प्राण को यह अनुमति क्यों देते हो कि वह तुम्हारे मन को बहा ले जाये ?''

'क' का कहना ठीक है। तुम अपने प्राण को यह अनुमति क्यों देते हो कि वह तुमसे वह करवाये जिसे तुम्हारा मन अस्वीकार करता है।

शांति, अचंचलता और स्थिरता को स्वीकारने के लिये मुझे क्या करना चाहिये ?

उन्हें निष्कपट रूप से और—अपनी सत्ता के किसी एक भाग से नहीं बल्कि—पूर्ण रूप से चाहना।

कौन-सी चीज प्राण को विचलित बना देती है जिसके कारण वह मुझे रात को अच्छी तरह सोने नहीं देता ?

इस तरीके से वह उस चीज को पाने की आशा करता है जिसे वह चाहता है।

कल रात, ११.४० तक मैंने 'क्ष' से बातें कीं, इसके बावजूद नींद का नामोनिशान नहीं !

निश्चय ही रात को देर तक जागना, अपने-आपको अच्छी तरह सोने के लिये तैयार करने का तरीका नहीं है।

१७ सितम्बर १९३४

जब प्राण और भौतिक अज्ञान और मिथ्यात्व से बाहर न निकलना चाहें तो मैं किस तरह पूरी सत्ता से अभीप्सा करा सकता हूं ?

उन्हें कुछ अधिक प्रबुद्ध बनना चाहिये और अपनी मूर्खता समझनी चाहिये।

क्या यह सच है कि मजबूत प्राणिक प्रकृति के लोगों के संपर्क से प्राण विक्षुब्ध हो जाता है ?

निःसंशय।
१८ सितम्बर १९३४

माताजी, मैं यह नहीं जानता कि अपनी सारी सत्ता से अभीप्सा कराने के लिये मैं क्या करूं ? प्राण और भौतिक कब अभीप्सा करना शुरू कर सकते हैं ?

तुरंत।
१८ सितम्बर १९३४

मुझे अनुभव होता है मानों मैं जड़-भौतिक जगत् में और जी नहीं रहा हूं। केवल चैत्य-सत्ता यहां है, बाकी सब कहीं किसी अदृश्य जगत् में भटक रहा है। मैं किसी को नहीं जानता, आप तक को नहीं। कैसी घृणित अवस्था है। धीरज, धीरज, धीरज।

हां, धीरज और प्रशांति, कोई भय नहीं, कोई हलचल नहीं, बस एक विश्वासभरी श्रद्धा कि सब कुछ ठीक होगा।

तब बहुत जल्दी सब कुछ ठीक हो जायेगा।
१९ सितम्बर १९३४

मैं निर्जीव अनुभव कर रहा हूं, सभी संवेदनों पर धुंधलका छा गया है। मैं आपको देखता हूं फिर भी मुझे कुछ नहीं होता, यहां तक कि आपका पत्र पढ़कर भी मुझे कुछ नहीं होता। इसका यही अर्थ होगा कि चेतना अवचेतना में जा गिरी है।

हां, एक तरह का तमस् है।
२० सितम्बर १९३४

प्रणाम करते समय मुझे कुछ अनुभव हुआ होगा, क्योंकि बाद में मैं रोया। हे मेरी मधुर मां, क्यों ?

क्योंकि प्रणाम के समय मैंने तुम्हारी सामान्य चेतना और चैत्य चेतना के बीच के संपर्क को फिर से स्थापित कर दिया था।

चैत्य चेतना की चरम मधुरता से, भावातिरेक के कारण बाहरी चेतना हमेशा रो पड़ती है।
२१ सितम्बर १९३४

कहां है मेरी चेतना माताजी, वह कहां भटक रही है ? दूर, आपसे बहुत दूर, अज्ञान, अंधकार, अचेतना, मिथ्यात्व के रसातलों में। मेरे ख्याल से प्राण इसे पसंद करता है। बहुधा मृत्यु के विचार आते हैं। मैं नहीं जानता कि मैं कहां हूं। मैं निश्चेतना में, पूरी तरह से तमस् में क्रिया करता हूं।

अगर तुम इससे बाहर निकलने का पक्का इरादा कर लो तो ऐसी अवस्था बनी नहीं रह सकती। मनुष्य के अंदर कोई चीज गलत रास्ते पर चलने में मजा लेती है। उसका पक्ष मत लो बल्कि माताजी का पक्ष लो। तुम्हें बस प्रयास करना और माताजी की शक्ति को पुकारना है—यह अवस्था समाप्त हो जायेगी।
२१ सितम्बर १९३४ —*श्रीअरविंद*

मां, मैं बहुत समय से पूरे हृदय के साथ यह अभीप्सा कर रहा हूं कि आप मुझे अपना प्रेम और शांति प्रदान करें।

मेरा प्रेम और मेरी शांति हमेशा तुम्हारे साथ हैं—तुम्हें ही उन्हें ग्रहण करना सीखना है।
२२ सितम्बर १९३४

आज सवेरे 'क' मेरे यहां आयी और मैं उसके साथ खुलकर बातचीत करता रहा फिर बातें करते-करते मुझे लगा कि मैं आग से घिरा हुआ था। सारे दिन

मुझे बुखार-सा रहा। मेरे ख्याल से ये सब चीजें उसके साथ संपर्क से आती हैं अतः मुझे उससे बचना चाहिये।

बिना विशेष प्रभाव के इस या उस व्यक्ति से कतराने की जगह कहीं अधिक अच्छा होगा कि तुम अपनी चेतना को बदलो, उसे इन सब प्रभावों की ओर से बंद रखो और केवल भगवान् की ओर खुला रखो।
२३ *सितम्बर* १९३४

कई दिनों से मुझे लगता है कि 'ग' को मेरे लिये आकर्षण है। जबसे आपने लिखा, "इस या उस व्यक्ति से कतराने की जगह . . ." मैंने सोचा कि मैं उससे बातचीत कर सकता हूं और इस तरह धीरे-धीरे सच्ची मनोवृत्ति तक पहुंच सकता हूं।

मां . . . प्रेम।

अगर तुम्हारा मतलब भागवत प्रेम से है तो तुम उसे केवल मानव प्रेम का त्याग करके ही पा सकते हो। मानव प्रेम तो उसकी नकल और व्यंग्य-चित्र है।
२६ *सितम्बर* १९३४

हे मां, मैं आपकी इच्छा के अनुसार कार्य करना चाहता हूं, किसी और के अनुसार नहीं।

तो झटपट वह मार्ग छोड़ दो जो तुमने लिया है। लड़कियों के साथ घूमने-फिरने और बातें करने में समय नष्ट न करो। फिर से गंभीरता के साथ काम करना शुरू करो, पढ़ो, अपने-आपको शिक्षित करो, अपने मन को रुचिकर और उपयोगी चीजों में व्यस्त रखो, व्यर्थ की बकवास में नहीं और अपने प्राणिक आकर्षणों के लिये मिथ्या बहाने न बनाओ। अगर तुम्हारी इच्छा सचमुच निष्कपट है तो विश्वास रखो कि विजय पाने में सहायता-रूप तुम्हें मेरी शक्ति जरूर मिलेगी।
२७ *सितम्बर* १९३४

मेरी सत्ता जो भटक गयी है, कब उस सीधे रास्ते पर आयेगी जो सीधा आपकी ओर ले जाता है?

इससे आसान और कुछ नहीं हो सकता—तुम्हें केवल दृढ़ निश्चय करना है कि तुम भागवत जीवन के सिवा और कुछ नहीं चाहते, उसके सिवा हर चीज से मुंह मोड़ लो। तुम निश्चय ही मुझे तुरंत पा लोगे।

२९ *सितम्बर* १९३४

> *चूंकि मेरी प्रकृति कमजोर है इसलिये साधारण चीजों को त्यागना कठिन हो जाता है। लेकिन, यह निश्चित है कि मैं केवल आपको ही चाहता हूं। अगर आप न हों तो मृत्यु—और कुछ नहीं।*

मरने का कोई प्रश्न ही नहीं है। शरीर को छोड़ना कोई हल नहीं है। तुम अपनी कामनाओं में ही रहते हो और यह ज्यादा खराब है। यह बहुत ज्यादा समझदारी की और सच्ची बात है कि यह समझकर कामनाओं को मर जाने दो कि वे कितनी मूर्खताभरी और व्यर्थ हैं।

चूंकि तुम भागवत जीवन को इतना अधिक चाहते हो इसलिये तुम्हें असफलता से न डरना चाहिये क्योंकि सच्ची और सतत अभीप्सा हमेशा पूरी होती है।

अपनी कमजोरियों को जीतने का दृढ़ निश्चय करो और तुम देखोगे कि यह इतना मुश्किल नहीं है जितना दीखता है। बाधाओं को पार करने के लिये मेरी शक्ति तुम्हारे साथ है और मेरे आशीर्वाद भी।

२९ *सितम्बर* १९३४

> *मुझे सब कुछ सपने-सा दीखता है, मैं किसी को नहीं जानता, हे मां, आपको भी नहीं। सब कुछ मशीन की तरह है।*

साधारणतः यह अवस्था तब आती है जब प्राण से बदलने के लिये और कामना की गतिविधियों को छोड़ने के लिये कहा जाता है। वह सहयोग देने से इंकार करता है और भौतिक चेतना पर शुष्क, नीरस, यांत्रिक स्थिति आरोपित करता है। अपने अंदर देखो और पता लगाओ कि क्या यही कारण है।

> *माताजी, मैं अपनी कमजोरियों को जीत लेने के लिये बहुत इच्छुक हूं। कृपया बताइये कि मुझे क्या करना और क्या न करना चाहिये। तब मैं प्रयास करूंगा और आपकी सहायता से अपने ऊपर अधिकार पा सकूंगा।*

अगर तुम्हारे अंदर इच्छा है, 'इच्छामि अहम्', तो अंततः वह सफल होगी। लेकिन

करना या न करना काफी नहीं है। प्राण और मन को माताजी की इच्छा के अनुसार करने या न करने के लिये खुशी से तैयार होना चाहिये।

१ अक्तूबर १९३४ —श्रीअरविंद

आज मैंने अध्ययन नहीं किया। अभी तक मेरे सिर में दर्द हो रहा है। मैं प्रायः हिम्मत हार बैठता हूं और चाहता हूं कि सुदर्शन चक्र आकर मुझे सदा के लिये सुला दे।

तुम्हारी आयु में इतनी कम हिम्मत—लज्जा की बात है!

अगर तुम थके हुए हो तो आराम करो, पर कभी विजय की इच्छा-शक्ति को न खोओ।

१३ अक्तूबर १९३४

मुझे कहानियां लिखने, पढ़ने में बहुत रस है। तब मैं दर्द भूल जाता हूं।

यह इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा दर्द कम-से-कम तीन-चौथाई कल्पना है।

तो इस लिखाई, पढ़ाई में—यदि आपकी स्वीकृति हो—केवल समय का प्रश्न है—कहानियां लिखने में बहुत समय लगता है।

मुझे तुम्हारे कहानी लिखने, पढ़ने में कोई दोष नहीं दिखायी देता, लेकिन इससे तुम्हारे अध्ययन में बाधा न पड़े। और फिर अपनी शैली विकसित करने के लिये तुम अपनी मरजी मुताबिक कहानियां लिख सकते हो।

१५ अक्तूबर १९३४

हे मां, मुझे यह काल्पनिक रोग समझाइये, मैं उसे बिलकुल नहीं समझता।

तुम सोचते हो कि तुम बीमार हो और इससे तुम्हारी बीमारी बढ़ती है। जब तुम बीमारी को भूल जाते हो तो वह लगभग पूरी तरह से चली जाती है।

१५ अक्तूबर १९३४

आज सवेरे 'क' ने मुझे पान दिया। मैंने उससे कहा कि माताजी मना करती

हैं। उसने कहा, "कभी-कभी खा सकते हो, प्रणाम के लिये जाने से पहले तुम मुंह धो सकते हो।"

ओह क्या ढोंग है !! लज्जाजनक।

हे मां, ऐसी अवज्ञा के बावजूद हम आपके प्रेम की आशा कैसे कर सकते हैं ! आपकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिये औरों पर क्यों दबाव डाला जाये ?

हां, यह बहुत कमीनी चीज है। ऐसी क्रियाओं को बार-बार दोहराते रहने के कारण ही ऐसे लोग कोई प्रगति नहीं करते।
१६ अक्तूबर १९३४

मेरा ख्याल है कि भौतिक शरीर के सभी रोग अधिकतर काल्पनिक होते हैं इसलिये अगर हम हमेशा शरीर के बाहर रह सकें, जैसा कि नींद में होता है, तो शायद हम कभी अस्वस्थ अनुभव न करें। प्रश्न बस शरीर से बाहर रहने का है।

शरीर से बाहर रहना रोगों का उपचार नहीं करता, सच्ची तरह से सोचना और हर ऐसी चीज से इंकार करना चाहिये जो मन में रोग को सहारा दे सके।
१८ अक्तूबर १९३४

मेरा मन समय-समय पर उस कहानी में लगा रहता है जो मैंने लिखनी शुरू की है। क्या उसका इस तरह व्यस्त रहना उसके लिये अच्छा है ?

अगर तुम्हारी कहानी मजेदार है तो इश्कबाजी या मूर्खताओं में लगे रहने की अपेक्षा उसमें व्यस्त रहना ज्यादा अच्छा है।
२० अक्तूबर १९३४

हे मां, मैं तुम्हारे प्रेम का अनुभव क्यों नहीं करता ?

क्योंकि तुम उसे गलत तरीके से, गलत जगह पर या गलत रूप में ढूंढ रहे हो।

मैं एकाकीपन का अनुभव करता हूं, मानों इधर-उधर भटक रहा हूं।

प्राण ने निश्चय किया होगा कि मेरे प्रेम को अपने-आपको एक विशेष तरीके से प्रकट करना चाहिये और चूंकि उस तरह नहीं हुआ इसलिये प्राण कहता है, "प्रेम है ही नहीं !"

आप मेरे साथ हैं लेकिन मैं आपकी उपस्थिति का अनुभव नहीं करता।

जरा अपने अंदर गहराई में जाओ और तुम उसे पा लोगे।
२० अक्तूबर १९३४

आपने कहा है, 'क्योंकि तुम उसे गलत स्थान पर और गलत रूप में खोज रहे हो।' इसका क्या मतलब है ?

मेरा मतलब था प्राण में, और कामनाओं सहित।

'अपने अंदर गहराई में जाओ और तुम उसे पा लोगे।' बतलाइये यह कैसे किया जाये ?

तुम्हारी मानसिक कल्पना तुम्हारी प्राणिक कल्पना से जरा ज्यादा गहरी और सच्ची है। लेकिन स्वभावतः चैत्य कल्पना उससे भी ऊंची चीज है। लेकिन इसे समझाया नहीं जा सकता, इसे जीना होता है।
२२ अक्तूबर १९३४

माताजी, मेरा ख्याल है कि आपके प्रेम का अनुभव करने के लिये चेतना के तीन स्तर हैं। पहले स्तर में मनुष्य केवल सामान्य मनुष्य होता है, उसे कुछ अनुभव नहीं होता कि वह आपको देख रहा है या नहीं। दूसरी अवस्था में, अगर वह आपको लंबे समय तक न देखे तो उसे कुछ लगता है। तीसरी में उसे आपके भौतिक शरीर की जरूरत नहीं होती। प्रेम की तीव्र अग्नि में आपका शरीर और उसका भौतिक शरीर दोनों अंतरात्मा के सायुज्य में पिघल जाते हैं। माताजी, मेरा ख्याल है कि मनुष्य को आपके भौतिक शरीर की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि आप उसके हृदय में रहती हैं।

यह बिलकुल ठीक नहीं है। अगर भौतिक संपर्क में आंतरिक संपर्क से अधिक कुछ न होता तो मेरे धरती पर शरीर धारण करने के लिये कोई कारण न होता।

२३ अक्तूबर १९३४

मेरा ख्याल है कि अगर मुझे आपके लिये शुद्ध प्रेम होता तो मैं कभी आपके विधान के विरुद्ध काम न करता और मैं जो कुछ करता वह . . . आपकी इच्छा के साथ पूरी तरह मेल खाता।

हां, यह सच है। तुम्हें मेरे साथ प्रेम है जरूर, परंतु पूर्ण नहीं है और जो भाग प्रेम नहीं करते वे अन्यत्र संतुष्टि की खोज करते हैं।

२४ अक्तूबर १९३४

आपने मुझे लिखा था, "प्रयास करने का अर्थ है, ऐसी कोई भी चीज करने से इंकार करना जो तुम्हें भगवान् से दूर ले जाये।" मैंने इसके बारे में सोचा है लेकिन इसे समझ नहीं पाया।

मैं जब-जब तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देती हूं तुम यही कहते हो कि तुम मेरा उत्तर नहीं समझ पाते। क्या किया जाये? तुम्हें जरा सोचना और गहरे विचार में प्रवेश करना सीखना चाहिये।

पुस्तकालयाध्यक्ष ने मुझे बतलाया है कि तुम कितने उपन्यास पढ़ते हो। मुझे नहीं लगता कि इस तरह का पढ़ना तुम्हारे लिये अच्छा है। जैसा कि तुमने कहा था, अगर तुम शैली का अध्ययन करना चाहते हो तो किसी अच्छे लेखक की एक किताब को ध्यान के साथ सावधानी से पढ़ना, इस तरह उतावली के साथ और उथली पढ़ाई की अपेक्षा तुम्हें कहीं अधिक सिखाता है।

२५ अक्तूबर १९३४

हे मां, मैं क्या करूं? मैं समझने की कोशिश करता हूं पर सफल नहीं होता। मेरी पढ़ाई के बारे में भी यही बात है।

इसका कारण यह है कि तुम्हारा मन पढ़ाई के अनुशासन के लिये काफी प्रशिक्षित नहीं है।

उपन्यास पढ़ने के लिये मेरे पास दो कारण थे—शब्द और शैली सीखना।

सीखने के लिये तुम्हें सावधानी के साथ पढ़ना और सावधानी के साथ पुस्तकों का चुनाव करना चाहिये।
२५ अक्तूबर १९३४

मां, यह कौन-सा अनुशासन है जो मुझे ज्यादा अच्छी तरह समझने के लिये सीखना चाहिये?

बौद्धिक पठन का अनुशासन, जैसा कि फ्रांस के कॉलिजों में करवाया जाता है। तुम 'त्र' से इसके विषय में बातचीत कर सकते हो, वह तुम्हें समझा देगा।

गुजराती के एक अच्छे लेखक हैं—मैं उनकी किताबें पढ़ सकता हूं। 'ज' का कहना है कि उनकी शैली 'आनातोल फ्रांस' के जैसी है।

सचमुच! अगर वह आनातोल फ्रांस की तरह लिखता है तो वास्तव में अद्‌भुत लेखक होगा!
२६ अक्तूबर १९३४

चूंकि मेरी बीमारी काल्पनिक थी, यह समझना मेरी मानसिक क्षमताओं के परे है कि तब आपने मुझे सुदर्शन खाने की अनुमति क्यों दी?

क्योंकि तुम्हारे शरीर को मालूम नहीं था कि बीमारी काल्पनिक थी, और ठीक होने की संभावना के विश्वास के लिये उसे किसी उपचार की आवश्यकता थी।
२६ अक्तूबर १९३४

'परोपकारी होना' या दूसरों की सहायता करना अच्छा है क्या?

निश्चय ही तीव्र रूप से स्वार्थी होने की अपेक्षा परोपकारी होना अधिक अच्छा है। लेकिन परोपकारी होने में भी तुम्हें नियंत्रण रखना चाहिये।

फिलहाल मेरे क्रिया-कलाप में एक भी चैत्य तत्त्व नहीं है। हे मां, वर दे कि मेरे अंदर कोई भी चीज, निम्न गतिविधियों को स्वीकृति न दे।

हां, तुम्हें निम्न प्रकृति के सामने कभी नहीं झुकना चाहिये, न केवल तब जब वह तुम्हारे अंदर अभिव्यक्त हो बल्कि उस समय भी, जब वह औरों में अभिव्यक्त हो। बुरी सलाह पर कभी कान मत दो और न कभी बुरे उदाहरण का अनुसरण करो। भागवत प्रभाव के सिवा और किसी प्रभाव को न स्वीकारो, और तुम्हारी बेचैनी गायब हो जायेगी।

३० अक्तूबर १९३४

एकमात्र 'ज' मुझे सलाह देता और मेरे आगे उदाहरण रखता है और मैं उससे प्रभावित हूं।

इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता कि प्रभाव किससे आ रहा है, उसे स्वीकार मत करो।

आज सुबह 'ज' ने कहा कि जब कभी मैं अवसाद का अनुभव करूं तो उसे बतलाऊं।

अपने अवसाद के बारे में दूसरों से कहने का मुझे कोई प्रयोजन नहीं दीखता। इससे न तुम्हारी सहायता हो सकती है न उनकी।

३० अक्तूबर १९३४

हे मां, मुझे क्या करना चाहिये ? मैं पूरी तरह से अचेतन हूं मां, कहां हो तुम ?

तुम्हारी चैत्य सत्ता में—मैं हमेशा उपस्थित हूं। तुम मुझे वहां पा सकते हो, तुम्हें मुझे वहां पाना चाहिये, और जब तुम मुझे वहां अपने हृदय की गहराइयों में पा लोगे तब तुम मुझे मेरे भौतिक रूप में भी पहचान लोगे।

३१ अक्तूबर १९३४

लेकिन मैं चैत्य केंद्र में प्रवेश कैसे पा सकता हूं जब चैत्य और पूर्ण सत्ता के बीच एक काला पर्दा है ?

(माताजी ने 'पूर्ण' की जगह 'बाहरी' लिखकर यह कहा :)

पूर्ण का मतलब है पूरी, अखंड, कुछ भी निकाले बिना, समग्र—बाहरी सत्ता पूर्ण होने से कोसों दूर है। जब हम 'पूर्ण सत्ता' की बात करते हैं तो उसका मतलब होता है, सत्ता अपनी समग्रता में, भौतिक शरीर से सच्ची आत्मा, भागवत चेतनातक।

३१ अक्तूबर १९३४

आपने लिखा, "सच्ची आत्मा, भागवत चेतना"—क्या इसका मतलब सच्ची अंतरात्मा, चैत्य से है?

नहीं, यह एक ही चीज नहीं है। श्रीअरविंद ने अपने बहुत-से संदेशों में चैत्य सत्ता,—जो मनुष्य के अंदर भागवत तत्त्व है, और सत्ता की उन अवस्थाओं के बीच भेद बताया है जो अधिमानस क्षेत्रों की अवस्थाएं हैं। (उपन्यास पढ़ने की बजाय) श्रीअरविंद के कुछ संदेशों और पुस्तकों को थोड़ा पढ़ा करो तब तुम मुझसे व्यर्थ के प्रश्न नहीं पूछोगे।

१ नवंबर १९३४

निस्संदेह, स्वाभाविक परिणाम यह है कि मैं आपसे बहुत दूर हूं—पहले मेरे अंदर आपके प्रति सच्चा भाव और पूर्ण उद्घाटन होना चाहिये—जिसका मुझमें अभाव है, मां तुम कहां हो, कहां हूं मैं?

तुम मुझसे उतनी दूर नहीं हो जितना तुम सोचते हो। तुम्हें जरूरत है केवल अपने मन और प्राण की अस्थिरता को कुछ शांत करने की, कुछ स्थिर और एकाग्रचित्त रहो तब तुम तुरंत मेरी उपस्थिति को अपने अंदर और अपने चारों तरफ पाओगे।

१ नवंबर १९३४

आपके ख्याल से क्या मुझे गुजराती साहित्य पढ़ना बंद कर देना चाहिये?

यह पूरी तरह से इस बात पर निर्भर है कि इस साहित्य का तुम्हारी कल्पना पर क्या प्रभाव पड़ता है। अगर यह तुम्हारे सिर को अवांछनीय विचारों और प्राण को कामनाओं से भर दे तो निश्चय ही इस तरह की किताबें पढ़ना बंद कर देना अधिक अच्छा है।

२ नवंबर १९३४

क्या यह सच है कि जब कोई आपके साथ तादात्म्य पा ले तब भी वह ऐसी क्रियाएं कर सकता है जो आपको अर्पण न की गयी हों?

नहीं, तादात्म्य के बाद यह असंभव है।

क्या मैं एक बार आपके पास था, चूंकि आपने कहा, "तुम फिर से मेरे निकट अनुभव करोगे।"

एक समय था जब तुम प्रगति कर रहे थे और तुम मेरे बहुत करीब आ गये थे। मैं इसी की ओर संकेत कर रही थी।
२ नवंबर १९३४

हे मां, मैं आपके साथ इस तरह तादात्म्य पाना चाहता हूं कि हर क्रिया में मैं आपको देख सकूं।

यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि तुम केवल मेरी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकोगे।

एक बार फिर, मैं नहीं जानता मैं कहां बहा जा रहा हूं।

आज सुबह प्रणाम के समय तुम मुझसे दूर बिलकुल नहीं थे। मुझे मालूम नहीं तुम ऐसा क्यों सोचते हो।
३ नवंबर १९३४

मेरे ख्याल से आपके साथ एक होना इतना आसान नहीं है। मन और प्राण अब तक अशुद्ध हैं। और मेरे ख्याल से, शुद्धि के बिना एक होना संभव नहीं है।

निश्चित रूप से यह संभव नहीं है।
७ नवंबर १९३४

माताजी, मैं कल शाम से आपको खोज रहा हूं लेकिन ढूंढ नहीं पा रहा और मैं बिना आधार के अकेला अनुभव कर रहा हूं।

ये सब मिथ्या कल्पनाएं हैं। इसके विपरीत, अगर तुम अपने-आपसे कहते कि मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं (जो सच है) तो यह चीज तुम्हें मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन बनने में सहायता करती।
९ नवंबर १९३४

हे मां, अब मैं इसलिये उदास हूं कि आप मुझसे जो कहती हैं उस पर मैं विश्वास नहीं करता। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं, मेरे लिये चीज स्पष्ट नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि आप पर मुझे श्रद्धा नहीं है। निःसंदेह, अभी ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जो मुझे सीखनी हैं।

अभी तक तुम्हें **सब कुछ**, एकदम से सब कुछ सीखना है। सबसे बढ़कर तुम्हें उस मन को प्रशिक्षित करना है जो अबतक अनगढ़, अज्ञानी, अंधकारमय है और जिसमें अज्ञान की समस्त धृष्टता है।

हे तू, जिसे हमें जानना, समझना, चरितार्थ करना है . . .

जो चीज तुम्हें सबसे पहले करनी चाहिये वह है थोड़ी-सी नम्रता सीखना और यह जानना कि तुम **कुछ भी** नहीं जानते—तुम शब्द पढ़ते हो, प्रार्थनाएं पढ़ते हो, तुम शब्द दोहराते हो, प्रार्थनाओं की नकल करते हो लेकिन **तुम उन्हें समझते नहीं**; तुम उन सभी विचारों और धारणाओं का अपने मस्तिष्क में घपला बना लेते हो जो अभी तक बचकाना है और फिर तुम इस भ्रम में रहते हो कि तुम समझ रहे हो!
१५ नवंबर १९३४

मैं जिन दिनों पढ़ता नहीं, अधिक बुरा महसूस करता हूं लेकिन जब मैं पढ़ना शुरू कर देता हूं तो खुशी आ जाती है। मैं इस प्रक्रिया को समझ नहीं पाता।

प्रक्रिया से तुम्हारा क्या मतलब है? यह कोई प्रक्रिया नहीं है; मन को पढ़ाई पर एकाग्र करना, बुरी भावना के गायब हो जाने का नितान्त स्वाभाविक परिणाम है, एक ओर तो यह एकाग्रता तुम्हारे मन को स्वस्थ गतिविधि देती है और दूसरी तरफ तुम्हारे ध्यान को इस छोटे-से अहंकार के तुच्छ रुग्ण विचारों से अलग करती है।
३ दिसंबर १९३४

हे मां, कहां है वह खुशी और प्रेम जिसने कल शाम के ध्यान के समय मेरी

संपूर्ण सत्ता को भर दिया था? आप जो कुछ मुझे देती हैं उसे ग्रहण करना और रखना मैंने कभी नहीं जाना।

तुम ग्रहण करना जानते हो, चूंकि तुम प्रेम और खुशी का अनुभव करते हो। लेकिन ऐसा लगता है कि तुम उन्हें रखना नहीं जानते। तुमने जो कुछ पाया है उसे अपने अंदर चुपचाप संचित करना तुम्हें सीखना चाहिये।
४ दिसंबर १९३४

कृपया मुझे यह समझाइये कि जो मैं ग्रहण करता हूं उसे खो कैसे बैठता हूं?

अपव्यय द्वारा, जो शक्ति और ऊर्जा तुम्हें मिलती है, उन्हें—चाहे विचारों में, शब्दों में या क्रियाओं में—छितरा कर या बाहर फेंक कर।
४ दिसंबर १९३४

मेरा ख्याल है कि भागवत शांति समस्त धरती पर राज्य नहीं करेगी।

तुम उसके बारे में क्या जानते हो? क्या तुम्हारे मन को भविष्य के बारे में और विशेषकर अतिमानसिक भविष्य के बारे में कोई ज्ञान है?
७ दिसंबर १९३४

आज सुबह मैंने 'क' से कहा कि माताजी ने मुझसे कहा है कि भविष्य में इस आश्रम का क्या होगा यह उन्हें मालूम नहीं। उसने कहा, "यह भला कैसे संभव है? मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि जिस कार्य के लिये उन्होंने धरती पर शरीर धारण किया है उसके बारे में वे कुछ नहीं जानतीं।"

मेरे ख्याल से मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही। तुमने मेरे शब्दों को गलत समझा होगा। लेकिन 'क' का यह सोचना गलत है कि मैं धरती पर एक आश्रम की स्थापना करने आयी हूं! यह तो एकदम से तुच्छ उद्देश्य होगा।
८ दिसंबर १९३४

माताजी, कृपया आप मुझे समझायेंगी कि चित्र देखना हानिकर कैसे हो सकता है?

स्वभावतः यह इस पर निर्भर करता है कि चित्र कैसे हैं; लेकिन बहुधा वे केवल सामान्य जीवन की चीजों से संबंध रखते हैं अतः वे चेतना को उसी की ओर खींचते हैं।

१० दिसंबर १९३४

हे मां, मेरी प्यारी मां, मैं आपके साथ एकात्म कब होऊंगा, मैं कब आपके अंदर और आपके लिये जिऊंगा ?

तुम्हें आग्रह के साथ लेकिन बिना धीरज खोये इसकी इच्छा करनी चाहिये। अचंचल निश्चय के साथ तुम इसे ज्यादा जल्दी पा लोगे। अस्थिर होकर तुम समय बचाने की अपेक्षा उसे खोते ज्यादा हो।

१३ दिसंबर १९३४

माताजी, 'क्ष' ने गुजराती में जो कविताएं लिखी हैं उन्हें पढ़ने के लिये उसके घर जाना ठीक है क्या ?

सब कुछ इस पर निर्भर है कि उसका तुम पर क्या असर पड़ता है। अगर तुम अधिक शांत और प्रसन्नचित्त होकर वापस आओ तो ठीक है। इसके विपरीत अगर वह तुम्हें उदासी और असंतोष का अनुभव कराये तो तुम्हारा वहां न जाना ज्यादा अच्छा होगा। तुम्हें बस निरीक्षण करना और यह देखना है कि यह चीज तुम पर क्या असर डालती है। तुम उसी के अनुसार निश्चय करो।

१३ दिसंबर १९३४

माताजी, क्या मैं अतिमानस के अपने अंदर उतरने की शर्तें जान सकता हूं ? जब मैंने सुना कि अतिमानस अपेक्षाकृत जल्दी ही उतरनेवाला है तो मैं बहुत खुश हुआ।

इन चीजों के बारे में न बोलना ज्यादा अच्छा है। चेतना की वृद्धि के लिये समस्त सच्चा आध्यात्मिक प्रयास एक तैयारी है।

१८ दिसंबर १९३४

क्या आप बतलायेंगी कि मेरे अंदर आनंद और प्रेम पर अंधकार का आक्रमण

क्यों होता है ? मुझे पता नहीं कि मैंने ऐसा क्या किया है और यह संभव नहीं है कि प्रेम और आनंद बिना कारण के पीछे हट जायें।

नहीं, कोई चीज पीछे नहीं हटती। स्वभावतः भौतिक सत्ता आनंद और प्रेम को ज्यादा समय तक नहीं रख सकती—जब तक कि वह पूरी तरह चैत्य द्वारा शासित न हो।

केवल सोकर उठने पर मेरी स्थिति बदलती है।

हां, विशेष रूप से रात के समय भौतिक सत्ता अंधकार और निश्चेतना में गिरती है।

मैं नहीं समझ पाता कि इतनी खुशी के बाद इतनी गड़बड़ क्यों आती है। यह पहली बार नहीं है।

चेतना की शक्तियां लोलक जैसी होती हैं। वह एक दिशा में जितना अधिक झूलती हैं उतना ही दूसरी दिशा में झूलती हैं।
१९ दिसंबर १९३४

हम किन लक्षणों से यह कह सकते हैं कि चैत्य सत्ता सतह पर आ गयी है ?

तुम सुख और शांति का अनुभव करते हो, श्रद्धा तथा गभीर और सच्ची सद्भावना से भरे होते हो और भागवत उपस्थिति को बहुत निकट अनुभव करते हो।
२० दिसंबर १९३४

सपने में मैंने देखा कि आपने लिखा, "मेरे प्यारे बच्चे, तुमने पढ़ना क्यों बंद कर दिया ?" आपने और भी बहुत कुछ लिखा था और मैं चाहता हूं कि अगर संभव हो तो आप उसे यहां लिख दें।

हां, वस्तुतः पिछली रात मैंने तुमसे पूछा था कि तुमने पढ़ाई क्यों नहीं की, और मैंने तुमसे कहा कि इस तरह प्राण के आवेगों के सामने झुकना निश्चित रूप से उसे वश में करने का तरीका नहीं था। तुम्हें अपने लिये एक अनुशासन बनाना चाहिये और अगर तुम प्राणिक दुर्भावना और मानसिक अवसादों से पिण्ड छुड़ाना चाहते हो तो हर हालत में उसे स्वयं पर लागू करना होगा। अनुशासन के बिना तुम जीवन में कुछ नहीं कर सकते और समस्त योग असंभव हो जाता है।
२२ दिसंबर १९३४

भौतिक काम के लिये अनुशासन में रहना मुश्किल नहीं है, लेकिन जब मैं अशांत होता हूं तो पढ़ाई के लिये अनुशासन का पालन करना मुश्किल हो जाता है। फिर भी मैंने निश्चय किया है कि जिस दिन मैं पढ़ाई नहीं करूंगा, उस दिन मैं दोपहर का खाना नहीं खाऊंगा।

कैसा अजीबोगरीब विचार है तुम्हारा! प्राण की भूल का दण्ड शरीर को देना! यह ठीक नहीं है।
२२ दिसंबर १९३४

मैंने अभी-अभी सुना है कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है। आपको क्या तकलीफ है मेरी प्यारी मां? अपना दर्द मुझे दे दीजिये, मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूंगा।

बड़ा मधुर भाव है तुम्हारा, मेरे प्यारे बच्चे, लेकिन मुझे तुम्हारा सुझाव बहुत व्यावहारिक नहीं लगता।
२५ दिसंबर १९३४

'ख' ने मुझसे कहा कि पिछले कुछ दिनों से सब कुछ आपकी इच्छा से हो रहा है। लेकिन मेरे ख्याल से इससे एकदम उल्टा है—बहुत कम चीजें आपके भागवत विधान के अनुसार की जाती हैं। (मैंने उससे यह कहा नहीं।)

उससे न कहकर तुमने ठीक किया, लेकिन यह एकदम सच है कि इस जगत् में बहुत ही कम चीजें भागवत इच्छा के अनुसार की जाती हैं।

हम लोग (कम-से-कम मैं) कितनी ही ऐसी चीजें करते हैं जो भागवत उपस्थिति पर आधारित नहीं होतीं।

तुम अकेले नहीं हो; यह बात करीब-करीब सब पर लागू होती है।
२७ दिसंबर १९३४

मां, मुझे यह बताइये कि मैं क्या हूं?

बाहर से : तुम एक ऐसे अचेतन बच्चे हो जो सचेतन होने की कोशिश कर रहा है।

अंदर से : तुम एक शाश्वत अंतरात्मा हो जो शरीर में **अभिव्यक्त** होने की कोशिश कर रही है।

७ जनवरी १९३५

मैंने सोचा कि अंतरात्मा हमेशा शरीर में रहती है, कि उसकी उपस्थिति के बिना कोई अस्तित्व न होगा।

निश्चय ही अंतरात्मा शरीर में है, लेकिन वह **अभिव्यक्त** नहीं है—उसकी उपस्थिति प्रत्यक्ष नहीं है और शरीर के जीवन पर उसका बहुत कम प्रभाव होता है।

सत्ता का कौन-सा भाग प्रेम, शांति के लिये अभीप्सा करता है ?

वह किसी भी स्तर (भौतिक, प्राणिक या मानसिक) का वह भाग है जो चैत्य प्रभाव के प्रति खुला है।

७ जनवरी १९३५

सपने में मुझे सांप ने डंसा। लेकिन इच्छा की एक क्रिया से ही जहर निकल गया। मेरे ख्याल से जाग्रत् अवस्था में मैं ऐसा न कर पाता।

निश्चय ही सत्ता के अधिक गभीर भाग हैं जिनमें जड़-भौतिक सत्ता से अधिक ज्ञान और शक्ति है।

१० जनवरी १९३५

माताजी, क्या मैं यह जान सकता हूं कि कितनी सदियां पहले आप इस धरती पर उतरीं थीं ?

जबसे धरती बनी है, मैंने इसे कभी नहीं छोड़ा।

१० जनवरी १९३५

कहा जाता है कि कृष्ण, बुद्ध और ईसा अवतार थे। क्या ये सब स्वयं आप ही नहीं थीं ?

कृष्ण अवतार थे लेकिन बुद्ध और ईसा केवल विभूतियां। रही बात तुम्हारे प्रश्न के दूसरे हिस्से की, मेरी समझ में नहीं आता कि तुम क्या कहना चाहते हो?
११ जनवरी १९३५

मैं जानना चाहूंगा कि अचंचल रहने से आपका सचमुच क्या मतलब है?

इसका अर्थ है क्षुब्ध न होना। सबसे बढ़कर इससे मेरा मतलब है **मनोवैज्ञानिक रूप से**, अपनी संवेदनाओं और विचारों में क्षुब्ध न होना।
१४ जनवरी १९३५

व्यक्ति सेक्स-केंद्र और उसकी ऊर्जा को एक राशि तथा आंतरिक प्रकाश में किस तरह बदल सकता है, एक सर्जक शक्ति, पवित्र दिव्य आनंद में?

केंद्र में प्रकाश को धीरे-धीरे उतारकर।
१५ जनवरी १९३५

मुझे प्रायः हर समय बुरा लगता है और मैं अवसाद में डूबा रहता हूं, मुझे इस बात का डर है कि इस तरह मैं दूसरों को बाधा पहुंचाता हूं।

यह बहुत प्रशंसनीय भाव है—लेकिन इस अवसाद से अपने-आपको बाहर निकाल लेना सबसे अच्छी बात होगी ताकि इसे दूसरों पर डालने का जोखिम ही न रहे।
१६ जनवरी १९३५

आज सुबह से ही, एक भारी अवसाद छाया है और पढ़ाई-लिखाई करना असंभव हो गया है।

यह नहीं चलेगा।

हे मां, मैं क्या करूं?

अपने-आपको पढ़ने के लिये बाध्य करो और तुम्हारा अवसाद चला जायेगा। क्या तुम कॉलिज के एक ऐसे विद्यार्थी की कल्पना कर सकते हो जो आकर अपने

अध्यापक से कहे, "महाशय, मैंने आज अपना गृहकार्य इसलिये नहीं किया कि मैं अवसाद में डूबा था।"

निश्चित रूप से अध्यापक उसे कठोरतम दंड देगा।

१६. जनवरी १९३५

मेरी सत्ता चेतना की नीची, अधिक नीची अवस्था में गिरती जा रही है।

क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि तुम अपने बारे में जरूरत से कुछ ज्यादा ही सोच रहे हो? तुम मुझे ऐसे वहमी की याद दिलाते हो जो हमेशा यह देखने के लिये अपनी नाड़ी की जांच किया करता है कि उसे बुखार है या नहीं।

१७ जनवरी १९३५

निस्संदेह मैं अपनी गतिविधियों के बारे में बहुत अधिक सोचता हूं। भविष्य में मैं किसी गतिविधि के बारे में आपको केवल एक बार सूचित करूंगा, लेकिन उसके बारे में न सोचना मेरे लिये आसान न होगा।

अगर तुम उसके बारे में सोचते ही रहो तो मुझे सूचित न करना किसी भी हालत में मदद न करेगा। इसके विपरीत, अगर तुम उसके बारे में मुझसे कह दो तो मेरे लिये तुम्हारी सहायता करना ज्यादा आसान हो जाता है।

१८ जनवरी १९३५

क्या यह सच है कि एक समय सब जगह भगवान् का शासन था—सत्ययुग था?

निश्चित रूप से धरती पर नहीं।

अंतरात्मा का कभी अंत नहीं आता? क्या उसे हमेशा शरीर ग्रहण करना पड़ता है?

जरूरी नहीं है, लेकिन इसके पहले कि अंतरात्मा के अंदर इसका चुनाव करने की शक्ति हो कि वह जड़-भौतिक जीवन में वापिस लौटना चाहती है या अभिव्यक्ति के बाहर विश्राम करना चाहती है, उसे पूर्णता का बहुत ऊंचा स्तर पाना होगा।

२३ जनवरी १९३५

मेरा विचार था कि अंतरात्मा अपनी प्रकृति में पूर्ण है। मैं "अंतरात्मा का उस सत्य के प्रति आरोहण जिससे वह निकली है" का अर्थ नहीं समझ पाया।

अंतरात्मा का तत्त्व भागवत है, लेकिन अंतरात्मा (चैत्य सत्ता) क्रम-विकास के सभी रूपों द्वारा विकसित होती है, वह अधिकाधिक वैयक्तिक और अपने तथा अपने उत्स के बारे में अधिकाधिक सचेतन हो जाती है।
२४ जनवरी १९३५

मेरे ख्याल से आपकी क्रिया मेरी चेतना की अवस्था के अनुसार बदलती है। जब मैं अच्छे मिजाज में होता हूं या जब मैं अवसन्न होता हूं—मैं बहुत बड़ा फर्क देखता हूं।

मेरी क्रिया नहीं, उसे देखने का तुम्हारा तरीका बदल जाता है।
२५ जनवरी १९३५

मेरे ख्याल से एक चीज आपको बहुत पसंद नहीं है। वह यह कि मैं अपनी पढ़ाई में मन नहीं लगाता।

पढ़ाई मन को मजबूत बनाती है और उसकी एकाग्रता को प्राण की कामनाओं और उसके आवेशों से दूर हटाती है। पढ़ाई पर एकाग्रता मन और प्राण को वश में करने के सबसे अधिक सशक्त तरीकों में से एक है; इसीलिये पढ़ना इतना महत्त्वपूर्ण है।
२८ जनवरी १९३५

मेरे अंदर कोई चीज दूसरों की सहायता करना पसंद करती है। लेकिन यह वांछनीय नहीं है।

यह बहुत अच्छे स्वभाव का लक्षण है, लेकिन इसे सुरक्षा के साथ कर सकने के लिये तुम्हारा अपने ऊपर पूरा अधिकार होना चाहिये।
३० जनवरी १९३५

कितना कुछ करना है और मैं व्यर्थ में अपना समय बरबाद कर रहा हूं। मां, मेरी क्रियाएं आपके साथ समस्वर कब होंगी?

यह इच्छा की बात है। तुम्हें अपनी इच्छा को विकसित और मजबूत बनाना चाहिये—तब तुम्हारा समय व्यर्थ में और बरबाद न होगा।
३० जनवरी १९३५

मेरा मन शांत नहीं रहता, मेरे ख्याल से इसलिये कि मैं बहुत पढ़ाई नहीं करता हूं। पढ़ने-लिखने में मुझे बहुत मजा नहीं आता।

तुम मजे के लिये पढ़ाई नहीं करते—तुम सीखने, अपने मस्तिष्क को विकसित करने के लिये पढ़ते हो।
१ फरवरी १९३५

जब आप छोटी थीं, यानी बचपन में, क्या आपको यह मालूम था कि आप भागवत अवतार हैं?

मैं सचेतन थी।
२ फरवरी १९३५

सामान्यतः मैं किसी क्रिया को करने के बाद ही उसकी गतिविधि के बारे में अभिज्ञ होता हूं। अगर मैं क्रिया करने से पहले क्षण भर के लिये रुकूं तो मैं इन गलत गतिविधियों से बच सकता हूं।

हां, क्रिया करने से पहले कुछ क्षणों के लिये सोचने की आदत डालना और अपने-आपसे यह पूछना कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से क्रिया सचमुच सहायक है या नहीं—यह सीखना बहुत अच्छा है।
४ फरवरी १९३५

कहा जाता है कि ज्ञान पहले से ही हमारे अंदर है, लेकिन मेरा ख्याल है कि अंतरात्मा ज्ञान प्राप्त करती है और उसे मन और प्राण को देती है।

मैं इन दोनों विचारों में कोई विरोध नहीं देखती। चैत्य पुरुष सत्य को प्राप्त करता है और उसे मन और प्राण में संचारित कर सकता है।
६ फरवरी १९३५

"परिभाषा के अनुसार चैत्य पुरुष वह भाग नहीं है जो सीधा अतिमानसिक स्तर के साथ संबंध रखता है... हमारा चैत्य भाग एक ऐसी चीज है जो सीधी भगवान् से आती है और भगवान् के साथ संपर्क रखती है।" (श्रीअरविंद)

भगवान् और अतिमानस का फर्क मुझे नहीं मालूम।

यहां जिन भगवान् की बात की गयी है वे काल के आरंभ से पृथ्वी के संपर्क में हैं। अतिमानस भगवान् का एक नया पक्ष है जो अभीतक धरती पर अभिव्यक्त नहीं हुआ।

७ फरवरी १९३५

जीवन कैसा मजेदार है! अंतरात्मा को विकास करते देखने में बड़ा मजा आता है। सब कुछ मजेदार है। इस मजे का अनुभव कौन करता है? मन?

हां, यह मन ही है परंतु है अग्नि की ज्वाला के प्रथम प्रभाव के साथ।

८ फरवरी १९३५

मानव मन यह कैसे कह सकता है कि अंतरात्मा को विकसित होते हुए देखने में मजा आता है जब कि अंतरात्मा मन से ऊपर है?

जब मन यह कहता है तो वह प्राण-आत्मा की बात करता है क्योंकि जीवन में वही विकसित होता है।

माताजी, मैं इस अग्नि की ज्वाला के बारे में कुछ जानना चाहता हूं।

यह शुद्धि की ज्वाला है, प्रगति के लिये संकल्प है।

९ फरवरी १९३५

मेरा ख्याल है कि "प्राण-आत्मा" से आपका मतलब प्राणिक सत्ता से है?

प्राण-आत्मा वह चीज है जिसे पुराने लोग अणिमा या प्राण तत्त्व कहते थे, जो अनुप्राणित करता है, जो शरीर को जीवन देता है। उसे कभी-कभी वायव्य सत्ता भी कहते हैं।

११ फरवरी १९३५

आंतरिक विकास सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है क्योंकि किसी बाहरी चीज से नहीं बल्कि उसी विकास के द्वारा हम आपका प्रेम और शांति पाते हैं। बाहरी चीजों या आपकी बाहरी क्रियाओं से मिलनेवाला हर्ष भागवत या आध्यात्मिक मूल से आया हर्ष नहीं होता। इसका प्रमाण यह है कि जब आपकी क्रियाएं बदल जाती हैं तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं।

बकवास !!!!

तुम दो अलग-अलग चीजों को मिला रहे हो। मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूं कि मेरी क्रिया, चाहे वह आंतरिक हो या बाह्य, **हमेशा भागवत मूल से** आती है। जिस क्षुब्धता का तुम अनुभव करते हो वह क्रिया में दिव्यता के अभाव का प्रमाण नहीं बल्कि तुम्हारे मन, प्राण और भौतिक में नमनीयता और ग्रहणशीलता के अभाव का प्रमाण है।

मेरे ख्याल से यह भौतिक चेतना है जो आजकल काम कर रही है और आपपर दोष मढ़ रही है। क्षुब्धता अभीतक है—मुझे मालूम नहीं कि इससे किस तरह पिंड छुड़ाऊं।

इन विक्षुब्धताओं से बचने का एक ही तरीका है और वह है सच्ची नम्रता—ऐसी नम्रता जो यह जानती है कि इस समय तुम मुझे समझने में एकदम असमर्थ हो और यह कि मेरे बारे में निर्णय लेना गुस्ताखीभरी बेवकूफी है।
१३ फरवरी १९३५

मैं पूरी तरह से अज्ञानी हूं, मुझमें चेतना का एकदम से अभाव है—अतः ऐसी हालत में मैं आपको कैसे समझ सकता और आपके बारे में निर्णय ले सकता हूं !

परेशान मत होओ—स्थिर बने रहो। निश्चय ही तुम्हारे उस भाग ने कभी मेरा मूल्यांकन करने की कोशिश नहीं की जो इस समय बोल रहा है। स्थिरता में ही तुम अपनी सत्ता को उच्चतम अभीप्सा के चारों तरफ एकत्र कर सकते हो।
१४ फरवरी १९३५

मैं जानना चाहूंगा कि कौन-से भाग आपका मूल्यांकन करने की कोशिश करते हैं।

भौतिक मन का एक भाग और सबसे अधिक जड़ भौतिक प्राण।
१५ फरवरी १९३५

हे मां, मैं नम्र कब बनूंगा ?

मेरे ख्याल से यह जल्दी ही होगा, क्योंकि तुमने अपनी गलती पहचान ली है।
१५ फरवरी १९३५

मैं जानना चाहूंगा कि "सबसे अधिक जड़-भौतिक प्राण" से आपका क्या मतलब है।

यह प्राण का वह हिस्सा है जो भौतिक चेतना के सबसे निकट है, वह हिस्सा जो शरीर को जीवन देता है।
१६ फरवरी १९३५

'क्ष' के साथ योग के विषय में बातें करना वांछनीय है क्या ?

मैं नहीं सोचती कि योग के बारे में लोगों से इस तरह बातें करना तुम्हारे लिये अच्छा है—इससे तुम्हें यह भ्रम पैदा हो जाता है कि उन्हें सिखाने के लिये तुम्हारे पास कुछ है और यह चीज तुम्हारे अंदर नम्रता को बढ़ावा नहीं देती।
१८ फरवरी १९३५

तमस् के कारण मेरे लिये पढ़ना एकदम असंभव हो गया है।

अगर तुम पढ़ोगे नहीं तो तमस् बढ़ता ही जायेगा।
४ मार्च १९३५

"भागवत प्रेम और सौंदर्य तथा आनंद को लाना" इसमें "सौंदर्य" का क्या अर्थ है ?

स्वयं भगवान् तक, सत्ता के हर स्तर पर, एक सौंदर्य पाया जाता है। जड़ भौतिक सौंदर्य तो उस सौंदर्य का बहुत ही बुरा अनुवाद है।
५ मार्च १९३५

अगर 'क्ष' कभी-कभी अपनी साधना के बारे में मुझसे बातें करे तो यह अवांछनीय नहीं है क्या ?

जबतक तुम उसे कोई सलाह नहीं देते तबतक बहुत फर्क नहीं पड़ता। लेकिन साधारण नियम के अनुसार तुम अपनी साधना के बारे में जितना कम बोलो उतना ही अच्छा।
६ मार्च १९३५

कठिनाइयों और समस्याओं का सामना किये बिना प्रगति करना संभव है क्या ?

नहीं। कठिनाइयां आती जरूर हैं, लेकिन ऐसा कोई कारण नहीं कि वे अवसाद लेकर आयें।
८ मार्च १९३५

मैं कठिनाइयों का किस तरह निवारण करूं कि वे अवसाद का कारण न बनें ?

सचेतन बनो।

यौगिक परिभाषा "हृदय के द्वारा" का क्या अर्थ है ? क्या यह उच्चतर प्राण है ?

हां, भावमय सत्ता।

चेतना को जरा भी नीचा किये बिना किसी कठिनाई को जीतना संभव नहीं है क्या ?

निश्चित रूप से है—वास्तव में अगर चेतना नीचे गिर जाये तो किसी भी कठिनाई को जीतना असंभव होता है। इसके विपरीत, कठिनाइयों को जीतने के लिये चेतना को अपने सामान्य स्तर से ऊंचा उठाने की कोशिश करनी चाहिये।
९ मार्च १९३५

"जब केंद्रीय सत्ता ने समर्पण कर दिया तो मुख्य कठिनाई चली गयी।" यह केंद्रीय सत्ता क्या है ?

केंद्रीय सत्ता सबमें समान नहीं होती—यह वह भाग है जो शेष व्यक्तित्व पर शासन करता और उसपर अपनी इच्छा आरोपित करता है।

जब चैत्य सत्ता व्यक्तित्व में इस केंद्रीय स्थिति को पा लेती है तो सब कुछ बहुत आसान हो जाता है।

१४ मार्च १९३५

अब प्राण को शिष्ट और सुशील बनना ही होगा। मैं आशा करता हूं कि आपकी सहायता से मैं यह कर पाऊंगा।

हां, निश्चित रूप से तुम यह कर पाओगे। सद्भावनावाले भाग को तबतक अधिकाधिक शक्तिशाली बनाना होगा जबतक उसके अंदर अक्खड़ भाग को वश में करने और उसे रूपांतरित होने के लिये बाध्य करने की शक्ति न आ जाये।

१६ मार्च १९३५

मैं देख रहा हूं कि मानसिक तैयारी बहुत सहायता करती है।

हां, जब वह ठीक तरह से की जाये तो बहुत लाभकारी होती है।

मानसिक पुरुष की वाणी और चैत्य वाणी, जो हृदय की गहराइयों से आती है, दोनों में क्या भेद है ?

चैत्य वाणी नीरव होती है—वह शब्दों की बजाय एक समझ या ज्ञान के रूप में प्रकट होती है।

१७ मार्च १९३५

चैत्य वाणी और मानसिक पुरुष की वाणी के प्रभाव में कोई अंतर नहीं है क्या ?

हां, बहुत अंतर है। मानसिक पुरुष की वाणी की अपेक्षा चैत्य संदेश को सुनना कहीं

अधिक मुश्किल है—मानसिक पुरुष की आवाज अचूक नहीं होती और उसमें भूल करने की संभावना रहती है। चैत्य कभी भूल नहीं करता।

मेरा प्राण प्राण-पुरुष के अधीन क्यों नहीं है?

प्राण-पुरुष तभी जगता है जब समस्त कामनाओं पर प्रभुत्व पा लिया जाता है और प्राणिक सत्ता अचंचल होती है।

मैं जिस प्रेम और शांति का अनुभव करता था वह कहां से आते थे, क्योंकि मेरा हृदय तो हमेशा बंद था।

तुम्हारा हृदय हमेशा बंद नहीं रहता। जब वह खुलता है तो तुम्हारे अंदर शांति और प्रेम प्रवेश करते हैं।
१८ मार्च १९३५

व्यक्ति चैत्य संदेश कब सुन सकता है?

जब वह बहुत नीरव और बहुत जागरूक हो।

मेरा मन अबतक अज्ञानी है और एकदम स्थिर नहीं है—तो मानसिक पुरुष किस तरह जागा?

जिन लोगों को अपना अवलोकन करने की आदत होती है उनके अंदर मानसिक पुरुष हमेशा न्यूनाधिक रूप से जाग्रत् होता है।

मेरे ख्याल से हृदय के उद्घाटन से जो प्रेम और शांति आते हैं, चैत्य और विशुद्ध होते हैं।

जरूरी नहीं है; भले वे चैत्य से आयें फिर भी हो सकता है कि मन या प्राण में अभिव्यक्त होते समय कम ऊंची गतिविधियों के साथ मिल जायें।

प्रेम और शांति ऊपर से, सीधे भागवत क्षेत्रों से भी आ सकते हैं।
१९ मार्च १९३५

चैत्य वाणी और भागवत वाणी में कोई फर्क है क्या?

तुम यह मुश्किल से कह सकते हो कि भगवान् अपने-आपको किसी **वाणी** के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि वे चेतना को एक अवस्था विशेष प्रदान करके स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं।

भौतिक पुरुष कब जागता है और भौतिक सत्ता को अपने अधिकार में कर सकता है ?

जब जड़ भौतिक चेतना में प्रकाश उतर आये।

ऊपर से आनेवाले प्रेम और शांति जब मन और प्राण में प्रवेश करते हैं तो विकृत नहीं हो जाते क्या ?

वास्तव में, बहुत बार वे विकृत हो जाते हैं, प्रेम एक तरह के आवेश में और शांति जड़ता में बदल जाती है।

मुझे अपने हृदय को फिर से बंद न होने और उसे हमेशा खुला रखने के लिये क्या करना चाहिये ?

तुम्हें दृढ़तापूर्वक इसकी इच्छा करते रहना होगा और एक दिन यह हो जायेगा।
२० मार्च १९३५

मानसिक, प्राणिक और भौतिक पुरुषों के अलावा और कोई पुरुष है क्या ?

चैत्य।

क्या प्रेम, शांति और आनंद सत्ता के तैयार होने से पहले उतर सकते हैं ?

आंशिक रूप में।
२१ मार्च १९३५

'त्र' ने मुझे कलम खोलने के लिये मना किया था, लेकिन चूंकि स्याही नहीं आ रही थी मैंने उसे आधा खोल दिया और दुर्घटना हो गयी।

जब तुमसे कलम खोलने के लिये मना किया गया था तो उसे खोलकर तुमने गलत काम किया—क्योंकि खुद मैंने यह कहा था कि अगर कोई अपने कलम के साथ खिलवाड़ करेगा तो कलम की मरम्मत नहीं की जायेगी।

संभव हुआ तो इस बार मैं मरम्मत करवा दूंगी, लेकिन तुम्हें मुझसे वादा करना होगा कि दुबारा उसे न छुओगे।

मैं जब कोई भौतिक चीज खो बैठता या तोड़ देता हूं तो मुझे कुछ नहीं लगता।

यह भूल है। तुम जिन भौतिक चीजों का इस्तेमाल करते हो उनकी देख-रेख न करना अचेतना और अज्ञान का चिह्न है। अगर तुम भौतिक चीजों की देख-रेख नहीं कर सकते तो तुम्हें उनका उपयोग करने का कोई हक नहीं।
२३ मार्च १९३५

अब मैं समझ रहा हूं कि भौतिक चीजों में भी कुछ भागवत अंश होता है।

हां, और हमें उनकी देखभाल करनी चाहिये, इसलिये नहीं कि हमें उनसे लगाव है बल्कि इसलिये कि वे भी भागवत चेतना का कुछ अंश अभिव्यक्त करती हैं।

मैं जानना चाहूंगा कि किन लक्षणों से हम यह कह सकते हैं कि हृदय पूरी तरह खुला हुआ है।

यह ऐसी चीज है जिसका तुम अनुभव कर सकते हो और जब यह होती है तो इसके बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता।

हृदय के खुलने का अर्थ है चैत्य को ऊपर सतह पर लाना?

चैत्य का सतह पर आना प्रक्रिया नहीं बल्कि परिणाम है।
२५ मार्च १९३५

आज मैं अनुभव कर रहा हूं मानों सारा संसार स्थिर और शांत है; सब कुछ स्थिर है, मेरे लिये भी पराया है। मैं इस संसार में अजनबी हूं। मुझे मालूम नहीं कि मैंने अपनी अनुभूति का सही वर्णन किया है या नहीं।

मैं बहुत अच्छी तरह समझ रही हूं कि तुम क्या कहना चाहते हो। यह अनुभूति उस समय होती है जब व्यक्ति चेतना के एक नये क्षेत्र में प्रवेश करता है।

अगर यह अच्छी अनुभूति है तो मेरी समझ में नहीं आता कि मैं आपके प्रेम और खुशी का अनुभव क्यों नहीं करता।

खुशी और प्रेम सब अनुभूतियों के साथ नहीं आते।

इसके स्थान पर मैं देखता हूं कि एक सक्रिय एकाग्रता है। मैं बहुत बार हृदय-केंद्र में एक दबाव का अनुभव करता हूं। लेकिन साथ-साथ थोड़ी-सी प्रसन्नता और प्रेम क्यों नहीं आते?

यह केवल चेतना के जाग्रत् होने की अनुभूतियों में से एक है।
२७ मार्च १९३५

सब कुछ आप होंगी, आपके सिवाय कुछ नहीं; मैं आप बन जाऊंगा और केवल आपका अस्तित्व होगा। मालूम नहीं, कहीं मैं बढ़ा-चढ़ाकर तो नहीं बोल रहा।

तुम्हारा मन तुम्हारे सामने जो आदर्श रखता है उसे व्यवहार में उतारना तुम्हारे हाथ में है।

कल मैंने लिखा था कि एक गभीर स्थिरता है—लेकिन आज गभीर विक्षोभ है!

एक ही समय में सत्ता का एक भाग प्रकाश और आनंद में रहता है और दूसरा विक्षोभ और अंधकार में। अगर तुम अपना ध्यान विक्षोभ की ओर मोड़ दो तो तुम उसे महसूस करते हो, लेकिन अगर तुम अपना ध्यान प्रकाश और आनंद की तरफ मोड़ो तो तुम उनमें जीते हो।
२ अप्रैल १९३५

वस्तुतः, जुकाम की वजह से मैंने विक्षोभ की बात कही, यह जुकाम हमेशा मेरी चेतना को नीचे खींचता है।

यह मस्तिष्क में एक प्रतिरोध भी है जो जड़-भौतिक मन के उन तत्त्वों को अभिव्यक्त करता है जो रूपांतरित होने से इंकार करते हैं।
६ अप्रैल १९३५

मेरे ख्याल से व्यक्ति चैत्य चेतना को तभी पाता है जब चैत्य सतह पर आ जाता है।

या जब वह पर्याप्त रूप से इतनी गहराई में जा सके कि अपनी चैत्य सत्ता के साथ संपर्क साध ले।

मुझे भौतिक मन के प्रतिरोध के लिये क्या करना चाहिये? वह मुझे पढ़ाई से रोक रहा है और निरंतर बाधा दे रहा है।

पहले तुम्हें अपने-आपको उससे अलग करना होगा, अपने-आपको उसकी गतिविधियों के साथ एक होने से रोक दो।

कृपया आप मुझे प्राण के अंधेरे हिस्सों के बारे में कुछ बतायेंगी क्या? मेरी समझ में नहीं आता कि वे मेरी चेतना को नीचे क्यों खींचते हैं और मुझे मालूम नहीं कि वे भौतिक स्तर पर किस तरह क्रिया करते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों (दृष्टि, श्रवण इत्यादि) द्वारा वे जड़-भौतिक स्तर से जुड़े होते हैं।
८ अप्रैल १९३५

व्यक्ति अवचेतन पर विजय कैसे पा सकता है?

उसके अंदर चेतना के प्रकाश में, सावधानी के साथ अवलोकन करते हुए, एक-एक पग आगे बढ़ाकर।

अज्ञान और अंधकार में डूबा, मैं धरती पर क्यों हूं?

मन इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता, न ही सच्चा उत्तर समझ सकता है।
९ अप्रैल १९३५

मुझे मालूम नहीं कि कुछ भी न समझते हुए अपना समय कैसे बिताऊं ?

पढ़ो, समझने का यह सबसे अच्छा तरीका है।

आप मुझसे पढ़ने के लिये कहती हैं, लेकिन पढ़ना मुझे एकदम नापसंद है।

तुम पढ़ाई में काफी समय नहीं देते, इसीलिये इसमें तुम्हें रस नहीं आता। तुम जिस किसी चीज को ध्यान से करते हो वह निश्चित रूप से रुचिकर बन जाती है।
१० अप्रैल १९३५

मैं एक ऐसी चेतना चाहता हूं जो मुझे बुरा व्यवहार करने से रोके। मेरे ख्याल से केवल चैत्य चेतना ही यह कर सकती है।

चैत्य के अभाव में प्रदीप्त मन प्राण को मूर्खताभरा व्यवहार करने से रोक सकता है।
१५ अप्रैल १९३५

मेरा जुकाम चलता चला जा रहा है। इस असामंजस्य के लिये कुछ करना होगा।

बीमारियों से पिंड छुड़ाने का अचूक तरीका यह है कि तुम उनसे अपना ध्यान खींच लो और उन्हें किसी भी तरह का महत्त्व देने से इंकार कर दो।
१६ अप्रैल १९३५

आध्यात्मिक चेतना सारे समय क्यों नहीं बनी रहती ?

क्योंकि सामान्य चेतना उसे दूर धकेल देती है।
१९ अप्रैल १९३५

आध्यात्मिक चेतना किसी भी चीज से दूर धकेली नहीं जाये इसके लिये व्यक्ति को क्या करना चाहिये ?

सभी परिस्थितियों में और हमेशा उसे याद रखो।
२० अप्रैल १९३५

क्या आपके विचार से मनुष्यों के बीच पवित्र प्रेम संभव है?

मुझे मनुष्यों के बीच **पवित्र प्रेम पर** बहुत विश्वास नहीं है।
२१ अप्रैल १९३५

''आध्यात्मिक चेतना'' का क्या मतलब है?

व्यापक रूप से, यह वह चेतना है जो भगवान् की ओर मुड़ी हो।
२२ अप्रैल १९३५

मेरी समझ में नहीं आता कि मनुष्य दूसरी अपूर्ण सत्ताओं से सहायता क्यों चाहते हैं?

वे उन्हें ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं, क्योंकि वे उनके अधिक निकट होते हैं।
२३ अप्रैल १९३५

मेरी पिछली कई रातें बहुत अशांति में बीतीं। जब मैं सुबह उठता हूं तो थकान महसूस करता हूं। ऐसा कबतक चलता रहेगा?

क्षुब्धता और अधैर्य निश्चित रूप से इस बुरे समय को जल्दी खत्म करने में सहायता नहीं देंगे। इसके विपरीत अगर तुम थोड़ी-सी आंतरिक अचंचलता बनाये रख सको तो तुम अपनी समस्याओं से ज्यादा जल्दी निकल जाओगे। केवल अचंचलता की अवस्था में ही तुम अपनी चैत्य चेतना के संपर्क में आ सकते हो।

क्या मेरा जीवन जैसा अभी है हमेशा वैसा ही बना रहेगा?

मैं आशा करती हूं कि नहीं! लेकिन अगर तुम अपने अंदर कुछ अधिक शांत रह सको तो तुम्हारी मुश्किलें ज्यादा जल्दी खत्म हो जायेंगी।
२४ अप्रैल १९३५

अब मैं अपनी संपूर्ण अंतरात्मा के साथ आपका बालक बनना चाहता हूं।

तुम मेरे ही बालक हो; तुम्हें केवल इसके बारे में सचेतन होना होगा।
२५ अप्रैल १९३५

सत्य के प्रति मनुष्यों में उचित वृत्ति कब आयेगी? कब वे तुच्छ संघर्षों में अपनी ऊर्जा नष्ट करना और यूं मारे-मारे फिरना बंद करेंगे? भला वे समझते क्यों नहीं?

क्योंकि वे अबतक मानसिक रूप से अपरिपक्व हैं।
३० अप्रैल १९३५

मैं अबतक दूसरों के प्रति अपने समस्त आकर्षणों से पिंड नहीं छुड़ा पाया हूं। कृपया बतलाइये कि यह कैसे करूं?

आकर्षण प्रायः सहज ही हो जाते हैं और बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होते। केवल तुम्हें इस बात से सावधान रहना होगा कि ये आसक्ति न बन जायें।

व्यक्ति योग तभी शुरू करता है जब उसने अपनी अंतरात्मा को पा लिया हो।

चीजें ऐसी कटी-छंटी नहीं हैं—हो सकता है तुम अपनी सत्ता के एक भाग में योग करना शुरू कर दो जब कि सत्ता के दूसरे भाग फिर भी रूपांतरित होने से इंकार करें।
२ मई १९३५

आप कहती हैं कि जब मनुष्य एक-दूसरे के साथ संपर्क में आते हैं तो सामान्य चेतना में गिर जाते हैं। अतः मुझे अपनी केंद्रीय चेतना में बने रहने के लिये क्या करना चाहिये?

भागवत उपस्थिति को कभी न भूलो।
४ मई १९३५

'प' का कहना है कि आप उसकी अवस्था के अनुसार बदलती हैं।

नहीं, मैं मनुष्यों की अवस्था के अनुसार उनके प्रति नहीं बदलती। मेरे बारे में उनकी धारणा ही उस क्षण की वृत्ति के अनुसार बदलती रहती है।
४ मई १९३५

मैं अपनी चेतना की वर्तमान अवस्था के बारे में जानना चाहूंगा, क्योंकि मैं अनुभव कर रहा हूं कि मेरे अंदर सब कुछ शांत है।

शांत रहना अच्छा है। इस अवस्था के बारे में बोलकर, शांति को बिगाड़ देने का खतरा न मोल लो।
४ मई १९३५

निःसंदेह सामान्य रूप से, आप हमेशा हमारे साथ हैं, लेकिन मैं आपकी उपस्थिति के बारे में सचेतन होना चाहता हूं। अगर आप मेरे साथ हों तो मैं विद्रोही नहीं होऊंगा और इस अंधेरे विक्षोभ के बावजूद आपके प्रेम और आपकी शांति का अनुभव करूंगा।

कामना और विद्रोह तुम्हारे प्राण को उपस्थिति का अनुभव करने से रोक रहे हैं, लेकिन यह तथ्य कि तुम इस उपस्थिति का अनुभव नहीं कर रहे, इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वह उपस्थित नहीं है।
८ मई १९३५

शायद सहायता करने का मेरा तरीका सचमुच अच्छा नहीं है।

मेरे ख्याल से यह बुरा भी नहीं है—लेकिन निःसंदेह यह केवल तुम्हारी अपनी चेतना के अनुपात में है।

मैं यह जानना चाहूंगा कि जब हमें कोई अच्छी अनुभूति हो तो किसी बाहरी शक्ति को अंदर आने से कैसे रोका जाये?

हर बार जब हमें कोई अच्छी अनुभूति होती है तो हमेशा कोई अवांछनीय बाहरी शक्ति हमारे अंदर नहीं घुस आती। इसके विपरीत—अच्छी अनुभूति को हमें बल

देना चाहिये कि जब कोई बाहरी शक्ति अंदर आने की कोशिश करे तो वह उसे निकाल बाहर करे।
१० मई १९३५

मेरी समझ में नहीं आता कि झूठ बोलकर क्या मिलता है।

निश्चित रूप से झूठ बोलकर कोई लाभ नहीं होता, इसके विपरीत, चेतना धुंधली हो जाती है।
१२ मई १९३५

मैं कहीं अतिमानव, आध्यात्मिक या भागवत जीवन नहीं देख पाता, और भागवत जीवन के बिना, मेरे लिये सब कुछ अर्थहीन है।

अगर तुम्हारी चेतना अतिमानवीय हो, भागवत हो या भले आध्यात्मिक हो, तब तुम उसी चेतना को हर जगह देखोगे।
१३ मई १९३५

हे मां, मैं कुछ भी समझना या जानना नहीं चाहता। बस आप मुझे अपना बना लीजिये, पूरी तरह से अपना।

केवल आंतरिक शांति में ही तुम्हारा उत्सर्ग पूर्ण हो सकता है।
१३ मई १९३५

तो, फिलहाल, क्या मैं साधना के बारे में सोचना बंद कर सकता हूं? आंतरिक शांति को पाने का मुझे और कोई रास्ता नहीं सूझ रहा। हृदय के उद्घाटन के लिये मैं अपनी अभीप्सा को जारी रख रहा हूं। लेकिन मैं देख रहा हूं कि चैत्य चेतना को पाना इतना आसान नहीं है—इसके लिये धैर्यपूर्ण एकाग्रता की आवश्यकता होती है।

निश्चित रूप से साधना आंतरिक शांति के रास्ते में आड़े नहीं आती—इसके विपरीत,

साधना पूरी तरह से इस आंतरिक शांति पर आधारित है, जो किसी भी तरह की प्रगति के लिये अनिवार्य शर्त है। चैत्य चेतना के साथ संपर्क में आने के लिये निश्चित रूप से धैर्यपूर्ण एकाग्रता की आवश्यकता होती है।
१४ मई १९३५

आपकी इच्छा के अनुसार, मैं 'य' को फ्रेंच पढ़ाऊंगा। इसके लिये मैं उसके यहां जाऊंगा। लेकिन मैं यह जानना चाहूंगा कि उसे मेरे यहां क्यों नहीं आना चाहिये ?

सबसे पहले सामान्य नियम के तौर पर, अगर स्त्रियां पुरुषों के कमरों में न जायें तो ज्यादा अच्छा है। इस विशेष मामले में, अगर वह तुम्हारे कमरे में आये तो, मुझे भय है, वह अपने पीछे एक ऐसा वातावरण छोड़ जायेगी जो तुम्हारे मन की शांति के लिये बहुत विक्षोभ पैदा कर सकता है।
१५ मई १९३५

मेरी समझ में नहीं आता कि अंधेरा बहुधा क्यों आता है और इतनी देर तक क्यों बना रहता है ? क्या मैं पहले से ज्यादा खराब हो गया हूं ?

नहीं, तुम ज्यादा सचेतन हो गये हो। पहले इससे भी ज्यादा अंधेरा था, लेकिन तुम्हें इसके बारे में पता नहीं था। तुम उसे अंधेरे के रूप में नहीं देखते थे।

मेरे अंदर कोई शांति, कोई प्रेम, काम करने के लिये कोई ऊर्जा नहीं है। इस समय मैं किस अवस्था से गुजर रहा हूं ?

एक परिवर्तन-काल से जिसमें तुम अधिक सचेतन बन गये हो, लेकिन अबतक उसे नियंत्रित नहीं कर पाये हो।

यह अंधेरा किस भाग में है और वह वहां कबतक बना रहेगा ?

विशेष रूप से भौतिक चेतना में है—तबतक बना रहेगा जबतक भौतिक प्रबुद्ध न हो जाये।
१७ मई १९३५

अतः मुझे भौतिक, साथ-साथ प्राण को भी—जो मेरे ख्याल से अंधकारमय और धुंधला है—प्रदीप्त करने के लिये क्या करना चाहिये ?

अंधकार के बजाय हमेशा प्रकाश को चुनो।
१८ मई १९३५

अंधकार, अंधकार, भाग जाओ ! हे मां, क्या तुम यहां नहीं हो ?

मैं यहीं हूं और किसी भी तरह के अंधकार को विलीन करने के लिये मैं तुम्हारे ऊपर समस्त आवश्यक प्रकाश को एकाग्र कर रही हूं। उसे ग्रहण करना तुम्हारे हाथ में है।
१८ मई १९३५

तब मुझे कौन-सा पथ अपनाना चाहिये और प्रयास के लिये कौन-सा रास्ता उचित और सच है ?

वही करो जो मैंने तुम्हें कल समझाया था—नियमित और व्यवस्थित रूप से पढ़ाई करके अपने मस्तिष्क को काम करने दो; तब काफी काम कर चुकने के बाद उन घंटों में, जब तुम पढ़ाई नहीं कर रहे, आराम कर सकोगे और तुम्हारे लिये अपने हृदय की गहराइयों में एकाग्र होना और वहां चैत्य उत्स को ढूंढ़ निकालना संभव होगा। इसके साथ तुम कृतज्ञता और सच्ची प्रसन्नता दोनों के बारे में सचेतन बन जाओगे।
२३ मई १९३५

अपनी बाधाओं और अवसादों के बावजूद, मैं अपनी पढ़ाई में प्रगति करने का भरसक प्रयास करूंगा। लेकिन यह केवल आपकी शक्ति की सतत सहायता से ही संभव होगा।

मेरी शक्ति और सहायता हमेशा तुम्हारे साथ हैं और जैसे-जैसे तुम पढ़ते हो मेरी चेतना तुम्हें प्रबुद्ध बनाती जाती है।

'प' ने मुझसे कहा कि प्रणाम के बाद उसने गहरे अवसाद का अनुभव किया और वह बुरी तरह रोयी। वह इस गतिविधि का कारण जानना चाहती है।

वह मेरे पास किसी कामना के साथ आयी होगी, और उसकी कामना ने यह अनुभव करने पर कि वह संतुष्ट न होगी, उसे दुःखी और अवसन्न बना दिया। प्रायः यही चीज तुम्हारे साथ भी होती है।
२३ मई १९३५

अब मैं समझी कि मेरे भगा देने के बाद भी अंधकार हमेशा तुम्हारे पास वापिस क्यों आ जाता है। इसका कारण यह है कि तुम्हारे अंदर अबतक कृतज्ञता का भाव नहीं फूटा है।
२३ मई १९३५

मेरे ख्याल से मेरे अंदर का कोई तत्त्व भागवत कृपा पर विश्वास नहीं करता, यही चीज कृतज्ञता को आने से रोकती है।

स्पष्ट रूप से।

पहले-पहल मैं आपके प्रति कितने अधिक प्रेम का अनुभव करता था, लेकिन अब मेरा प्रेम अधिक स्वार्थी बन गया है।

हां, यही बात है; तुम अपने देने में मोल-तोल करने लगे और इसने स्रोत को सुखा दिया।

मैंने कभी आपसे सच्चा प्रेम करना नहीं सीखा। हे मां, मुझे क्या करना चाहिये ?

बहरहाल, अगर तुम यह निश्चय कर लो कि तुम जो कुछ दोगे उसके बदले में कुछ न मांगोगे तो तुम जल्दी ही प्रेम के अतुलनीय आनंद को पा लोगे।
२४ मई १९३५

स्वार्थी प्रेम के साथ आपके करीब रहना संभव है क्या ?

जबतक प्रकृति पूरी तरह रूपांतरित न हो जाये, प्रेम हमेशा मिला-जुला रहता

है—अच्छा और बुरा पास-पास रहते हैं। अतः जबतक रूपांतर सिद्ध न हो जाये तबतक उन सबमें हमेशा स्वार्थ का घालमेल होगा जो मेरे पास आते हैं।

मैं अपनी समस्त गलत क्रियाओं के बारे में अभिज्ञ हूं, लेकिन दुर्भाग्यवश मैं उन्हें वश में नहीं कर पा रहा। यही चीज मुझे दुःखी बनाती है।

चिंता मत करो—विश्वास रखो, विश्वास की कमी ही तुम्हारी चेतना पर पर्दा डालती है।

हे मां, मुझे अपने प्रेम को शुद्ध और चैत्य बनाना सिखाइये।

अपने बारे में मत सोचो।
२५ मई १९३५

वर दीजिये कि मैं नीरव हो जाऊं, एकांत में चला जाऊं।

अपने मन में नीरव बनो, अपनी चैत्य सत्ता के एकांत में प्रवेश करो और तुम मुझे वहां पाओगे।
२७ मई १९३५

आप मुझसे नीरव रहने और अपनी चैत्य सत्ता के एकांत में जाने के लिये कहती हैं, लेकिन मैं यह कैसे कर सकता हूं? केवल आप ही मुझे उस अवस्था में ले जा सकती हैं।

यह एकदम से तामसिक उत्तर है। मेरी चेतना हमेशा काम में लगी रहती है, लेकिन अपनी तरफ से तुम्हें **अपनी इच्छा-शक्ति लगानी होगी और प्रयास करना होगा**।
२८ मई १९३५

मैं अनुभव करता हूं कि एकांत में जाना आवश्यक है—मैं केवल अपनी बाहरी सत्ता में रह रहा हूं।

निश्चित रूप से अधिकांश समय तुम अपने मन, प्राण और भौतिक में रहते हो।

थोड़ी-सी एकाग्रता तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचायेगी, लेकिन तुम्हें चीजों में अति नहीं करनी चाहिये।

मुझे यह सिखाइये कि आपको पाने के लिये किस तरह प्रयास करूं?

तुम्हें अपनी इच्छा-शक्ति लगानी होगी।
२८ मई १९३५

मैं अनुभव करता हूं कि एकांत में मैं अधिक खुला हुआ और ग्रहणशील रह सकता हूं।

अगर एकांत से तुम्हारा मतलब यह है कि लोगों से, अनिवार्य रूप से जितना जरूरी हो उससे अधिक न मिलो और उनसे तबतक न बोलो जबतक कि एकदम से अपरिहार्य न हो, तो हम सहमत हैं।
३० मई १९३५

मेरे अंदर से यह समस्त दुःख-दर्द निकाल दीजिये और मुझे अज्ञान और मिथ्यात्व से ऊपर उठाइये, हे मां, क्या बहुत ज्यादा समय नहीं बीत गया है?

मेरे प्यारे बच्चे, मैं तुम्हें इस बेतुके दुःख से बाहर निकालने में सहायता करने की बहुत इच्छुक हूं, लेकिन मुझे भय है कि यह केवल निष्फल कामनाओं से आता है—इस मामले में तुम्हें पहले उन कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ना होगा। लेकिन तुम इस बात से निश्चित हो सकते हो कि मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ होती है।
३० मई १९३५

मेरा ख्याल है कि मुझे भौतिक रूप से आपसे तबतक कुछ दूर रहना चाहिये जबतक मेरे अंदर कोई मांग बची है।

यह पूरी तरह से मिथ्या और विरोधी सुझाव है जिसे तुम्हें तुरंत दूर हटा देना चाहिये।

बाहरी प्रकृति बहुत कठोर, बहुत स्वार्थी है। इस तरह के जीवन का अंत कब होगा?

जब तुम कुछ अधिक शांत रहने और अपने मन और प्राण में धीर रहने का निश्चय कर लोगे।

१ जून १९३५

मैं एकांत को बहुत अच्छा और लाभकारी पाता हूं।

हां, यह सबसे अच्छी चीज है।

२ जून १९३५

इस जगत् में कहीं भी मैं नीरव और शांत जीवन नहीं पा सकता। फिर भी मेरी सत्ता का एक भाग जगत् के क्रम-विकास में मजा लेता है।

निश्चित रूप से तुम्हारी सत्ता का एक भाग विश्व के चैत्य जीवन के साथ समस्वर है।

४ जून १९३५

''विश्व के चैत्य जीवन'' से आपका क्या मतलब है?

जिस तरह मानव सत्ताओं में चैत्य जीवन होता है ठीक उसी तरह पृथ्वी और निस्संदेह दूसरे जगतों में भी चैत्य जीवन होता है।

तब पृथ्वी पर जीवन का क्या लक्ष्य है?

भगवान् के प्रति सचेतन प्रगति करना।

५ जून १९३५

मां, मेरी चेतना को अपनी तरफ मोड़ लो।

मेरे प्रेम पर कभी शंका मत करो, तब एकदम स्वाभाविक रूप से तुम मेरी तरफ मुड़ जाओगे।

१० जून १९३५

अगर मुझे चैत्य चेतना प्राप्त हो जाये तो ये सभी कठिनाइयां न रहेंगी।

निश्चित रूपसे, चैत्य चेतना में ऐसी कोई कठिनाइयां नहीं होतीं; उसे मेरी उपस्थिति और मेरे प्रेम की सतत अनुभूति होती है।
१० जून १९३५

कल मैंने प्रकाश और हर्ष में लौटने के लिये बहुत प्रयास किया, लेकिन मैं असफल रहा।

यह बहुत अच्छा है कि तुमने प्रयास किया, लेकिन तुम्हें इतनी जल्दी हतोत्साह नहीं होना चाहिये मात्र इसलिये कि तुम्हें सफलता तुरंत नहीं मिल रही। इसके विपरीत, तुम्हें अपने प्रयास में तबतक लगे रहना चाहिये जबतक तुम सफल न हो जाओ।

मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ होगी।
११ जून १९३५

लेकिन मैं इस चैत्य चेतना को कैसे पा सकता हूं?

अभीप्सा, प्रार्थना और एकाग्रता द्वारा।

शायद मेरी अभीप्सा पर्याप्त तीव्र नहीं है?

सबसे बढ़कर, यह **स्थायी** नहीं है।

कृपया मुझे बताइये कि मैं अपने प्रयास में तुरंत सफल क्यों नहीं होता?

क्योंकि बाहरी अज्ञान बहुत हठी है और सतत प्रयास के द्वारा ही वह झुकेगा।

मेरे अंदर आपकी उपस्थिति मुझे दुराचरण करने से रोकती क्यों नहीं?

क्योंकि बाहरी सत्ता—जो दुराचरण करती है—वह या तो उस उपस्थिति को जानती नहीं या उसे जानने से इंकार करती है।

मैं अपने पूरे हृदय के साथ चैत्य चेतना पाना चाहता हूं; मैं इसके लिये कोई भी कीमत चुकाने के लिये तैयार हूं।

एकमात्र कीमत जो चुकानी है वह है **एक आग्रही और दृढ़ निश्चयी संकल्प-शक्ति।**
११ जून १९३५

हमारे योग में, पशुओं के प्रति हमें कैसी वृत्ति अपनानी चाहिये ?

सच्ची वृत्ति केवल तभी आ सकती है जब तुमने भागवत एकात्मता की चेतना को पा लिया हो; तबतक के लिये हमेशा यही अच्छा होता है कि पशुओं के साथ सम्मान, प्रेम और करुणा के साथ व्यवहार किया जाये।
११ जून १९३५

लेकिन क्या हमें कीड़ों को मारना नहीं चाहिये ?

निस्संदेह।
१२ जून १९३५

अंधकार मेरे अंदर ही है या यह बाहर से आता है ?

जड़-भौतिक चीजों में—बाहर और अंदर—हर जगह अंधकार है।
१२ जून १९३५

जब दुःख-दर्द सिर पर सवार हो जाये तो हम क्या कर सकते हैं ?

एक सुंदर फूल को निहारो।
१३ जून १९३५

लेकिन जब आदमी बहुत दुःख-दर्द में हो तो सुंदर फूल भी उबा देता है—अगर मैं गलत नहीं कह रहा।

यह उस प्राणिक भाग के प्रति—जो दुःख झेल रहा है—पूरी तरह से दासता का चिह्न

होगा। तुम्हें पीछे हटकर खड़ा रहना और अपने-आपको निम्न, बाहरी गतिविधियों से अलग करना सीखना होगा।
१४ जून १९३५

मेरे ख्याल से दूसरों के दुःख-दर्द को सह न पाना और दुःख-दर्द झेलनेवालों से कतराना एक कमजोरी है।

अगर तुम्हारे पास उन्हें आराम पहुंचाने के लिये न मनोवैज्ञानिक साधन हैं न भौतिक तो मुझे इसमें कोई तुक नहीं दीखता कि तुम उसीके बारे में सोचते रहो।
१६ जून १९३५

वह की वही गलतियां हमेशा मुझे आपसे अलग करती हैं और मुझे एकांत की शरण लेनी पड़ती है।

तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम अवसाद में डूबे बिना यह कर सकते हो या नहीं, वह तो बकबक करने से अधिक बुरा होगा।
१८ जून १९३५

वही आग मुझे चारों तरफ से बरबाद किये जा रही है।

तुम्हें उसे बुझाना होगा अगर वह सचमुच तुम्हें **बरबाद** कर रही हो, या अगर वह तुम्हें शुद्ध कर सके तो उसे उपयोग में लाना होगा।
२० जून १९३५

मेरे अंदर एक आग जल रही है। यह भीषण है। यह मेरी प्राणिक ऊर्जा को सोख लेती है। मुझे लगता है कि कोई मुझे निगले जा रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं।

ये सारी चीजें विरोधी सुझाव हैं जिन्हें छोड़ना होगा। क्या तुम्हें बुखार है ? अगर है तो किसी चिकित्सक के पास जाकर इलाज कराओ। लेकिन अगर तुम्हें बुखार नहीं है तो आग का यह मामला गलत कल्पना है जिसे तुरंत छोड़ देना चाहिये।

एक पवित्र आग है जो हृदय में प्रज्वलित होती और सारी सत्ता को घेरे रहती है; यह 'अग्नि' है जो सब कुछ प्रकाशित और शुद्ध करती है। हर बार जब तुम मुझसे कुछ प्रगति की मांग करते हो तो मैं तुम्हारे अंदर इसी अग्नि को प्रज्वलित करती हूं; लेकिन यह मिथ्यात्व और अंधकार के सिवा और किसी चीज को नष्ट नहीं करती।
२० जून १९३५

आप कहती हैं कि आप मेरे अंदर उस अग्नि को प्रज्वलित करती हैं—फिर मिथ्यात्व और अंधकार अभीतक बने क्यों हैं?

सर्वांगीण शुद्धि एक लंबा, धीमा और श्रमसाध्य कार्य है।
२१ जून १९३५

क्या नरक के जैसी कोई चीज है?

हां, मनुष्य के विचार से बने कई नरक हैं जिनका अस्तित्व प्राण-जगत् के अमुक क्षेत्रों में है।
२१ जून १९३५

क्या यह सच है कि भगवान् ही ने हमें अज्ञानी और अचेतन बनाया?

यह बकवास है।

मैं निश्चल-नीरवता के बारे में कुछ जानना चाहूंगा; क्या यह निम्न प्रकृति पर एकाग्र होने की अपेक्षा अधिक लाभदायक है?

निम्न प्रकृति पर एकाग्र होना **कभी** अच्छा नहीं है; तुम्हें उस चीज पर एकाग्र होना चाहिये जिसे तुम विकसित करना चाहते हो, उसपर नहीं जिसे तुम नष्ट करना चाहते हो।

मेरे ख्याल से व्यक्ति को बाहरी रूप से भी शांत और चुप रहना चाहिये।

शांत, निश्चित रूप से; चुप रहना हमेशा संभव नहीं होता।
२३ जून १९३५

लेकिन हम अज्ञानी और अचेतन कैसे हो गये ?

मेरे ख्याल से "हम" से तुम्हारा मतलब मनुष्यों से है। मनुष्य अज्ञानी और अंधकारमय बने नहीं। वे हमेशा से वैसे ही थे, क्योंकि मनुष्य के आने से बहुत पहले जड़ भौतिक प्रकृति अचेतन और अंधकारमय थी।

क्या निश्चल-नीरवता शुद्धि और रूपांतर के लिये समस्त आवश्यक शक्ति ला सकती है ?

यह ठीक लाना नहीं है, लेकिन निश्चल-नीरवता में हम इसे ग्रहण कर सकते हैं।
२४ जून १९३५

क्या हम मृत्यु के बाद उन यातनाओं को भोगते हैं ?

हां, अगर तुम उनमें विश्वास करो।
२४ जून १९३५

"जब हम सुख-भोगों से परे चले जायेंगे तभी हमें आनंद प्राप्त होगा। कामना सहायक थी, कामना बाधक है।" (श्रीअरविंद 'विचार और सूत्र' के प्रसंग से)

क्या यह आनंद कामना से मिलता है ?

नहीं। कामना केवल क्रम-विकास के आरंभ में चेतना को उसकी जड़ता से जगाने के लिये उपयोगी थी, लेकिन कामना तुम्हें आनंदतक नहीं पहुंचा सकती—केवल आत्मदान ही यह कर सकता है।
२४ जून १९३५

मुझे यह बताइये कि मैं आपसे प्रेम क्यों करता हूं ?

सभी चैत्य सत्ताओं की तरह, यह तुम्हारी चैत्य सत्ता है जो मुझसे प्रेम करती है।
२५ जून १९३५

हर एक के अंदर चैत्य सत्ता होती है, लेकिन सब आपसे प्रेम नहीं करते।

या तो वे अपनी चैत्य चेतना के बारे में सचेतन नहीं हैं या वे मुझे जानते नहीं हैं।

क्या अब मैंने अपने प्रेम के साथ सौदा करना छोड़ दिया ?

चैत्य प्रेम कभी सौदेबाजी नहीं करता—लेकिन प्राण हमेशा सभी परिस्थितियों में अपने लिये कुछ-न-कुछ लाभ पाने की कोशिश करता है।

केवल मेरी चैत्य सत्ता ही आपसे प्रेम करती है क्या ?

जिस हदतक मन, प्राण और शरीर चैत्य सत्ता के वश में हों वे भी मुझसे प्रेम करते हैं।
२६ जून १९३५

"जब हम वैयक्तीकरण के परे चले जायेंगे तभी हम सच्चे व्यक्ति बनेंगे। अहं सहायक था, अहं बाधक है।" (श्रीअरविंद—'विचार और सूत्र' के प्रसंग से)

अहं तबतक सहायक है जबतक भौतिक व्यक्तित्व को गढ़ने में उसकी आवश्यकता हो, लेकिन एक बार उसने आकार ले लिया तो अहं को विलीन हो जाना चाहिये।
२६ जून १९३५

मुझे कैसी वृत्ति अपनानी चाहिये ताकि कोई भी चीज मुझे नुकसान न पहुंचा सके ?

पूर्ण अनासक्ति, समानता, निस्पृहता।

यह बताइये कि मैं महत्त्वाकांक्षा के खतरे से कैसे बचूं, जो अबतक बना हुआ है, हालांकि मैं सत्य को जानता हूं।

उसकी क्षणभंगुरता की असारता और खोखले संतोषों को देखना सीखकर।

चूंकि पूर्वजन्म में मैंने रूपांतर पाये बिना प्रयास किया, तो मेरा उसे अपने इस जीवन में पा लेने का क्या प्रमाण है ?

क्योंकि तुम्हारे पिछले जन्म में वह समय नहीं आया था जब सर्वांगीण रूपांतर संभव होता।

२९ जून १९३५

"दूसरे मनुष्यों की तरह, पूर्णता-प्राप्त मनुष्य अब नये शरीरों में आत्म शुद्धि के लिये बाधित न थे।" 'नये शरीरों में आत्मशुद्धि' का अर्थ क्या है?

मनुष्य को जगत् में रहते हुए अपने भौतिक जीवन में ही अपने-आपको शुद्ध करने और आध्यात्मिक विकास करने का सुअवसर मिलता है।

१ जुलाई १९३५

"जब हम मानवता से परे चले जायेंगे, तभी मानव बनेंगे। पशु सहायक था, पशु ही बाधक है।" (श्रीअरविंद—'विचार और सूत्र' के प्रसंग से)

मानवता प्राप्त करने के लिये पशु सहायक है, लेकिन बाद में यही बाधक बन जाता है।

मानवजाति अपनी वर्तमान अवस्था में अब भी पशु के स्तर पर है; इसलिये, भगवान् के बारे में सचेतन बन सकने के लिये, सच्चा मनुष्य बनने के लिये, हमें इस सामान्य मानव स्तर से परे जाना होगा।

१ जुलाई १९३५

कुछ रोज पहले 'क्ष' ने मुझे प्राणिक सत्ताओं और भूत-प्रेतों की कुछ कहानियां सुनायी थीं। तबसे मुझे अंधेरे में डर लगता है।

तुम भला ऐसी कहानियां सुनते क्यों हो? ये बड़ी बेहूदा होती हैं। बहुत बार भूत-प्रेत केवल मनुष्यों की कल्पना होते हैं। रही बात प्राणिक सत्ताओं की, अगर हम उनसे भय नहीं खायें तो वे हमें कोई हानि नहीं पहुंचा सकतीं। और जब भागवत सुरक्षा साथ हो तो तुम्हें किस बात का भय? किसी का नहीं।

मुझे प्रेम और शांति कहीं नहीं मिल रहे।

प्रेम और शांति ने तुम्हें नहीं छोड़ा; तुम्हीं अब उन्हें नहीं देखते। निस्संदेह यह फिर से

वही शक्ति है—जिसका तुमने जिक्र किया—जो तुम्हें अंधा बनाने की कोशिश में है।
३ जुलाई १९३५

कौन-सी शक्ति मुझे अंधा बनाने की कोशिश में है और उसे दूर भगाने के लिये मुझे क्या करना चाहिये ?

विरोधी इच्छा जो सुझाव देती है—तुम्हें उसके सुझावों पर विश्वास करने से एकदम इंकार करना होगा, बस यही।
४ जुलाई १९३५

आपने लिखा कि विरोधी इच्छा सुझाव भेज रही है, लेकिन मैं इससे अभिज्ञ नहीं हूं। कृपया आप मुझे यह समझायेंगी ?

तुम भला यह कैसे कह सकते हो कि उसके बारे में अभिज्ञ नहीं हो जब कि तुम स्वयं लिखते हो : "लेकिन बहुधा कोई मुझे अंधा बना देता है और उसके बाद मैं आपका प्रकाश नहीं देख पाता।" जिसे तुम "कोई" कहते हो उसे मैं "विरोधी सुझाव" कहती हूं।"
६ जुलाई १९३५

मैं केवल इन सुझावों का परिणाम देखता हूं—वे कैसे आते हैं यह नहीं। मैं यह जानना चाहूंगा कि विरोधी शक्ति कैसे काम करती है।

वह एक मानसिक रचना बनाती है जिसका उस व्यक्ति के मन के साथ कुछ सादृश्य होता है जिसपर प्रभाव डालना है। यह रचना उस व्यक्ति के मानसिक वातावरण में बनी रहती है और जरा-सा अवसर पाते ही चुपचाप अंदर खिसक आती है। अगर व्यक्ति पर्याप्त सचेतन और चौकन्ना न हो तो वह उसके बारे में तभी अभिज्ञ होता है जब वह उसके मस्तिष्क में जा चुकी होती है और फिर वह रचना को अपना विचार मान लेने की भूल करता है।
७ जुलाई १९३५

मेरे ख्याल से पिछले दो दिनों से आश्रम के सामान्य वातावरण में कुछ

असामान्य था। प्रयास, अभीप्सा और शांति के बावजूद मेरा अवसाद बना हुआ है।

मेरे ख्याल से चीजें ऐसी नहीं है जैसा कि तुम कह रहे हो, बहरहाल, जहांतक तुम्हारा संबंध है, सबसे अच्छी बात है कि चिंता मत करो और तबतक शांति के साथ अभीप्सा करते जाओ जबतक तुम्हारी कठिनाइयां दूर न हो जायें।

मेरे ख्याल से कोई महान् शक्ति उतरनेवाली है और यह सब केवल प्रतिरोध है।

हमेशा प्रतिरोध ही अस्तव्यस्तता पैदा करता है।
८ जुलाई १९३५

मुझे अबतक ऐसा महसूस हो रहा है कि आश्रम का वातावरण भारी है। लेकिन ज्यादा अच्छा है कि मैं इसके बारे में सोचूं ही नहीं।

निश्चित रूप से ज्यादा अच्छा होगा कि इसपर कोई ध्यान न दिया जाये।
८ जुलाई १९३५

मेरी अवस्था इतनी शुष्क क्यों हो गयी है? क्या यह कोई परीक्षा है?

परीक्षा से तुम्हारा क्या मतलब है? निश्चित रूप से मनमाने ढंग से तुम्हारे ऊपर थोपी गयी कोई चीज नहीं है। तुम्हारी अवस्था हमेशा तुम्हारे सोचने, अनुभव करने और क्रिया करने के तरीके का स्वाभाविक परिणाम होती है।

मुझे ऐसा पूर्वाभास हो रहा है कि मेरे साथ कोई प्रतिकूल चीज होनेवाली है।

किसी बुरी चीज का पूर्वाभास निरर्थक है जब तक कि तुम उससे फायदा उठाकर बुरी चीज को दूर न भगा दो।
११ जुलाई १९३५

मुझे मालूम नहीं कि यह बुरी चीज क्या है या यह कब आयेगी। अगर मैं इसे समझ नहीं पा रहा हूं तो मुझे पता नहीं कि इसे दूर कैसे भगाऊं।

तुम बस इस विचार को त्याग सकते हो कि तुम्हारे साथ कोई बुरी चीज घटनेवाली है।

भगवान् का दास बनने का मेरा प्रयास जीवन के अंततक चलता रहेगा। योग छोड़ देने की अपेक्षा मैं मर जाना पसंद करूंगा।

योग को त्यागने का कोई प्रश्न नहीं है और मुझे पूरा विश्वास है कि तुम ऐसा नहीं करोगे, ना ही तुम्हारे मरने का कोई कारण है। तुम जियोगे और भगवान् के लिये जियोगे।
१२ जुलाई १९३५

हे मां, मैं आपको दूर, बहुत दूर अनुभव करता हूं, मैं आपको बुला रहा हूं : विरोधी शक्तियों को पार करने, अपनी निम्न प्रकृति को और जो कुछ मुझे पीड़ा दे रहा है उस सबको जीतने के लिये मुझे शक्ति दीजिये।

मुझे नहीं लगता कि चिंता करने की कोई बात है। तुम मुझसे पहले जितनी दूर थे उससे अधिक दूर नहीं हो। तुम्हारी सत्ता के वही समान भाग भागवत जीवन में हिस्सा लेने से इंकार करते हैं; पहले, तुम इनके बारे में अभिज्ञ न थे, लेकिन इसके विपरीत, अब तुम इनके बारे में अधिकाधिक सचेतन हो रहे हो और चेतना सच्ची प्रगति है—यह प्रभुता की ओर ले जानेवाला रास्ता है।
१५ जुलाई १९३५

अतः मुझे क्या करना चाहिये ताकि ये निम्न भाग भागवत जीवन में हिस्सा लें?

तुम्हें इन्हें उसी तरह प्रशिक्षित करना चाहिये जैसे बच्चे को प्रशिक्षित किया जाता है।
१६ जुलाई १९३५

प्यारी मां, मैं आपका काम करूंगा इसीलिये मैं आपके साथ हूं। जब वह पूरा हो जायेगा तो मैं आपके साथ एक हो जाऊंगा। मेरे ख्याल से यही आपकी इच्छा है।

अभी के लिये मेरी इच्छा यही है : धरती पर जो काम करना है उसे करो। बाकी बाद में देखेंगे।
१८ जुलाई १९३५

हर तरफ वातावरण अहंकार से भरा हुआ है; मेरे ख्याल से जो अहंकारी नहीं है वह हड़प कर लिया जाता है।

यह केवल उन लोगों के लिये सच है जो सामान्य चेतना में रह रहे हैं।
१८ जुलाई १९३५

भागवत वास्तविकता के बारे में किसी भी तरह की अनुभूति पाये बिना, अंतःप्रेरणात्मक चेतना में उठे बिना या अपने हृदय की गहराइयों में प्रवेश किये बिना, भागवत इच्छा को जानना क्या संभव है ?

निश्चित रूप से, अगर इन तीनों में से कम-से-कम एक भी अवस्था न हो तो तुम्हारा भ्रांति में पड़ जाने और अपनी अवचेतन इच्छा को भागवत इच्छा मान लेने का बड़ा खतरा होता है।
१९ जुलाई १९३५

"जो अपनी संपत्ति को त्याग देता है वह उससे ऊंचे स्तर पर होता है जो केवल उन्हें बढ़ाने की सोचता है।"

लेकिन अगर कोई अपनी धन-संपत्ति को त्याग दे, तो वह क्या करेगा, वह कैसे जियेगा ?

मैं इस दृष्टिकोण को भयंकर रूप से **अहंवादी** मानती हूं।

सच्चे रूप में कैसे पाया जाये यह जानने के लिये तुम्हें **सब कुछ** देना सीखना चाहिये।
२१ जुलाई १९३५

निरंतर अवसाद के कारण मेरी पढ़ाई में हर्ज हो रहा है।

मैंने तुमसे कहा है कि **पढ़ाई के द्वारा** ही तुम अवसाद पर विजय पा सकते हो।

मेरी चेतना पर पर्दा पड़ गया है। क्या मैं आपका बालक हूं ?

निश्चित रूप से तुम्हारी चैत्य सत्ता मेरा बालक है, और वह इस चीज को अच्छी तरह जानती है।
२७ जुलाई १९३५

और कितने दिन मुझे इस अंधेरी और दर्दनाक खाई में तड़पना होगा ? मैं इस बात से बहुत उदास हूं कि मैं आपका बालक नहीं बन सकता।

मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझ पा रही हूं। मैंने तुमसे यह कभी नहीं कहा कि तुम मेरे बालक नहीं बन सकते, इसके विपरीत, मैंने तुमसे यह कहा कि अपनी चैत्य सत्ता में तुम मेरे बालक हो और यह कि तुम इसके बारे में पूरी तरह से तभी सचेतन होगे जब तुम अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन हो जाओ।
२ अगस्त १९३५

मेरे कहने का मतलब यह था कि मैं इसलिये उदास हूं क्योंकि मैं आपका बालक और आपका वफादार सेवक नहीं बन पा रहा हूं जब कि इसीलिये मैं यहां हूं।

मैंने ठीक यही समझा था—और मैं फिर से दोहराती हूं कि (तुम्हारी अपनी इच्छा के सिवाय) कोई चीज तुम्हें मेरा बालक होने और मेरा वफादार सेवक होने से रोक नहीं सकती है।
२ अगस्त १९३५

अगर मैं दर्शन के दिन श्रीअरविंद के पास विषाद लिये जाऊं तो मैं उनसे भला क्या पा सकता हूं ?

निस्संदेह, तुम्हें उनके पास अचंचलता और प्रकाश में जाना चाहिये।
३ अगस्त १९३५

मैं भागवत जीवन जीना चाहता हूं; अगर यह इस जीवन में असंभव है तो निस्संदेह मैं इसे अगले जीवन में करूंगा।

दूसरे जीवनों के बारे में सोचने की बिल्कुल जरूरत नहीं है; तुम्हें इसी जीवन में भगवान् की उपलब्धि के लिये प्रयास करना चाहिये और तुम यह कर पाओगे।

लेकिन तुम्हें धीरज नहीं खोना चाहिये। तुम्हारा अधैर्य ही तुम्हारे अवसाद का कारण है।

४ अगस्त १९३५

मुझे इस दर्दनाक अंधकार से छुटकारा दिलाइये। मुझे शांति और सुख की कम-से-कम एक बूंद दे दीजिये।

तुम ऐसे व्यक्ति की तरह हो जो समुद्र में डूबा हुआ है और पानी की कमी की शिकायत कर रहा है!

६ अगस्त १९३५

अगर मैं सभी संपर्कों से पीछे हट जाऊं तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा, कम-से-कम २० अगस्त तक। या फिर मुझे थोड़ा शांत और एकाग्रचित्त रहने का दूसरा उपाय बताइये।

तुम इस या उस काम को करके ठीक नहीं होगे—उपचार अंदर से आना चाहिये।

६ अगस्त १९३५

मेरे लिये 'क्ष' के साथ टहलने जाना वांछनीय है क्या?

नहीं, यह बहुत वांछनीय नहीं है, लेकिन अगर तुम बंद कर दो और फिर अवसाद में डूब जाओ, तो यह चीज और भी अधिक अवांछनीय है।

८ अगस्त १९३५

दो दिनों से मैं सोच रहा हूं कि 'क्ष' के साथ टहलने जाना बंद कर दूं, लेकिन

कृपया आप मुझे यह बतलायें कि यह अवांछनीय क्यों है ? मेरा ख्याल है कि मैं भगवान् की इच्छा को जानता हूं लेकिन क्या यह सच है ?

मेरे ख्याल से तुम्हारी चेतना का एक भाग वास्तव में भागवत इच्छा को भली-भांति देखता है; लेकिन जब तुम इस इच्छा को सर्वांगीण रूप से कार्यान्वित करना चाहते हो तो तुम्हारा प्राण—जो अपनी कामनाओं और आवेगों में निष्फल हो जाता है—अवसाद में डूब जाता और सहयोग देने से इंकार कर देता है, यही चीज समस्त प्रगति को रोक देती है।

९ अगस्त १९३५

आज मैं उदास हूं। आज मैं कितना नीरव और एकाग्रचित्त रहना चाहता था, लेकिन हाय ! सब ढह गया।

मुझे ठीक इसी चीज का डर था जब तुमने मुझसे 'क्ष' के साथ टहलना बंद करने की बात कही।

९ अगस्त १९३५

पिछली रात 'त्र' के घर जाकर संगीत सुनना मेरे लिये अच्छा था क्या ? आज मैं कुछ परेशानी-सी महसूस कर रहा हूं।

बीती हुई चीजों के बारे में प्रश्न पूछने का कोई फायदा नहीं। अगर उसका बुरा असर था तो तुम्हें उसपर विजय पानी होगी, अगर वह अच्छा है तो तुम्हें उसे सुरक्षित रखना चाहिये।

१७ अगस्त १९३५

'प' पिछले कुछ दिनों से बीमार है। वह बीमार कैसे हुई ?

शायद यह किसी अवसाद का परिणाम हो।

'प' आपसे डरती क्यों है ? अगर हम आपसे डरें तो हम प्रगति कैसे कर सकते हैं भला ?

निश्चित रूप से डर रास्ते की बड़ी बाधा है।

यद्यपि मेरी सत्ता का एक भाग मुझसे कहता है कि दूसरों के काम के बारे में चिंता मत करो, लेकिन मेरा स्वभाव ही इस तरह का है; मेरे लिये इस चीज को बंद करना आसान नहीं है।

सहायक और परोपकारी होने में कोई हानि नहीं।
२३ अगस्त १९३५

'क्ष' उदास है। वह कहता है कि अवसाद आपकी इच्छा से आता है।

यह एकदम बकवास है। इसके विपरीत, मेरी इच्छा यह है कि कभी इन निम्न अवस्थाओं में फिर से गिरे बिना, हर एक को शांति और दृढ़ता के साथ हमेशा आगे बढ़ना चाहिये।

'प' का कहना है कि उसे ऐसा महसूस होता है मानों वह यहां जेल में हो।

मैं कभी किसी को जेल में नहीं डालती।
२४ अगस्त १९३५

'प' किस तरह की स्वतंत्रता चाहती है? उसे यहां कैदी होने का अहसास क्यों होता है?

उसका प्राण यह शिकायत कर रहा है।

हम यहां योग करने के लिये हैं या अपनी कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं के अनुसार काम करने की पूरी छूट लेने के लिये?

प्राण जिस तथाकथित स्वतंत्रता का दावा करता है वह कोई स्वतंत्रता नहीं बल्कि निम्न कामनाओं और आवेगों की दासता है।

हे मां! इस विरोधी बवंडर को कौन शांत करेगा जो लोगों को सच्चे पथ से दूर

ले जा रहा है ? हे मां, आप किस तरह इस भयंकर अंधकार, इस अज्ञान में रहना स्वीकार कर सकती हैं ?

मैं धरती पर इसलिये हूं क्योंकि भागवत कार्य धरती पर ही संपन्न करना है, किसी और कारण से नहीं।
२४ अगस्त १९३५

प्रगति करने के लिये दुःख-दर्द अनिवार्य हैं क्या ?

निश्चित रूप से नहीं।
२६ अगस्त १९३५

क्या यह सच है कि आपके लिये हर एक व्यक्ति पर काम करना आसान नहीं है—कि प्रायः हमेशा कुछ प्रतिरोध या विद्रोह होता है ?

निश्चित रूप से प्रायः सभी में प्रतिरोध और बहुतों में विद्रोह होता है।
२७ अगस्त १९३५

'प' कहती है कि उसका रास्ता स्पष्ट है, लेकिन एक कठिनाई है जिसे केवल आप ही हटा सकती हैं और कोई उसकी सहायता नहीं कर सकता। मुझे मालूम नहीं कि उसे सत्य को कैसे समझाऊं जब कि वह आपकी बात तक नहीं सुनती !

चिंता मत करो; तुमने 'प' की सहायता करने की पूरी-पूरी कोशिश की। अगर वह सुनना नहीं चाहती तो तुम कुछ नहीं कर सकते।
२९ अगस्त १९३५

पहले, बीच-बीच में, सुख, शांति और प्रेम के काल आते थे। क्या बात है कि कुछ महीनों से ऐसे काल एकदम नहीं आये ?

बच्चों में बहुधा चैत्य बहुत ऊपरी सतह पर रहता है और वह उन्हें शांत और खुश

बनाता है। जैसे-जैसे तुम बढ़ते हो, प्राण और मन विकसित हो जाते और अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं, और तब परेशानियां और अवसाद शुरू हो जाते हैं।
३० अगस्त १९३५

'प' अपने निश्चय पर अड़ी हुई है कि वह दूसरों से कोई सहायता नहीं लेगी और उसका ख्याल है कि केवल कष्टों और विद्रोह के द्वारा ही वह प्रगति करेगी। मैंने उससे यह श्रीअरविंद को लिखने के लिये कहा लेकिन उसने उत्तर दिया, "नहीं, मुझे विश्वास है कि मैं ठीक कर रही हूं।"

मैंने साधकों का पूरी तरह से पीछे हट जाना और इस तरह अपने-आपको बंद कर लेना हमेशा नापसंद किया है। यह चीज एक रुग्ण आंतरिक अवस्था को लाने में प्रवृत्त होती है।
१ सितंबर १९३५

मेरा विषाद बढ़ता चला जा रहा है। मैं जानता हूं कि अबतक यह प्राण ही है, लेकिन निश्चित रूप से वह अपने अवसाद को फैला नहीं सकेगा।

मुझे इस अवसाद का कोई उचित कारण नहीं दीखता; मुझे तो यह कोई अवास्तविक चीज मालूम होती है, एक तरह की झूठी कल्पना जिसने तुम्हें पकड़ लिया है। इस सबको तुरंत निकाल बाहर करो।
८ सितंबर १९३५

मेरी समझ में नहीं आता कि अवसाद इतनी गहराई तक कैसे उतर सकता है। मेरे ख्याल से यह वही पहलेवाली शक्ति है जिसने मुझे इस हालत में रख छोड़ा है।

हां, यह प्राण ही है जो अपने अवसाद में मजा ले रहा है।

मुझे पता नहीं कि प्राण को अवसाद में मजा लेने से कैसे रोकूं? मैं क्या कर सकता हूं? वह जो चाहता है, करता है।

तुम्हें अपनी इच्छा-शक्ति को मजबूत बनाना होगा।
९ सितंबर १९३५

आप मेरे प्राण को शांत नहीं कर सकतीं? उसे कुछ कम कठोर नहीं बना सकतीं?

उसे कितनी बार शांत किया गया है और हर बार उसने शांति को ऊब के चोगे की तरह झाड़ फेंका है।

मैं अपने प्रेम को किस तरह मजबूत बना सकता हूं ताकि वह उन कामनाओं और आवेगों को जीत सके जो मेरी प्रगति में बाधक हैं?

चैत्य चेतना पर एकाग्र होओ।

विश्वास की कमी प्राण के परिवर्तन में देर लगा रही है क्या?

हां, बिना किसी संदेह के।
१० सितंबर १९३५

मैं एक बालक की तरह निष्कपट, नमनीय, नम्र, विश्वस्त बनूं। हे मां, मैं ऐसा कब बनूंगा?

जल्दी ही, अगर ऐसा बनने की तुम्हारी इच्छा दृढ़ हो।
१० सितंबर १९३५

क्या यह सच है कि आपने केवल मुझे प्रोत्साहित करने के लिये यह लिखा कि मैं भगवान् के लिये जिऊंगा?

नहीं, मैंने यह इसलिये लिखा क्योंकि मैंने यह सोचा।

दूसरों का वातावरण अनुभव करना जरूरी है क्या?

ज्यादा अच्छा है कि उसका तबतक अनुभव न करो जबतक तुमने समस्त गलत स्पंदनों को ठीक करने की शक्ति न पा ली हो।

जिन लोगों के साथ हमारा संबंध स्थापित हो सकता है, उनकी प्रकृति को जानना जरूरी होता है क्या?

निश्चित रूप से, अगर तुम्हारा व्यक्तियों के साथ संपर्क है तो अधिक अच्छा है कि तुम्हें यह पता हो कि वे कैसे हैं।

११ सितंबर १९३५

मेरी हालत बद से बदतर होती जा रही है। मैं महसूस करता हूं कि मैं फंस गया हूं, एक कदम भी आगे बढ़ाने में असमर्थ हूं।

कभी-कभी ठीक उस समय जब तुम अपने-आपसे संतुष्ट नहीं होते, सबसे ज्यादा प्रगति कर रहे होते हो।

कृपया मुझे यह बताइये कि मेरी प्रगति रुक क्यों गयी? पहले आपकी उपस्थिति मेरे अंदर सतत बनी रहती थी। मैं कुछ नहीं समझ रहा हूं और मैं नहीं जानता कि क्या करूं।

मैं तुम्हें पहले ही समझा चुकी हूं कि शक्ति के साथ पहला संपर्क चैत्य सत्ता को चेतना पर प्रभुत्व जमाने और सत्ता पर शासन करने की शक्ति देता है। लेकिन धीरे-धीरे दूसरे भाग (मानसिक, प्राणिक और भौतिक) अपने पुराने क्रिया-कलापों पर वापिस लौट आते हैं और अच्छी अवस्था पर पर्दा पड़ जाता है। तुम्हें इसे फिर से पाने के लिये एक दृढ़ इच्छा को बनाये रखना चाहिये।

१४ सितंबर १९३५

बालक के जैसा बनने से आपका क्या मतलब है?

बालक में चैत्य जीवन मानसिक जीवन से ढका नहीं होता। क्योंकि बालक पूरी तरह से रूपायित नहीं होता इसलिये उसमें विकसित होने की बहुत अधिक क्षमता होती है और वह पर्याप्त नमनीयता के साथ प्रगति कर सकता है।

१६ सितंबर १९३५

मैं उस बालवत् पथ के बारे में जानना चाहूंगा जिसे इस योग में अपनाया जा सकता है।

बालवत् पथ है संदेहरहित विश्वास, पूर्ण निर्भरता, अबाध समर्पण का।

१७ सितंबर १९३५

आपके ख्याल से मेरे लिये बालवत् पथ को अपनाना अच्छा होगा क्या ?

बालवत् पथ हमेशा अधिक अच्छा होता है—लेकिन इतना आसान नहीं होता, क्योंकि उसे सहज रूप से और पूरी निष्कपटता के साथ अपनाना चाहिये।

१८ सितंबर १९३५

क्या यह सच है कि 'प' अब मुझपर कम विश्वास करती है ?

'प' मेरे और अपने बीच कोई मध्यस्थ नहीं चाहती और उसकी बात ठीक है।

सारी चीज मानों सपने में हो रही है जहां सभी चीजों को भविष्य में कुछ अच्छी चीज लाने के लिये ही घटित होना है।

हां, तुम्हारी बात ठीक है; यहां चीजें इसी तरह होती हैं।

२३ सितंबर १९३५

आप मेरे हृदय में होती थीं, अब आप वहां क्यों नहीं हैं ? क्योंकि मैं अंधा हूं, मैं आपको देख नहीं पाता : नीरवता, नीरवता, शांति।

हां, तुम्हारी बात ठीक है। मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में उपस्थित हूं, लेकिन तुम्हारी बाहरी चेतना में कोई चीज बहुत अधिक सक्रिय है और इतना अधिक शोर मचाती है कि तुम उस उपस्थिति के बारे में अभिज्ञ नहीं हो पाते। केवल नीरवता और मौन में ही तुम उसके बारे में अभिज्ञ हो सकते हो।

२५ सितंबर १९३५

'प' योग के बारे में मेरे विचारों को क्यों नहीं सुनना चाहती ? मैं उसकी गतिविधियों को समझना चाहता हूं।

मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि उसे भय है कि वह तुमसे प्रभावित हो सकती है और वह हमारे प्रभाव के सिवाय और किसीका प्रभाव स्वीकार करना नहीं चाहती।

२७ सितंबर १९३५

क्या कोई ऐसा पथ है जिसमें व्यक्ति को एकदम शुरू से ही प्रयास करने की जरूरत नहीं पड़ती ?

मुझे नहीं लगता; लेकिन कुछ लोग उसे बहुत ज्यादा महत्त्व दिये बिना स्वाभाविक रूप से प्रयास करते हैं।
२८ सितंबर १९३५

अंधेरा किस तरह से उठ रहा है ! इसने मेरी चेतना पर परदा डाल दिया है और मेरी समझ में नहीं आ रहा कि क्या करूं। जरूर कोई आंतरिक परिवर्तन होना चाहिये, और तबतक निश्चलता, अभीप्सा।

हां, यह ठीक है। तुम्हें आंतरिक परिवर्तन के लिये निरंतर अभीप्सा करनी चाहिये, तुम्हारे अंदर यह इच्छा होनी चाहिये कि प्रकाश तुम्हारे अंधेरे भौतिक मन में आये, और तुम्हें शांति के साथ इस अभीप्सा तथा इच्छा के परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिये।
११ अक्तूबर १९३५

मैं इच्छा और अभीप्सा के बीच के भेद को नहीं समझता, या इन दोनों को एक साथ कैसे करना चाहिये।

अगर तुम दोनों चीजें साथ-साथ नहीं कर सकते, तो उनमें से एक ही करो।
१४ अक्तूबर १९३५

मेरे प्रभु, आप मुझे कुछ नहीं लिखा करते इसलिये मैं चाहूंगा कि समय-समय पर आप भी कुछ लिखें।

माताजी का लिखना मेरे लिखने के बराबर है। कोई अंतर नहीं है।
१६ अक्तूबर १९३५ —श्रीअरविंद

मेरी समझ में नहीं आता कि बौद्धिक श्रद्धा का क्या अर्थ है। श्रद्धा बिना तर्क का विश्वास है।

यह बौद्धिक नहीं बल्कि **मानसिक** है—मानसिक सत्ता की अपनी श्रद्धा होती है और प्राणिक सत्ता और साथ-साथ भौतिक सत्ता की भी अपनी श्रद्धा हो सकती है। रही बात चैत्य सत्ता की, उसकी श्रद्धा स्वाभाविक तथा सहज होती है : श्रद्धा चैत्य सत्ता का मूल सार है।

१८ अक्तूबर १९३५

ऐसा माना जाता है कि श्रद्धा दो प्रकार की होती है : सरल, अंध श्रद्धा, जिसमें कोई तर्क-वितर्क नहीं होता और दूसरी थोड़ी बहुत समझ के साथ तर्कसंगत श्रद्धा—बौद्धिक श्रद्धा। लेकिन दूसरे प्रकार की श्रद्धा को मैं नहीं समझ पाता : कहा जाता है कि चूंकि यह एक हदतक समझ पर आधारित है इसलिये सभी परिस्थितियों में दृढ़ बनी रहती है।

श्रद्धा एक ही है, लेकिन वह सत्ता के विभिन्न हिस्सों में अभिव्यक्त होती है। मेरे ख्याल से लोग जिसे अंध श्रद्धा कहते हैं, जिसकी तुम चर्चा कर रहे हो, वह हृदय की श्रद्धा है जिसके अस्तित्व के लिये **कारणों की** आवश्यकता नहीं। लेकिन मन की भी श्रद्धा होती है जो किसी तरह के तर्क पर आधारित हो सकती है। निश्चित रूप से अविचलित श्रद्धा पाने के लिये यह आवश्यक है कि तुम्हारी सत्ता के प्रत्येक भाग में श्रद्धा हो।

१९ अक्तूबर १९३५

जो श्रद्धा सत्ता के विभिन्न अंगों में अभिव्यक्त होती है उसका स्रोत कहां है ?

श्रद्धा आध्यात्मिक सद्‌गुण की अभिव्यक्ति है।

२१ अक्तूबर १९३५

प्रभो, किसीने लिखा है कि किसी परमहंस के अनुसार, पहली अगस्त १९४३ को कलियुग समाप्त हो जायेगा तथा सत्ययुग का आरंभ हो जायेगा। क्या आपको यह बात सच लगती है ?

मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानता। इस तरह की कितनी ही भविष्यवाणियां (केवल सब अलग-अलग होती हैं) बीच-बीच में हुआ करती हैं।

२४ अक्तूबर १९३५ *—श्रीअरविंद*

परमहंस का कहना है कि पच्चीस से पचास सालों के बीच संसार दिव्य बन जायेगा और समस्त अंधकार तथा अज्ञान तितर-बितर हो जायेगा।

शास्त्र के अनुसार कलियुग का मात्र आरंभ हो रहा है और उसके कई लाख वर्ष अब भी बाकी हैं।

२४ *अक्तूबर* १९३५ —*श्रीअरविंद*

मैं महसूस कर रहा हूं कि मेरा स्वभाव अधिक जटिल, कम निष्कपट बनता जा रहा है। ऐसा क्यों है?

जैसे-जैसे मन का विकास होता है, बालक की सरल तथा शुद्ध निष्कपटता विलीन हो जाती है। उसके स्थान पर अधिक सचेतन, अधिक आध्यात्मिक निष्कपटता—चैत्य निष्कपटता—आनी चाहिये।

२१ *दिसंबर* १९३५

मैं इस चैत्य निष्कपटता को कैसे पा सकता हूं? जीवन अधिकाधिक ऊबाऊ बनता जा रहा है। निश्चित रूप से इस निष्कपटता को पाने में बहुत समय लगेगा, लेकिन भला मैं इसके बिना जी कैसे सकता हूं?

आध्यात्मिक जीवन के लिये धीरज अनिवार्य शर्तों में से एक है। तुम्हें सीखना होगा कि ग्रहण करने के लिये प्रतीक्षा कैसे की जाये।

२३ *दिसंबर* १९३५

कृपया मुझे यह बतलाइये कि मेरी चेतना एकदम से जड़-भौतिक और अर्ध-सचेतन क्षेत्र में कैसे बह गयी?

वह उसमें बह नहीं गयी—वह वहां एकदम स्वाभाविक रूप से है, जिस तरह कि सभी मानव चेतनाएं होती हैं। अपवाद तब होता है जब चेतना इस भौतिक स्तर से ऊपर उठ जाती है।

२ *जनवरी* १९३६

मेरा स्वभाव मेरे संकल्प की आज्ञा नहीं मानेगा। आप मुझसे कितनी दूर लगती हैं; मानों आप हैं ही नहीं। मैं आपसे केवल एक चीज की मांग करता हूं; शांतिपूर्ण एकांत, ताकि सब कुछ ठीक हो जाये।

मेरे प्यारे बच्चे, शांति, निश्चल-नीरवता तथा एकांत को तुम्हें अपने अंदर पाना होगा, और उस एकांत में तुम मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो जाओगे।

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

११ जनवरी १९३६

मैं अपने हृदय में एकाग्र होकर शांति, निश्चल-नीरवता और एकांत पाने की कोशिश कर रहा हूं। हे मेरी मां, कहां हो तुम ?

हमेशा तुम्हारे हृदय की गहराइयों में।

१२ जनवरी १९३६

हे मेरी मां, मेरे अंदर न शांति है न प्रेम है। मैं जानता हूं कि यह चीज मेरी अपनी भूल से हुई है। क्या मैं तुम्हें फिर से पाऊंगा, हे मेरी प्यारी मां ?

हां, अगर तुम अपने अंदर अभीप्सा की अग्नि को प्रज्वलित होने दो।

१४ जनवरी १९३६

मां, मुझे क्या करना चाहिये कि अभीप्सा की अग्नि कभी न बुझने पाये ?

हम इस अग्नि को अपनी सभी कठिनाइयों, अपनी समस्त कामनाओं, समस्त अपूर्णताओं की हवि देकर प्रज्वलित रखते हैं। हर सुबह और शाम जब तुम मेरे पास आओ तो तुम्हें मुझसे यह मांगना चाहिये कि मैं तुम्हारे हृदय में इस अग्नि को प्रज्वलित रखूं और तुम्हें मुझे इन सब चीजों को ईंधन के रूप में अर्पित कर देना चाहिये।

१५ जनवरी १९३६

मैं अनुभव करता हूं कि मेरे लिये एकांतवास करना जरूरी है ताकि अग्नि

अधिक तीव्रता के साथ प्रज्ज्वलित हो सके। कृपया मुझे एकांत में जाने दीजिये।

अग्नि को क्रिया-कलापों के बीच प्रज्ज्वलित रहना चाहिये ताकि यह तुम्हारी समस्त गतिविधियों को ठीक कर सके।

अग्नि को प्रज्ज्वलित रखना; मैं अपनी समस्त गतिविधियों को आपके अर्पण करता हूं।

जबतक तुम लौ के जलते रहने की अभीप्सा करोगे, मैं इस बात का ध्यान रखूंगी कि वह बुझने न पाये।
१७ जनवरी १९३६

मैं लौ पर बहुत एकाग्रचित्त हुआ, लेकिन दुःख की बात है—उसे प्रज्ज्वलित करने के लिये मेरी अभीप्सा काफी बलशाली न थी।

अग्नि को जलाना तुम्हारा काम नहीं। जैसा कि मैंने तुमसे कहा, मैं उसे हमेशा प्रज्ज्वलित कर रही हूं—तुम्हें उसे पाने के लिये बस अपने-आपको खोलना और अपनी सद्भावना के साथ उसकी रक्षा करना है।
२४ जनवरी १९३६

अग्नि में : सभी कामनाएं, समस्त आसक्ति, समस्त अशुद्धि, समस्त अपूर्णता ईंधन के रूप में।

हां, यह अच्छा है। इस क्रिया को निरंतर नयी शक्ति प्रदान करनी होगी।
२७ जनवरी १९३६

क्या यह सच है कि एक समय ऐसा आता है जब सत्ता के अच्छे भाग पृष्ठभूमि में चले जाते हैं और सतह पर केवल निम्नतर हिस्से रह जाते हैं? परिणामस्वरूप रह जाता है पतन का भाव तथा अच्छी अनुभूतियों की विस्मृति।

कुछ लोगों के साथ इस तरह की चीज घटती है, लेकिन यह **अनिवार्य** नहीं है और निश्चित रूप से वांछनीय भी नहीं है।

१३ फरवरी १९३६

यहां से चले जाना! यह सोचना भी असंभव है कि आपसे ज्यादा हमसे कोई प्यार कर सकता है!

तुम ठीक कहते हो, मेरे प्यारे बच्चे, जो लोग यहां खुश नहीं हैं वे कहीं भी खुश नहीं रह सकते।

७ मार्च १९३६

जब मैं आपके पास आऊं तो मेरी मनोवृत्ति कैसी होनी चाहिये?

जब तुम मेरे पास आओ तो तुम्हें शांत और खुला होना चाहिये।

११ मार्च १९३६

मैं उस अवसाद से अपने-आपको किस तरह अलग कर सकता हूं जो अंदर से आता है?

उसको कोई महत्त्व न दो।

बाधाओं और कठिनाइयों से हमें दुःख-दर्द नहीं पहुंचना चाहिये। मेरे ख्याल से हम अपने अज्ञान द्वारा दुःख-दर्द पैदा करते हैं।

निश्चित रूप से दुःख-दर्द अनिवार्य, यहांतक कि आवश्यक भी नहीं है। वास्तव में अज्ञान ही मनुष्य को दुःखी बनाता है।

कम-से-कम मुझे विश्वास है कि अगर मैं सब चीजों को शांति और धैर्य के साथ देख सकूं तो इस योग में न दुःख-दर्द होगा न कठिनाई।

हां, यह योग शांति, आनंद पर आधारित है, दुःख-दर्द पर नहीं।

१२ मार्च १९३६

मैं 'क्ष' से क्षुब्ध हो उठा क्योंकि उसके विचारों में नम्रता का इतना अभाव था।

अज्ञान में हमेशा नम्रता का अभाव होता है—मन जितना अधिक अज्ञानी होता है उतना ही मूल्यांकन करता और विद्रोह करता है।
१३ मार्च १९३६

मन को प्रबुद्ध करने के लिये हमें क्या करना चाहिये?

उसे शांत और निश्चल-नीरव बनाओ—निश्चल-नीरवता में ही वह प्रकाश को ग्रहण कर सकता है।
१४ मार्च १९३६

मेरा मन जैसा-का-वैसा ही है, हमेशा विचारों से भरा हुआ। उसने कभी निश्चल-नीरव रहना नहीं सीखा।

ठीक यही चीज है जिसे मैं मानसिक हलचल कहती हूं।
२५ मार्च १९३६

एक सपने में मैंने आपको मुझे अपने आलिंगन में भरते हुए देखा; यह मेरी कल्पना थी क्या?

आत्मा में मैं हमेशा तुम्हें छोटे बच्चे की तरह, तुम्हारी सहायता करने और रक्षा करने के लिये, बांहों में लिये रहती हूं—लेकिन तुम्हारा मतलब इसी चीज से है क्या?
२५ मार्च १९३६

आत्मा में आप मुझे बांहों में लिये रहती हैं, लेकिन आप कब मुझे सचमुच अपनी बांहों में लेंगी ताकि मैं समस्त बाहरी प्रभाव से सुरक्षित रह सकूं?

मेरे ख्याल से तुम इसकी आशा नहीं कर रहे कि मैं तुम्हें भौतिक रूप से अपनी बांहों में भरूं! अगर मुझे अपने सभी बच्चों को बांहों में भरना पड़े (आश्रम के १४० व्यक्तियों

से शुरू करके) तो मेरे शरीर को सचमुच इससे कहीं अधिक बड़ा होना होगा!

और फिर भी प्रबुद्ध चेतना के लिये मेरी उपस्थिति एकदम ठोस है।

२६ मार्च १९३६

आपकी इच्छा के प्रति समर्पण करना अधिक आसान तरीका है; यह बहुत-से घुमावों से बचाता हुआ सीधा लक्ष्य की ओर ले जाता है।

यह निश्चित है।

३१ मार्च १९३६

कृपया मुझे इस बारे में कुछ सुझाव दीजिये कि किस तरह एकाग्र हुआ जाये और आपकी कृपा पाने के लिये तैयार रहा जाये।

इस एकाग्रता की इच्छा करो और अपनी इच्छा-शक्ति को मजबूत बनाओ।

हे मां, मैं अब और इस अंधकार और अज्ञान में नहीं रहना चाहता; मुझे मुक्त कर दीजिये। मैं सामान्य चेतना से ऊपर उठना चाहता हूं।

इस अभीप्सा को बनाये रखो और तुम रास्ते में हमेशा मेरी सहायता पाओगे।

४ अप्रैल १९३६

कृपया आप मुझे यह बतायेंगी कि इन कठिनाइयों के बारे में अभिज्ञ होते हुए भी मैं इनपर विजय पाने के लिये बल क्यों नहीं पाता?

क्योंकि तुम्हारे अंदर संकल्प की अपेक्षा चेतना अधिक विकसित है।

१६ अप्रैल १९३६

आप कहती हैं कि आप 'प' और मेरे बीच के इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहतीं। लेकिन क्यों? क्या आप इन्हें महत्त्वपूर्ण नहीं मानतीं? फिर भी ये चीजें क्षुब्ध करतीं, यहांतक कि साधना में क्षति भी पहुंचा सकती हैं। कृपया मुझे एकदम से स्पष्ट उत्तर दीजिये।

चूंकि तुमने मुझसे एकदम निस्संकोच जवाब देने के लिये कहा है, अतः मैं कहूंगी कि मैं इसमें इसलिये नहीं पड़ना चाहती क्योंकि मुझे इस बात का विश्वास नहीं है कि मैं तुम्हें जो करने के लिये कहूंगी उसे दृढ़तापूर्वक करते रहने के लिये तुम्हारे अंदर बल और दृढ़ता होगी या नहीं। और आध्यात्मिक जीवन के लिये, अपने गुरु के आदेश की अवज्ञा करके क्रिया करने की अपेक्षा अज्ञान में क्रिया करना अधिक अच्छा है।
२१ अप्रैल १९३६

सच्ची निष्कपटता के जीवन से आपका क्या मतलब है?

अपनी समस्त क्रियाओं को अपनी उच्चतम अभीप्सा और पवित्रतम इच्छा के अनुरूप बनाना।
२ मई १९३६

अब मैं आपसे और भी अधिक दूर होने का अनुभव कर रहा हूं, अंधकार में खोया हुआ, तूफान से बहाये गये जहाज की भांति। इस हालत में रहना मुझे बहुत दुःखी बना देता है।

इन समस्त गलत सुझावों को झाड़ फेंको जो सच नहीं हैं और इस सारे नाटक पर विश्वास करना बंद करो जो पूरी तरह से काल्पनिक है।
७ मई १९३६

कृपया यह बताइये कि ये सुझाव मेरे अंदर कैसे आये। ये मुझे एकदम से वास्तविक लगे।

जिस तरह और सभी सुझाव आते हैं : ये मानसिक सुझाव हैं जो वातावरण में घूमते रहते हैं और ऐसे किसी भी मन को पकड़ लेते हैं जो उन्हें पाने के लिये तैयार रहता है।
७ मई १९३६

आपके ख्याल से मेरे अंदर आसक्ति का होना बहुत खतरनाक है क्या?

किसलिये खतरनाक? अगर तुम्हारा मतलब तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति से है तो उसके लिये निश्चित रूप से आसक्ति बहुत वांछनीय वस्तु नहीं मानी जाती।
८ मई १९३६

मैं यह जानना चाहता हूं कि भावात्मक आसक्ति, प्राणिक आसक्ति और "इस तरह की आसक्ति के प्रति किसी भी तरह की कोई अभिव्यक्ति नहीं" से आपका क्या मतलब है?

भावात्मक आसक्ति भावनाओं की आसक्ति है—प्राणिक आसक्ति इंद्रियों की आसक्ति है। "अभिव्यक्ति" से मेरा मतलब है: स्नेह से भरे हुए शब्दों का आदान-प्रदान या संवेदी हावभाव जैसे हाथ पकड़ना, प्यार से सहलाना इत्यादि।
१४ मई १९३६

माताजी, क्या आपको विश्वास है कि मैं आपसे जो कुछ कहता हूं वह पाखंड के बिना होगा?

मैं सचमुच आशा करती हूं कि तुम पाखंडी नहीं हो, क्योंकि आध्यात्मिक पथ पर पाखंड एक बहुत बड़ी बाधा है।
१६ मई १९३६

मैं अपने चारों तरफ बादल ही बादल देख रहा हूं जो मुझतक आपके प्रकाश को आने नहीं दे रहे। आपकी उपस्थिति का मैं दुबारा किस तरह अनुभव कर सकता हूं?

पहली शर्त है अपने मन को स्थिर और शांत रखना। स्थिरता में ही प्रकाश का अवतरण हो सकता है।
१९ मई १९३६

मुझे माफ कर दीजिये, मैं अबतक अज्ञानी हूं, मैं कुछ नहीं जानता।

मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है और साथ ही तुम्हारी अपनी कमजोरियों और

कठिनाइयों को जीतने के लिये शक्ति भी है। लेकिन तुम्हें यह जानना होगा कि उन्हें कैसे ग्रहण किया और उपयोग में लाया जाये।
२४ मई १९३६

हर रोज मैं प्रयास करता हूं, लेकिन दुर्भाग्यवश मैं प्रयास के प्रति महान् विरोध देखता हूं। महान् प्रतिक्रियाएं होती हैं।

अगर प्रतिक्रियाएं न होतीं तो प्रयास करने की कोई आवश्यकता न होती।
२८ मई १९३६

आप जैसा कहती हैं उस तरह करने के लिये मैं बहुत इच्छुक हूं, लेकिन कृपया यह बतलाइये कि निम्नतर से उच्चतर चेतना में कैसे उठा जाये।

मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूं कि पहली शर्त है अपने मन को शांत करना और साथ ही अपने प्राण को शांत करने के लिये प्रयास करना।

क्या आप चाहती हैं कि जो चीजें मुझे ऊपर उठने से रोक सकती हैं उनसे बचकर रहूं या उनके विरुद्ध संघर्ष करके उनके परे चला जाऊं?

मेरी समझ में नहीं आया कि 'परे चले जाने' से तुम्हारा क्या मतलब है। बहरहाल, ऐसी हर एक चीज से बचकर रहना चाहिये जो चेतना को नीचे ले जाये।

प्राण, अगर हम उसे उसके संतोष से वंचित कर दें तो दुःखी और असंतुष्ट वह, हर चीज को नष्ट-भ्रष्ट कर देता और चेतना को जड़ता की अवस्था में फेंक देता है। लेकिन प्राण को संतुष्ट करने से अधिक अच्छा क्या है?

योग के दृष्टिकोण से यह प्रश्न उठता तक नहीं, योग इस तरह के प्राणिक संतोष को नहीं सह सकता।
३० मई १९३६

क्या आप इसलिये गंभीर थीं क्योंकि मैंने आपसे यह बात नहीं कही कि मैं खी

के स्पर्श के आवेग के सामने झुक गया ? मुझे अपने कपट के प्रति अभिज्ञ बनाइये। आपने मुझसे स्पष्ट रूप से खुल कर बात करने का वायदा किया है अतः मेरी समझ में नहीं आ रहा कि आपने जो सुना उसके बारे में कुछ पूछा क्यों नहीं ?

निष्कपटता इस बात की मांग करती है कि मेरे प्रश्न पूछने की आवश्यकता के बिना तुम तुरंत स्वयं ही दोष स्वीकार कर लो।

चूंकि मैं अधिक असंवेदनशील बन गया हूं क्या इसलिये मैं आपकी अस्वीकृति को अधिक गहराई से अनुभव नहीं करता ? आजकल मैं बहुत अशांति नहीं अनुभव करता, मैं अपनी अवांछनीय क्रियाओं के लिये पश्चात्ताप नहीं करता। क्या यह इसलिये है कि मैं इनका आदी हो गया हूं ?

हां; उन चीजों को बार-बार करके—जिनके बारे में तुम अच्छी तरह जानते हो कि वे नहीं करनी चाहियें—तुम अपने-आपको कठोर बना लेते हो और अपनी चेतना को अधिकाधिक ढक देते हो।

मेरे ख्याल से अपने-आपको ऊपर उठाने का संकल्प अब भी बना हुआ है। धीरज ! . . .

इस बात का सबसे अधिक महत्त्व है कि इस संकल्प को दृढ़ बने रहना चाहिये और इसे विजय पानी चाहिये। यह एकदम से जरूरी है।
८ जून १९३६

कल जब मैंने यह सुना कि 'प' बीमार है तो मैं वहां जाकर उसे देखने और उसकी सहायता करने के आवेग को रोक न पाया। भगवान् से प्रेम करने की अपेक्षा किसी मनुष्य से प्रेम करना अधिक आसान क्यों है ?

मुझे नहीं लगता कि यह अधिक आसान है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है। भेद बस इतना ही है कि मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिये जिसे "प्रेम" की संज्ञा देते हैं वह प्रेम बिल्कुल नहीं होता बल्कि भावुकता, दुर्बलता, अज्ञान और विषयासक्ति का भयंकर मिश्रण होता है। यह बात स्पष्ट है कि इस तरह की संवेदना को भगवान् की ओर नहीं मोड़ा जा सकता।

ऐसा लगता है कि मुझे क्या करना चाहिये यह चेतना मेरे अंदर है; अभाव है तो उस चेतना के अनुसार क्रिया करने की शक्ति का।

तुम जो कह रहे हो वह एकदम ठीक है, लेकिन चेतना भी बहुत आंशिक है।

मुझे लगता है कि पिछले दो-तीन दिनों से मैं प्राणिक आवेगों और क्रियाओं को समझने लगा हूं और उनमें से कुछ को मैंने नियंत्रित भी किया।

पर्दा हटाने के प्रयास का निश्चित रूप से प्रभाव होगा और अगर सतत प्रयास हो तो क्रमशः चेतना जाग्रत् हो उठेगी।
१७ जून १९३६

आज मैंने सोचा : "मैं पृथ्वी पर क्यों हूं? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है?"

यह सारी बात वाहियात है जिसे तुम्हें रत्ती भर भी महत्त्व दिये बिना अपने से बहुत दूर फेंक देना चाहिये।
२२ जून १९३६

आपकी सहायता मिलने के बाद, क्या यह संभव है कि उसका उपयोग बुरी तरह से किया जाये या एकदम से किया ही न जाये?

हां, ऐसा बहुधा होता है।
२६ जून १९३६

कृपया आप मुझे समझायेंगी कि ऐसा कैसे होता है कि हम आपकी सहायता का दुरुपयोग करते हैं या फिर उसका एकदम से उपयोग ही नहीं करते?

जो बल और शक्ति मैं देती हूं मनुष्य उन्हें ग्रहण करके, उनका उपयोग भगवान् की सेवा में न करके अपनी कामनाओं की संतुष्टि के लिये करते हैं।
२ जुलाई १९३६

मैं आध्यात्मिक जीवन से, सच्ची मनोवृत्ति से कितना अधिक दूर हट गया हूं!

मानव प्रेम का यह मामला अनुपात में इतना अधिक बढ़ जाता है कि बाद में इससे अपने-आपको मुक्त करना मुश्किल हो जाता है। ऐसा क्यों है ?

निम्न चेतना की गतियों में गिरने से बचने के लिये महान् जागरूकता की आवश्यकता होती है; और उनमें से बाहर निकलने के लिये और भी महान् इच्छा-शक्ति की जरूरत होती है। अतः अपने-आपको धीरज तथा मजबूत इच्छा-शक्ति से लैस रखो।
४ जुलाई १९३६

यह बहुत कठिन है—मुझे मेरी प्राणिक गतिविधियों से अलग करने के लिये कोई चमत्कार करिये। पिछली रात मैं बहुत अशांत था: मुझे समझ नहीं आया कि क्या करूं। मुझे पता नहीं कि इस अवस्था के बीच मैं खड़ा रह पाऊंगा या नहीं। मुझे भय है कि 'प' से जबर्दस्ती तोड़े गये इस संबंध के कारण भविष्य में कोई दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रियाएं न हों।

राई से पहाड़ मत बनाओ। बाद में जब तुम्हारे निम्न प्राण में कुछ अधिक प्रकाश और चेतना प्रवेश कर लेंगे तो तुम इस सबके बारे में हंसोगे जिसे अभी तुम इतने दुःखद रूप में ले रहे हो।
६ जुलाई १९३६

'प' ने मुझे एक चिट्ठी भेजी और मैंने उसका जवाब दे दिया। लेकिन क्या आप हमारा इस तरह से पत्र-व्यवहार करना पसंद करती हैं ? क्या आप चाहती हैं कि मैं उससे एकदम से बातें करना बंद कर दूं और उसके यहां जाना अस्वीकार कर दूं ?

मुझे तुम्हारे इस बात को पूछने का कोई तुक नहीं दीखता कि मैं क्या चाहती हूं या क्या नहीं चाहती—क्योंकि मेरी इच्छा है कि तुम्हें अपनी निम्न चेतना से ऊपर उठना चाहिये और अपनी चैत्य चेतना के बारे में सचेतन होना चाहिये, ताकि तुम्हारी चैत्य चेतना तुम्हारे जीवन और तुम्हारी क्रियाओं पर शासन करे। इस समय तुम्हें अपने-आपसे पूछना चाहिये कि तुम क्या कर सकते या क्या नहीं कर सकते हो, और हर क्षण अपनी क्षमता के अनुरूप उत्तम रूप से कार्य करना चाहिये।
७ जुलाई १९३६

पिछली रात मैं पागल हो गया; मेरी चेतना गिर गयी और किसी चीज में मुझे रस नहीं रहा—न आराम, न पढ़ाई और न नींद। जो मैं कह रहा हूं वह सच है, कल्पना नहीं।

मैं इस सबको एकदम से हास्यास्पद समझती हूं और यह परिस्थितियों से बहुत बढ़-चढ़कर है।

कृपया मुझे यह बतलाइये कि अभी मैं यह सब क्यों महसूस कर रहा हूं? मैंने पहले कभी इतने उग्र आवेग का अनुभव नहीं किया।

क्योंकि तुम्हारा प्राण प्रतिकूल है। अगर मैंने प्राण से कहा होता, "तुम्हें कभी 'प' को नहीं छोड़ना चाहिये और तुम उसे कभी नहीं छोड़ सकोगे," तो उसे एक ही विचार आता : 'प' से बहुत दूर भाग जाने का!

आज मेरे सिर में दर्द है और सिर में ठंड लग रही है। क्या प्राण इस सबका कारण है?

संभवतः।

आपको विश्वास है कि 'प' से बलपूर्वक अपने-आपको हटा लेने में कोई हानि तो नहीं? भयंकर प्रतिक्रियाएं तो नहीं होंगी ना?

कृपया इस तरह से बढ़ा-चढ़ाकर मत कहो। ये प्रतिक्रियाएं केवल तभी "भयंकर" होंगी अगर तुम इन्हें ऐसा मानो। अपने मन को संतुलित रखो और देखो कि यह सब कितना बचकाना और महत्त्वहीन है, फिर ये समस्त "भयंकर" प्रतिक्रियाएं एकदम से गायब हो जायेंगी।
७ जुलाई १९३६

मेरा विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब आप मुझपर विश्वास करेंगी और यह नहीं सोचेंगी कि मैं पाखंडी हूं और चीजें चोरी-छिपे करता हूं—ऐसा दिन जब मैं आपको यह दिखलाऊंगा कि मैं सच्चा हूं।

व्यक्ति तभी पूर्ण रूप से सच्चा और निष्कपट हो सकता है जब वह पूरी तरह से

सचेतन हो। लेकिन अधिकाधिक पूर्ण रूप से सच्चा और निष्कपट बनने के लिये अपने संकल्प को बनाये रखो—और सब कुछ ठीक हो जायेगा।
१० जुलाई १९३६

क्या आप मुझे बतलायेंगी कि मेरे विचार चीजों को नाटकीय क्यों बना देना चाहते हैं और राई से पहाड़ क्यों बनाते हैं?

सत्ता के अप्रबुद्ध भाग हमेशा ऐसा करने में मजा लेते हैं।

कृपया मुझे प्रयास करने का सच्चा रास्ता दिखलाइये।

तुम्हें इच्छा को उसी तरह प्रशिक्षित करना चाहिये जिस तरह भौतिक मांसपेशियों को प्रशिक्षित किया जाता है—विधिवत् व्यायाम द्वारा। अपने-आपको कभी उस चीज को करने की अनुमति न दो जिसे न करने का तुम एक बार निश्चय कर चुके हो।

न्याय, न्याय—कहां है न्याय?

पगले लड़के! न्याय को न पुकारो—यानी, अपनी क्रियाओं के कठोर परिणामों को। एकमात्र भागवत कृपा ही तुम्हें तुम्हारी कठिनाई से उबार सकती है।
१० जुलाई १९३६

क्या आपका ख्याल है कि मैं पहले से अधिक बुरा हो गया हूं? या फिर ये सभी चीजें मेरे अंदर थीं और मैं इनके बारे में अभिज्ञ न था।

मनुष्य हमेशा अपने अंदर उस सबका बीज लिये रहता है जो वह है और जिसे वह करता है। लेकिन बीज पनपने से पहले मर सकता है और सभी अवांछनीय चीजों के लिये यही होना चाहिये।

हे मां, मेरे हृदय को खोलो जो कितने समय से बंद पड़ा है, वर दो कि शांति और खुशी फूटें और साथ ही वह बल भी दो जो भागवत इच्छा को चरितार्थ करने के लिये आवश्यक है।

महान् रहस्य है गहनतर सत्य के अनुरूप उचित तरीके से सोचना।
१५ जुलाई १९३६

अभीतक मेरी चेतना में एक संदेह बना हुआ है। आप झूठी बातों पर विश्वास कर लेती हैं।

जब लोग झूठ बोलते हैं तो मैं अच्छी तरह से जानती हूं, भले वे बहुत कुशलता से झूठ बोलें और यह मानें कि वे मुझे छल सकते हैं।
१५ जुलाई १९३६

मैं अभीप्सा करता हूं कि आपकी कृपा उतरे और मुझे सामान्य चेतना से आध्यात्मिक चेतना में उठा दे।

अगर तुम चाहते हो कि भागवत कृपा तुम्हारी सहायता करे तो तुम्हें उसकी शर्तों को पूरा करना होगा, और उसकी सबसे पहली शर्त है समस्त संदेह—वह चाहे जितना मामूली क्यों न हो—को दूर करना। मैं फिर से दोहराती हूं : अच्छा होगा कि तुम एक बार 'माता' पुस्तक के पहले दो अध्यायों को बहुत ही सावधानी तथा सतर्कता के साथ पढ़ो।
१६ जुलाई १९३६

मैं अहंकारी तथा दंभी हूं। मेरा ख्याल है कि मैं सब कुछ समझ सकता हूं, भागवत कृपा का मुझसे पीछे हटना एकदम से स्वाभाविक है।

सच पूछो तो भागवत कृपा पीछे नहीं हटती; लोग-बाग अपने-आप उसे ग्रहण करना असंभव बना लेते हैं। तुम्हें केवल उचित मनोवृत्ति अपनानी और बनाये रखनी चाहिये ताकि भागवत कृपा एक बार फिर रक्षा करने का अपना कार्य कर सके।
१७ जुलाई १९३६

श्रीअरविंद 'माता' पुस्तक में लिखते हैं : "अगर सत्ता का कोई अंश समर्पण करे लेकिन कोई दूसरा भाग स्वयं को घोंघे में बंद रखे, अपने रास्ते चले या अपनी शर्तें लगाये तो हर बार जब ऐसा होता है तो तुम भागवत कृपा को अपने-आपसे दूर धकेलते हो।"

अब मेरी समझ में आया कि मुझे किस तरह समर्पण करना चाहिये। लेकिन एक भाग सामान्य भोग-विलास चाहता है और उस आध्यात्मिक सुख

को अस्वीकार करता है जो समर्पण की मांग करता है। इस भाग के लिये आत्मोत्सर्ग भयंकर चीज है और वह उससे दूर भाग जाना चाहता है।

तुम्हें अपनी इच्छा-शक्ति में मजबूत बने रहना चाहिये और धीरे-धीरे विद्रोही भाग को समर्पण करने के लिये मनाना चाहिये। वह अज्ञान के कारण इंकार करता है। उस अज्ञान को विलीन करना होगा।
१७ जुलाई १९३६

आप कृपया मुझे बतायेंगी कि करने के लिये अभीतक क्या बचा है ताकि कृपा वापिस आ सके?

अचंचल रहो और भागवत कृपा में विश्वास बनाये रखो; वह हमेशा उपस्थित है और उन सबकी सहायता करने के लिये तत्पर है जो उसका निष्कपट हृदय के साथ आह्वान करते हैं।
१८ जुलाई १९३६

जबतक मैं सवेरे घर से बाहर नहीं निकलता, मैं शांत रहता हूं, मैं एकाग्र रह सकता और पढ़ाई कर सकता हूं। एक बार बाहर निकलने के बाद फिर मैं पढ़ाई नहीं कर पाता, विशेष रूप से मीटर रीडिंग[1] के कारण। मुझे लोगों के कमरों के अंदर जाना पड़ता है, कभी-कभी मेरे सिर में दर्द होने लगता है क्योंकि वातावरण मेरे लिये असह्य-सा होता है।

जब तुम अपना काम करते हो तो तुम्हें केवल अपने काम पर एकाग्र रहना चाहिये लोगों पर नहीं—उनसे बात करने या उनकी बातों पर कान देने की कोई आवश्यकता नहीं।
२१ जुलाई १९३६

हे मां, मैं इस बात से अभिज्ञ होना चाहता हूं कि आप हर क्षण मुझपर निगरानी रखती हैं।

[1] आश्रम के घरों के बिजली के मीटर की रीडिंग हर रोज साधक किया करता था।

सतही चेतना से एक कदम पीछे हट जाओ, अपने अंदर जरा-सा प्रवेश करो और तुम इससे अभिज्ञ हो जाओगे।
२४ जुलाई १९३६

जब हम विश्व से ऊपर उठना चाहते हैं तो क्या वैश्व न्याय हमें इससे रोकता है ?

एक हदतक हां ! निश्चित रूप से **विश्व से ऊपर** उठने के लिये तुम्हें न्याय से पूरी तरह मुक्त होना चाहिये; क्योंकि न्याय विश्व का एक भाग है।
२५ जुलाई १९३६

दिव्य मां, क्या यह संभव है कि हम करुणा को गलत तरीके से ग्रहण करें ?

हां, वस्तुतः मनुष्यों के साथ बहुधा यही होता है।
२७ जुलाई १९३६

माताजी, अगर मुझे किसी अतिरिक्त चीज की जरूरत हो तो क्या मैं आपको सीधा उसके लिये लिख सकता हूं ? क्योंकि प्रॉस्पैरिटी[1] में वे जासूसों का-सा व्यवहार करते हैं और व्यक्तिगत प्रश्न पूछते हैं।

मेरे आदेश के अनुसार ही हर एक से उसकी मांगों के बारे में पूछा जाता है।
४ अगस्त १९३६

मेरा ख्याल है कि अगर कोई इस योग को तेजी से और उचित तरीके से करना चाहे तो उसे इस तरह व्यवहार करना चाहिये मानों आपके और उसके सिवाय दुनिया में और किसी का अस्तित्व नहीं है; व्यक्ति की हर क्रिया इस अभिज्ञता के साथ होनी चाहिये कि वह उसके गुरु के लिये है।

हां, यह ठीक है।
१० अगस्त १९३६

[1] आश्रम में साधकों की जरूरत की चीजें इस विभाग से दी जाती हैं।

हे मेरी स्नेहमयी, मुझे यह सिखाओ कि तुमसे सच्चा प्रेम कैसे करूं ?

सच्चा प्रेम आत्म-विस्मृति है।
५ सितंबर १९३६

गुरु की अवज्ञा करने से व्यक्ति अपने-आपको भागवत कृपा से अलग कर लेता है। मेरे अज्ञानभरे और दुर्बोध व्यवहार के कारण भागवत कृपा का मेरे लिये परदे के पीछे छिप जाना एकदम स्वाभाविक है। एक दिन मैं उसे फिर से पा लूंगा।

मुझे विश्वास है कि भागवत कृपा ने स्वयं को तुमसे खींचा नहीं है बल्कि शायद तुम्हारी चेतना ने अपने-आपको ऐसी अवस्था में ला रखा है जहां से वह कृपा का और अनुभव नहीं कर सकती।
७ सितंबर १९३६

मैं आपको अपने हृदय में अनुभव नहीं करता, लेकिन मैं आपको अपने ऊपर देखता हूं। अगर मेरा अनुभव गलत नहीं है तो कृपया आप मुझे इनमें भेद समझायेंगी ?

नहीं यह गलत नहीं है।

हृदय में यह एक चैत्य संपर्क है; सिर के ऊपर यह मानसिक संपर्क है।
१० सितंबर १९३६

मन के किस भाग में आपकी उपस्थिति पायी जाती है ?

उच्चतर मन।

हृदय में तथा शरीर के ऊपर आपकी उपस्थिति के प्रभाव में क्या अंतर है ?

इसके प्रभाव में कोई अंतर नहीं है।
११ सितंलर १९३६

मालूम नहीं क्यों लेकिन आजकल मैं उतना खाने में असमर्थ हूं जितने की मुझे जरूरत है, अगर मैं बहुत खा लूं तो पेट भारी हो जाता है।

शायद तुम बहुत तेजी से खाते हो—चबाये बिना निगल जाते हो। तुम्हें खाना खूब अच्छी तरह चबाकर और शांति के साथ खाना चाहिये। इस तरह आदमी ज्यादा खा सकता है और पेट भी भारी नहीं होता।

१४ सितंबर १९३६

आपकी उपस्थिति कुछ ऊष्मारहित हो गयी है और कुछ समय से मैं खुशी और शांति का भी अनुभव नहीं कर रहा। इससे ऐसा लगता है कि मेरे अंदर कुछ हो गया है।

बाहरी चेतना अभीप्सा की अग्नि को हमेशा समान तीव्रता के साथ प्रज्वलित रखने में कठिनाई का अनुभव करती है। लेकिन अपनी इच्छाशक्ति द्वारा तुम्हें पवित्र करनेवाली अग्नि पर दृष्टि रखनी चाहिये और उसके बुझने पर उसे फिर से प्रज्वलित करना चाहिये।

१४ सितंबर १९३६

माताजी, सच्चे प्रेम में तर्क के लिये क्या कोई स्थान है?

ये दोनों प्रकृति में साथ-साथ रह सकते हैं, लेकिन साधारणतः इन दोनों का आपस में कोई खास संबंध नहीं होता।

१८ सितंबर १९३६

विनम्रता—क्या आपका मतलब था सबके प्रति विनम्र होना?

निश्चित रूप से नहीं।

आपके प्रति विनम्र होना, हां, इसे मैं करूंगा। ऐसा हो कि मैं आपकी कृपा को ग्रहण करूं ताकि मैं विनम्रता पा सकूं!

भगवान् के प्रति तुम्हें विनम्र बनना चाहिये—एक निरपेक्ष और सर्वांगीण विनम्रता।
१९ सितंबर १९३६

क्या यह सच नहीं है कि आपके लिये चैत्य प्रेम होने से पहले व्यक्ति आपकी उपस्थिति का अनुभव कर सके ?

सबसे अधिक चैत्य ही उपस्थिति का अनुभव करता है। लेकिन कभी-कभी मन और प्राण, यहांतक कि भौतिक भी इसका अनुभव करता है।

अगर यह आपकी इच्छा है कि अमुक चीज होनी चाहिये तो वह हो क्यों नहीं जाती ? अगर आप यह चाहती हैं कि मैं दर्शन समझूं तो मैं उसको समझ क्यों नहीं पाता ?

दार्शनिक मन विकसित करने के लिये तुम्हें दर्शन-शास्त्र—उसकी विभिन्न विचार-पद्धतियों, सिद्धांतों इत्यादि—को विधिवत् पढ़ना होगा।
२२ सितंबर १९३६

माताजी, कृपया आप मुझे कुछ अच्छे फ्रेंच लेखकों के नाम सुझायेंगी जिनकी किताबें मुझे पढ़नी चाहियें।

अगर यह फ्रेंच सीखने के लिये है तो तुम्हें फ्रेंच साहित्य की कोई पाठ्य-पुस्तक लेकर उसे पढ़ना चाहिये, और पाठ्य-पुस्तक में उल्लिखित प्रत्येक लेखक की दो एक पुस्तकें पढ़नी चाहियें, शुरूआत प्रारंभिक लेखकों से करनी चाहिये।
२२ सितंबर १९३६

मैं 'क्ष' के साथ हमेशा अच्छी तरह से पेश आया जब कि वह मुझे बुरा-भला कहती थी और उसने मुझे बहुत क्षति पहुंचायी। आप परिणाम देख लीजिये।

पुरस्कार मिलने की आशा से नहीं बल्कि भलाई करने के आनंद के लिये तुम्हें भलाई करनी चाहिये। तब तुम—चाहे जो हो—हमेशा खुश रहोगे।
२३ सितंबर १९३६

किसी ने मुझसे कहा कि अगर हम आपकी उपस्थिति का अनुभव करते हैं तो यह इस कारण कि हमारे अंदर आपके लिये चैत्य प्रेम है।

चैत्य प्रेम के बिना उपस्थिति का अनुभव करना असंभव नहीं है। लेकिन वह अपवाद ही होगा।
२४ सितंबर १९३६

मैंने साहित्य के इतिहास को पढ़ना शुरू किया है। मैंने देखा कि मैं कौर्नेई को बिल्कुल नहीं समझ पाता—मेरा मतलब है कि मैं पुरानी फ्रेंच भाषा को नहीं समझ पाता।

कौर्नेई की भाषा पुरानी फ्रेंच नहीं है, वह क्लासिकी फ्रेंच है। अगर तुम शुद्ध फ्रेंच बोलने की आशा रखते हो तो क्लासिकी फ्रेंच पढ़ना एकदम से अनिवार्य है। तुम्हें सत्रहवीं शताब्दी के मुख्य लेखकों की कृतियों को अवश्य पढ़ना चाहिये। यह भाषा की आत्मा में प्रवेश करने के लिये अनिवार्य है।
२५ सितंबर १९३६

मैं वही करूंगा जैसा आप चाहेंगी। मैं क्रम से प्रत्येक लेखक का एक नाटक पढूंगा।

जल्दबाजी मत करना; शांति से, मन लगाकर बिना जल्दबाजी के पढ़ो और समझने का प्रयास करो। तुम इन लेखकों द्वारा प्रयुक्त सभी शब्दों को शब्दकोश में पाओगे।
२६ सितंबर १९३६

क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि फिलहाल मैं केवल फ्रेंच साहित्य पढ़ूं? उसके बाद जब मेरा भाषा पर अच्छा अधिकार हो जाये तो मैं दूसरे विषयों को फिर से हाथ में लूं।

तुम भूगोल, व्याकरण, इतिहास और गणित जोड़ सकते हो—इससे तुम्हें कोई हानि न होगी।
२८ सितंबर १९३६

आप क्या चाहती हैं, मैं किस समय सोया करूं और किस समय उठा करूं ?

तुम्हें सात घंटे सोना चाहिये।
२९ सितंबर १९३६

आप क्या चाहती हैं, मैं कितनी देर पढ़ा करूं ?

दिन में चार घंटे एकाग्रचित्त होकर पढ़ना काफी है।
३० सितंबर १९३६

आप मुझसे प्यार करती हैं इसका अनुभव करने के लिये मुझे क्या करना चाहिये ?

प्रेम पाने की अपेक्षा प्रेम करने की अधिक परवाह करो।
३ अक्तूबर १९३६

क्या आपका ख्याल है कि पढ़ाई मेरी साधना में सहायता करती है ?

यह मन तथा प्राण दोनों के लिये अच्छा अनुशासन है।
५ अक्तूबर १९३६

'त्र' ने मुझे लिखा कि उसकी मित्र 'ज्ञ' ने उससे कहा, "हमें अपनी हार्दिक सहानुभूति को उन सभी की ओर बढ़ाना चाहिये जिन्हें उसकी जरूरत हो—अपनी साधना की कीमत पर भी।"

बकवास !

उसका कहना है कि यह उत्तम तथा आभिजात्य प्रकार की साधना है। "अपने प्रेम को पकड़े रखने का मतलब है अपने छोटे-से अहंकार में बंद रहना; उसे सबकी ओर बढ़ाने का अर्थ है अपनी सत्ता को विशाल बनाना और प्रभु के अधिक निकट आना।" आपका इसके बारे में क्या विचार है ?

वह जो कह रही है उसमें कुछ सत्य है, लेकिन वह मानव भावुकता के सामान्य मिथ्यात्व से मिला-जुला है।

मैंने 'त्र' से कहा कि 'ज्ञ' के सुझाव पर अमल करने से पहले बेहतर हो कि वह आपसे पूछ ले, क्योंकि मुझे लगता है कि जब व्यक्ति आपकी तरफ मुड़ा हो तो यह सब करने की कोई जरूरत नहीं।

सबके साथ और प्रत्येक के साथ ऐक्य **भगवान्** में पाना चाहिये, उनसे अलग होकर, सीधा नहीं।
१२ अक्तूबर १९३६

माताजी, आपके ख्याल से भगवान् के साथ सच्ची सहानुभूति होने से पहले क्या यह दूसरों के साथ संभव है?

नहीं, यह संभव नहीं है।
१३ अक्तूबर १९३६

आज आपने मुझे "निस्पृह कर्म" नामक फूल दिया। इसका मतलब मुझे हर प्रकार के कार्य के पीछे छिपे स्वार्थ को ढूंढ़ निकालना चाहिये।

फूल का ठीक-ठीक अर्थ है : वे समस्त कर्म जो पूर्ण निष्कपटता के साथ भगवान् को समर्पित किये जायें।
१३ अक्तूबर १९३६

माताजी, क्या यह सच नहीं है कि हमें अपनी निजी प्रगति के बारे में नहीं सोचना चाहिये?

निश्चय ही, तुम्हें उसके बारे में चिंतित नहीं होना चाहिये, लेकिन तुम्हारे अंदर प्रगति की इच्छा होनी चाहिये।
१४ अक्तूबर १९३६

आज आपने मुझे "चैत्य ज्वाला" नामक फूल दिया, लेकिन मेरी समझ में यह बात बिल्कुल न आयी कि आप मुझसे क्या कहना चाहती हैं।

अग्नि है प्रगति के लिये संकल्प, यह पवित्रता की वह ज्वाला है जो सभी विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयों को जलाकर भस्म कर देती है। फूल को देकर मैं तुम्हें प्रोत्साहन दे रही हूं कि उसे अपने अंदर प्रज्ज्वलित रहने दो।

१५ अक्तूबर १९३६

भूगोल तथा इतिहास के अध्यायों को पूरा लिखना आवश्यक है क्या? मैं पढ़कर उनका अध्ययन कर सकता हूं?

तुम चीजों को लिखकर ज्यादा अच्छी तरह सीखते हो।

लिखते समय मेरा हाथ बहुधा थक जाता है।

तुम एक दो मिनट के आराम के बाद फिर से लिखना जारी रख सकते हो।

१८ अक्तूबर १९३६

कल 'क्ष' ने मुझसे कहा कि नेपोलियन उसे अच्छा नहीं लगता, कि वह अच्छा आदमी नहीं था, उसने फ्रांस को नष्ट किया। और माताजी, आपकी उसके बारे में क्या राय है?

वह महान् और विशेष व्यक्ति था। निस्संदेह उसकी अपनी भूलें थीं और उसने गलतियां कीं—लेकिन फ्रांस को नष्ट करना तो दूर रहा उसने उसे अपार यश प्रदान किया। मैं तुमसे यह सब कह रही हूं, लेकिन तुम्हें 'क्ष' के पास जाकर यह सब नहीं दोहराना चाहिये।

२१ अक्तूबर १९३६

जब आपने मुझे 'सुरक्षा' का फूल दिया तो इसका क्या मतलब था?

सुरक्षा मौजूद है; तुम्हें यह पता लगाना होगा कि उससे कैसे लाभ उठाया जाये?

माताजी, क्या हमारे योग में सचमुच कोई दुःख है? जब लोग कष्ट पाते हैं तो क्या यह कठिनाइयों के कारण होता है?

नहीं। सामान्यतः वे सचाई के अभाव के कारण कष्ट पाते हैं।

शायद वे कष्ट के द्वारा संतोष पाने की कोशिश करते हैं!

हां, ऐसा भी होता है।

मुझे लगता है कि इस योग के सभी दुःख काल्पनिक हैं।

हां।

कौन दुःख पाता है? क्या प्राण, क्योंकि उसकी कामनाएं पूरी नहीं होतीं?

बहुत बार—लेकिन वह कामनाओं के संतुष्ट हो जाने पर भी दुःख पा लेता है।

अगर हम दुःख का कारण समझ लें तो फिर दुःख नहीं रहता।

यह बात सच है।

हम अपनी ही मूढ़ता के कारण दुःख पाते हैं।

अधिकतर ऐसा ही होता है।
२२ अक्तूबर १९३६

क्या यह सच नहीं है कि मैं हमेशा आपके पास किसी-न-किसी कामना के साथ आता हूं?

तुम मेरे पास नितांत रूप से प्रायः अपने बारे में सोचते हुए आते हो।
२३ अक्तूबर १९३६

मेरे ख्याल से इसी कारण मैं आपके प्रेम के बारे में अभिज्ञ नहीं हूं।

निस्संदेह, मैं तुम्हें जो प्रेम देती हूं या तुम मुझे जो प्रेम देना चाहते हो इसके बारे में सोचने की बजाय अगर तुम उस प्रेम के बारे में सोचो जो तुम मेरे लिये अनुभव करना चाहते हो तो तुम अधिक खुले हुए और ग्रहणशील होगे।

> *मेरा ख्याल है कि एकमात्र भागवत कृपा ही यह करने में समर्थ है कि मैं अपने-आपको भूल जाऊं।*

तुम्हें अपनी इच्छाशक्ति को भी लगाना होगा।
२४ अक्तूबर १९३६

> *आज मैं थका हुआ अनुभव कर रहा हूं। कृपया मुझे इस थकान का कारण बताइये।*

संभवतः तुम अपनी नींद में थकानेवाली चीज कर रहे होगे।
२६ अक्तूबर १९३६

> *कृपया मुझे यह बतलाइये कि नींद में मैं किस तरह की थकानेवाली चीजें कर रहा होऊंगा?*

शारीरिक थकान प्राण में उत्पन्न अमुक क्रियाओं और संपर्कों का भौतिक चित्रण है। नींद में तुम प्राण के अशुभ स्थानों में जाकर अशुभ सत्ताओं से मिल सकते हो।
२७ अक्तूबर १९३६

> *हे मां, मैं इस थकान से कैसे लड़ सकता हूं? मैं इतना निद्रालु होता हूं कि न पढ़ सकता हूं न लिख।*

अगर तुम्हें इतनी नींद आती है तो इसका यह अर्थ है कि किसी-न-किसी कारण तुम्हें सोने की आवश्यकता है—इसका प्रतिरोध करना अच्छा नहीं होगा।
२८ अक्तूबर १९३६

> *तब फिर मैं प्राणिक जगत् के इन संपर्कों और थकान से कैसे बच सकता हूं?*

सोने से पहले तुम्हें अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करना चाहिये। नींद के समय अचंचल आराम की इच्छाशक्ति का।

२८ अक्तूबर १९३६

कृपया मुझे यह बतलाइये कि आपकी उपस्थिति, खुशी और प्रेम की यह महान् क्षति कहां से आयी और इन चीजों को दुबारा कैसे पाया जा सकता है ?

सुदृढ़ और सतत इच्छा तथा शांत, दृढ़ संकल्प द्वारा, बाहरी चीजों से स्वयं का विक्षुब्ध होना अस्वीकार करके, भागवत कृपा में विश्वास रखकर तथा उसके निर्णयों के प्रति समर्पण करके।

२९ अक्तूबर १९३६

किसीने मुझसे कहा कि समर्पण की या निष्कपट होने की कोई आवश्यकता नहीं—हमें बस उद्घाटन करना चाहिये। क्या यह सच है ?

निश्चित रूप से नहीं। यह बेवकूफीभरी बात तुमसे किसने कही ?

निष्कपटता के बिना योग-पथ खतरनाक होता है।

समर्पण के बिना वह असंभव है।

३० अक्तूबर १९३६

"विश्वास" नामक फूल देकर आप हमसे क्या कहना चाहती थीं ?

जबतक तुम्हारे अंदर भगवान् पर पूरा विश्वास न हो, तबतक भागवत कृपा पूरी तरह से फलप्रद नहीं हो सकती।

६ नवंबर १९३६

आपके ख्याल से मेरे लिये ऐसी किताबें पढ़ना हानिकर है क्या जो केवल सामान्य जीवन के बारे में बतलाती हैं, जीवन के सुख-दुःख के बारे में ?

स्पष्ट रूप से यह चीज बहुत सहायक नहीं होती जबतक कि किताब बहुत अच्छी तरह

से न लिखी गयी हो और तुम उसे ऐकांतिक रूप से फ्रेंच सीखने के लिये ही न पढ़ो।
१४ नवंबर १९३६

मैं यह जानना चाहूंगा कि सामान्य नियम के तौर पर छोटे बच्चों का सारे समय खेलना अच्छा है क्या?

बच्चों के लिये काम और पढ़ाई तथा खेल के लिये अलग-अलग समय होना चाहिये।
१६ नवंबर १९३६

कभी-कभी मैं अपनी पढ़ाई पर एकाग्र नहीं हो पाता। उस समय मेरे मस्तिष्क की कोई चीज मुझे अध्ययन करने, यहांतक कि मात्र किसी चीज को पढ़ने से भी रोकती है।

यह **तमस्** है।
१७ नवंबर १९३६

वह कौन-सी वस्तु है जो अध्ययन करना नहीं चाहती और थक जाती है: मस्तिष्क?

तुम्हारा जड़-भौतिक मन, जो उस समय सीखने के प्रयास से अभ्यस्त नहीं हुआ जब तुम काफी छोटे थे।

मेरे गंभीर रहने तथा दूसरों के साथ नहीं मिलने-जुलने से कोई हानि है क्या?

नहीं, कोई हानि नहीं।

मेरे ख्याल से जीने का एकाग्रपूर्ण तरीका मुझे आपके प्रति मुड़ने में और अधिक अच्छी तरह पढ़ने में भी सहायता देगा।

निस्संदेह।
१८ नवंबर १९३६

आपके ख्याल से मेरा मन विकसित हो रहा है क्या ?

निश्चित रूप से नियमित पढ़ाई से उसका विकास होकर रहेगा।
७ दिसंबर १९३६

मैं अधिकाधिक पढ़ाई की तरफ मुड़ रहा हूं और अपनी साधना पर कम ध्यान दे रहा हूं। मुझे मालूम नहीं यह वांछनीय है या नहीं।

यह ठीक है; पढ़ाई साधना का अंग हो सकती है।
८ दिसंबर १९३६

माताजी, आपके ख्याल से सभी वस्तुएं अच्छी-से अधिक अच्छी होती जा रही हैं क्या ? मेरे विचार से मैं पहले की अपेक्षा कम प्रयास कर रहा हूं।

फिलहाल तुम कुछ प्रगति कर रहे हो; लेकिन तुम्हें प्रगति के प्रदर्शन के बजाय उसकी स्थिरता तथा यथार्थता और सचाई को अधिक महत्त्व देना चाहिये। मेरा मतलब है कि इस दिखावे के बजाय मानों तुम प्रगति कर रहे हो, अधिक महत्त्वपूर्ण है कि तुम कुछ प्रगति करो, भले वह अदृश्य रूप से ही क्यों न हो।
९ दिसंबर १९३६

क्या मेरा यह सोचना गलत है कि साधारण जीवन के लोगों के साथ साधकों का कोई संबंध नहीं होना चाहिये, ऐसे लोगों के साथ जिनका आध्यात्मिक जीवन के प्रति कोई झुकाव नहीं है ?

स्पष्ट रूप से ऐसा करना कहीं अधिक अच्छा होगा।
१२ दिसंबर १९३६

'ज्ञ' और मेरे बीच एक प्रकार की मित्रता थी। फिर अचानक एक दिन उसने मुझसे बातचीत करनी छोड़ दी और मुझसे कतराने लगा। मुझे किसीकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि आप मेरी हैं और मैं आपका। हे मां, हे मां, आप मेरे लिये सब कुछ हैं !

स्पष्ट रूप से मानव संबंध बहुत अस्थिर होते हैं। एकमात्र भगवान् के साथ के संबंध स्थायी हो सकते हैं।
१४ दिसंबर १९३६

माताजी, मैं जानना चाहूंगा कि मेरी प्रगति स्थायी है या यह मात्र ऊपरी है ?

तुम जो प्राप्त करते हो उसे संजोये रखने का हमेशा एक तरीका होता है। तुम्हें अपनी इच्छाशक्ति का उपयोग करना सीखना चाहिये।
१५ दिसंबर १९३६

मैंने 'प्रॉस्पेरिटी' से दो जिल्दवाली कापियां मांगीं, लेकिन मुझे दी नहीं गयीं। क्या आपने उनसे मना किया ?

नहीं, मैंने किसी चीज के लिये मना नहीं किया, लेकिन निश्चित रूप से उनके पास कापियां खत्म हो गयी होंगी और नयी बनानी होंगी। लेकिन सच पूछो तो तुम बेतहाशा कापियां इस्तेमाल करते हो, मुझे विश्वास है कि तुम्हारे पास बड़ी संख्या में ऐसी कापियां पड़ी होंगी जिनमें मात्र कुछ पृष्ठ भरे हों। उन्हें किसी दूसरे काम के लिये आराम से उपयोग में लाया जा सकता है। चीजों को नष्ट करना कभी अच्छा नहीं होता—संसार में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है जिनके पास उनकी आवश्यकता की वस्तुएं नहीं होतीं।
१५ दिसंबर १९३६

एक और टिप्पणी : ऐसा लगता है कि 'क्ष' को लड़कों का संग बहुत पसंद है। अब वह छोटी बच्ची नहीं रही। मुझे मालूम नहीं कि मेरा यह टिप्पणी करना एकदम गलत है या नहीं।

मुझे नहीं लगता कि इस तरह की टिप्पणी करना और यह चेतना की जिस अवस्था की ओर संकेत करती है वह, तुम्हारी साधना के लिये बहुत सहायक हो सकता है।
१७ दिसंबर १९३६

कृपया मुझे यह समझाइये कि कल जैसी टिप्पणी मैंने की थी ऐसी टिप्पणियां सहायक क्यों नहीं हो सकतीं ?

इस तरह की टिप्पणियां हमेशा **आभासों** तथा उस भौतिक मन पर आधारित होती हैं जो हमेशा सद्‌भावना के बिना चीजों की व्याख्या करने की ओर प्रवृत्त होता है—उस सत्य ज्ञान से इसकी अपेक्षा अधिक दूर कोई चीज नहीं हो सकती जो हमेशा चीजों की गहरी समझ तथा चैत्य दृष्टि पर आधारित होता है।

१८ दिसंबर १९३६

आपके ख्याल से क्या कंचे खेलना मेरी चेतना को नीचे गिरा देगा ?

यह सब खेलने की तुम्हारी भावना पर निर्भर करता है। अगर तुम सतर्क हो और हमेशा सचेतन रहने के बारे में सावधान रहो तो यह ठीक है।

१९ दिसंबर १९३६

कल मैं कंचे खेलने के बाद प्रणाम करने आया और मैं भली-भांति एकाग्र नहीं हो पाया। यह चीज इस बात की सूचक है कि मेरे लिये खेल बहुत अच्छा नहीं है।

स्पष्टतः, प्रणाम के पहले खेलना तुम्हारी एकाग्रता में सहायता नहीं दे सकता।

"व्यवस्था" पुष्प देकर आप मुझसे क्या कहना चाहती थीं ?

अपने जीवन को, अपने कार्य को, अपनी चेतना को व्यवस्थित करो।

व्यवस्था है प्रत्येक वस्तु को उसके सच्चे स्थान पर रखना।

२३ दिसंबर १९३६

हे मां, वर दीजिये कि आप जहां हैं, मैं आपको वहीं खोजूं !

जब तुम मुझे पा लोगे तो तुम देखोगे कि मैं सर्वत्र हूं।

२३ दिसंबर १९३६

हे मां, मैं इस बात से सहमत हूं कि मेरा जीवन और मेरा कार्य व्यवस्थित नहीं हैं। क्या आप उन्हें व्यवस्थित करने में मेरी सहायता नहीं कर सकतीं ?

पहला कदम है अपने रोज के अनुशासन में **नियमितता** की आदत डालना।
२४ दिसंबर १९३६

मैं चाहूंगा कि आप मेरी रोज की दिनचर्या ठीक कर दें : मुझे कितने बजे उठना चाहिये; मुझे कितनी देर फ्रेंच पढ़नी और अध्ययन करना चाहिये; दोपहर को आराम करना चाहिये या नहीं।

मेरे ख्याल से तुम्हारे लिये मेरा इस सबकी व्यवस्था करने का कोई मतलब नहीं है। तुम्हें, एक विकसनशील समायोजना के द्वारा, ऐसा कार्यक्रम ढूंढ़ निकालना होगा जो तुम्हारे लिये सबसे अनुकूल हो, और उसपर सावधानी के साथ लगे रहना होगा। साथ-ही-साथ उसे थोड़ा लचीला भी बनाना होगा ताकि उसे प्रत्येक नूतन दिवस की मांगों के अनुसार समायोजित किया जा सके।
३० दिसंबर १९३६

माताजी, क्या आप मानती हैं कि मैं आपके प्रति वैसे प्रेम का अनुभव करता हूं जैसा बालक अपनी मां के लिये करता है ?

बालक का अपनी मां के प्रति प्रेम सहज तथा निरपेक्ष विश्वास से भरपूर होता है। इस तरह का प्रेम तुम्हारे अंदर केवल चैत्य उद्घाटन के आधार पर ही हो सकता है, क्योंकि चैत्य की यथार्थ रूप से इस कारण बालक के साथ तुलना की जाती है क्योंकि वह भगवान् के प्रति इस सहज तथा पूर्ण विश्वास का अनुभव करता है।
१२ जनवरी १९३७

माताजी, कृपया मुझे यह समझाइये कि मैं इस समय कहां हूं, मेरे अंदर क्या चल रहा है।

तुम्हें समझने के लिये प्रयास करना होगा, अन्यथा मेरा सारा समझाना व्यर्थ होगा।
११ मार्च १९३७

मुझे लगता है कि भौतिक मन में कोई वस्तु या कोई व्यक्ति मुझे नीचे खींच रहा है। मुझे मालूम नहीं कि क्या करूं।

तुम्हें इस वस्तु या व्यक्ति को नीचे खींचने से रोकना चाहिये। निस्संदेह तुम्हारे अंदर इच्छा-शक्ति है—किसलिये है वह ?
१२ मार्च १९३७

कृपया अब आप मुझे समझायेंगी कि मुझपर आक्रमण करनेवाला अंधकार क्या था ?

जब तुम्हें ऐसा लगे कि कोई अंधकार तुमपर आक्रमण कर रहा है और तुम्हें मुझसे दूर ले जा रहा है तो तुम निश्चित हो सकते हो कि यह कोई विदेशी प्रभाव है जो तुम्हारे वातावरण में घुस गया है।
१९ मार्च १९३७

फ्रेंच में मेरा उपन्यास पढ़ना क्या किसी तरह से हानिप्रद है ?

उपन्यास पढ़ना कभी लाभप्रद नहीं होता।

विजातीय प्रभाव में आने से बचने के लिये व्यक्ति को क्या करना चाहिये ?

भगवान् पर एकाग्रचित्त होओ।
२४ मार्च १९३७

सिरदर्द के जाते न जाते कमर-दर्द और छाती का दर्द शुरू हो जाता है। कृपया मुझे यह बतलाइये कि ये एक के बाद एक दर्द मुझे क्यों होते हैं ?

कारण हमेशा जटिल तथा बहुधा दुरूह होते हैं, और वे अवचेतना को प्रभावित करनेवाले सुझावों से आते हैं।
२७ मार्च १९३७

एक स्वप्न—मैंने पपीते का एक पेड़ देखा जिसमें पके फल लगे थे। कुछ कौए तथा एक बंदर फल खाने के लिये पेड़ पर थे। मैंने उनपर धूल फेंकी। बंदर

के सिवाय सब भाग गये। बंदर मेरी तरफ लपका और मैंने उसकी धज्जियां उड़ा दीं। मेरे ख्याल से इस सपने का कोई अर्थ है।

सामान्यतः बंदर असंयमित भौतिक मन का प्रतीक होता है। इस मामले में संभवतः वह तुम्हारी आध्यात्मिक अभीप्सा के फल चुराना चाहता था।
२९ मार्च १९३७

कल मैंने 'त्र' के बारे में आपको इसलिये लिखा क्योंकि मुझे उसके और 'ज्ञ' के बीच के प्रभाव का विनिमय अच्छा नहीं लगता।

मैं इसके बारे में जानती थी, लेकिन मैं हमेशा अपनी क्रिया को नीरवता में संपन्न होने देना अधिक पसंद करती हूं।
१४ अप्रैल १९३७

आप हमेशा अपनी क्रिया को नीरवता में संपन्न होने देना अधिक पसंद करती हैं। आप कब हमें लिखकर सूचना देना ठीक समझती हैं? आपने बहुधा कितनी ही चीजें मुझे लिखी हैं, कभी-कभी तो उनके बारे में मेरे पूछने के बिना ही लिखी हैं।

जब किसी परिणाम की तत्काल आवश्यकता हो, मैं दो तरह के लोगों से कहती हूं:

१ —उनसे, जिनमें बहुत सद्भावना है और जो जानने के लिये बहुत अभीप्सा करते हैं।

२ —उनसे, जो अपनी बाहरी चेतना में इतने बंद हैं कि जबतक मैं उनसे स्पष्ट रूप में न कहूं वे कभी कुछ न समझ पायेंगे।
१५ अप्रैल १९३७

कल, आपके दर्शन के बाद मैंने बहुत बड़े प्रतिरोध का अनुभव किया और वह खलबली अबतक है।

हां, क्योंकि तुमने मेरी अनुमति मांगने से पहले श्रीमती 'क' को लिखा। इसी तरह का व्यवहार खलबली का कारण बनता तथा प्रतिरोध को बढ़ावा देता है।

और आज सुबह तुमने इससे भी बुरा काम किया !

क्या तुम्हारे अंदर समझदारी का नामो-निशान नहीं है ? कोई खिड़की से किसी महिला के कमरे में नहीं झांकता।

१७ अप्रैल १९३७

जी, आपकी अनुमति के बिना श्रीमती 'क' को लिखकर मैंने बहुत गलत काम किया। लिखने के बाद मैंने इस बात का अनुभव किया। मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूं।

तब फिर मुझसे स्पष्ट रूप से यह कहने की जगह कि "मैंने श्रीमती 'क' को पत्र लिखा," इस तरह से क्यों लिखा जैसा कि तुमने लिखा था। तुम्हारे अंदर स्पष्टवादिता का अभाव ही गलत चीज थी। अब तुम्हें हमेशा स्पष्टवादी तथा ऋजु होना सीखना चाहिये।

१८ अप्रैल १९३७

जब मैं 'लेडीज़ हाउस' से गुजर रहा था तो मैंने श्रीमती 'क' को देखा क्योंकि उनकी खिड़की का पर्दा पूरी तरह से खुला था। चूंकि वह खिड़की के पास खड़ी थीं तो मैंने उन्हें बुलाया और अपने पत्र के उत्तर के बारे में पूछा।

निश्चित रूप से जिसने तुम्हें बड़ा किया है वह तुम्हें यह सिखाने में असफल रहा कि किसी महिला को, विशेष रूप से, उम्र में बड़ी किसी महिला को, खिड़की से बुलाना बहुत अधिक अशिष्ट व्यवहार करना है। सुसंस्कृत पुरुष को कभी किसी महिला के कमरे के अंदर झांकना नहीं चाहिये, भले वह अपने पर्दे खुले रखे।

१९ अप्रैल १९३७

कृपया आप मुझे बतलायेंगी कि उच्चतर चेतना के दृष्टिकोण से इस योग में खेल का क्या स्थान है ?

जहांतक मुझे मालूम है कोई विशेष स्थान नहीं है।

२८ अप्रैल १९३७

अगर आपके ख्याल से खेलने का कोई स्थान नहीं है तो आपने मुझे खेलने की अनुमति क्यों दी ?

मैंने यह नहीं कहा कि योग में खेलने का कोई स्थान नहीं है, मैंने कहा कि कोई **विशेष** स्थान नहीं है।

'त्र' लिखता है: "मैं तुम्हें हमेशा चंचल पाता हूं, पढ़ाने के लिये तुम्हारा वातावरण कतई उपयुक्त नहीं है।"

हां, तुम्हारे अंदर वह मानसिक अचंचलता नहीं है जो पढ़ाई को लाभप्रद बनाती है, और तुम जिस काम को करते हो उसपर एकाग्रचित्त होने में बहुत कठिनाई का अनुभव करते हो।

मैं यह जानना चाहूंगा कि उच्चतर चेतना की दृष्टि से खेल-कूद को किस दृष्टिकोण से देखा जाता है—प्राणिक आमोद के रूप में ?

खेलना लाभदायक विश्रांति हो सकता है, विशेष रूप से छोटे बच्चों के लिये। अगर प्राण उसे अपने लाभों के प्रति मोड़ ले तो यह प्राणिक आमोद भी हो सकता है। यह सब खेलते समय तुम्हारी मनोवृत्ति पर निर्भर करता है।

मेरे ख्याल से मजाक करना ठीक है।

कुछ मजाक घटिया और आपत्तिजनक होते हैं और उनसे सावधानी के साथ बचकर रहना चाहिये। वे सभी मजाक जो चुभते या चेतना को नीचा गिराते हैं, बुरे होते हैं।
२९ अप्रैल १९३७

मेरी चेतना की वर्तमान अवस्था कैसी है ? मैं अनुभव करता हूं कि मैं अब प्रगति नहीं कर रहा। क्यों और कैसे ?

अगर तुम अपने बारे में कुछ कम चिंता करते तो शायद तुम अधिक प्रगति कर पाते।
१ मई १९३७

कृपया आप मुझे बतलायेंगी कि मैं अपने बारे में इतना अधिक क्यों सोचता

हूं ? मेरे ख्याल से ऐसे भी लोग हैं जो अपने बारे में एकदम से नहीं सोचते।

ऐसे व्यक्ति सचमुच विरले हैं। अपने बारे में सोचना मनुष्यों में सबसे अधिक प्रचलित आदत है। केवल कोई योगी ही इससे मुक्त हो सकता है।
३ मई १९३७

अगर व्यक्ति अपने बारे में सोचे नहीं तो वह जीवन के प्रवाह द्वारा शोक तथा दुःख-दर्द के समुद्र में बहा लिया जायेगा जहां प्रायः सभी रहते हैं। यह अच्छा न होगा, व्यक्ति विश्व से छूटकर सत्य को कभी नहीं पा सकेगा !

कितनी सौभाग्यशाली हूं मैं कि मुझे क्या करना चाहिये यह सिखाने के लिये तुम यहां हो—नहीं तो, निस्संदेह, मुझे पता ही न चलता !!!
४ मई १९३७

जब व्यक्ति कोई काम किसीके लिये करता है तो उस व्यक्ति के साथ एकात्म होना जरूरी होता है क्या ?

नहीं, आवश्यक रूप से नहीं; लेकिन उनके प्रभाव की किसी-न-किसी चीज को ग्रहण करने से बचना मुश्किल होता है।
१७ मई १९३७

अगर कोई मुझे पढ़ा रहा है तो उसके लिये मुझपर एकाग्र होने के लिये मेरे साथ एकात्म होना आवश्यक है क्या ?

एकाग्रता के बिना तुम कुछ नहीं प्राप्त कर सकते।
१८ मई १९३७

'ज्ञ' लिखता है : "मेरे कुछ मित्रों ने शरीर को अधिक अच्छा करने के लिये अंडा और मछली खाने का सुझाव दिया है। कृपया माताजी से पूछ देखो कि क्या मैं मछली ले सकता हूं।"

अगर यह स्वास्थ्य का प्रश्न है तो इन चीजों के बारे में चिकित्सक को सुझाव देना चाहिये।

"मैं माताजी से आकर्षित हूं, लेकिन साथ ही मुझे अपने माता-पिता के बारे में भी सोचना चाहिये जिन्होंने मुझे पाला-पोसा। मुझे उनका कर्ज चुकाना चाहिये।" कृपया इस अंतिम वाक्य के बारे में कुछ लिखें।

मुझे इसके बारे में कुछ नहीं कहना। हर एक को अपनी दिशा स्वयं ढूंढ़नी होगी। एक बार तुम भगवान् के लिये जीने का चुनाव कर लो तो फिर दुनिया की और किसी वस्तु का महत्त्व नहीं होना चाहिये; लेकिन जबतक तुमने कोई निश्चय नहीं लिया, तुम्हें अपने अंदर से यह ढूंढ़ निकालना चाहिये कि तुम अपने जीवन को कौन-सी दिशा देना चाहते हो।
२६ मई १९३७

माताजी, क्या यह सच नहीं है कि पुत्र अपने पिता की सेवा करने के लिये बाध्य है ?

एकमात्र उसीको—जिसने स्वयं को पूर्ण रूप से भगवान् के अर्पण कर दिया हो—यह अधिकार होता है कि वह अपने मां-बाप के प्रति अपने कर्तव्य को न निभाये।
२७ मई १९३७

मैं अनुभव कर रहा हूं कि मैं आपसे अधिकाधिक दूर बहता चला जा रहा हूं। मैं यह भी अनुभव कर रहा हूं कि मैं अधिक मंद, अधिक असंवेदनशील, अधिक साधारण बन गया हूं। अचंचलता में मैं आपसे प्रार्थना करता हूं : मुझे वह पथ सुझाइये जिसका मुझे अनुसरण करना है।

अपनी दुर्बलताओं और अपूर्णताओं को ढूंढ़ निकलना अपने-आपमें महान् प्रगति होती है। प्रगति के प्रति पहला चरण है सच्ची तथा निष्कपट विनम्रता।
२५ जून १९३७

दूसरों के लिये बहुत अधिक सहानुभूति का अनुभव करना क्या सचमुच आवश्यक है ?

जरूरी नहीं है।

मैंने सोचा कि अधिकतर मामलों में अचंचल तटस्थता उत्तम होती है।

हां, यह कहीं अधिक अच्छी होती है।
२८ जून १९३७

'क्ष' का कहना है कि वह योग करना चाहती है लेकिन उसे यहां आने की अनुमति नहीं मिली। और उसे १८ साल की उम्र में विवाह करने के लिये बाधित किया जा रहा है। उसे मालूम नहीं कि क्या करे क्योंकि उसे अनुमति नहीं मिली और वह विवाह करना नहीं चाहती।

उसको यहां बुलाना संभव नहीं है। अगर वह योग करना चाहती है तो उसे वहीं करना होगा।
२९ जून १९३७ —श्रीअरविंद

'क्ष' ने मुझे एक पत्र लिखा जो यह दर्शाता है कि उसके लिये गुजरात में योग करना आसान नहीं है। वह विवाह करने के लिये बाधित होगी और अपने पति की गुलाम बन जायेगी। उसके लिये समाज में रहकर योग करना एकदम से असंभव है। बहरहाल, अगर आपका यह विचार हो कि उसके लिये शादी कर लेना अधिक अच्छा है तो मैं उसे यह लिख दूंगा।

हम उसे विवाह करने की सलाह नहीं दे सकते। इसका निश्चय उसे अपने-आप करना होगा।

—श्रीअरविंद

लेकिन अगर आप उसे केवल दर्शन के लिये अनुमति दे दें तो शायद वह योग करने की कोशिश कर सके।

नहीं, हम दर्शन की अनुमति नहीं दे सकते।

हम और अधिक ऐसे लोगों को नहीं चाहते जो केवल यह कहते हैं कि वे योग करना चाहते हैं और साधारण जीवन नहीं छोड़ सकते। उन्हें यह साबित करने दो कि

सभी कठिनाइयों में योग करने के लिये उनके अंदर सच्ची पुकार है और उन्हें यह दिखाने दो कि उनके अंदर योगी का तत्त्व तथा सामर्थ्य है।

३० जून १९३७ —*श्रीअरविंद*

'त्र' ने मुझसे व्यर्थ की बातें कीं। इन चीजों को महत्त्व देना अच्छा है क्या?

तुम्हें इन चीजों को कोई महत्त्व नहीं देना चाहिये, लेकिन ज्यादा अच्छा होगा कि तुम ऐसी बातों पर कान न दो। गपशप करना हमेशा हानिकर होता है।

२३ जुलाई १९३७

आज सवेरे मैं विक्षुब्ध-सा था; शायद नींद में कोई प्राणिक शक्ति आयी।

जब तुम विक्षोभ का अनुभव करो तो तुम्हें किसी स्थान में बैठकर तबतक शांति का आवाहन करना चाहिये जबतक तुम्हें ऐसा न लगे कि बाधा विलीन हो गयी है।

१ सितंबर १९३७

कभी-कभी आप मेरे बहुत करीब होती हैं और कभी बहुत दूर प्रतीत होती हैं।

यह, तुम जिस चेतना में हो, उसकी अवस्था पर निर्भर है।

४ सितंबर १९३७

मेरा वर्तमान जीवन अनुशासनरहित है, हालांकि मैं सोचता हूं कि वह अचंचल है। क्या आप चाहेंगी कि यह कुछ अधिक नियमित हो?

तुम्हें अपनी भौतिक चेतना को अंदर से अनुशासित करना चाहिये और अंदर से ही तुम्हारे भौतिक जीवन के लिये बाहरी व्यवस्था भी आयेगी।

८ सितंबर १९३७

आप मुझसे अंदर से भौतिक चेतना को अनुशासित करने के लिये कहती हैं,

लेकिन मैं यह नहीं जानता कि वह क्या है या उसे कैसे किया जाये ?

मेरा मतलब है कि भौतिक चेतना को ऐसी शक्ति के द्वारा अनुशासित करना चाहिये जो अंदर से क्रिया करती है।
११ सितंबर १९३७

'ज्ञ' ने मुझे अपने एक मित्र की चिट्ठी भेजी जिसमें वह योग करने और यहां शरण लेने की बात लिखता है।

हम किसी को भी ऐसे नहीं ले सकते जबतक कि—

१—हमें उस व्यक्ति के बारे में पूरी जानकारी न हो—नाम, परिवार, उसके स्वास्थ्य की अवस्था, व्यवसाय इत्यादि के बारे में।

२—हमने उसे देख न लिया हो।

३—और बहरहाल हम किसी भी व्यक्ति को पहले परीक्षण के तौर पर लेते हैं ताकि यह जान सकें कि वह इस योग के उपयुक्त है या नहीं।

अतः सबसे पहले इस लड़के को यह करना होगा कि सभी आवश्यक ब्यौरों के साथ हमें अंग्रेजी में एक चिट्ठी लिखे और उसमें योग करने के अपने कारणों को भी स्पष्ट करे।

और उसे अपना फोटो भी भेजना होगा।
७ अक्तूबर १९३७

मैं आपसे माफी चाहता हूं कि आपके मना करने के बावजूद मैंने 'ज्ञ' के साथ थोड़ा मेल-जोल रखा। हे मां, मैं आपका प्रेम चाहता हूं! प्रेम के बिना मैं भला कैसे जी सकता हूं ?

भागवत प्रेम पाने के लिये बाकी समस्त प्रेम को छोड़ देना होगा।
२८ दिसंबर १९३७

कई दिनों से मेरे सिर में ठंड घुसने की कोशिश कर रही है। कृपया आप मुझे बतलायेंगी कि इस बार मैं प्रतिरोध क्यों नहीं कर पाया ? क्या यह श्रद्धा की कमी है ?

जरूरी नहीं है। और भी कारण हो सकते हैं। केवल अवचेतन पर नियंत्रण ही हर आक्रमण का निरपवाद रूप से प्रतिरोध कर सकता है।
२५ जनवरी १९३८

मेरी प्यारी मां, कृपया मेरे जन्म के इस महीने के लिये मुझे अपने आशीर्वाद दीजिये।

हां, मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

मैं तुमसे एक बात और पूछना चाहती थी। तुम जानते हो कि हम एक नयी इमारत[1] खड़ी करना चाहते हैं, जिसमें हम आधुनिकतम तरीकों का उपयोग करना चाहते हैं। इस काम का निरीक्षण करने के लिये बहुत-से व्यक्तियों की जरूरत होगी। मैंने सोचा कि तुम्हारे लिये समय आ गया है कि तुम सारे काम में सक्रिय हिस्सा लो। निस्संदेह, इसमें नियमितता, स्थिरता और महान् निष्कपटता की आवश्यकता है। तुम्हें इतवार के सिवाय **नियमित रूप** से रोज आठ घंटे काम करना होगा। इसके स्थपति कुछ दिनों में जापान से आनेवाले हैं, वे तुम्हें काम के बारे में सभी आवश्यक निर्देश देंगे। मुझे बताओ कि तुम इसके बारे में क्या सोचते हो और यह भी कि क्या मैं तुम्हारा नाम कार्यकर्ताओं की सूची में लिख सकती हूं ?
१ फरवरी १९३८

आपने बड़ी कृपा के साथ यह काम मुझे सौंपा, इससे मैं बहुत खुश हूं। हे मां, ऐसा हो कि मैं सतत रूप से आपकी उपस्थिति का अनुभव करूं।

मैं खुश हूं कि काम तुम्हें अच्छा लगा। मुझे विश्वास है कि काम करना तुम्हारे लिये बहुत अच्छा होगा; यह ग्रहणशीलता को बहुत अधिक बढ़ा देता है।
१० फरवरी १९३८

मैं आपसे सारे काम के बारे में सामान्य रूप से बात करना चाहूंगा। मुख्य कार्यकर्ता और निरीक्षकों के बीच विचारों तथा मतों का मुक्त आदान-प्रदान हो; अंधा काम नहीं बल्कि जानकारी के साथ किया गया काम हो।

[1] गोलकुंड—५० कमरों का निवास-स्थान।

तुम जिसकी बात कर रहे हो वह मनमाने तरीके से नहीं हो सकता, न ही यह बातचीत से ही हो सकता है; यह चेतना के परिवर्तन की मांग करता है, और केवल योग ही इस परिवर्तन को ला सकता है।

६ मार्च १९३८

कभी-कभी मेरा 'त्र' से बातें करना किसी तरीके से हानिप्रद है क्या ?

यह सारी चीज तुम्हारी बातचीत के विषय और उसकी लंबाई पर निर्भर करती है। आते-जाते कुछ शब्द बोल लेने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन अगर तुम तथाकथित आध्यात्मिक चीजों के बारे में बातचीत करना शुरू कर दो तब चीज खतरनाक बन जाती है।

१४ अप्रैल १९३८

'ज्ञ' को किवाड़बंदी बिल्कुल ठीक लगी; वह कहता है कि इससे अधिक अच्छा नहीं किया जा सकता था।

क्या तुम्हें इतना विश्वास है ?

अगर तुम **सचमुच अच्छी तरह** से काम करना सीखना चाहते हो तो तुम्हें नम्र बनना होगा, अपनी अपूर्णताओं के बारे में अभिज्ञ बनो और प्रगति करने की इच्छा को हमेशा बनाये रखो।

तुम शेखी बघारकर प्रगति नहीं कर सकते।

२२ अप्रैल १९३८

व्यवस्था अधिकाधिक जटिल होती जा रही है और मैं अधिकाधिक विचलित। मैं नहीं जानता कि ये सारी बाधाएं कहां से आ रही हैं; अबतक सारी चीज ठीक-ठीक चल रही थी।

श्रीमान् 'ज्ञ' विशेष व्यवस्था चाहते हैं; जो वह चाहते हैं उसके बारे में उन्होंने स्वयं मुझे समझाया और **मैं उनके साथ पूरी तरह सहमत हूं।** कुछ लोगों के अहंकार का प्रतिरोध ही स्थिति को जटिल बना रहा है—अन्यथा सारी चीज बहुत सरल होगी।

३० अप्रैल १९३८

हे मां, मैं आपकी उपस्थिति का अनुभव क्यों नहीं करता ?

मानसिक गतिविधि की अतिशयता ही तुम्हें मेरी उपस्थिति का अनुभव करने से रोकती है।
३ मई १९३८

मेरी सत्ता के एक हिस्से ने 'क्ष' की भूलों के बारे में सोचना शुरू कर दिया है।

मेरे ख्याल से इसमें तुम ऐसे प्रभावों के अधीन होते हो जिनमें से कोई भी बहुत स्वस्थ नहीं होता।

दूसरा भाग कहता है : "तुम दूसरों का बुरा क्यों सोचते हो ? यही चीज तुम्हें भागवत उपस्थिति को अनुभव करने से रोकती है।"

यह बिल्कुल ठीक है।

हे मां, आपके साथ ऐक्य पाने के लिये मुझे अपने हृदय की नीरवता में रोने दीजिये।

दृढ़ और **ज्योतिर्मय शांति** में प्रवेश करो। वहां तुम उत्तम रूप में ऐक्य को चरितार्थ कर सकोगे।
६ मई १९३८

कल से चीजें बिगड़ गयी हैं, मैं दुबारा अपना संतुलन खो बैठा। मैं इसके बारे में कुछ भी नहीं समझता।

निश्चय ही तुम्हारे प्राण के मार्ग में किसी चीज ने बाधा दी है, और संभवतः किसी महत्त्वहीन चीज ने, क्योंकि तुम्हें यह भी याद नहीं कि वह चीज थी क्या। तुम्हें प्राण के इन बदलते हुए मिजाजों पर बहुत ध्यान नहीं देना चाहिये जिनका सचमुच कोई मूल्य नहीं होता।
९ मई १९३८

माताजी, मैं जानना चाहूंगा कि क्या मैं काम में अपने-आपको समर्पण कर पाने के बिंदु तक पहुंच गया हूं। मुझे नहीं लगता। मैं ऐसी मनोवृत्ति अपनाने की कोशिश करूंगा कि उस व्यक्ति का पूरा-पूरा कहा मानूं जो कार्य-भार संभाल रहा है: वह जो कुछ कहे, उसे बिना किसी तर्क-वितर्क के करना चाहिये।

हां, यह अच्छा है। अगर तुम आज्ञापालन नहीं करते तो छोटी-से-छोटी गलती तक की जिम्मेदारी तुमपर आ जाती है; दूसरी तरफ अगर तुम सावधानी के साथ आज्ञापालन करो तो सारी जिम्मेदारी उस व्यक्ति की होती है जिसने आदेश दिया है।
१० मई १९३८

माताजी, क्या आप जानती हैं कि मैं सारे समय काम के बारे में सोचता हूं—जो शायद बहुत अच्छी बात नहीं है।

इसके विपरीत यह बहुत अच्छा है, यह तुम्हें एकाग्र होना सिखाता है।
१२ मई १९३८

हे मां, मैं आपसे सचमुच बहुत दूर हूं।

इसका कारण यह है कि तुम बहुत बिखरे हुए हो—तुम्हारी चेतना एकाग्र रहने की बजाय बाहरी, सतही चीजों की ओर दौड़ती है।
जून १९३८

कुछ समय से मैं उदासी का अनुभव कर रहा हूं: ऐसा लगता है कि आपने किसी को मेरी गलतियों के बारे में लिखा और वह हर एक को यह बता रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह मेरी किस प्रकार सहायता कर सकता है। फिलहाल किसी चीज में मेरी रुचि नहीं है और मैं अनुभव कर रहा हूं मानों मैं अपनी प्रकृति के अंधेरे भाग में घुस रहा हूं।

यह बात श्रीअरविंद ने लिखी थी कि हम **तुम्हारी प्रकृति की "गंभीर त्रुटियों"** के बारे में अभिज्ञ हैं। कहीं तुम यह तो नहीं मान बैठे कि तुम्हारे अंदर एक भी नहीं है? अगर तुम उन्हें पहचानने के लिये अधिक प्रस्तुत होते तो हमें उनके संदर्भ में बोलने

की कम आवश्यकता होती। बहरहाल, मुझे तुमसे एक बात कहने का मौका मिला कि निश्चित रूप से तुम्हारे अंदर संभावनाएं हैं जिन्हें, अगर उचित रूप से विकसित किया जाये तो वे अच्छी सामर्थ्य बन सकती हैं—लेकिन फिलहाल वे संभावनाओं से अधिक कुछ नहीं हैं और अच्छा होगा कि तुम यह बात ध्यान में रखो कि उन्हें उपलब्धियों में बदलने के लिये बहुत समय, प्रयास और धैर्य की आवश्यकता होगी।

२३ जून १९३८

मुझे लगता है कि मैं किसी काम का नहीं हूं, कि मेरे अंदर सीखने की क्षमता बिल्कुल नहीं है।

क्षमता की अपेक्षा अभ्यास का अधिक अभाव है।

मैं आपसे कितनी दूर भटक गया हूं!

तुम्हारा प्राण इसलिये असंतुष्ट है क्योंकि मैंने उसकी यथेष्ट सराहना नहीं की। लेकिन तुम्हारा चैत्य हमेशा मेरे साथ है, वह खुश है कि तुम्हारे अंदर जिस चीज को बदलने की आवश्यकता है उसके बारे में मैं तुम्हें सचेतन बना रही हूं और वह इस बात का आग्रह करता है कि प्राण की अप्रसन्नता के बावजूद मैं ऐसा करूं।

६ जुलाई १९३८

प्यारी मां, आप जो चाहती हैं मैं वह सब करने की कोशिश करूंगा। आप कहां हैं?

उस मन के अज्ञान से परे निकल जाओ जो बिना जाने निर्णय करता है, अचंचल तथा विनम्र नीरव-निश्चलता की गहराइयों में डुबकी लगाओ : वहां तुम मुझे पाओगे।

२९ अगस्त १९३८

काम के बारे में—नियति के सामने झुक जाना ज्यादा अच्छा है या अन्याय के विरोध में लड़ना?

लड़ने से पहले तुम्हें इसके बारे में निश्चित होना चाहिये कि अन्याय कहां है। और केवल भगवान् को ही इसका ज्ञान हो सकता है।

२ सितंबर १९३८

मेरी प्यारी मां, 'त्र' के साथ घनिष्ठ होना वांछनीय होगा क्या ?

साधना के लिये किसी भी प्रकार की घनिष्ठता निश्चित रूप से अवांछनीय है।

मैं चाहूंगा कि आप मेरी साधना के बारे में कुछ कहें। मुझे यह जानने की जरूरत है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हमेशा यह जानने की इच्छा रखना अच्छा नहीं होता कि तुम जो कर रहे हो, अच्छा कर रहे हो, कि तुमने कोई प्रगति की है या नहीं, कि तुम किसी बिंदु पर पहुंच गये हो इत्यादि, इत्यादि। अहंकार की ओर ध्यान खींचकर अपने ''अहं'' को संतुष्ट करने का यह एक और अवसर है।
२७ सितंबर १९३८

गपशप करने के बारे में मैंने 'ज्ञ' से बातचीत की। इस बात से वह मुझसे बहुत नाराज हो गया और अब वह मेरे प्रति उदासीन हो गया है।

लोगों से बात करने का हमेशा एक ऐसा तरीका होता है जो उन्हें ठेस नहीं पहुंचाता।
१८ जनवरी १९३९

प्यारी मां, कृपया मुझे यह बतलाइये कि गोलकुंड के जिस कमरे की कंक्रीट मंगलवार को हो जानी चाहिये थी उसे पूरा होने में इतना समय क्यों लगा। मुझे अपनी भूलों का पता होना चाहिये।

काम ठीक तरह से नहीं चल रहा क्योंकि गोलकुंड में असामंजस्य तथा असहमति का वातावरण है जो शक्ति को प्रभावशाली रूप से काम करने से रोकता है। अगर हर एक अपनी पसंदों और नापसंदों को जीतने की कोशिश करे तो काम कहीं अधिक अच्छी तरह चलेगा।
२२ जनवरी १९३९

पहले की तरह क्या मैं आपसे दोपहर को मिल नहीं पाऊंगा और आपके साथ बातचीत न कर पाऊंगा ? कई बार आपसे बहुत-सी बातें पूछनी होती हैं।

जब बाहरी संपर्क संभव न हो तभी आंतरिक संपर्क प्राप्त करने और उसे विकसित करने का समय होता है।
२५ अप्रैल १९३९

आज मेरा जन्मदिन है। मैं चाहता हूं कि आजका दिन अधिक आध्यात्मिक जीवन का आरंभ हो। अतः कुछ करना चाहिये। कृपया मुझे यह बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिये ?

मन से तुम यह निश्चित नहीं कर सकते कि क्या करना चाहिये। निष्कपट तथा निरंतर अभीप्सा में यह एक सहज गतिविधि होनी चाहिये।
२२ मई १९३९

माताजी, मैं देखता हूं कि शाम को ध्यान के समय आपको मच्छर काटते हैं। क्या आप मुझे पंखे से उन्हें उड़ाने की अनुमति देंगी ?

नहीं, पंखे का हिलना मच्छरों से ज्यादा कष्टप्रद होगा।
१२ जून १९३९

हे दिव्य मां, वर दीजिये कि मैं अपनी अंतरात्मा के एकांत में प्रवेश करूं।

निस्संदेह मुझे पाने का यह सबसे निश्चित तरीका है।
४ मई १९४०

जब व्यक्ति चीजों के बारे में अपने ही निर्णय पर निर्भर करता है तब वह भागवत इच्छा को पहचान और जान नहीं सकता।
१३ जुलाई १९४०

मुझे बहुत आश्चर्य है कि लोग आपको इस तरह की गलत रिपोर्ट देते हैं; और यह बड़े खेद की बात है कि इस तरह की चीजें काम के आरंभ में हों। मुझे आशा है कि अभीतक आपको मुझपर विश्वास है।

रिपोर्ट मुझे कुछ नहीं बताती—मैं कभी उनके आधार पर निर्णय नहीं लेती। और औरों से मैं जो कुछ सुनती हूं उसके कारण किसीसे भी मेरा विश्वास नहीं डिग पाता।
९ जनवरी १९४१

माताजी, जब से मैंने गणित शुरू की है, बहुत बार मुझे सिरदर्द होता है। मुझे धीरे-धीरे बढ़ना चाहिये और हर पाठ पर दो या तीन सप्ताह लगाने चाहियें।

यह **एकदम असंभव** है।

चूंकि गणित का अध्ययन तुम्हें थका देता है अतः उसे बंद कर देना सबसे अच्छा होगा।
२० जनवरी १९४१

आपके ख्याल से थकान बहुत अधिक मानसिक कार्य से आती है क्या ?

नहीं, यह **मानसिक तमस्** से आती है।
२१ जनवरी १९४१

मेरे अंदर मानसिक शांति इसलिये नहीं है कि मैं अपनी पढ़ाई के बारे में चिंतित रहता हूं। मुझे गणित बहुत कठिन लगती है। मेरे अंदर वह आंतरिक शांति नहीं है। मुझे आशा है कि अभी मैंने जो कुछ लिखा आप उसके बारे में कुछ कहेंगी।

तुमने खुद इन विषयों के अध्ययन की मांग की थी। मुझे मालूम नहीं कि अब तुम शांति के अभाव की शिकायत क्यों कर रहे हो। लेकिन अगर तुम्हें लगे कि तुम बहुत अधिक काम कर रहे हो तो तुम किसी एक विषय को छोड़ सकते हो।
८ मार्च १९४१

जी, गणित का अध्ययन शुरू करने की बात पूछना मेरी गलती थी। मैं उस मनोवृत्ति को फिर से अपनाना चाहता हूं कि केवल वही करूं जो आप चाहती हैं—आठ घंटे बिल्डिंग विभाग में काम; यह आपकी इच्छा है। इस काम के अतिरिक्त आप मुझसे क्या करवाना चाहती हैं ?

मुझे ऐसा लगता है कि बिल्डिंग के काम के अतिरिक्त अगर तुम अध्ययन करना चाहो तो बिना हड़बड़ी के, सावधानी तथा गंभीरता के साथ श्रीअरविंद की किताबें पढ़ना कहीं अधिक उपयुक्त होगा। तुम्हारी साधना के लिये और किसी भी चीज से अधिक यह तुम्हारी सहायता करेगा।
९ मार्च १९४१

कइयों ने मुझे अपने लंबे बाल कटवा देने के लिये कहा है। आपकी क्या राय है?

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
१४ अक्तूबर १९४७

फिलहाल मैं आपसे बहुत दूरी का अनुभव कर रहा हूं। हमारा पहला संबंध—जब मुझे आपपर विश्वास था और आपको मुझपर—अब नहीं रहा। मैं कामनाओं से भरा हूं और केवल उन्हें संतुष्ट करने की कोशिश में लगा रहता हूं।

चूंकि तुम अपनी वर्तमान अवस्था के बारे में अभिज्ञ हो अतः अब क्रिया करने और उन प्रभावों से बच निकलने का समय आ गया है जो तुम्हें मुझसे अलग करते और दुःखी बना देते हैं। अगर तुम तुरंत क्रिया करो तो कुछ भी नहीं गंवाते।
२३ अक्तूबर १९४७

माताजी, अभी-अभी मैं निराशा से भरा हुआ अनुभव कर रहा हूं और आपका सहारा नहीं पा रहा। मेरा मन तनाव से भरा है और यह मुझे बीमार बना रहा है।

निस्संदेह, किसीको भी बीमार बना देने के लिये यह काफी है!...

दो स्वामियों को एक साथ संतुष्ट करना संभव नहीं। तुमने अपने अहं और उसकी कामनाओं को संतुष्ट करना चाहा और तुम अपनी अंतरात्मा से दूर हट गये—अपनी अंतरात्मा को फिर से ढूंढ़ निकालो और तुम मुझे पा लोगे, मैं हटी नहीं हूं।
७ नवंबर १९४७

मैं यह मानता हूं कि मैं अपनी अंतरात्मा से दूर हट गया हूं और यह भी कि वहीं मैं आपको फिर से पा सकता हूं। यह सब लिखने का मेरा उद्देश्य था उसे फिर से पाने के लिये आपकी सहायता की मांग करना।

मेरी समस्त सहायता निष्फल होगी जबतक तुम अपनी दुर्बलताओं को जीतने का निश्चय न कर लो।

नवंबर १९४७

माताजी, क्या आप हम दोनों को चार रुपये मासिक देंगी ताकि हम कुछ चीजें खरीद सकें या सिनेमा जा सकें?

अगर मैं तुम दोनों को दो-दो रुपये दूं तो मुझे इसका कोई तर्कसंगत कारण नहीं दीखता कि मैं हर एक आश्रमवासी को प्रति मास दो रुपये जेब-खर्च क्यों न दूं, और इसका अर्थ होगा हर महीने **कम-से-कम** पंद्रह सौ रुपये।

अधिक टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

जून १९४८

मैं बंबई जाना चाहता हूं; ऐसी बात नहीं है कि मैं यहां दुःखी हूं, बात इससे उल्टी है, मैं बहुत ही आराम से जीवन बिताता हूं। मुझे यहां के जीवन और बाहर के जीवन में तुलना करने की तीव्र आवश्यकता मालूम पड़ रही है। मुझे परिवर्तन की जरूरत है और इस परिवर्तन के लिये मुझे बाहरी जीवन जानना चाहिये।

तुम जाना चाहो तो जा सकते हो, लेकिन चूंकि मैं यह नहीं देख पाती कि इससे तुम्हारी निम्नतर सत्ता पर विजय पाने और तुम्हारे अहं की सीमाओं के परे जाने में कैसे सहायता मिल सकती है अतः इस मामले में मुझसे किसी तरह की आर्थिक सहायता की अपेक्षा न करना।

२८ नवंबर १९४८

क्या मैं मद्रास जाकर शहर और आसपास का इलाका देख सकता हूं? मेरी बहन सपरिवार वहीं रहती है। मैं दर्शन से पहले वापिस आ जाऊंगा।

तुम जाना चाहो तो जा सकते हो, लेकिन तुम्हारे परिवार को आवश्यक रुपया देना होगा। मुझसे इसकी आशा मत रखो क्योंकि मैं तुम्हें इस काम के लिये कुछ भी नहीं दूंगी और मैं किसी भी शिष्य या आश्रमवासी से, खास तौर पर 'क्ष' से, पैसे मांगने की मनाही करती हूं।
४ नवंबर १९४९

''प्रार्थना और ध्यान'' पर टिप्पणियां

(सभी निम्नलिखित पत्र माताजी की पुस्तक ''प्रार्थना और ध्यान'' से संबंधित हैं। इन प्रश्नों को प्रार्थनाओं की तिथि के क्रमानुसार रखा गया है।)

> *''अब भी दिन में कितनी ही बार मैं ऐसे कर्म करती हूं जो 'तुझे' समर्पित नहीं होते।''* *(२ नवंबर १९१२)*
>
> *भगवान् के साथ सायुज्य पा लेने के बाद भी क्या मनुष्य भगवान् को समर्पित किये बिना कर्म कर सकता है?*

निश्चित रूप से, सायुज्य तथा समर्पण बहुत भिन्न वस्तुएं हैं।
८ नवंबर १९३४

> *लेकिन समर्पण के पहले सायुज्य की अनुभूति करना संभव है क्या?*

सत्ता का जो हिस्सा सायुज्य का अनुभव करता है वह वह नहीं है जो समर्पित नहीं है।
९ नवंबर १९३४

> *इस प्रार्थना में आप लिखती हैं: ''अभी तक मैं उस तादात्म्य से दूर, निस्संदेह बहुत दूर हूं जिसमें मैं अपने 'मैं' की धारणा को पूर्णतया खो दूंगी।'' और साथ ही: ''और कितनी बार जब मैं उसका उच्चारण करती हूं ('मैं' का) तब तू ही मेरे अंदर से बोलता है, क्योंकि मैं पृथक्ता का भाव खो चुकी हूं।''* *(१९ नवंबर १९१२)*
>
> *माताजी, ''पृथक्ता के भाव को खोना'' तथा ''तादात्म्य'' में अंतर है क्या?*

पृथक्ता के भाव को खोना तादात्म्य से पहले का अंतिम चरण है और स्वयं तादात्म्य के अंदर कई सोपान हैं।

२४ सितंबर १९३४

२६ नवंबर १९१२ की प्रार्थना में आप कहती हैं, "प्रायः पूरी तरह से 'मैं' और 'मेरा' का स्थूल भ्रम खो बैठी हूं।" ३ दिसंबर १९१२ की प्रार्थना में आप कहती हैं : "जहांतक मेरी मनोवृत्ति तुझे मेरे ऊपर और मेरे अंदर कार्य करने देती है, तेरी सर्वशक्तिमत्ता असीम है।"
तादात्म्य के बाद भी मनोवृत्ति पूरी तरह से भगवान् को उस तरह कार्य करने नहीं देती जिस तरह वे चाहते हैं !

सभी वस्तुओं में स्तर होते हैं, और जो आज पूर्ण है वह कल पूर्ण नहीं प्रतीत होता।

७ नवंबर १९३४

"जब किसी बात को जानना आवश्यक होता है तो मनुष्य उसे जान ही लेता है और मन तेरे प्रबोधन के प्रति जितना अधिक निष्क्रिय हो, उतनी ही अधिक स्पष्ट तथा समुचित रूप से उस प्रबोधन की अभिव्यक्ति होती है।"

(३ दिसंबर १९१२)

माताजी, यह कब संभव है ? मैं बहुधा भूलें करता हूं; अगर मैं जान पाता कि हर बार किस चीज की आवश्यकता है तो यह अद्‌भुत होता !

ऐसा केवल तभी हो सकता है जब व्यक्ति अपनी सभी व्यक्तिगत अभिरुचियों को त्याग दे।

२६ सितंबर १९३४

"क्योंकि जो कहा गया था उसे मैं अब दोहरा नहीं पाऊंगी।"

(३ दिसंबर १९१२)

ऐसा क्यों होता है ?

क्योंकि स्मरण-शक्ति मन की चीज है और यहां मन नहीं बल्कि उससे परे की चेतना बोल रही थी।

२८ सितंबर १९३४

"हां, तुझे खोजने के लिये न तो हमारे अंदर बहुत अधिक उत्कंठा ही होनी चाहिये, न हमें बहुत अधिक प्रयास ही करना चाहिये; प्रयास तथा उत्कंठा तेरे सामने पर्दा बनकर आ जाते हैं; हमें तेरे दर्शन की भी इच्छा नहीं करनी चाहिये।" (५ दिसंबर १९१२)

क्या यह प्रत्येक के लिये सच है ? मैंने सोचा कि हमें यह सब करना होगा।

निश्चित रूप से नहीं।

इसके अतिरिक्त, एक सामान्य नियम के तौर पर, तुम्हें कभी मेरी अनुभूतियों की नकल करने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। मैंने भगवान् के साथ सायुज्य पाने के बाद इन्हें लिखना शुरू किया था, जिस अवस्था की प्राप्ति से तुम अभी बहुत दूर हो।

अक्तूबर १९३४

"बिना जल्दबाजी, बिना चंचलता के मैं एक और पर्दे के फटने की, तेरे साथ अधिक पूर्ण ऐक्य पाने की प्रतीक्षा करती हूं। मैं जानती हूं कि यह पर्दा छोटी-छोटी अपूर्णताओं और असंख्य आसक्तियों के एक संपूर्ण ढेर से बना है।"

(११ दिसंबर १९१२)

मेरे ख्याल से यहां आपने जिस पर्दे की बात कही है वह परमोच्च तथा अंधकारमय जड़-भौतिक जगत् के बीच का पर्दा है—लेकिन इससे आपका कोई वास्ता नहीं।

अपना काम करने के लिये मुझे जड़-भौतिक जगत् तथा उसकी अपूर्णताओं के साथ तादात्म्य साधना पड़ा।

६ नवंबर १९३४

"पर्दे के पीछे से अभी से आनंद का एक निःशब्द संगीत सुनायी दे रहा है जो तेरी उदात्त उपस्थिति को प्रकट करता है।" (११ दिसंबर १९१२)

क्या इसका यह अर्थ है कि एक आनंदमय, निःशब्द संगीत है जो आपकी उदात्त उपस्थिति धारण करता है ?

समस्त आभासों के पीछे शक्तियों तथा गतिविधियों का ऐसा सामंजस्य है जो कुछ-कुछ एक पूर्ण स्वरसंगति में विभिन्न प्रकार के वाद्यों के सामंजस्य की भांति होता है।

३० जुलाई १९३४

"मैं अंतहीन शांति, छायाहीन प्रकाश, पूर्ण सामंजस्य, निश्चयात्मकता, विश्राम तथा परम धन्यता हूं।" (५ फरवरी १९१३)

आध्यात्मिक अर्थ में "निश्चयात्मकता" का क्या अर्थ होता है?

तुम्हें जिसपर श्रद्धा हो, उसपर ऐसी श्रद्धा जिसे आध्यात्मिक अनुभव पुष्ट करता हो।
३१ जुलाई १९३४

"जो तुझे उत्कटता के साथ खोजते हैं उन सभी को यह जानना चाहिये कि जब कभी तेरी आवश्यकता होती है तू वहां उपस्थित होता है; और अगर उनके अंदर यह परम श्रद्धा हो कि वे तेरी खोज छोड़ दें और हर क्षण स्वयं को तेरी सेवा में पूरी तरह न्यौछावर कर तेरी प्रतीक्षा करें तो जब कभी तेरी आवश्यकता होगी, तू वहां उपस्थित होगा।" (१० फरवरी १९१३)

क्या यह मेरे लिये नहीं है।

यह प्रत्येक के लिये है—तुम्हारे लिये, साथ-साथ औरों के लिये भी—जो इस मनोवृत्ति को पूर्ण निष्कपटता के साथ स्वीकार करने में समर्थ हो। लेकिन मुझे इसपर ध्यान खींचना चाहिये कि यह प्रयास करने से कहीं अधिक मुश्किल है।
१४ नवंबर १९३४

"और इस सरलता में महानतम शक्ति है, वह शक्ति जिसमें कम-से-कम मिश्रण होता है और जो हानिकारक प्रतिक्रियाओं को कम-से-कम उभारती है।" (१२ फरवरी १९१३)

तब तो मेरे ख्याल से यह सरलता अच्छी नहीं है, क्योंकि इसमें थोड़ा मिश्रण है?

मूर्ख! जगत् अभी जैसा है उसमें कौन-सी चीज बिना मिश्रण के हो सकती है भला? कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं!
अगस्त १९३४

"प्राणशक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिये, यह कर्म-पथ पर प्रलोभक है, और हमेशा उसके जाल में गिरने का खतरा रहता है क्योंकि यह तात्कालिक परिणामों का स्वाद चखा देती है।" (१२ फरवरी १९१३)

तो हमें प्राणशक्ति पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ?

चूंकि हम तात्कालिक तथा प्रत्यक्ष परिणाम चाहते हैं इस कारण हम अपने-आपको प्राण के द्वारा पथभ्रष्ट होने देते हैं।

अगस्त १९३४

''जैसे ही मुझपर भौतिक दायित्व नहीं रहते, इन सब चीजों से संबंध रखनेवाले सभी विचार मुझसे कोसों दूर भाग जाते हैं और मैं ऐकांतिक तथा पूर्ण रूप से तेरे साथ और तेरी सेवा में तल्लीन रहती हूं।'' (११ मई १९१३)

यहां मैं यह नहीं समझ पाया कि ''तेरी सेवा में'' से आपका क्या आशय है। चूंकि पहले आपने कहा : ''जैसे ही मुझपर भौतिक दायित्व नहीं रहते।''

मैंने ऐसा इसलिये लिखा क्योंकि एक समय मैं घर पर नहीं बल्कि अपनी मां के साथ रहती थी, अतः मैं गृहस्वामिनी के दायित्वों से मुक्त हो गयी थी जिसे यह देखना होता है कि सब कुछ भौतिक रूप में व्यवस्थित है।

अगस्त १९३४

''तेरी परम इच्छा के बारे में सचेतन होकर और अपनी इच्छा को तेरी इच्छा के साथ तदात्म करके ही सच्ची स्वतंत्रता और सर्व-शक्तिमत्ता का रहस्य, शक्तियों के पुनर्नवीकरण और सत्ता के रूपांतरण का रहस्य पाया जा सकता है।''

(११ मई १९१३)

''शक्तियों के पुनर्नवीकरण का रहस्य'' का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।

भौतिक तथा प्राणिक शक्तियां विकृत हैं—उनका पुनर्नवीकरण करना होगा ताकि वे भागवत इच्छा को अभिव्यक्त करने में सक्षम हों।

अगस्त १९३४

''तेरी ओर अभिमुख होना, तेरे साथ तादात्म्य पाना, तेरे अंदर और तेरे लिये जीना ही परमोच्च आनंद, विशुद्ध प्रसन्नता, विकाररहित शांति है; यह अनंत को श्वास में भरना, अनंतता में उड़ान भरना, अपनी सीमाओं को और अनुभव न करना, देश और काल से परे चले जाना है। भला मनुष्य इन वरदानों से ऐसे क्यों भागते हैं मानों वे उनसे भय खाते हों ?'' (१८ जून १९१३)

मनुष्य उस मिथ्यात्व तथा अज्ञान से ऊपर उठना क्यों नहीं चाहते जिसका राज संसार में चारों ओर फैला है ?

क्योंकि वे मिथ्यात्व, प्राणिक उत्तेजना, उग्रता, नाटक से प्रेम करते हैं। शाश्वतता की शांति उन्हें मृत्यु के जैसी खाली-खाली प्रतीत होती है क्योंकि वे ऐकांतिक रूप से मन और प्राण में जीते हैं।

२९ जनवरी १९३५

''हमारी परम वास्तविकता में तू ही हम है।'' (१५ अगस्त १९१३)

यहां मैं ''हमारी परम वास्तविकता'' का अर्थ नहीं समझा, क्योंकि मैंने सोचा कि केवल एक ही सद्वस्तु या परम वास्तविकता है।

मैं वास्तविकता शब्द का प्रयोग सत्ता के सत्य के अर्थ में करती हूं।

२५ फरवरी १९३५

''निस्संदेह व्यक्ति को अपने अवचेतन पर उसी तरह नियंत्रण रखना सीखना चाहिये जिस भांति व्यक्ति अपने सचेतन विचार पर नियंत्रण रखता है। इसको पाने के कई तरीके होंगे... निश्चय ही अधिक तेजी से प्रभाव डालनेवाली कोई वस्तु है।'' (२५ नवंबर १९१३)

यह ''वस्तु'' क्या है जो अवचेतन पर विजय पा सकती है ?

अतिमानस का अवतरण।

२८ अप्रैल १९३५

''चेतना में कितने विभिन्न स्तर हैं ! यह शब्द उसी अवस्था के लिये सुरक्षित रखना चाहिये जो किसी सत्ता में तेरी उपस्थिति द्वारा आलोकित हो, जो तेरे साथ तदात्म हो गयी हो और जो तेरी निरपेक्ष चेतना में भाग लेती हो।''

(१३ मार्च १९१४)

मेरा मतलब है कि चेतना शब्द केवल उसीके लिये सुरक्षित रखना चाहिये जो दिव्य उपस्थिति के प्रति सचेतन हो।

१९ अप्रैल १९३५

"इस अवस्था के अतिरिक्त चेतना के अनंत स्तर हैं जो ठीक नीचे पूर्ण अंधकार तक पहुंच जाते हैं, उस वास्तविक निश्चेतना तक जो ऐसा क्षेत्र हो जो अभी तक तेरे भागवत प्रेम के प्रकाश से अछूता हो (लेकिन यह भौतिक पदार्थ में असंभाव्य प्रतीत होता है) या जो अविद्या के किसी कारण से हमारे व्यक्तिगत अंतर्दर्शन के क्षेत्र से बाहर है।" (१३ मार्च १९१४)

यह "वास्तविक निश्चेतना" क्या है जिसका आपने यहां उल्लेख किया है?

निश्चेतना की निश्चेतना।

२१ अप्रैल १९३५

"उनकी उपस्थिति में, जो संपूर्ण रूप से तेरे सेवक हैं, जिन्होंने तेरी उपस्थिति की पूर्ण चेतना पा ली है, मैं इस बात से अभिज्ञ हुई कि मैं अभी उससे दूर, बहुत दूर हूं जिसे चरितार्थ करने के लिये मैं उत्कंठित हूं।"

(३० मार्च १९१४)

इस पृथ्वी पर क्या कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो पहले ही से संपूर्ण रूप से आपके सेवक हैं?

मैंने यह श्रीअरविंद के साथ अपनी पहली भेंट के बाद लिखा था।

१८ जुलाई १९३५

"वर दे कि मेरी चेतना तेरी चेतना के साथ एकात्म हो जाये ताकि एकमात्र तू ही इस क्षणभंगुर तथा नश्वर यंत्र के द्वारा कार्य करनेवाली इच्छा बन जाये।"

(९ मई १९१४)

आप "इस क्षणभंगुर तथा नश्वर यंत्र" क्यों कहती हैं भला? क्या इसलिये कि यह सचमुच एक दिन चला जायेगा?

यहां जिस यंत्र का प्रश्न है वह पृथ्वी पर है, जिसका शाश्वत चेतना की तुलना में क्षणभंगुर अस्तित्व है।

१ जून १९३५

"और अब पृथ्वी पर मैं खेलता हुआ प्रसन्नचित्त बालक हूं।"

(१७ मई १९१४)

माताजी, मेरे ख्याल से यह "मैं" से मतलब है आप, अतः विशेषण का स्त्रीलिंग रूप क्यों नहीं है?

तुम्हें हिंदू-परंपरा का ज्ञान होना चाहिये कि संसार "खेलते हुए दिव्य बालक" का परिणाम है। उसीके साथ मैंने अपने-आपको एकात्म किया था।
५ नवंबर १९३४

"समस्त व्यक्तिगत क्षमताएं सो रही हैं और चेतना अभीतक परात्पर स्थितियों में पूरी तरह से जाग्रत् नहीं हुई है; यानी, कभी-कभी वह जागती है और बीच-बीच में होता है निद्राकाल।" (१९ मई १९१४)

क्या इसका यह अर्थ है कि परात्पर स्थितियों में चेतना के जाग्रत् होने से पहले एक ऐसा काल होता है जिसमें चेतना सोयी रहती है?

प्रत्येक व्यक्ति में चेतना तबतक सोयी रहती है जबतक प्रबुद्ध नहीं की जाती।

इस तरह चेतना कबतक सोती रहती है?

एक क्षण या शाश्वत कालतक।
१० अप्रैल १९३५

तब फिर यथार्थतः इसका अर्थ क्या है?

वैश्व व्यवस्था की कुछ अनुभूतियां ऐसी होती हैं जिन्हें केवल उन्हींके सम्मुख प्रकट किया जा सकता है जो उन्हें प्राप्त कर चुके हों।
१३ अप्रैल १९३५

"तूने एक वचन दिया है, तूने इन जगतों में उन्हींको और उसी वस्तु को भेजा है जो इस वचन को पूरा कर सकते हैं।" (१४ जून १९१४)

"उस वस्तु से" आपका क्या मतलब है?

बल, शक्ति, चेतना, ज्ञान, प्रेम, इत्यादि, इत्यादि।
७ अप्रैल १९३६

"लेकिन धार्मिक सत्ता प्रेम की एक महान् अभीप्सा के साथ तेरी ओर अभिमुख हो रही है भगवन्, और तेरी सहायता के लिये प्रार्थना कर रही है।"

(२४ जून १९१४)

"धार्मिक सत्ता" से आपका क्या आशय है?

वह सत्ता जिसमें धार्मिक, भक्तिपूर्ण भावनाएं हैं।

२ अप्रैल १९३६

"इस या उस प्रकार के होने की इच्छा करने में भला कौन-सी बुद्धिमानी है?"

(२५ जून १९१४)

इस अनुच्छेद का अर्थ क्या है?

बुद्धिमानी इसमें है कि भगवान् जो चाहते हैं वही चाहो, न कि अपने लिये स्वयं निश्चय करो।

१३ दिसंबर १९३३

"हे भागवत शक्ति, परम प्रबोधक, हमारी प्रार्थना पर कान दे, हमसे दूर मत जा, पीछे मत हट, युद्ध करने में हमारी सहायता कर।" (८ जुलाई १९१४)

क्या भगवान् कभी भी हमसे दूर या पीछे हट जाते हैं?

नहीं, हम ही उनसे पीछे हट जाते हैं।

११ जुलाई १९३५

तब फिर "हमसे दूर मत जा, पीछे मत हट" से आपका क्या आशय है?

मैं स्वयं भगवान् को नहीं बल्कि भगवान् की एक शक्ति, उनके निर्गत अंश को संबोधित कर रही थी जो पृथ्वी पर कार्य-विशेष के लिये उतरा था और जो अपने-आपको पीछे खींच सकता था यदि उसने यह देखा होता कि वह जिस कार्य को करने के लिये आया था उसे करना असंभव है।

१३ जुलाई १९३५

"पार्थिव उपलब्धियां हमारी दृष्टि में आसानी से बहुत महत्त्व धारण कर लेती हैं।" (१७ जुलाई १९१४)

"पार्थिव उपलब्धियां" से आपका क्या मतलब है?

वह कार्य जो हम पृथ्वी पर करते हैं।

३० जनवरी १९३६

"संसार दो विरोधी शक्तियों में विभक्त हो गया है जो प्रधानता प्राप्त करने के लिये संघर्ष कर रही हैं और दोनों ही समान रूप से तेरे विधान के प्रतिकूल हैं भगवन्।" (९ सितंबर १९१४)

ये दो शक्तियां कौन-सी हैं?

अगर तुमने यह प्रार्थना सावधानी से पढ़ी होती तो तुम्हें यह प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं होती—दो शक्तियां हैं—**रूढ़िवाद** और **विनाश**।

२२ मई १९३५

"बसंत की बीमारियों की दवा चेरी-पुष्प में ही निहित है।" (८ अप्रैल १९१७)

इसका क्या अर्थ है?

कुछ बीमारियां हैं जो लोगों को विशेष रूप से बसंत में होती हैं—फोड़े, रक्त की अशुद्धियां इत्यादि—जिन्हें जापानी चेरी के फूलों की चाय से ठीक किया करते थे। जब मुझे अनुभूति हुई तो मुझे इसका पता न था।

११ फरवरी १९३६

पत्रमाला २

पत्रमाला २

(एक फ्रेंच महिला के नाम जो ६६ वर्ष की उम्र में १९३७ और १९४१ के बीच आश्रम में रही थीं)

कोई चीज अपरिहार्य नहीं है। हर क्षण उच्चतर लोक से भौतिक लोक में हस्तक्षेप हो सकता है जो परिस्थितियों के मार्ग को बदल सकता है। लेकिन इस स्थिति-विशेष में तुम्हारी भागवत कृपा पर श्रद्धा तथा डॉक्टरों की राय पर आश्रित बहुत शक्तिशाली मानसिक रचना के बीच संघर्ष है।

इस डॉक्टरी सुझाव की शक्ति इस तथ्य में है कि यह अपने-आपको अवचेतना में पैठा देता है और वहां से शरीर पर क्रिया करता है, उसे सचेतन मन भी नहीं पकड़ सकता जबतक कि उसे गुप्तचर की जागरूकता के साथ अवचेतना को शुद्ध करने का अभ्यास न हो।

तो यह बात है—मैं तुम्हें यह वचन नहीं दे सकती कि कृपा पर तुम्हारी श्रद्धा तीव्र होगी, इतनी अटल होगी कि इन हानिकर डॉक्टरी संकेतों के प्रभाव को जीत ले और मुझे लगता है कि मुझे यह कहने का अधिकार नहीं है कि "यह कुछ भी नहीं है," जब कि तुम्हारी भौतिक चेतना में हर चीज "संकट" की पुकार लगा रही है!

विश्वास रखो कि हमारी सहायता और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

२४ मार्च १९३७

निश्चय ही हम तुम्हें जून तक यहां रखने से खुश होंगे।

तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक है कि ये 'बंद दरवाजे' कल्पना का प्रभाव हैं। उनमें से निकल जाने की इच्छा में हमेशा उन्हें खोलने की शक्ति होती है, जैसे विजय की निश्चिति मार्ग को आलोकित करती है।

१२ अप्रैल १९३७

निश्चय ही जब तुम वापिस आने के लिये तैयार हो, जब तुम अपने बेटे के लिये जो करना चाहती हो वह कर लो तो बस हमें खबर कर देना और हम तुम्हारा स्वागत करने के लिये खुश होंगे।

आंतरिक निश्चलता और शांति और भगवान् की ओर तीव्र अभीप्सा, हम जो सहायता दे सकते हैं उसे पाने के लिये सर्वोत्तम तैयारी हैं। तुम हमसे उसे पाने के बारे में निश्चित रहो।

२९ अप्रैल १९३७

साधारणतः सहसा होनेवाले परिवर्तन न तो सर्वांगीण होते हैं न चिरस्थायी। वे प्राण में बिजली की कौंध होते हैं जो बहुधा धुंए में विलीन हो जाते हैं। धीरे-धीरे, स्थिर रूप से किया गया प्रयास और अविच्छिन्न प्रगति अधिक विश्वसनीय है।

अपनी आत्मा के शोध के लिये, नींद में क्या हुआ था उसे याद करना अनिवार्य नहीं है।

मैं खुश हूं कि तुम स्वस्थ अनुभव कर रही हो।

विश्वास रखो कि हमारी सहायता और संरक्षण हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१२ मई १९३७

अपने-आपको विशालता के भाव से अभिभूत न होने दो बल्कि उसमें खुशी से और शांति के साथ स्नान करो। अगर हम अपरिहार्य रूप से अपनी व्यक्तिगत चेतना की चारदीवारी में बंद होते तो यह सचमुच दुःखद और अभिभूत करनेवाला होता—लेकिन अनंत हमारे लिये खुला हुआ है, हमें बस उसमें डुबकी लगानी है।

२९ मई १९३७

श्रीअरविंद ने तुम्हारा पत्र पढ़ लिया है और वे मेरे साथ इस बात से सहमत हैं कि इतना आगे से योजना बनाना कठिन है क्योंकि परिस्थितियों के बारे में अनुमान करना बहुत कठिन है। फिर भी एक बात निश्चित है : श्रीअरविंद ने तुम्हें शिष्या के रूप में स्वीकार कर लिया है—यह इस बात से स्पष्ट है कि उन्होंने तुम्हें एक नया नाम दिया है, लेकिन शिष्या होने का यह आवश्यक अर्थ नहीं है कि तुम आश्रम में निवास करो। वस्तुतः आश्रम में रहनेवालों की अपेक्षा बाहर रहनेवाले शिष्य अधिक हैं। आश्रम में रहने के लिये कई शर्तें जरूरी हैं जिनमें से एक यह है कि आदमी का स्वास्थ्य इतना अच्छा हो कि वह यहां के अनुशासन का पालन कर सके, जो विशेष भोजन, परिचर्या आदि की व्यवस्था नहीं करता; ये व्यवस्थाएं दर्शकों के लिये, कुछ समय के लिये की जा सकती हैं किंतु कई कारणों से इन्हें स्थायी करना संभव नहीं है। अतः जब तुम लौटने के लिये तैयार हो तो हमें तीन-चार महीने पहले सूचना दे देना ताकि हम कोई व्यावहारिक व्यवस्था कर सकें।

रही बात वाचन की तो मेरा ख्याल है कि तुम्हारे लिये ज्यादा अच्छा होगा कि तुम अभी के लिये इस तनाव से बची रहो। मेरा ख्याल है कि तुम अभी जो अनौपचारिक कक्षाएं लेती हो वे काफी हैं।

मैं यह जानकर प्रसन्न हूं कि तुम स्वस्थ हो गयी हो और आशा करती हूं कि तुम अधिकाधिक स्वस्थ होती जाओगी।

५ जुलाई १९३७

मुझे खेद है कि पिछले कुछ दिनों से तुम दुःख का अनुभव कर रही हो। ऐसा होना नहीं चाहिये था। प्रकाश को हमेशा अपने साथ नयी प्रगति का आनंद लाना चाहिये। मेरा ख्याल है कि अब सब कुछ ठीक हो जायेगा।

१० जुलाई १९३७

चिंता न करो। तुमने जाने या अजाने कोई भूल नहीं की है। मैं भीतरी और बाहरी परिस्थितियों के समूह की बात कह रही थी, परिस्थितियों के ऐसे समूह की जो अनिवार्य रूप से पिछले समूह का परिणाम होता है और इसी तरह चलता रहता है। केवल योग-शक्ति, दिव्य चेतना की शक्ति ही परिणामों की इस शृंखला को तोड़ सकती है।

तुम्हें शांति-भरे हृदय और आशा-भरे मन के साथ जाना चाहिये। तुम्हें इस विश्वास के साथ जाना चाहिये कि हमारी सहायता और हमारी शक्ति तुम्हारे साथ जा रही हैं और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं और हमेशा रहेंगे।

१४ सितंबर १९३७

(यह शिष्या सितंबर १९३७ के अंत में फ्रांस चली गयीं और १९३८ के मार्च में फिर आश्रम आ गयीं और १९४१ तक रहीं।)

डरो मत; मैं आभासों के परे देख सकती हूं और नीरवता में या शब्दों के परे समझ सकती हूं।

मेरी भुजाएं हमेशा तुम्हें सहारा देने और मार्ग दिखाने के लिये तुम्हारे चारों ओर रहेंगी।

निश्चय ही तुम मेरी प्रिय बालिका हो, लेकिन मैं चाहती हूं कि वह प्रसन्न रहे, दुःखी नहीं; आलोकित रहे, अज्ञानी नहीं।

मेरे आशीर्वाद बहुत अधिक प्रेमपूर्वक तुम्हारे साथ रहते हैं।

१३ जून १९३८

चूंकि मैंने तुम्हें प्रणाम के समय नहीं देखा अतः मैं यह पूछने के लिये तुम्हें लिखने ही वाली थी कि कल के पत्र में तुमने जिस थकान का उल्लेख किया था वही तो इसका कारण नहीं है। और अभी-अभी मुझे तुम्हारा आज सवेरे का पत्र मिला। कैसी बुरी बात है कि तुम्हें बुखार आ गया! लेकिन क्यों? कोई कारण तो नहीं दिखायी देता। मैं आशा करती हूं कि यह जल्दी ही समाप्त हो जायेगा।

यह कहने की जरूरत नहीं है कि हमारी सहायता, हमारी शक्ति, हमारा संरक्षण और हमारे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहते हैं। तुम्हें अपने-आपको उनके अंदर शांत करनेवाले, स्वस्थ करनेवाले स्नान-कुंड की तरह निमज्जित करना चाहिये। मैं अपना स्नेह भी उनके साथ जोड़ती चलूं।

१७ जुलाई १९३८

मेरे लिये तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना कठिन है क्योंकि मुझे 'यूट्रोपीन' या उसके प्रभाव का कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है। लेकिन एक साधारण नियम के रूप में मुझे ऐसा लगता है कि जब तुम डॉक्टर के पास जाओ तो तुम्हें उसके कहे अनुसार करना चाहिये। वृक्क शोथ के रोगों में यह दवाई वर्जित है। तुम्हें डॉक्टर से यह आश्वासन मांगना चाहिये कि तुम्हें वृक्क शोथ नहीं है। यह संभव नहीं लगता।

हमारी सहायता और आशीर्वाद हमेशा सस्नेह तुम्हारे साथ हैं।

२० जुलाई १९३८

''भौतिक में अभीप्सा''[1] का यह फूल हमारे आशीर्वाद और प्रेम के साथ।

डॉक्टर के शब्दों से विचलित न होओ! रोग कभी गंभीर नहीं होते जबतक कि हम उन्हें ऐसा मान न लें। इसके अतिरिक्त मैं बहुत जल्दी यह सुनने की आशा कर रही हूं कि तुम अच्छी हो गयी हो।

२४ जुलाई १९३८

यह लो छोटा-सा ''नवजन्म''[2]।

तुम वस्तुतः बीमारी का इससे अच्छा क्या उपयोग कर सकती हो कि इसे एक अवसर मानो और अपने अंदर गहराई में जाओ और जागो, एक नयी, अधिक आलोकमय और अधिक सच्ची चेतना में जन्म लो।

हमारी सहायता और हमारे आशीर्वाद हमेशा सस्नेह तुम्हारे साथ हैं।

२८ जुलाई १९३८

श्रीअरविंद का और मेरा यह ख्याल है कि तुम्हारे लिये प्रणाम के लिये आने से

[1] एक तरह का पलास।

[2] माताजी द्वारा मरुआ को दिया हुआ नाम।

पहले एक सप्ताह प्रतीक्षा करना ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण होगा। और सप्ताह में दो बार का ध्यान तो तभी संभव होगा जब तुम दुर्बलता का जरा भी अनुभव न करो; क्योंकि अभी लोग बहुत हैं और भौतिक वातावरण श्वास लेने के लिये भारी है।

इसलिये हम तुम्हें और कुछ समय धीरज धरने की सलाह देते हैं ताकि अपने भौतिक बल को लौट आने के लिये समय दे सको। इसके लिये हमारी सहायता और हमारा संरक्षण तुम्हारे साथ हैं।

बहुत प्रेम के साथ।

२६ *अगस्त* १९३८

मुझे याद नहीं पड़ रहा कि मैंने श्रीअरविंद के किसी ऐसे उद्धरण का उल्लेख किया हो जिसमें उन्होंने वर्तमान घटनाओं की भविष्यवाणी की हो। मैंने कुछ ऐसे पृष्ठों की बात की थी जिनमें श्रीअरविंद ने जड़-पदार्थ को दिव्य बनाने के पृथ्वी पर अपने वर्तमान कार्य की एक संक्षिप्त-सी झांकी दी थी। मैंने तुमसे कहा था कि उन्होंने ''विचार और झांकियां'' के एक अध्याय में ऐसा संकेत दिया है।

२० *सितंबर* १९३८

चिंता न करो; तुमने नीरवता में बहुत आगे वह बात कही थी जिसे तुमने आज शाम को ''स्वीकार'' किया है। और मैंने हमेशा यही एक उत्तर दिया है: चिंता न करो, यह जरूरी नहीं है कि सभी उपहार भौतिक हों और निश्चय ही आत्म-दान सबसे अच्छा उपहार है।

२९ *सितंबर* १९३८

ये सहज प्रतिवर्ती क्रियाएं अवचेतना को प्रकट करती हैं। ऐसे सहज आवेशों को खोज लेने पर तुम धीरे-धीरे अवचेतना के अछूते वन के मार्ग को परिष्कृत कर सकती हो और उसमें प्रकाश ला सकती हो।

चिंता न करो और सबसे बढ़कर यह कि दुःखी न होओ! बारह तारीख को खुराक शायद कुछ ज्यादा तीव्र हो गयी थी और परिणामस्वरूप हजम करने में कुछ कठिनाई हुई। अगर तुम बस अचंचल रह सको, **बहुत अचंचल** तो सारी चीज बैठ जायेगी। तब प्रकाश हमेशा से ज्यादा प्रकाशमान और सुंदर प्रकट होगा।

भय न करो—किसी में वह शक्ति नहीं है जो तुम्हें मुझसे दूर ले जा सके क्योंकि मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं, तुम्हारे अंदर हूं।

सप्रेम।

१३ नवंबर १९३८

माताजी,

मैंने डॉक्टर के कहे अनुसार दवाई नहीं ली क्योंकि मैं आपको लिखनेवाली थी। मैं आपसे पूछे बिना कुछ न करूंगी। क्या मैं पैरिस के डॉक्टर 'क' की राय जानने के लिये उन्हें पत्र लिखूं?

हां, ज्यादा अच्छा हो कि अपने पैरिस के डॉक्टर से सलाह किये बिना कुछ न करो।

क्या मैं होम्योपैथिक डॉक्टर से सलाह करूं? मैं उसे नहीं जानती।

नहीं, जरूरी नहीं है; जितने कम हो सकें उतने कम डॉक्टर, जितनी कम हो सके उतनी कम दवाइयां!!

'क' मुझे आग्रहपूर्ण सलाह दे रहा है कि मैं 'जेनास्पीन' लूं। मेरी इच्छा नहीं है। मैं शामक नहीं लिया करती। उसका कहना है कि यह शामक नहीं, रक्त-संकुलता को दूर करनेवाली चीज है। मैं इस बारे में कुछ नहीं समझती। मैंने उससे कह दिया है कि मैं आपसे पूछूंगी।

नहीं, नहीं, कोई दवाइयां नहीं! जितनी अधिक दवाइयां ली जायें उतना ही वे शरीर के स्वाभाविक प्रतिरोध को कम करती हैं।

तनाव को दूर करने के लिये दस मिनट की आंतरिक और बाह्य सच्ची **अचंचलता** दुनिया भर की सभी दवाइयों से अधिक प्रभावकारी होती है। नीरवता में ही सबसे अधिक प्रभावकारी सहायता मिलती है।

हमारे आशीर्वाद के साथ।

३० जनवरी १९३९

सच कहा जाये तो मेरा ख्याल है कि डॉक्टर की बात ठीक है। तुम्हारी शिकायत स्नायविक है। मेरा मतलब यह है कि यह आंगिक नहीं क्रियागत विकार है। यह तथ्य कि तुम्हारे सिर में दर्द है इस बात को झुठलाता नहीं, क्योंकि स्नायविक सिर-दर्द भी हो सकता है और उससे बहुत अधिक कष्ट होता है। बहरहाल, स्नायविक हो या न हो, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अगर भगवान् के साथ तुम्हारा सतत संपर्क हो तो तुम पूरी तरह स्वस्थ हो जाओगी।

हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

अत्यधिक स्नेह के साथ।

९ फरवरी १९३९

सूची-वेध न लेना कितना अच्छा होगा ! है न ?

और बातों के बारे में चिंता न करो। भागवत कृपा हर चीज के, यहांतक कि दोषों के भी पीछे है और उसकी सहायता से ऐसी कोई चीज नहीं है जो प्रगति के लिये अवसर न बनायी जा सके।

हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

२३ मार्च १९३९

तुम अपने-आपको व्यर्थ में कितनी यातना दे रही हो ! मैं भली-भांति जानती थी कि तुम बैंकर के यहां भोजन के लिये जाया करती हो। मुझे उसमें तुम्हारी छोटी-मोटी संगीत-सभाओं या और ऐसी ही चीजों की तरह कोई गलती नहीं दिखायी दी। मैंने हमेशा यही सोचा है कि तुम जिससे चाहो मिल सकती हो और जहां चाहो जा सकती हो। मैंने इस बारे में तुम्हें एक बार सलाह दी है वह भी छोटी-सी सलाह, उससे बढ़कर कुछ नहीं। केवल एक बार बहुत ही यथार्थ मामले की ओर संकेत किया था।

मैं जल्दी यह चिट्ठी इस आशा से भेज रही हूं कि यह तुम्हारे लिये वह शांति और प्रशांति लेकर आयेगी जो मैं हमेशा तुम्हारे लिये चाहती हूं।

मेरे आशीर्वाद अविच्छिन्न रूप से तुम्हारे साथ हैं।

३ मई १९३९

मेरी प्यारी नन्हीं 'क',

अगर तुम चीजों को देखने की मेरी सच्ची दृष्टि चाहती हो तो मुझे तुमसे कहना होगा कि भागवत कृपा पर श्रद्धा और भरोसे की एक अच्छी मात्रा दुनिया भर की सभी गोलियों और सूची-वेधों से ज्यादा अच्छी है।

मेरे आशीर्वाद के साथ। मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

७ मई १९३९

मेरी प्यारी बेचारी 'क'

मुझे सचमुच खेद है कि मैं तुम्हें निराश कर रही हूं, लेकिन तुम जिस मुलाकात की इच्छा कर रही हो वह निश्चय ही युद्ध की समाप्ति से पहले नहीं हो सकती।

और फिर आंतरिक विकास के लिये मैं शब्दों को जरूरी नहीं मानती। नीरवता में हमारी समस्त सहायता अपने सबसे अधिक सशक्त रूप में रहती है।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

६ सितंबर १९३९

मेरी नन्हीं 'क',

यह असंभव है कि तुम किसीके साथ बैठकर ध्यान करो और **उसमें से निकलनेवाले स्पंदन तुम्हें प्रभावित न करें**, ठीक उसी तरह जैसे तुम किसी कमरे की हवा में सांस लिये बिना प्रवेश नहीं कर सकते।

जब किसी का वातावरण हानिकर तथा प्रभाव बुरा होता है (मैंने तुम्हें इसकी चेतावनी दी थी) तो तुम्हें इस बात की बहुत सावधानी रखनी चाहिये कि उस वातावरण में ध्यान करके अपने-आपको ग्रहणशीलता की अवस्था में न रखो!

यह नैतिक दृष्टि से गलत नहीं है परंतु अज्ञान की क्रिया है। लेकिन यह कहने की जरूरत नहीं कि यह तुम्हें मेरी छोटी-सी 'क' होने से नहीं रोक सकता या मेरी भुजाओं को तुम्हें घेरने और तुम्हारी रक्षा करने से नहीं रोक सकता।

१९ *सितंबर* १९३९

तुम अपना मौन क्यों भंग करना चाहती हो? नीरवता सभी सच्ची आध्यात्मिक उपलब्धियों का द्वार है।

और मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं। नीरवता में मेरी शक्ति में से खींचो, यह तुम्हें कभी धोखा न देगी।

हमारे आशीर्वाद।

२३ *दिसंबर* १९३९

मेरी प्यारी नन्हीं 'क',

जब ईर्ष्या का भूत तुम्हारे कान में कुछ फुसफुसाता है तो तुम्हें बहुत सावधान रहना चाहिये कि उसकी बात पर कान न दो।

जब युद्ध शुरू हुआ तो मैंने तुमसे कहा था कि जबतक यह समाप्त न हो जाये मैं आश्रमवासियों से मुलाकात न करूंगी। मैंने जो कहा था वही कर रही हूं। सभी नियमित मुलाकातें बंद हैं। कभी-कदास, हमेशा नहीं, मैं किसी दर्शक से उसके जाने से पहले मिलती हूं। इसके अतिरिक्त इतने महीनों में दो-तीन ही अपवाद हुए हैं। **उनमें से एक मुलाकात तुम्हारे साथ**, तुम्हारे मामले में हुई थी। अगर किसीने तुमसे इससे उल्टी बात कही है तो उसपर विश्वास क्यों करती हो? तुम्हें तुरंत इन छायाओं को अपने से बहुत दूर भगा देना चाहिये और हमेशा अटल विश्वास की शांति में निवास करना चाहिये।

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं। अगर तुम ध्यान से सुनो तो तुम अपने प्रश्नों के लिये मेरे उत्तर सुनोगी। जब तुम्हारे अंदर सब कुछ नीरव और अचंचल हो जाता है तो तुम

ठोस रूप से मेरी उपस्थिति का अनुभव कर सकोगी और उससे बढ़कर वास्तविक या उससे बढ़कर प्रभावकारी कोई सहायता नहीं होती।

हमेशा मेरे गहनतम प्रेम और हमारे आशीर्वाद के साथ।

४ मार्च १९४०

मेरी प्यारी नन्हीं 'क',

मैं बाईसवीं तारीख के लिये सहमत हूं—शायद शाम के साढ़े पांच बजे सीढ़ियों के ऊपर—लेकिन अत्यधिक अस्थिरता के इन दिनों में, इतने दिन पहले से व्यवस्था करना कठिन है। हमें दिन-प्रतिदिन जीना चाहिये। हमारी समस्त चेतना एकमात्र आलोकमय क्षितिज, भागवत उपलब्धि पर केंद्रित होनी चाहिये।

हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं, साथ में मेरा प्रेम भी।

५ जुलाई १९४०

मेरी प्यारी नन्हीं 'क',

शुष्कता सामान्यतः अपने बारे में बहुत अधिक चिंतित रहने का लक्षण है। (वह चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक) और परिणामस्वरूप चेतना की संकीर्णता का जो पर्याप्त रूप से भागवत शक्तियों के साथ संपर्क में नहीं रहती।

उपचार : भगवान् के प्रति पूर्णतर आत्मदान।

मेरे आशीर्वाद और मेरे समस्त प्रेम के साथ।

८ दिसंबर १९४०

मेरी प्यारी नन्हीं 'क',

चिंता न करो, मेरा मतलब केवल यही था कि तुम अभीतक पूरी तरह सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं हो। लेकिन यह मुक्ति निश्चय ही आयेगी, जैसे-जैसे तुम्हारे अंदर भगवान् के प्रति अभीप्सा की ज्वाला अधिकाधिक तीव्रता के साथ प्रज्वलित होगी।

मेरे आशीर्वाद और मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१६ जनवरी १९४१

पत्रमाला ३

पत्रमाला ३

[इस पत्रमाला में हम माताजी के साथ एक आश्रमवासी का पत्र-व्यवहार दे रहे हैं। उसने गुरुकुल कांगड़ी से शिक्षा समाप्त करके श्रीअरविंद के बड़े गुरुकुल में सन् १९३८ में प्रवेश पाया था।

इस आश्रमवासी ने, जो अपने-आपको कार्यकर्ता कहना पसंद करता है, आश्रम में सब प्रकार के पापड़ बेले हैं, पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर सब तरह के काम किये हैं अतः उसके पत्र-व्यवहार में रसोई-घर से लेकर प्रशासन और पठन-पाठन आदि अनेक विषयों की बातें आ जाती हैं। इसमें माताजी के अनेक रूपों का परिचय मिलता है, जहां उच्चतर और गुह्य जीवन की बातें हैं वहीं नौकरों के साथ व्यवहार, खाना पकाने, तेल, इमली के व्यवहार आदि के बारे में भी प्रामाणिक मार्गदर्शन मिलता है। आशा है पाठकों को अपने-अपने रस की चीज, अपने-अपने क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन मिल सकेगा।

यह आश्रमवासी आश्रम से निकलनेवाली दो मासिक हिंदी पत्रिकाओं 'पुरोधा' तथा 'अग्निशिखा' का संपादक है, आश्रम के शिक्षा-केंद्र में हिंदी का अध्यापक है और इसने श्रीअरविंद तथा माताजी की कई कृतियों का हिंदी में अनुवाद भी किया है।

यह पत्रमाला पहले पुस्तक-रूप में हिंदी में छपी थी। लेखक ने इसके शुरू में श्रीअरविंद की कुछ चिट्ठियां भी जोड़ दी हैं और माताजी को लिखी गयी अपनी चिट्ठियों के अनुवाद में कहीं-कहीं अपनी बात को ज्यादा स्पष्ट करने के लिये कुछ विस्तार भी कर दिया है, परंतु माताजी की चीजें ईमानदारी के साथ जैसी की वैसी रखी गयी हैं।]

श्रीअरविंदाश्रम में आने पर भिन्न-भिन्न लोगों की अलग-अलग तरह की प्रतिक्रिया होती है। कइयों की अचानक अंदर की आंखें खुल जाती हैं और वे अपना सब कुछ माताजी को अर्पित कर देना चाहते हैं। यहां कुछ इसी तरह की प्रतिक्रिया हुई थी और इस पत्रलेखक ने माताजी को लिखा, "मैं अपना सब कुछ अर्पित कर देना चाहता हूं, मेरे पास कुछ कपड़े हैं और कुछ पुस्तकें। बतलाइये मैं इनका क्या करूं?"

जब तुमने अपने मन से समर्पण कर दिया है और यह मानते हो कि जो कुछ तुम्हारे पास है वह माताजी का है और उन्हींको अर्पित है तो इस बाहरी क्रिया की जरूरत

नहीं। अगर तुम्हें यह जरूरी लगता है तो तुम ये चीजें 'क' को दे दो और माताजी तुम्हें ये चीजें तुम्हारे उपयोग के लिये लौटा देंगी।

२ सितंबर १९३८ —श्रीअरविंद

माताजी, ऐसा लगता है कि कल का प्रणाम मेरे लिये बहुत बड़ा आशीर्वाद था। मैं सारे दिन ऐसी अवस्था में रहा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुख और आनंद इसके मुख्य भाग थे। जरा-सा भारीपन—नहीं, कोई भी शब्द मेरे भाव को स्पष्ट नहीं कर पाता, एक प्रकार का भारीपन और निराशा का मिश्रण था। शायद मेरी मरती हुई महत्त्वाकांक्षाएं इसका कारण थीं।

यह प्राण के प्रतिरोध के कारण था जिसे लगता है कि प्रकाश के दबाव के कारण उसे अपनी कामनाएं छोड़नी पड़ेंगी।

—श्रीअरविंद

ध्यान में मुझे ऐसा लगा कि सिर से पांव तक मेरा सारा शरीर बहुत उज्ज्वल प्रकाश में बदल गया है। पहले मैं श्रीअरविंद की पुस्तक 'छह कविताएं' नहीं समझ पाता था, लेकिन इसके बाद मैं उसे समझ पाया . . .

चेतना की ठोस ज्योति पैदा करनेवाला प्रकाश का आरोहण, हमेशा साधना के निर्णायक अनुभवों में से एक होता है।

२६ सितंबर १९३८ —श्रीअरविंद

माताजी, मैंने पिछले पत्र में अपने प्रकाश के अनुभव की बात कही थी, उसके बाद से मैं हमेशा सिर पर या हृदय में सारे समय प्रकाश देखता रहा हूं। कभी-कभी मेरे सिर पर बहुत उज्ज्वल प्रकाश दिखलायी देता है, कभी सिर पर या सारे शरीर में अग्नि दिखायी देती है, लेकिन आग गरम नहीं होती, देखने में अच्छी लगती है।

डॉक्टरों का कहना है कि निरंतर प्रकाश आंखों के लिये अच्छा नहीं होता, मेरा ख्याल है कि यह प्रकाश बिल्कुल हानिकर नहीं होता। है न?

यह प्रकाश भौतिक नहीं है, यह आंखों को नुकसान नहीं पहुंचाता।

२८ सितंबर १९३८ —श्रीअरविंद

आश्रम के एक आदमी का दिमाग कुछ चल गया था। उसे बाहर जाने की सलाह दी गयी। वह आश्रम से गुरुकुल कांगड़ी चला गया और वहां बिल्कुल स्वस्थ रहा। कुछ समय के बाद वह लौट आया। उसे आश्रम में प्रवेश करने की स्वीकृति नहीं मिली। वह प० ले० का परिचित था। उसने माताजी से पूछा कि अगर वह मुझसे मिलने आये तो मुझे क्या वृत्ति अपनानी चाहिये, मैं उसे पांडिचेरी में रहने की सलाह दूं या यहां से चले जाने के लिये कहूं।

वह न केवल हमारी स्वीकृति के बिना बल्कि बार-बार हमारे मना करने पर आया है। उसे न तो आश्रम में प्रवेश की स्वीकृति दी जा सकती है न पांडिचेरी में रहने की सलाह। यह उसके लिये अच्छा नहीं है, उसका मानसिक रोग बढ़ जायेगा और स्वयं उसके लिये तथा औरों के लिये बेहद तकलीफ का कारण होगा, तीव्र साधना या एकांतवास के बिना काम और अध्ययन करते हुए सामान्य जीवन बिताना ही उसके लिये हितकर है, उसके ठीक रहने के लिये यही एक रास्ता है।

अगर तुम उससे मिलो तो कहना कि वह चला जाये। अगर उसे लौटकर गुरुकुल चले जाने और वहीं सामान्य जीवन बिताने के लिये मनाया जा सके तो यह उसके लिये सबसे अच्छी बात होगी।

२३ अक्तूबर १९३८ *—श्रीअरविंद*

प० ले० आयुर्वेद का स्नातक था। माताजी ने उसे चिकित्सा के सिवाय और बहुत प्रकार के काम दिये। उसके एक हितैषी ने सलाह दी, 'तुम माताजी से पूछकर एक छोटा-सा औषधालय खोल लो, तुम्हारी विद्या भी काम आयेगी और दूसरों का भी उपकार होगा।' उसे बात जंच गयी और उसने इस विषय का एक पत्र माताजी को लिख दिया। जवाब में श्रीअरविंद का यह पत्र आया। मजेदार बात यह है कि उस पत्र का उत्तर केवल हां या ना में हो सकता था पर इतना विस्तृत उत्तर पाकर वह खुशी से नाच उठा—उसकी बहुत इच्छा थी कि श्रीअरविंद का एक लंबा पत्र मिले।

तुमने जो प्रस्ताव किया है, उसका सवाल ही नहीं उठता और यह आश्चर्य की बात है कि 'क' इस बात को भूल गया है। यहां फ्रेंच-भारत में किसी फ्रेंच डॉक्टर के सिवा और कोई चिकित्सा का काम नहीं कर सकता इसी कारण 'ग' जो होम्योपेथी में प्रवीण है पांडिचेरीवालों का इलाज नहीं कर सकता जबतक कि उसे फ्रेंच डॉक्टर ही न बुलायें। और कहा जाता है कि यह भी पूरी तरह कानूनी नहीं है। वह केवल बाहर से आनेवालों, जैसे हैदराबादवालों की और आश्रमवालों की चिकित्सा कर सकता है, हम

केवल आश्रमवासियों के लिये औषधालय रख सकते हैं क्योंकि हम खानगी तौर पर आश्रमवालों का ही इलाज करते हैं और पांडिचेरी के डॉक्टरों से प्रतियोगिता नहीं करते, यहां के चिकित्सा-विभाग के लोगों के साथ हमारा अच्छा संबंध है क्योंकि वे अपने हस्पताल में हमारे दो डॉक्टरों की सहायता लेते हैं। अगर वे चाहें तो हमारे औषधालय और साधकों की चिकित्सा को भी कानून के विरुद्ध बताकर बंद कर सकते हैं।

हो सकता है कि पांडिचेरी में कुछ लोग आयुर्वेद की चिकित्सा करते हों पर है यह कानून के विरुद्ध और आश्रम यह नहीं कर सकता।

और फिर इस प्रकार का लोकोपकार का काम हमारे आश्रम के क्षेत्र से बाहर है। यहां रामकृष्णाश्रम की तरह नहीं है, हम सार्वजनिक कार्यों से बचते हैं और अपने-आपको केवल आश्रम के आध्यात्मिक कार्य तक ही सीमित रखते हैं। कुछ और करने का मतलब होगा व्यष्टिगत और सामुदायिक आध्यात्मिक चेतना और जीवन के निर्माण के कार्य पर एकाग्र होने की जगह सामान्य स्तर पर अपनी शक्ति को बिखेरना।

२७ *अक्तूबर* १९३८ —*श्रीअरविंद*

माताजी; मेरे नींद के घंटे अभीतक निश्चेतन होते हैं, मुझे उनके बारे में कुछ नहीं पता होता। क्या यह तमस् के कारण है ?

नहीं, सामान्य नींद हमेशा निश्चेतन होती है और अवचेतन निद्रा की अवस्था में चेतना लाने में समय लगता है।

२९ *अक्तूबर* १९३८ —*श्रीअरविंद*

प० ले० को लिखने का बहुत शौक था। वह कभी अपनी चीजें लिखता और कभी औरों की चीजों का हिंदी में अनुवाद करता था जो अलग-अलग पत्रिकाओं में छपा करता था। उसने माताजी से पूछा कि क्या वह इस तरह का काम कर सकता है, कहीं वह उसकी साधना में बाधक तो न होगा ?

तुम कभी-कभी अनुवाद का यह काम कर सकते हो लेकिन इस हदतक नहीं कि तुम उसीमें डूब जाओ। तुम्हारी चेतना साधना के लिये मुक्त रहनी चाहिये।

प्रेम और आशीर्वाद।

२९ *दिसंबर* १९३८

किसीकी मृत्यु हो गयी। प० ले० की इच्छा थी कि उसकी संपत्ति माताजी के पास आ जाये। माताजी से पूछने पर उत्तर मिला :

तुम्हारे पत्र के उत्तर में मैं यही कह सकती हूं कि अगर उस संपत्ति का मूल्य मुझे भेंट किया जाये तो निश्चय ही मैं उसे स्वीकार कर सकती हूं, लेकिन मैं उसके लिये मांग नहीं कर सकती। मैं उसे बिना शर्त की भेंट के रूप में ही ले सकती हूं।

मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

२० जनवरी १९३९

प० ले० आश्रम में अपने पहले जन्मदिन के लिये माताजी के पास प्रणाम के लिये गया तो उन्होंने जरा पीछे हटकर सिर हिलाया। यह घबरा गया कि मामला क्या है। माताजी को चिट्ठी लिखकर इसका मतलब पूछा।

मैं तुमसे बस इतना ही कहना चाहती थी कि तुम प्रणाम कर सकते हो, ऐसा लगता था कि तुम सकुचा रहे थे।

प्रेम और आशीर्वाद।

२७ जनवरी १९३९

प० ले० पूरा गांधीवादी था और अभी उसके आश्रम में पैर जम ही रहे थे, लेकिन दूसरी ओर से रस्साकशी भी हो रही थी। उसने लिखा : भारतमाता और मातृभाषा, ख्याति, गांधीजी का सामीप्य और बड़े परोपकारी कार्यों के नाम से मेरे आगे चारा डाला जा रहा है। अब काका कालेलकर के साथ काम करने का सुझाव आया है, ऐसी कृपा कीजिये कि ये प्रलोभन मुझे आपकी बांहों में से छीन न पायें।

मैंने एक कहानी लिखी है, क्या मैं उसे प्रकाशन के लिये भेज सकता हूं?

तुम उसे भेज सकते हो बशर्ते कि उसमें कोई आपत्तिजनक चीज न हो यानी कोई राजनीतिक, सामाजिक विवाद इत्यादि की बात न हो।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२५ मार्च १९३९

प० ले० मासिक 'हंस' के श्रीअरविंदांक का संपादन कर रहा था। उसकी

इच्छा थी कि इस अंक में माताजी के बारे में भी लेख हो। उनसे पूछा तो माताजी ने यह जवाब दिया :

मैं नहीं चाहती कि मेरे जीवन के बारे में कुछ छापा जाये। जब कभी किसीने इसके लिये अनुमति मांगी है, मैंने हमेशा इंकार किया है।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

३ अप्रैल १९३९

ऊपर जिस विशेषांक की बात की गयी है वह तैयार हो गया लेकिन उसे भेजने से पहले संपादक का दिल बैठने लगा। उसे लगा कि अनुवाद किसी काम का नहीं हुआ और सारी चीज बेकार है। उसने माताजी से पूछा कि अब क्या किया जाये।

तुमने अपने अनुवाद पर बहुत मेहनत की होगी इसीलिये तुम उससे इतने असंतुष्ट हो और यह कुंठा आ गयी है, लेकिन मुझे विश्वास है कि अनुवाद ठीक हुआ है और मुझे प्रकाशन स्थगित करने का कोई कारण नहीं दीखता।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२४ मई १९३९

हैदराबाद में आर्य समाज का सत्याग्रह चल रहा था, आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता स्वामी अभयदेव हैदराबाद के प्रधान मंत्री सर अकबर हैदरी से इस विषय में बातचीत करना चाहते थे। सर अकबर माताजी और श्रीअरविंद के भक्त थे और पांडिचेरी आते रहते थे। इस बारे में माताजी ने इस प० ले० को लिखा :

मेरे पास अभय का पत्र आया है। तुम उसे लिख सकते हो, आश्रम के साथ संबंध रखनेवाले किसी भी व्यक्ति का किसी प्रकार की राजनीति में हिस्सा लेना एकदम निषिद्ध है। उसे सर अकबर हैदरी के पास नहीं जाना चाहिये और वह गया भी तो यह बिल्कुल बेकार होगा। अगर वह गया और सर अकबर ने हमसे इस बारे में कुछ पूछा तो हम यह कहने के लिये बाधित होंगे कि उसने यह हमारी स्वीकृति के बिना किया है। तुम उसे हमारा आशीर्वाद भेज सकते हो।

३ जून १९३९

मेरे प्यारे बालक, मैं हमेशा उपस्थित हूं, तुम्हारे पास—तुम्हारे अंदर—और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहते हैं।

१९ जून १९३९

पहले जिस आश्रमवासी का दिमाग चल जाने की बात कही गयी थी वह प० ले० से मिलने आया। उसने कहा, माताजी, श्रीअरविंद ऊपर-ऊपर से कहते हैं कि मैं चला जाऊं, सचमुच उन्हें मेरे यहां रहने में कोई आपत्ति नहीं। इसपर माताजी ने लिखा :

यह बिल्कुल गलत है, श्रीअरविंद और मैं, हम दोनों चाहते हैं कि वह चला जाये। हमें विश्वास है कि पांडिचेरी का वातावरण उसके मानसिक संतुलन और यहां की जलवायु उसके स्वास्थ्य के लिये अनुकूल नहीं है।

२१ जून १९३९

आचार्य अभयदेव प० ले० को अपने साथ गुरुकुल ले जाना चाहते थे। उन्होंने माताजी को इस विषय में लिखा। माताजी ने प० ले० को लिखा :

अभय ने मुझे लिखा है कि वह तुम्हें अपने साथ गुरुकुल ले जाना चाहता है।

मैंने अभी उसे कोई उत्तर नहीं दिया है।

पहले मैं यह जानना चाहती हूं कि तुम्हें इस बारे में कैसा लगता है।

अगर तुम **मुझसे** पूछो तो मुझे तुम्हारे यहांसे जाने का कोई कारण नहीं दीखता। लेकिन तुम इस विषय में निःसंकोच होकर साफ-साफ अपने भाव बतलाओ।

मेरे प्यारे बालक को मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२५ *सितंबर* १९३९

प० ले० ने माताजी को स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि वह किसी भी हालत में उनका आश्रम छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहता, वे स्वयं कहीं भेजें तो और बात है।

मैं तुम्हारे उत्तर से पूरी तरह खुश हूं यद्यपि इसमें मेरे लिये आश्चर्य की बात कुछ नहीं है। मुझे मालूम था कि तुम्हारे हृदय में क्या है, लेकिन अभय से सुनिश्चित रूप से ना कहने के लिये मैं तुम्हारा लिखित उत्तर चाहती थी।

तुम बिल्कुल निश्चिंत रहो, मैं तुम्हें यहां से नहीं भेजूंगी।

मेरे प्यारे बालक को प्रेम और आशीर्वाद।

२५ *सितंबर* १९३९

माताजी,

मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि क्या आपके काम के बारे में सोचना आपके बारे में सोचने का एक भाग नहीं है। क्या यह उचित मनोवृत्ति है कि चाहे मैं आपको सदा याद न कर सकूं फिर भी आपके काम के बारे में सोचता रहूं।

यह बिल्कुल ठीक है।

२७ नवंबर १९३९

माताजी,

मैं यहां तकिये या मच्छरदानी का उपयोग नहीं करता। मैं खाट पर कुछ बिछाये बिना या जमीन पर चटाई बिछाकर सोता हूं। मुझे बतलाया गया है कि आपको यह पसंद नहीं है। क्या यह ठीक है ? पहले मैं यह सब तपस्या के भाव से करता था पर अब यह बात नहीं है। मुझे इस तरह रहने की आदत हो गयी है और मैं कोई कारण नहीं देखता कि मैं इसे बदलकर बेकार में आपसे अधिक खर्च किसलिये करवाऊं। क्या आपको इसमें कोई आपत्ति है ?

मुझे बिल्कुल कोई आपत्ति नहीं है, आश्चर्य है कि तुमसे किसने कहा कि मुझे आपत्ति होगी !

मेरे एक भाई हैदराबाद में प्रोफेसर हैं, उन्हें भगंदर हो गया है। वे चाहते हैं कि मैं आयुर्वेद से उनकी चिकित्सा कर दूं। रोगी को देखने की जरूरत नहीं है। मैं यहीं बैठा गुरुकुल से उनके लिये दवाई तैयार करवा कर भेज सकता हूं जिससे मुझे दवाई के पैसों के अतिरिक्त अस्सी रुपये मिलेंगे। यदि आप मुझे उनसे दवाई के पैसे लेने की स्वीकृति दें तो स्वभावतः यह पैसे आपके पास ही जायेंगे अन्यथा कोई और ले लेगा।

तुम चाहो तो दवाई वहां से तैयार करवा सकते हो परंतु मैं दाम के रूप में पैसे नहीं ले सकती। यहां जो भी धन आये, अर्पण के रूप में आना चाहिये।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१५ दिसंबर १९३९

एक समय प० ले० भोजनालय की गाड़ी खींचा करता था और घर-घर भोजन पहुंचाता था, उसके कान में बात पड़ी कि किसीने उसके काम के बारे में माताजी से शिकायत की है। उसने माताजी से पूछा तो उत्तर मिला :

तुम्हारे गाड़ी के काम के बारे में मुझसे किसीने कोई शिकायत नहीं की। विश्वास रखो, अगर मुझे तुम्हारे काम के बारे में तुमसे कुछ कहना होता तो मैं **सीधा तुम्हें ही लिखती**।

लेकिन तुम्हें औरों की भूलों और कमजोरियों के बारे में चिंता न करनी चाहिये। एकमात्र जरूरी बात यह है कि लोगों की बातों पर **विश्वास न करो**, खास तौर पर जब वे मेरे नाम से कुछ कहें।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२० जुलाई १९४०

माताजी;

आप जानती ही हैं कि मुझे क्या हो गया है। कृपया बतलाइये कि ऐसी अवस्था में, जब मैं भीतरी और बाहरी संघर्ष में पड़ा हूं, मुझे क्या करना चाहिये। काश, मैं उन लोगों के लिये सद्भावना रख सकता जो मेरी बाहरी तकलीफों के लिये जिम्मेदार हैं, लेकिन मैं ऐसा कर नहीं पाता। कृपया, मुझे कुछ ऐसे सामान्य निर्देश कीजिये जो मेरी वर्तमान स्थिति में सहायक हो सकें। मैं इतना छुई-मुई हो गया हूं कि जरा-सी चीज भी मुझे विचलित कर देती है।

ये प्राणिक विक्षोभ हैं जो साधना के दौरान अपने-आपको प्रकट करते हैं, इन्हें निकाल बाहर करना चाहिये। यह न मानना चाहिये कि ये स्वाभाविक गतिविधियां हैं जो औरों की गलत क्रियाओं द्वारा औचित्य पाती हैं और जबतक बाहरी कारण बने रहेंगे तबतक इनका रहना अवश्यंभावी है। वास्तविक कारण भीतरी है और इसे केवल यौगिक तपस्या, चौकसी, प्राणिक गतिविधियों से निर्लिप्तता और शांत किंतु कठोर अस्वीकृति से ही दूर किया जा सकता है।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२६ जुलाई १९४०

प० ले० ने शिकायत की कि उसका मन ध्यान में नहीं लगता, अपने काम से भी उसे असंतोष था :

अगर बाहरी रूप से तुम्हें ध्यान में सफलता न भी मिले फिर भी ज्यादा अच्छा यही है कि तुम काम जारी रखो, अपनी निम्न प्रकृति के विरोध की अपेक्षा अधिक आग्रही बनो।

मैं तुम्हारे काम करने के ढंग से पूरी तरह संतुष्ट हूं और निश्चय ही यह तुम्हें मेरे अधिक नजदीक आने में सहायता देगा।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१३ सितंबर १९४०

किसी विभाग में काम के समय बहुत बतरस बंटा करता था। माताजी ने एक संदेश भेजा :

For the sake of sadhana
and for the sake of work
it is always better
to work silently

साधना के लिये और कार्य के लिये, हमेशा **चुपचाप काम करना** ज्यादा अच्छा है।

१९४० के आरंभ में

प० ले० को अपने काम से, अपनी मनोवृत्ति से और स्वयं अपने-आपसे बहुत असंतोष था। उसने एक पत्र में यही रोना रोया तो श्रीअरविंद का जवाब आया।

तुमने अपने पत्र में मन की जिस अवस्था का वर्णन किया है वह निश्चय ही उस तनाव के कारण होगी जो चैत्य की माताजी के आगे पूर्ण समर्पण करने की प्रबल इच्छा और किसी प्राणिक मन और सतही बुद्धि में बैठे अवरोध के बीच संघर्ष के कारण पैदा

हुआ है। यह मन उस अड़चन का आत्म-निंदा द्वारा समर्थन करता है (जो उतने अच्छे आधार पर नहीं होती जैसी कि उचित आत्म-परीक्षा होगी) और तुम जो कुछ भी करो उसपर प्रश्न करता है ताकि तुम दोष और गलत हेतु के सिवा कुछ न देख सको। इससे बेचैनी, संदेह और तनाव पैदा होते हैं, तुम्हारी साधना में बाधा पड़ती है और चैत्य प्रेरणाओं की मुक्त क्रिया में बाधा पड़ती है।

तुम्हें अपना काम इस सरल विश्वास के साथ करना चाहिये कि माताजी उसे सराहती और स्वीकार करती हैं, और यह ऐसा ही है—क्योंकि तुम्हारा काम बहुत अच्छा और उनके लिये उपयोगी रहा है, चैत्य गतिविधि को सरल सहज रूप में, बाहरी मन के किसी हस्तक्षेप के बिना कार्य में प्रकट होने दो। बहुत संभव है कि इससे तनाव ठीक हो जायेगा और तब तुम्हारी साधना शांत स्थिर प्रसन्नता के साथ आगे बढ़ सकेगी। उसे अपने सत्य और माताजी की प्रेमभरी स्वीकृति का विश्वास होगा।

६ दिसंबर १९४३ *—श्रीअरविंद*

माताजी का यह वाक्य 'प्रार्थना और ध्यान' तथा 'शिक्षा' नामक पुस्तकों के साथ एक अलग कागज पर लिखा हुआ है :

'इस किताब को तबतक न पढ़ो जबतक कि तुम्हारा इरादा इसे क्रिया में लाने का न हो।'

१९५२ में प० ले० को रोमांतिका (खसरा) हो गयी थी। आश्रम में ऐसे रोगी को अलग रखा जाता है। वह हमेशा कहा करता था कि मुझे साधना में रस नहीं है, मैं केवल काम करने के लिये आया हूं, माताजी ने उसे लिख भेजा :

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं,

तुम्हें इस बीमारी को इस बात के चिह्न के रूप में लेना चाहिये कि तुम्हारे विश्वास के बावजूद और शायद तुम्हारी प्रतिज्ञा के होते हुए भी, तुम्हें साधना करनी होगी और काम में अपने बाहरी उत्सर्ग के साथ-साथ गहरी समझ और मनोवैज्ञानिक रूपांतर के आंतरिक उत्सर्ग को भी जोड़ना होगा। इस एकांतवास का इस प्रयोजन के लिये उपयोग करो।

मेरी सहायता और प्रेम तुम्हारे साथ हैं।

६ अप्रैल १९५२

माताजी,

मैं अपने काम का स्तर अच्छा करने की कोशिश कर रहा हूं, पता नहीं मुझे सफलता मिल रही है या नहीं। बीमारी के बाद मेरा उत्साह वापिस नहीं आया है। अधिकाधिक उपयोगी होने की इच्छा भी ढीली पड़ गयी है।

माताजी, या तो मुझे उपयोगी बनाइये या फिर जाने दीजिये। मैं अनुपयोगी जीवन नहीं जीना चाहता। हो सकता है, अगले जन्म में ज्यादा अच्छा भाग्य मिले।

मैं थक गया हूं, हर चीज से ऊब गया हूं। अगर मुझे बदलना आपके लिये असंभव हो तो मुझे चले जाने दीजिये। मैं गहरी और लंबी नींद लेना चाहता हूं।

मां, मुझसे अपने-आपको दूर न करो, एक बार तुमने मुझे अपना लिया है, अगर मैं एक क्षण के लिये भी उपयोगी रहा हूं तो मुझे छोड़ न दो।

तुम्हें "छोड़ देने का" कोई प्रश्न या संभावना ही नहीं है। तुम्हारे प्रति मेरी वृत्ति नहीं बदली है। तुम्हारी बीमारी और इस वर्तमान स्थिति का कारण समान है। मैं भावी उपलब्धि की ओर तेजी से बढ़ने की कोशिश कर रही हूं। प्रगति तेज है और मेरे नजदीक रहने के लिये तुम्हें भी तेजी से बढ़ना होगा। तुम्हारे अंदर कोई चीज बदलने से इंकार कर रही थी। यह वही चीज थी जो यह गर्व करती थी कि उसे साधना में रस नहीं है, वह केवल काम में रस लेती है, इत्यादि, इत्यादि। उसके परिणामस्वरूप तुम मेरे संरक्षण से बाहर निकल गये और बीमार पड़ गये। तुम्हारी बीमारी के शुरू में मैंने जो लिख भेजा था उसका यही अर्थ था। लेकिन उसने वह काम नहीं किया जिसकी मैंने आशा की थी।

अब करने लायक केवल एक चीज है : दृढ़ता के साथ अपनी प्रकृति के किसी भाग में परिवर्तन की आवश्यकता का सामना करो और मेरी सहायता के साथ **बदलो**।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१० जून १९५२

जब आश्रम में शारीरिक शिक्षण का महत्त्व बढ़ा तो कुछ लोगों की श्रद्धा डिगने लगी। उन्हें लगा कि यह तो योगाश्रम की जगह व्यायामाश्रम होता जा रहा है। उनमें से एक कर्मठ व्यक्ति ने माताजी को लिखा कि उसका शारीरिक बल कम होता जा रहा है और वह अपना काम करने में असमर्थ होता जा रहा है। माताजी ने प० ले० द्वारा उसे यह उत्तर भेजा :

Here, for each work given, the full strength and Grace are always given at the same time to do the work as it has to be done. If you do not feel the strength and the Grace it proves that there is some mistake in your attitude. The faith is lacking or you have fallen back on old tracks and old creeds and thus you lose all receptivity.

1-10.52

यहां जो भी काम दिया जाता है, उसके साथ-ही-साथ, उसे जिस तरह करना चाहिये उसके लिये पूरा बल और भागवत कृपा भी दी जाती है। अगर तुम बल और कृपा का अनुभव नहीं करते तो यह प्रमाणित करता है कि तुम्हारी वृत्ति में कहीं पर कुछ भूल है। या तो श्रद्धा की कमी है या तुम पुराने ढर्रे और पुराने पंथों में जा गिरे हो और इस तरह अपनी ग्रहणशीलता खो बैठे हो।

१ अक्तूबर १९५२

क्रीड़ांगण में काफी शोर हुआ करता था। माताजी की ओर से सूचना दी गयी कि सब लोग चुपचाप रहें। प० ले० खेल-कूद में तो भाग न लिया करता था परंतु खेल-कूद के बाद माताजी सबको मूंगफली या मिठाई दिया करती थीं, उसकी व्यवस्था इसके हाथ में थी। फाटक के पास घुसते ही इसके बैठने का स्थान था और लोग उसके पास अपनी-अपनी समस्या लेकर आ जाते थे। उसे लगा कि इस तरह वह क्रीड़ांगण की शांति में बाधक होगा। उसने प्रस्ताव किया कि वह क्रीड़ांगण में बैठना ही बंद कर देगा। माताजी का उत्तर था :

और अगर मुझे तुम्हारी जरूरत पड़े तो? सबसे अच्छी बात यह है कि तुम यह नियम

बना लो कि तुम वितरण के सारे समय न तो किसी की सुनोगे न कुछ कहोगे। वितरण समाप्त होते ही सुनना और उत्तर देना शुरू हो सकता है।
९ सितंबर १९५४

माताजी का समय बचाने की दृष्टि से प० ले० उनके साथ मिलने से बचता था। माताजी ने लिखा :

तुमसे एक बात और कह दूं। तुम्हें मेरे साथ मिलने से बचना न चाहिये क्योंकि यह तुम्हारी सत्ता के उन भागों को समर्थन देता है जो मेरे प्रभाव के प्रति खुलने के लिये कुछ अनिच्छुक हैं।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

मेरे साथ संबंध में बच्चे की तरह सरल और सहज होने की कोशिश करो—यह तुम्हें बहुत-सी कठिनाइयों से बचा देगा।
२५ अक्तूबर १९५४

प० ले० को एक वाक्य का अनुवाद करना था। उसने माताजी को लिखा :

आपने कहा है, "और सब प्रभावों को छोड़कर हम पूरी तरह आपके प्रभाव में रहना चाहेंगे।" मैंने इसे हिंदी में यूं कहा है, 'हम आपके रंग में रंग जाना चाहेंगे और किसी रंग में नहीं।' यह मुहावरेदार तो है पर ठीक है क्या ?

यह सच्चा अर्थ नहीं है; हर शक्ति या सामर्थ्य का अन्य शक्तियों और सामर्थ्यों पर कुछ प्रभाव होता है और यह क्रिया पारस्परिक होती है। प्रभावों की इस सतत और व्यापक अस्तव्यस्तता से बचने के लिये एक ही रास्ता है, ऐकांतिक रूप से भागवत चेतना पर एकाग्र होना और अपने-आपको केवल भागवत चेतना की ओर खोलना।
१९५४

आश्रमवासियों को काम देने का काम था प० ले० का। स्वभावत: इससे काफी लोग असंतुष्ट थे और तरह-तरह की बातें करते थे। प० ले० ने इस तरह की बातें लिखकर माताजी से पूछा कि क्या वे इनसे सहमत हैं ?

नहीं, भगवान् जानते हैं और वे किसी बेवकूफी में भाग नहीं लेते।

सारे संसार की स्थिति गड़बड़ा रही थी। आश्रम भी उसके प्रभाव से अछूता न था। प० ले० ने माताजी को लिखा, "जब प्रदर्शन और सभी चीजों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण मालूम होता है, जब जीवन को आरामदेह बनाने के लिये हमें सभी सुविधाएं दी जा रही हैं, जब बदले की किसी भी आशा के बिना सब कुछ दिया जा रहा है तो फिर भीतरी परिवर्तन के बिना लोग काम क्यों और कैसे कर सकते हैं ? मुझे दुःख है कि जहांतक मेरी दृष्टि जाती है, मैं ऐसी कोई चीज नहीं देख पाता। जीवन अधिकाधिक अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। भगवान् निकटतर आते नहीं दीखते, हर चीज तितर-बितर होती जा रही है। सभी उज्ज्वल प्रतिज्ञाओं के बावजूद, भगवान् जाने, भविष्य के गर्भ में क्या है।

यह वस्तुओं के बारे में एक निराशाजनक दृष्टि है। इससे उल्टी बात भी सच है और ऊपर से दीखनेवाली इस अस्त-व्यस्तता में से होकर एक नयी और ज्यादा अच्छी व्यवस्था की रचना हो रही है, लेकिन उसे देख सकने के लिये तुम्हारे अंदर **भागवत कृपा पर श्रद्धा होनी चाहिये**।

प्रसन्न हो उठो ! चीजें इतनी खराब नहीं हैं जितना कि तुम सोचते हो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

७ अक्तूबर १९५६

प० ले० का जन्मदिन था। माताजी ने उसे प्रणाम के लिये शाम को क्रीड़ांगण में बुलाया। वह इतने लोगों के बीच में जाते हुए सकुचाता था इसलिये नहीं गया। इसके लिये रात को माताजी से करारी डांट पड़ी। उसने यह क्षमा-पत्र लिखा, "मैं अपने कल के व्यवहार के लिये दुःखी हूं और क्षमा चाहता हूं। मैं आशा करता हूं कि मैंने कल जो अवसर खोया है वह खोया हुआ अवसर बनकर न रह जाये। मैं प्रार्थना करता हूं कि यह इस तरह की आखिरी भूल हो।

"मैं चाहता हूं कि मैं आपका सच्चा सेवक बन सकूं।"

मेरे प्यारे बालक,

कल रात मैं तुम्हारे साथ जरा "सख्ती" से बोली थी ताकि ऐसी भूल फिर न होने पाये, लेकिन सच तो यह है कि उसके परिणाम मिटाये जा चुके हैं और मैं तुम्हें जो कुछ देना चाहती थी वह दे **चुकी हूं**—उसका उचित उपयोग करना तुम्हारे हाथ में है।

मैं पहले ही तुम्हें **सच्चा सेवक** मानती हूं, लेकिन मैं चाहती हूं कि तुम **सच्चे बालक** भी बन जाओ ताकि तुम उसका पूरा आनंद ले सको।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२७ जनवरी १९५७

प० ले० ने माताजी से कहा कि वह केवल काम करते समय ही उनकी उपस्थिति का अनुभव कर सकता है इसलिये काम ही उसकी एकमात्र साधना है।

पूर्णयोग में साधना और बाहरी जीवन में कोई फर्क नहीं है; दैनिक जीवन की एक-एक गतिविधि में सत्य को खोजना और क्रियान्वित करना चाहिये।

१६ मार्च १९५८

काम में कुछ कठिनाई पैदा हो रही थी। प० ले० सोचता था कि कठिनाइयां माताजी की कृपा से अपने-आप ठीक हो जायेंगी और निकट भविष्य में सब कुछ माताजी के अधिकार में आकर ठीक हो जायेगा इसलिये वह कठिनाइयों के बारे में शांत रहता और माताजी को कोई सूचना न देता था। जब उसने पूछा कि क्या यह मनोवृत्ति ठीक है या तमस् ही मुखौटा पहने हुए है?

निश्चय ही स्थिर-शांत रहना तमस् नहीं है। वस्तुतः स्थिर शांति में ही ठीक चीज की जा सकती है। जिसे मैं स्थिर शांति कहती हूं वह है किसी भी चीज से विक्षुब्ध हुए बिना काम करना और हर चीज को किसी भी चीज से विक्षुब्ध हुए बिना देखना।

फिर भी, अगर तुम्हें कोई चीज बिल्कुल गलत मालूम होती है तो तुम हमेशा मुझे सूचित कर सकते हो—लेकिन जरा भी विक्षुब्ध हुए बिना—और मैं देखूंगी कि क्या किया जा सकता है।

मेरी उपस्थिति और मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं।

१९ *सितंबर* १९५९

प० ले० हिंदी अध्यापक भी है। उसने माताजी को बताया कि उसके विद्यार्थी हिंदी में रस नहीं लेते इसलिये वह हिंदी पढ़ाना छोड़ देना चाहता है। साथ ही उसने यह भी पूछा कि क्या माताजी भारतीय भाषाओं को महत्त्व देती हैं?

निःसंकोच होकर पढ़ाना जारी रखो।

मुझे भारतीय भाषाओं के लिये **बहुत गहरा मान** है और जब समय मिल जाये तो संस्कृत का अध्ययन किया करती हूं।

अमृत[1] कहता है कि उसकी तमिल कक्षा की हालत तुम्हारी कक्षा से भी खराब

[1] अमृत सबसे पुराने आश्रमवासियों में से थे। वे तमिल अध्यापन का काम भी करते थे। वे मजाक करने में बहुत पटु थे।

है। लेकिन वह कहता है कि अगर उसके सभी विद्यार्थी आना बंद कर दें तो भी वह पढ़ाना जारी रखेगा . . . वह अपने-आपको पढ़ायेगा !

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

३० सितंबर १९५९

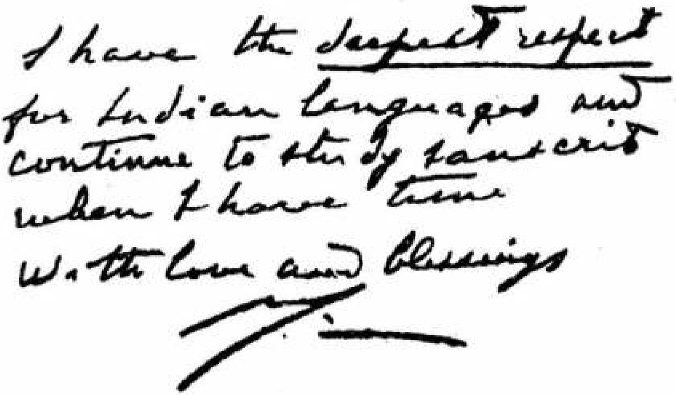
I have the deepest respect for Indian languages and continue to study Sanskrit when I have time
With love and blessings

विद्यालय के हिंदी विभाग में छुट्टियों के बाद की सभा में भाषणों का विषय था 'छुट्टियां'। विद्यार्थियों ने आग्रह किया कि प० ले० (जो उनका अध्यापक भी था) भी इस विषय पर कुछ बोले। उसने माताजी से कहा, मैं छुट्टियों के बारे में सामान्य बकवास नहीं करना चाहता। कृपया बताएं कि मुझे क्या कहना चाहिये। माताजी ने यह लिखकर उसे थमा दिया और कहा कि इसके आधार पर एक कहानी लिख डालो। बात शायद १९६० के आस-पास की है।

हॉलीडेज या छुट्टियां[1]

हम हॉलीडेज कह सकते हैं ? इनके दो प्रकार होते हैं। एक मान्यता के अनुसार भगवान् ने छह दिन (या छह युग) तक काम करके यह सृष्टि बनायी और सातवें दिन विश्राम, एकाग्रता और ध्यान-चिंतन के लिये काम बंद रखा। इसे भगवान् का दिन कहा जा सकता है।

दूसरे, मनुष्य, भगवान् के बनाये हुए जीव, छह दिन तक अहंकारमय उद्देश्यों के लिये और व्यक्तिगत हितों के लिये काम करते हैं और सातवें दिन आराम करने और अपने अंदर और ऊपर देखने के लिये समय निकालने के लिये अपनी सत्ता और

[1] अंग्रेजी में छुट्टी को हॉलीडेज कहते हैं और हॉली डे हुआ पवित्र दिन।

चेतना के स्रोत का ध्यान करने और उसमें गोता लगाकर नयी शक्ति प्राप्त करने के लिये काम बंद रखते हैं।

हमें शब्द को आधुनिक अर्थ में समझने के तरीके के बारे में कुछ कहने की शायद ही जरूरत हो, अर्थात् अपने मनोविनोद के व्यर्थ प्रयास के लिये हर संभव रूप से समय नष्ट करना।

Holidays

Shall we say *holy days*?

There are two kinds of them: traditionally, the Lord for six days (or aeons) worked to create his world and the seventh He stopped for rest, concentration and contemplation. This can be called the day of God.

The second one is the man's, the creatures, during six days work for their personal interests and egoistic motives, and the seventh, they stop working to take rest and have time to look inwardly or upwardly, in contemplation of the source and origine of their existence and consciousness, in order to take a dip in it and renew their energies.

एक आश्रमवासी काम से बहुत कतराता था, माताजी ने उसके नाम एक पत्र भेजा।

There is no existence without labour — If you want to get out of labour you must get out of existence — The only way to accomplish that, is the way to Nirvana — and that way, to follow it is of all labours the greatest.

परिश्रम के बिना जीवन नहीं होता। अगर तुम परिश्रम से बचना चाहो तो तुम्हें अस्तित्व से बाहर निकलना होगा। उसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है निर्वाण—और वह उपाय, उसका अनुसरण, सभी परिश्रमों में सबसे कठिन है।

६ नवंबर १९६०

एक आश्रमवासी बहुत कम काम करता था और नये कार्यकर्ताओं को सलाह देता था कि वे मजदूरों की तरह मेहनत न करें। माताजी ने उसे संदेश भेजा।

जब स्वयं तुम अपनी जिम्मेदारी के पूरे भाव के साथ अपना काम नहीं करते तो इसका कोई कारण नहीं कि तुम नये व्यक्तियों को भी अपनी तरह काम करने के लिये उकसाओ।

१९६०

मैं बस इतना कह सकती हूं कि जब कोई व्यक्ति मुझसे कहलवाता या कहलवाते हैं कि वे यहां ठहरना या आश्रम में प्रवेश पाना चाहते हैं तो मैं बिना अपवाद यही उत्तर

देती हूं कि उसे या उन्हें 'र'[1] के पास भेज दो और अगर मैं स्वयं बात कर रही होऊं तो कहती हूं कि उससे जाकर मिलो। यह चीज किसी और रूप में कैसे बदल जाती है और तुम्हें खबर नहीं की जाती यह मैं नहीं कह सकती—यह मानव स्वभाव की ऐसी पहेलियों में से एक है, मुझे विश्वास है कि ऐसी बहुत-सी बातें होती रहती हैं जिनके बारे में मुझे कोई खबर नहीं होती।

लेकिन यह क्षुब्ध होने का कोई कारण नहीं है। केवल स्थिर और शांत बने रहो और मानव स्वभाव तुम पर जो सीमाएं आरोपित करता है उनमें रहते हुए अपना अच्छे-से-अच्छा करो।

आखिर पूरी-की-पूरी, सारी जिम्मेदारी प्रभु की है और किसी की नहीं, इसलिये चिंता की कोई बात नहीं है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२६ फरवरी १९६१

माताजी,

हमने घोषणा की है कि प्रस्तावित अदिति पुस्तकमाला में लगभग १०० पृष्ठों की पहली पुस्तक होगी 'सफेद गुलाब'। क्या यह जरूरी है कि उसमें 'क' की भूमिका को भी रखा जाये?

हां, मैंने ये पत्र 'क' को लिखे थे, औरों को नहीं। हर एक से जो बात कही जाती है अलग ढंग से कही जाती है—सबको मिला देने से उलझन पैदा होती है।

१९६१

माताजी,

अनु ने हिंदी में राजकुमार नामक जो नाटक लिखा है उसका संक्षिप्त रूप, उसीके शब्दों में, आपके पास भेज रहा हूं। आप जब देख सकें, इसे देख जाइये। मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि इसमें कोई सुधार बतलाएं ताकि नाटक का स्तर ऊंचा हो जाये और इसमें भाग लेनेवालों की चेतना की सहायता करे। मुझे कुछ परिवर्तन की जरूरत मालूम होती है लेकिन समझ में नहीं आता कि क्या बदला जाये।

(इस नाटक में अंधकार और प्रकाश की शक्तियों के युद्ध की कहानी है। अनुबेन के नाटक के पहले रूप में प्रकाश की शक्ति की प्रार्थना पर दिव्य जननी प्रकट होती और अंधकार की शक्ति को नष्ट कर देती हैं)

[1] स्वयं साधक।

क्या नाटक की परिस्थितियां **ऐतिहासिक** हैं या उनमें हेर-फेर किया जा सकता है ? ज्यादा अच्छी बात तो यह होगी कि विरोधी शक्तियों का यंत्र, विष देते समय राजकुमार के प्रेम के कारण बदल जाये, अपने अपराध को स्वीकार कर ले और क्षमा पा जाये।

यह पुराना विचार कि शक्ति को **प्रभावकारी** बनाने के लिये किसी बड़े संकट की जरूरत होती है, एक सीमाबंधन है जिसपर विजय पाना जरूरी है।

हां, अगर यह **ऐतिहासिक** घटना है तब तो उसके रूप को ऐसा ही रखना होगा और उच्चतर सत्य को भाषण द्वारा व्यक्त करना होगा।

२५ फरवरी १९६२

माताजी,

मुझे अभीतक यह भ्रम था कि लोगों के काम की व्यवस्था मुझे करनी है। 'क' की अवस्था बहुत खराब है, 'घ' भी बीमार है इसलिये मैंने सोचा था कि 'ग' को ऑनेस्टी सोसायटी में काम दिया जा सकता है। वह व्यापारी रहा है। लेकिन जैसा कि बहुत बार होता है, मामला मेरे पास तक आया भी नहीं और मैंने सुना है कि उसे किसी और स्थान पर दे दिया गया है, जहां अभी कुछ ही दिन पहले मैं किसी और को अस्थायी रूप में दे चुका हूं। मुझे लगता है कि 'क' की आवश्यकता बहुत अधिक है, लेकिन अगर यह आपका फैसला है तो मैं उसके आगे सिर झुकाता हूं।

हर बार जब कोई अप्रिय स्थिति पैदा होती है या किसी अवांछनीय व्यक्ति से पाला पड़ता है तो उसे धार्मिक भाव से मेरे पास भेज दिया जाता है अन्यथा . . . और आप कहती हैं कि काम देने की जिम्मेदारी मेरी है।

(इस झल्लाहट का मधुर, कोमल, विनम्रतापूर्ण उत्तर देते हुए माताजी कहती हैं) :

मेरे प्रिय बालक,

क्या मैं यह मानूं कि तुम बदमिजाज हो उठे हो या तुम्हारे अहंकार को गलत जगह छेड़ दिया गया है ? . . . तुम बहुत ही कटु मालूम होते हो, लेकिन **मेरी ओर से** तो कभी कुछ भी **निश्चय** नहीं हुआ करता जबतक कि **तुम्हारी** सलाह न ले ली जाये कि सबसे ज्यादा ठीक चीज क्या होगी। लेकिन परवाह न करो—अगर तुम्हें लगता है कि चीजें ठीक तरह नहीं चल रहीं और उनके लिये मैं जिम्मेदार हूं तो मैं जिम्मेदारी स्वीकार करती हूं।

इस मामले में मुझे यह जानकर खुशी हुई कि 'ग' ऑनेस्टी सोसायटी में ज्यादा उपयोगी हो सकता है, तो हम उसे वहीं भेजेंगे और आशा करेंगे कि सब कुछ ठीक हो

जायेगा। लेकिन यह बात बिल्कुल सच्ची है कि मैं अधिकतर किसी ऐसे काम में व्यस्त रहती हूं जिसे मैं, अभी के लिये, बाहरी व्यवस्था और संगठन से अधिक जरूरी समझती हूं और मैं आशा करती हूं कि हर एक अपना काम अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता के साथ करे और उसकी आंखें भागवत कार्य की महानता पर लगी रहें, इससे हर एक को अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों में भी निश्चित रूप से मदद मिलेगी।

आजकल समय बुरा है, हर एक के लिये और हर चीज के लिये—लेकिन निश्चय ही यह हमें अपनी सीमाओं पर विजय पाना सिखाने के लिये है।

मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है, मैं तुमपर भरोसा करती हूं, मुझे तुम्हारे काम की जरूरत है और मुझे विश्वास है कि तुम इन वर्तमान कठिनाइयों को पार कर लोगे।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

६ अगस्त १९६२

'क्ष' यह कलम नेपाल से लाया है और उसने मुझे उपहार-स्वरूप दिया है। यह चीन का बना हुआ है और मैं इसे इस विश्वास के साथ आपकी सेवा में रख रहा हूं कि इससे चीन का भला होगा और भारत-चीन के संबंध ज्यादा अच्छे हो जायेंगे।

यह रही इसकी लिखावट। कलम अच्छा मालूम होता है—चीन को आशीर्वाद !

२७ अगस्त १९६२

माताजी,

कल दोपहर को मैं सो रहा था और आप मेरे स्वप्न में आयीं और आपने मुझसे कुछ कहना शुरू किया। उसी समय किसीने मेरा दरवाजा खटखटाया और मैं जाग पड़ा। यह तीन बार हुआ और तीनों बार किसीने मुझे जगा दिया, मैं उठा तो मेरे सिर में सख्त दर्द था। मुझे अपने स्वप्न मुश्किल से ही याद रहते हैं, लेकिन यह बहुत ही स्पष्ट था। क्या आप सचमुच मुझसे कुछ कहना चाहती थीं ?

हां, निश्चय ही, मैं तुम्हारे पास आयी थी—और केवल इसी बार नहीं—आग्रह के साथ तुमसे सामान्य काम-काज, आश्रम के मामले और तुम्हारी साधना के बारे में मुझे कुछ कहना था यानी, मुझे तुम्हारी प्रगति की बात कहनी थी।

क्या लोगों को द्वार खटखटाने से रोकने का कोई तरीका नहीं है ?

तुम्हारे दरवाजे पर सूचना लिख दी जाये : "कृपया इस समय न खटखटायें ?"

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ अक्तूबर १९६२

चीन और भारत के बीच मधुर संबंध था। देश में हिंदी चीनी भाई-भाई के नारे लग रहे थे और अचानक २० अक्तूबर १९६२ को चीन ने उत्तरी सीमा पर दो जगह आक्रमण कर दिया और काफी आगे बढ़ आया। बाद में किसी प्रत्यक्ष कारण के बिना चीनी वापिस लौट गये। इसपर प० ले० माताजी को लिखता है, राष्ट्रपति ने सारे भारत में आपातकाल की घोषणा कर दी है और भारत सरकार बड़े कड़े कदम उठा रही है। ऐसे समय हमारे कुछ लोग बड़ी कटु भाषा में नेहरू और उनकी सरकार के विरुद्ध बोल रहे हैं और आश्रम के फाटक पर, सड़कों पर, भोजनालय में सब जगह नेहरू और सरकार की कड़ी आलोचना कर रहे हैं। कुछ लोग तो इस मामले में आपका और श्रीअरविंद का नाम भी लगा देते हैं। इससे आश्रम के लिये व्यर्थ की तकलीफ पैदा हो सकती है, मैं इस ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं।

मैं इस विषय में तुम्हें एक सूचना भेज रही हूं, इसे भोजनालय के सूचना-पट्ट पर लगा दो।

इसे आश्रम में भी लगाया जायेगा।

नीरवता ! नीरवता !

यह ऊर्जाएं इकट्ठी करने का समय है, व्यर्थ और निरर्थक शब्दों में उन्हें इधर-उधर बिखेरने का नहीं।

जो भी देश की वर्तमान स्थिति के बारे में अपनी राय की जोर से घोषणा करता है उसे यह समझ लेना चाहिये कि उसकी रायों का कोई मूल्य नहीं है और उनसे भारत-माता को अपनी कठिनाइयों में से निकलने में जरा भी सहायता नहीं मिल सकती। अगर तुम उपयोगी होना चाहते हो तो पहले अपने-आप पर संयम करो और चुप रहो।

नीरवता ! नीरवता ! नीरवता !

केवल नीरवता में ही कोई महान् कार्य किया जा सकता है।

२८ अक्तूबर १९६२

Silence! Silence!

This is a time for gathering energies, and not for wasting them away in useless and meaningless words.

Anyone who proclaims loudly his opinions on the present situation of the country, must understand that his opinions are of no value and cannot, in the least, help Mother India to come out of her difficulties.

"If you want to be useful, first control yourself and keep silent.

Silence! Silence! Silence!

It is only in silence that anything great can be done.

28-10-62

A good advice to all the ashramites in their dealings with visitors and foreigners (and even among themselves)

"When you have nothing pleasant to say about something or somebody in the Ashram, keep silent.

You must know that this silence is faithfulness to the Divine's work."

सभी आश्रमवासियों को दर्शकों और विदेशियों के साथ व्यवहार करते समय याद रखने लायक एक अच्छी सलाह : (आपस में एक दूसरे के साथ भी)

''अगर तुम्हारे पास आश्रम के किसी व्यक्ति या किसी चीज के बारे में कहने के लिये कोई अच्छी बात न हो तो चुप रहो।

''तुम्हें यह जानना चाहिये कि चुपचाप रहना भगवान् के कार्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी है।''

अक्तूबर १९६२

माताजी,

आपने मुझे लिखा था कि आप रात को मेरे पास आया करती हैं। मैं भी आपतक पहुंचने की कोशिश करता हूं . . . लेकिन हाय !

प्रयास किये चलो—एक दिन तुम सफल हो जाओगे। मैं अब भी आती हूं।

आशीर्वाद।

९ नवंबर १९६२

प० ले० बचपन में लेख, कहानी आदि लिखने का शौकीन था, उसमें लेखक बनने की महत्त्वाकांक्षा थी। आश्रम में आकर उसे जो-जो काम मिले उनका लेखन के साथ दूर का भी संबंध न था। बहुत वर्षों के बाद उसे पुरोधा के संपादन का भार सौंपा गया। उसे डर लगा कि कहीं उसका सिर फूल न जाये और महत्त्वाकांक्षा फिर से न जाग उठे। यह समस्या उसने माताजी के आगे रखी।

सभी महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे एक सत्य होता है जो अभिव्यक्त होने के लिये उचित समय की प्रतीक्षा करता है। अब जब कि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा जा चुकी है, सत्य (योग्यता और क्षमता) के अभिव्यक्त होनेका समय है।

पूरी सावधानी रखो कि सिर 'फूलने' न पाये, लेकिन मैं तुम्हारे साथ हूं। कुछ रुचिकर चीज करने के लिये तुम्हारी सहायता कर रही हूं।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१९६२

मैंने सुना है कि तुम्हें इंफ्लुएंजा हो गया है—यह नहीं चलेगा।

तुम्हें **विश्राम** करना चाहिये—लेकिन हो यह **एकाग्र शक्ति का विश्राम**, विरोधी शक्तियों के प्रति अप्रतिरोध का हल्का निस्तेज आराम नहीं।

ऐसा विश्राम जो **शक्ति** है, दुर्बलता का विश्राम नहीं।

उठो, खुश हो जाओ मेरे बालक, और कुप्रभावों को झाड़ फेंको।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

७ जनवरी १९६३

माताजी,

आपको आपके नये शरीर में देखने की मेरी बहुत इच्छा है। वर दीजिये कि तबतक आप जो कुछ दें उसे ग्रहण और आत्मसात् करने की शक्ति आये मेरे अंदर।

मेरा ख्याल है, तुम्हारा मतलब है मेरे **नये रूप** या **रूपांतरित शरीर से**। क्योंकि नये शरीर के लिये मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानती जो ऐसा पूर्ण जीता-जागता शरीर बन सके जिसमें मैं अपनी वर्तमान चेतना को किसी अंश में भी खोये बिना पदार्पण कर सकूं। निश्चय ही यह अपेक्षाकृत ज्यादा तेज प्रक्रिया होती लेकिन इस शरीर के उन कोषाणुओं के प्रति उचित और संतोषजनक न होती जो कितने उत्साह से मेरी ओर पूर्ण स्वेच्छा के साथ अपने-आपको रूपांतर के कठोर कार्य के लिये अर्पित कर रहे हैं।

बहरहाल, जैसा कि मैं पहले भी कह चुकी हूं, इसके लिये तुम्हें लंबे समय तक प्रतीक्षा करने के लिये तैयार रहना चाहिये, और उससे पहले बहुत-से जन्मदिन गुजरते हुए देखने के लिये तैयार रहना चाहिये। और यह बहुत अच्छी बात है और मैं पूरी तरह स्वीकार करती हूं।

सप्रेम।

२५ जनवरी १९६३

प० ले० की दाहिनी टांग में स्नायु सुन्न से पड़ जाते थे और वह लंगड़ाने लगता था। कभी-कभी ऐसा लगता था कि वह कहीं गिर न पड़े। उसने माताजी को सारा हाल बतलाते हुए लिखा कि आपको भौतिक रूप से सूचना दिये बिना कोई लाभ नहीं होता। दूसरों के मामले में चुपचाप अंदर-ही-अंदर आपसे कह देने से उनका कष्ट चला जाता है। क्या आप बतला सकेंगी कि ऐसा क्यों होता है?

यह हर एक की अपनी भौतिक ग्रहणशीलता पर निर्भर है और वह ग्रहणशीलता अपने-आप कम या अधिक **प्रभुत्व** जतानेवाले मन पर निर्भर होती है।
३ मार्च १९६३

माताजी की पुस्तक 'सुंदर कहानियां' में ऐसा मालूम होता है कि राम को वनवास देने की जिम्मेदारी पूरी तरह से कैकेयी की थी। तुलसीदासजी के अनुसार मंथरा को अपना यंत्र बनाकर, 'गयी गिरा मति फेर' देवताओं के आदेश के अनुसार सरस्वती ने भगवान् का काम पूरा करने के लिये यह सब किया था। लेखक उसका हिंदी अनुवाद छापने से पहले माताजी से पूछता है कि आखिर सच्ची बात क्या है और हिंदी अनुवाद के लिये वह क्या करे।

मैंने जो लिखा है वह मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है। ६० वर्ष पहले लिखी गयी एक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। तुम उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकते हो।
आशीर्वाद।
६ मार्च १९६३

माताजी नहीं चाहती थीं कि उनका नाम पॉल रिशार के साथ किसी भी तरह जोड़ा जाये। 'क' का एक लेख छपा जिसमें उन्होंने लिखा था कि माताजी के पांडिचेरी आगमन के समय उनके साथ रिशार भी चुनाव के सिलसिले में आये थे। यह लेख पुरोधा के लिये भी भेजा गया। लेखक माताजी से उनकी राय मांगता है।

मुझे इसके लिये खेद है, मुझे इसके बारे में कुछ बताया नहीं गया था। **इसे यहीं समाप्त कर दो**। यह आखिरी बार हो कि मेरे अतीत के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ कहा जाये। यह शरीर नहीं चाहता कि उसके बारे में कुछ कहा जाये। वह चुपचाप रहना चाहता है और चाहता है कि जहांतक हो सके उसकी **अवहेलना** की जाये।
मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।
९ अप्रैल १९६३

माताजी,
अब एक गुस्ताखी भरा प्रश्न। आपने एक बार काफी कठोर भाषा में मुझे

लिखा था कि आश्रम के काम-काज के छोटे-मोटे ब्योरों में आप नहीं पड़ना चाहतीं क्योंकि आपके पास बहुत जरूरी आंतरिक कार्य हैं, लेकिन आजकल आप विस्तृत जानकारी मांग रही हैं। क्या इसका यह मतलब है कि आप उस लकीर को पार कर चुकी हैं जहां आपके ध्यान देने की बहुत ज्यादा जरूरत थी और अब भविष्य आपके हाथ में आ गया है या हम लोगों ने काफी गड़बड़ की है जिसकी वजह से आपको इन बातों पर ध्यान देना पड़ रहा है। मैं आशा करता हूं कि पहली बात है, आप मुझे रहस्य बता सकेंगी ?

इसमें कोई रहस्य की बात नहीं है। दूसरी बात ठीक है। चीजें इतनी अव्यवस्था में हैं कि मैं उनपर नजर रखने के लिये बाधित हूं।

१९ अप्रैल १९६३

माताजी की दयालुता का एक नमूना देखिये। आश्रम में जो नये लोग लिये जाते थे उनकी देख-भाल और उनकी व्यवस्था प० ले० किया करता था, यह तो पहले पत्रों में आ ही चुका है। यहां एक ऐसे ही नये व्यक्ति के बारे में वह अपनी सूचना दे रहा है :

इसके लिये मैं केवल दो विकल्प देखता हूं, या तो आप उसे भिक्षादान के रूप में रख लीजिये या मुझे जरा सख्त होने की स्वीकृति दीजिये ताकि मैं उसे रेल के किराये के रुपये देकर विदा कर दूं। डॉक्टर का कहना है कि उसके अवयवों पर क्षय का असर है।

शुरू से ही मैंने उसे भिक्षादान का याचक ही समझा है और उससे बहुत ही कम काम की आशा की। यह उस जाति का व्यक्ति नहीं है जो उपयोगी होना चाहे। इसे कहीं दूर रख दो और कुछ ऐसा काम दे दो जिससे वह चुप रह सके।

आशीर्वाद।

२० अप्रैल १९६३

उत्तर प्रदेश से बनारसी-मां नामक एक महिला आयी थीं जिनके हजारों शिष्य थे। उनका कहना था कि वे माताजी और श्रीअरविंद के काम को आगे बढ़ा रही हैं, उन्होंने बहुत-सी भविष्यवाणियां कीं जिनमें से एक यह थी कि श्रीअरविंद १५ अगस्त १९६४ को फिर से मानव शरीर में आयेंगे। अपनी बात को पुष्ट करने के लिये उन्होंने माताजी के हाथ के लिखे जाली पत्र भी

प्रदर्शित किये थे। उनके बारे में माताजी को सूचना देते हुए प० ले० कहता है : उस प्रदेश के लगभग चार हजार आदमी इस गुट में शामिल हैं। बहुत-से हैं जिन्होंने घर-बार और काम-काज छोड़कर उनके साथ रहना शुरू कर दिया है और यह सब आपके और श्रीअरविंद के नाम के आधार पर। उस इलाके के आश्रम से संबंध रखनेवाले लोग जानना चाहते हैं कि इस मिथ्यात्व के बगूले के सामने उन्हें क्या वृत्ति अपनानी चाहिये। एक आदमी खास इसीके लिये आया है। उसे क्या उत्तर दिया जाये ?

यह सब एकदम और हमेशा के लिये बंद होना चाहिये। यह **एकदम जालसाजी** है और जो लोग जालसाजी करते हैं उन्हें जेल भेज देना चाहिये।' या कम-से-कम उन्हें ऐसे मिथ्यात्व का प्रचार करने और भोले-भाले लोगों को छलने के लिये खुली छूट नहीं मिलनी चाहिये। उसकी पहली **सभी** भविष्यवाणियां **असफल रही हैं** और ये भी उसी तरह **असफल रहेंगी** और जो उनपर विश्वास करते हैं केवल बुद्धू बनते हैं।

२७ अप्रैल १९६३

(और इसके साथ ही माताजी की अनुमति के साथ आश्रम के सचिव श्री नलिनीकांत गुप्त के हस्ताक्षर के साथ यह विज्ञप्ति संबद्ध लोगों के पास भेजी गयी)

''श्रीअरविंदाश्रम के अधिकारियों का ध्यान इस बात की ओर खींचा गया है कि बनारसी-मां नाम से ख्यात एक महिला उत्तर प्रदेश में यह प्रचार करती फिर रही है कि वह माताजी और श्रीअरविंद का प्रतिनिधित्व करती है, कि माताजी ने उसे कुछ पत्र लिखे हैं, उसका दावा है कि उसे बतलाया गया है कि श्रीअरविंद सभी प्राचीन ऋषियों के साथ १५ अगस्त १९६४ को मानव शरीर में प्रकट होनेवाले हैं। वह माताजी और श्रीअरविंद के नाम से और भी बहुत-सी बातें कहती फिरती है।

मुझे यह घोषणा करने का अधिकार दिया गया है कि इस महिला का माताजी और श्रीअरविंद के साथ किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है, माताजी ने उसे कभी कोई पत्र नहीं लिखा और उसके सारे काम का माताजी और श्रीअरविंद के साथ कोई संबंध नहीं है।

सचिव, श्रीअरविंदाश्रम

२७ अप्रैल १९६३

' (इस वाक्य के साथ माताजी ने लिख दिया 'मजाक' यानी वे सचमुच जेल में जाने की बात नहीं कह रही थीं)

एक स्त्री पागल हो गयी थी। उसे अपने पति के पास भेज देने का हुकुम मिलने पर प० ले० एक और साथी को लेकर उसके घर पहुंचा। वह लिखता है, हम 'क' के घर गये थे। वह कुछ भी सुनने से इंकार करती है। वह कहती है कि उसका पति लेने आये तो भी वह न जायेगी। मेरा साथी उसे बलपूर्वक निकाल देने के लिये तैयार है। वह आपके साथ मिलना चाहती है। वह तरह-तरह की ऊल-जलूल बातें कर रही है। क्या आज्ञा है ?

उसे बलपूर्वक निकालना **एकदम असंभव** है। मेरे साथ मिलने का कोई प्रश्न नहीं उठता, **वह जबतक रहना चाहे पड़ी रहे**। उसे किसी ऐसे घर में रखने की कोशिश करो जहां वह कम-से-कम हानि पहुंचा सके। उसे **एकदम आवश्यक चीजें** देते रहो, बाकी उसकी उपस्थिति की अवहेलना करो। (अगर वह करने दे !)

मैं देखूंगी।

आशीर्वाद।

२७ अप्रैल १९६३

हिंदी-भाषी जहां भी जाते हैं वहीं की गलत-सलत हिंदी बोलने लगते हैं और कई बार तो शुद्ध हिंदी उनके लिये अजूबा बन जाती है। आश्रम में भी इस प्रकार की हिंदी चलती है। हिंदी अध्यापक होने के नाते प० ले० के लिये एक समस्या खड़ी हो गयी। वह लिखता है : साहित्यिक हिंदी जरा कठिन है, लेकिन उसीमें हिंदी साहित्य का नवनीत भरा है। श्रीअरविंद ने भी प्राचीन कवियों की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ विद्यार्थी उपयोगिता की दृष्टि से उसे नहीं पढ़ना चाहते। वे केवल आधुनिक भाषा सीखना चाहते हैं जो उनके रोजमर्रा के काम में उपयोगी हो। उसमें भी वे शुद्ध भाषा बोलने से कतराते हैं . . .

मैं पहले ही उत्तर देना चाहती थी लेकिन जल्दी में न दे पायी। उत्तर यह है : दोनों सिखाओ—सच्ची साहित्यिक भाषा और अब उसने जो रूप ले लिया है—यह वस्तुतः बहुत रुचिकर होगा और उन्हें बुरी हिंदी बोलने के रोग से मुक्त कर सकता है।

मैं आपको एक मजेदार बात सुनाऊं। मुझे अपने लेखों से ६७ रुपये मिले और मैं कुछ किताबें खरीदना चाहता था। एक दिन मैंने अचानक वह रुपये आपको दे दिये और एकदम किसीने मुझे वही किताबें भेजीं जो मैं लेना चाहता था और साथ में लगभग २०० रु. की किताबें भेंट-स्वरूप !!

इस तरह की चीजें सैंकड़ों बार हो चुकी हैं और अधिकाधिक होती रहती हैं। मेरे लिये यह "बिल्कुल स्वाभाविक" है, यद्यपि मैं इसे समझाने के लिये तैयार नहीं हूं।
९ मई १९६३

माताजी,

मैं अपने विद्यार्थियों में काफी लोकप्रिय था, लेकिन अब मैं लोकप्रियता खोता जा रहा हूं, मैं चाहता हूं कि वे गंभीरता से काम करें। बाहर निकलने का रास्ता क्या है ?

बाहर निकलने का रास्ता ? चीज को शांति से लो, इसपर ध्यान न दो और शांति से अपना काम करते चलो . . . यह आशा रखो कि अच्छे दिन आयेंगे।

आशीर्वाद।
२२ मई १९६३

माताजी; एक मित्र भोजनालय के लिये चार, पांच पंखे देना चाहता है, क्या आप स्वीकार करेंगी ?

हां।

उसकी स्त्री से मैंने सुना है कि वह मेरे कमरे में भी एक पंखा लगवाना चाहता है। मेरी पहली प्रतिक्रिया है, 'नहीं मुझे ऐश की चीजें नहीं चाहियें।' लेकिन लगता है कि मेरे अंदर कहीं पर लोभ छिपा हुआ है। आपकी क्या सलाह है—मैं स्वीकृति नहीं मांग रहा।

कमरा छोटा है और पंखा अच्छा रहेगा। तुम लेकर देखो, शायद उससे सहायता मिले।

बुरी चीज है **दासता**। परहेज की दासता और आवश्यकताओं की दासता। जो आये उसे स्वीकार कर लो, लेकिन अगर वह जाये तो सदा छोड़ने के लिये तैयार रहो . . .

आशीर्वाद।
२४ जून १९६३

What is bad is *slavery* — slavery to abstinence as well as slavery to needs. What comes, we take but always ready to let it go; if it goes ---

Blessings

प० ले० ने भोजनालय के दो कार्यकर्ताओं के बारे में लिखा जिनमें झगड़ा भी हुआ और मार-पीट भी। उसने पत्र के अंत में लिखा, " 'क' ने मार लगायी 'ख' ने भी जवाब दिया, यह ११.२५ की बात है जब भोजनालय में लोगों की भीड़ लगी थी।"

'क' ने मुझे लिखा है और मैंने उसे बतला दिया है कि मैं इस घटना के बारे में क्या सोचती हूं।

मैं 'ख' को उत्तर नहीं दे रही। मुझे तो लगता है कि यह सब आदिम मानव और उसकी गुफा की ओर वापिस जाने के जैसा है...

हम सभ्य समाज का कृत्रिम जीवन नहीं जीना चाहते, लेकिन ज्यादा अच्छा यह

होगा कि नीचे गिर कर मार-पीट के विधान को अपनाने की जगह हम महानतर सभ्यता की ओर, सीढ़ी पर चढ़ें . . .

आशीर्वाद के साथ।

६ जुलाई १९६३

माताजी,

३ जुलाई को मुझे आये २५ वर्ष पूरे हो गये। पहले इस दिन मुझे एक डांट मिला करती थी, इस वर्ष मैं उससे वंचित रह गया।

क्योंकि इस वर्ष तुम्हें डांट की जरूरत न थी।

आश्रम के एक बड़े अच्छे कार्यकर्ता को क्षय-रोग हो गया। उसने तीन-चार बार स्वप्न देखा कि कोई बहुत काला आकार उसका गला घोंट रहा है, प० ले० पूछता है कि यह क्या चीज है और इसके लिये क्या करना चाहिये।

यह अवचेतन में कोई गलत रूपायण है, लेकिन अगर यह आदमी डरता नहीं तो वह दोबारा न आ पाता। यह तो न्यूनाधिक रूप से सचेतन भय ही है जो प्रायः सारी गड़बड़ करता है।

भय के बिना कुछ नहीं हो सकता।

तुम उससे यह कह सकते हो।

जुलाई १९६३

माताजी,

चारों ओर कार्यकर्ताओं और कार्य में ह्रास होता जा रहा है और मांगें बढ़ती जा रही हैं।

हां, अव्यवस्था व्यापक है, एकमात्र सहायता है **श्रद्धा**।

आशीर्वाद।

६ अगस्त १९६३

प० ले० को कुछ शारीरिक कष्ट था। माताजी ने उसे डॉक्टर के पास जाने की सलाह दी तो उसने लिखा कि मैं चाहता हूं कि मेरा शरीर औरों की सहायता न

ले, आपकी सहायता पर निर्भर रहना सीखे। मेरे अंदर भय भी है और श्रद्धा की कमी भी, फिर भी मैं आशा करता हूं कि आप इसके लिये जो जरूरी है वह कर सकती हैं। अतः किसी और के पास जाना जरूरी है क्या ?

(डॉक्टर के यहां जाना) इससे शरीर को एक विश्वास प्राप्त होता है और इस रूप में वह सहायक है। लेकिन मैं इसे तुम्हारे फैसले पर छोड़ती हूं।

आशीर्वाद।

२६ अगस्त १९६३

(प० ले० ने माताजी को सूचना दी कि इन दिनों आश्रम के फाटक पर नवागन्तुकों के बारे में कुछ कठिनाइयां हो रही हैं)

इन सब ''कहानियों'' और उलझनों से बचने के लिये ज्यादा अच्छा यह है कि १२ और २ के बीच दर्शकों को अंदर लाने के लिये—विशेष रूप से जब भीड़ में बच्चे भी हों—एक अतिरिक्त व्यक्ति रख दो जो उन्हें 'क्वाड्रोज हाउस' में ले जाये जिसमें बैठने की व्यवस्था कर दी जायेगी।

मेरे पास शिकायतें आयी हैं कि 'क' बहुत अभद्र है। पता नहीं यह बात कहांतक सच है, लेकिन तुम उससे कह सकते हो कि जरा भद्रता से व्यवहार किया करे।

अतिथि-कक्ष १२ से २ तक बंद रहेगा।

और बरामदे में परिवार, बच्चे सामान इत्यादि के साथ भीड़-भड़क्का नहीं किया जा सकता। मैं चीजों की उचित व्यवस्था करने का प्रयास कर रही हूं और इसमें मुझे तुम्हारी मदद की आवश्यकता है।

आशीर्वाद।

२४ अक्तूबर १९६३

प० ले० ने किसी प्रसंग में माताजी को एक कहानी लिख भेजी कि एक गुरु के दो शिष्य थे; दोनों गुरु की सेवा करना चाहते थे और उन्होंने अपना-अपना काम बांट लिया था। एक दाहिना पांव दबायेगा दूसरा बांया। एक दिन सोते-सोते दांया पांव बांए पर आ गया। झट बांए पांव का मालिक शिष्य लाठी लेकर दांए को मारने के लिये तैयार हो गया . . .

मुझे तुम्हारे पत्र और तुम्हारी 'कहानी' में बड़ा मजा आया।

यह रहा मेरा उत्तर। यह उत्तर है क्या ? . . . बहरहाल यह एक तथ्य है और इससे कुछ बातें समझ में आ सकती हैं।

"मैं केवल उन्हींको आज्ञा देती हूं जो पूरी तरह और पूरे-पूरे समर्पित हों, क्योंकि इन आज्ञाओं पर ननुनच नहीं की जा सकती, उनकी अवज्ञा नहीं की जा सकती।"

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ अक्तूबर १९६३

माताजी,

ऐसा मालूम होता है कि मुझे श्रीअरविंद सोसायटी और ओड़िया दल के बीच सेतु का काम करना होगा। कृपया हमारा पुराना अनुबंध याद कर लीजिये कि काम आप करें और श्रेय मुझे मिले। मुझे आज उनसे मिलना है।

बहुत अच्छा।

'क' से कहो कि मुझसे चमत्कारों की आशा की जाती है। तुममें से हर एक को भी कुछ थोड़े-से चमत्कार तो करने ही चाहियें!

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१४ नवंबर १९६३

कुछ पूंजी लगानेवाले आश्रम की एक इमारत पर खर्च कम करने की तरकीब सुझा रहे थे। प० ले० ने उनकी बातें माताजी को लिख भेजीं।

इमारत के मामले में तुम जितना खर्च करोगे उतना पाओगे। वे अपने-आपको बहुत चालाक समझते हैं, लेकिन अगर वे कम खर्च करेंगे तो उनका मकान कम दिन चलेगा और हो सकता है कि प्रकृति के आघातों को सहने के लिये काफी मजबूत भी न हो। अप्रशिक्षित आंख के लिये दोनों एक जैसे होंगे लेकिन उनमें ठोसपन और प्रतिरोध-शक्ति में बहुत अंतर होगा। यह सब कहने के बाद मेरा निष्कर्ष है, 'वे जैसा चाहें बनाएं।'

आखिर हर एक को अपना पाठ सीखना होता है।

फिर भी मैं चेतावनी के दो शब्द जोड़ दूं। बुरी तरह से बने मकान की मरम्मत नहीं की जा सकती क्योंकि अधिकतर नींव कमजोर होती है।

आशीर्वाद।

१८ नवंबर १९६३

१९६३ में श्रीअरविंद सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर सोसायटी

की अध्यक्षा (माताजी) की ओर से सब सोसायटीवालों को एक संदेश मिला था : "क्या तुम तैयार हो?" यही संदेश १९६४ के वार्षिक संदेश के रूप में भी दिया गया था। इसीके संदर्भ में प० ले० ने लिखा : मुझे अभी-अभी सोसायटी के सचिव द्वारा उनकी अध्यक्षा का एक प्रश्न मिला है, "क्या तुम तैयार हो?" कृपया बतलाइये कि मैं क्या उत्तर दूं।

इस प्रश्न का उत्तर है, क्या तुम भागवत मुहूर्त के लिये तैयार हो?

तुम उत्तर दे सकते हो '**हां**'।

आशीर्वाद।

१० दिसंबर १९६३

प० ले० का आश्रम के प्रशासन-कार्य के साथ गहरा संबंध था और उसे तरह-तरह की मानव दुर्बलताओं का पता लगता रहता था। एक बार वह किसी मामले में अनखा कर माताजी को लिखता है, "ऐसा लगता है कि भगवान् को धोखा खाने में मजा आता है। अभी मेरे पास 'क' की पुर्जी आयी है कि आपने 'ख' के साथ रहनेवाले अमुक दो बच्चों को नाश्ते के लिये स्वीकृति दी है।

तुम्हारी भूल इस बात में है कि तुम समझते हो कि मैं धोखे में आ गयी। यह असंभव है क्योंकि मेरे लिये लोगों के शब्दों की अपेक्षा उनके "इरादे" ज्यादा स्पष्ट होते हैं।

पहले उन्हें भोजनालय में संकट के बहाने से भेजा गया। उसके बाद जब उनकी जांच की गयी तो हमें बतलाया गया कि उन्हें भोजन करने की स्वीकृति मिल गयी है। जब लिखित स्वीकृति दिखाने के लिये कहा गया तो उन्होंने हमारे यहां खाना बंद कर दिया। फिर मुझसे कहा गया कि उनसे दाम लेकर उन्हें खाने दूं। मैं ऐसी बातों का अर्थ जानता हूं। फिर मुझसे कहा गया कि वे दूध मोल लेंगे और पैसा माताजी को दे देंगे। मैंने कहा, "अगर तुम दूध खरीदना चाहो तो दाम भोजनालय को देना होगा।" वे राजी हो गये। और अब यह पत्र आ रहा है कि दो बच्चे नाश्ता करेंगे और आपको दस रुपये मासिक भेंट देंगे। हमारे हिसाब के अनुसार ये तीस रुपये होने चाहियें। ऐसे मामले बढ़ते जा रहे हैं। मुझे आश्चर्य इस बात पर होता है कि उन्हें आपकी स्वीकृति भी मिल जाती है।

स्वीकृति नहीं। लेकिन अगर मैं उन सबके साथ सख्ती करना शुरू करूं जो मुझे ठगते हैं तो कम ही लोग इस सख्ती से बच पायेंगे।

प्रेम और आशीर्वाद।

१९६३

प० ले० ने एक आदमी के कई चमत्कारों की बात लिखी और अंत में लिखा, 'उसका कहना है कि ये सब चमत्कार आपकी कृपा से हैं। मुझे नहीं लगता कि इस तरह चमत्कारों के पीछे दौड़ना खतरे से खाली है। यह तो पुरानी बातों को ही नये-नये रूप में ला रखना है।

हम बहुधा आपके चमत्कार देखा करते हैं; लेकिन वे कभी अपना विज्ञापन देने और परचे बांटने नहीं आते।'

मुझे इस तरह के दिखावटी चमत्कार पसंद नहीं हैं। अधिकतर उनका दयनीय अंत होता है।

शक्ति के दबाव में आकर पहली प्रतिक्रिया होती है अहंकार का खतरनाक रूप से फूलना।

इन सब चीजों के सामने बस एक ही वृत्ति अपनानी चाहिये—अपना अच्छे-से-अच्छा करो और परिणाम प्रभु के हाथों में छोड़ दो।

आशीर्वाद।

१९६३

प० ले० हिंदी अध्यापक भी है। हिंदीभाषियों के बारे में यह आम शिकायत है कि वे जहां जाते हैं अपनी हिंदी को प्रचलित बोली के रंग में रंग लेते हैं। इसी भांति आश्रम में भी एक तरह की खिचड़ी, बल्कि तहरी हिंदी का चलन है। इसपर प० ले० माताजी को लिखता है: "मेरे विद्यार्थियों ने कुछ हिंदी सीख तो ली है लेकिन वे गलत भाषा बोलने में ही अपनी प्रतिष्ठा (!) समझते हैं! मैं पांच वर्ष से उनकी भाषा ठीक करने की कोशिश कर रहा हूं लेकिन कोई लाभ नहीं। मेरे अच्छे-से-अच्छे विद्यार्थी भी मेरी पीठ के पीछे जानकर गलत भाषा बोलते हैं। मेरी इच्छा होती है कि अगले वर्ष से हिंदी पढ़ाना छोड़ दूं।"

दो वर्ष और कोशिश करो, शायद सात वर्ष बाद उनकी 'प्रतिष्ठा' बह जाये! . . .

आशीर्वाद।

१९६३

प० ले० को बहुत-से लोगों को काम देना होता था। कभी-कभी वह उनके बारे में माताजी की राय मांगता था। 'क्ष' माताजी के पास प्रणाम के लिये गया तो उसके बारे में उन्होंने लिखा :

मैंने 'क्ष' को देख लिया है। वह और कुछ नहीं, **अपरिपक्व** अधिक है और जैसा कि सभी आदिम प्रकृतियों में होता है, उसका अहंकार बहुत प्रमुख और स्वार्थपूर्ण है। हां, उसकी महत्त्वाकांक्षा का कुछ उपयोग किया जा सकता है अगर उसकी उचित देखभाल की जाये और उसे कठोरता के साथ ठीक मार्ग पर रखा जाये और उसके दर्प की नाक पर कुछ चपत लगाये जायें।

आशीर्वाद।

१९६३

माताजी,

'क' ने मुझे 'ग' का एक पत्र दिया है (चित्र देखिये) यह आदमी सोचता है कि वह बहुत बड़ा है और हम उसका मूल्य नहीं जानते। मैंने उसे कुछ समय के लिये बेकरी में और कुछ समय के लिये प्रेस में काम दिया है। बेकरी में उसे बहुत हल्का काम दिया गया है, लेकिन उसके लिये यही बहुत ज्यादा है। अगर मैं उसे 'ग' के साथ दे दूं तो वहां भी वह काम न करेगा। वह 'घ' के पास जाने की कोशिश कर रहा है। 'घ' ऐसे लोगों में सबसे अच्छा होगा जिनके पास कुछ न करते हुए बहुत कुछ दिखावा किया जा सकता है।

मैंने इस आदमी के बारे में यही कहा था। मैंने 'घ' के पास जाने की स्वीकृति नहीं दी। अगर वह काम के लिये बहुत बड़ा है तो वह जा सकता है। हमें "बड़े लोगों" की जरूरत नहीं है।

फिर भी अगर वह प्रेस में काम करने के लिये **सचमुच उपयोगी** हो तो वह वहां पूरा काम (दिन में आठ घंटे) कर सकता है।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

१४ जनवरी १९६४

१९६४ में आर्थिक कठिनाइयों के कारण आश्रम में कुछ कटौतियां की गयीं जिनके कारण कुछ लोगों में असंतोष पैदा हो गया। इस बारे में प० ले० माताजी को लिखता है, "विद्यार्थी अवस्था में हम लोग अपने रहने-सहने का

पूरा खर्चा दिया करते थे, लेकिन जब कभी भूकंप, सूखा या बाढ़ आदि का समाचार आता था तो हम अपनी ओर से अपने घी, दूध, कपड़े आदि पर कटौती लगा कर, पैसा बचाकर राहत कार्यों के लिये भेजा करते थे। मेरी समझ में नहीं आता कि आश्रम के कुछ लोगों में इस कटौती के बारे में यह असंतोष कैसे हो सकता है ?

दुर्भाग्यवश (?) वर्तमान कठिनाई बाढ़, सूखा, युद्ध या भूकंप आदि के कारण नहीं है, न ही आगजनी है। ये चीजें ऐसी हैं जो कुछ समय के लिये मानव भावनाओं को जगातीं और उनकी 'आवश्यकता' कहलानेवाली भौतिक कामनाओं पर प्रभुता पा लेती हैं।

आर्थिक कठिनाइयां साधारणतः लोगों को शुष्क, यहांतक कि अगर विद्रोही नहीं तो कटु तो बना ही देती हैं। मैं ऐसे कुछ लोगों को जानती हूं जो **श्रद्धा** खोने खोने को हैं क्योंकि मेरे पास उतना पैसा नहीं है जितने की मुझे जरूरत है !

६ फरवरी १९६४

माताजी,

२६ वर्ष प्रयास करने के बाद भी मैं देखता हूं कि मैं निष्ठावान् होने से बहुत दूर हूं। छोटी-छोटी बातें मुझे असंतुलित कर देती हैं। मुझे शंका है कि आप कभी मुझे बदलने में सफल हो भी सकेंगी।

मुझे विश्वास है कि मैं एक दिन सफल होऊंगी।

माताजी,

ऐसा लगता है कि भीतर से तो चीजें सुधर रही हैं पर बाहर से तो मालूम होता है कि विघटन हमारे द्वार पर खड़ा है। आखिर हम कहां हैं ?

एक सुंदर उपलब्धि के सामने।

प्रेम और आशीर्वाद।

१६ मार्च १९६४

प० ले० से आश्रम में आये हुए ओड़िया लोगों की सभा में कुछ प्रश्न किये गये। उसने प्रश्नोत्तर का हाल माताजी को लिख भेजा। वह कहता है कि मुझसे

पूछा गया है कि क्या माताजी और श्रीअरविंद के अनुयायी राम, कृष्ण तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा कर सकते हैं या नहीं। मैंने कहा, हमारे यहां कोई बंधे हुए नियम नहीं हैं जिनका सभी को अनुसरण करना पड़े, हर एक को वही करना चाहिये जो उसे अंदर से ठीक लगे। मैंने कहा कि अगर कोई सच्चा है और भगवान् का सेवक बनना चाहता है तो वह माताजी और श्रीअरविंद का नाम जाने बिना भी उनकी सेवा कर सकता है। वह माताजी को चाहे जिस नाम से पुकारे—राधा, कुमारी मरियम या हनुमान—उसे प्रत्युत्तर अवश्य मिलेगा। सब कुछ उसकी सचाई और श्रद्धा पर निर्भर है। हम न तो किसी से पूजा-पाठ करने के लिये कहते हैं न बंद करने के लिये। आपका क्या आदेश है ?

बिल्कुल ठीक।

प्रेम और आशीर्वाद।

२३ मार्च १९६४

प० ले० को कई बार उग्र स्थितियों का सामना करना पड़ता था। ऐसी ही एक स्थिति में वह लिखता है, 'सामान्यतः जब मुझे किसी उग्र व्यक्ति का सामना करना पड़ता है तो मैं आपकी शांति को पुकारता हूं और सामनेवाला आदमी चुप हो जाता है। कल मैंने उस पंजाबी युवक के साथ इसी तरकीब का उपयोग किया। कुछ देर के लिये तो इसका असर हुआ, फिर उसमें बड़ी ही उग्र प्रतिक्रिया हुई जिससे मैं घबरा गया। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये ?

हो सके तो संबंध एकदम काट लो ताकि आक्रामक स्पंदन गिर पड़ें।

माताजी,

कभी-कभी जब मुझे किसी बीमार से सहानुभूति होती है तो मेरा शरीर भी उसीके लक्षण दिखाने लगता है। आयुर्वेद का विद्यार्थी होने के नाते मेरी कल्पना भी सक्रिय हो उठती है। मेरे पूरे प्रयास के बावजूद यह स्थिति जाती नहीं, लेकिन आपकी ओर से एक-दो कठोर शब्द मिल जायें तो मैं बिल्कुल ठीक हो जाता हूं। इसलिये मुझे बार-बार आपको तंग करना पड़ता है। इसीलिये मैं लिखने बैठा हूं। 'क' को मधुमेह है और वह मेरे शरीर में अपने दोस्त पा रहा है। काश ! मैं आपके रक्षण से बाहर न जा पाता।

सबसे अच्छी तरकीब है, अव्यवस्था और विक्षोभ के स्पंदनों को हटाकर उनके स्थान पर भागवत उपस्थिति, सत्य और सामंजस्य को प्रतिष्ठित करो।

आशीर्वाद।

२५ मार्च १९६४

माताजी,

'क' बंबई में अपना व्यापार शुरू करना चाहता है, वह अपनी दुकान के नाम के साथ श्रीअरविंद का नाम भी जोड़ना चाहता है। मैंने उससे कहा है कि ऐसी चीजों के साथ श्रीअरविंद का नाम जोड़ना वांछनीय नहीं है।

वह श्रीअरविंद के नाम का उपयोग **नहीं** कर सकता।

५ मई १९६४

माताजी हंसी-मजाक में भी पीछे नहीं रहती थीं, हां वह कभी निचले स्तर का या भद्दा न होता था। एक नमूना देखिये: "मैं पुरोधा में आपके और श्रीअरविंद के उद्धरण छापा करता हूं जिनमें कई बार यह नहीं दिया जाता कि वे कहां से लिये गये हैं। इसपर एक मित्र ने मुझे एक चेतावनी दी है कि ऐसी हालत में लेखक मेरे ऊपर अदालत में मुकद्दमा चला सकते हैं!! मैं जानना चाहूंगा कि आप मेरे विरुद्ध कौन-सी अदालत में जायेंगी। और अगर मेरे ऊपर जुर्माना हुआ तो आप चुका देंगी न!!"

मुझे लगता है कि तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं! मुझे ऐसी किसी अदालत का पता नहीं। अतः तुम्हारे ऊपर जुर्माना होने का कोई भय नहीं है।

आशीर्वाद।

२३ मई १९६४

माताजी,

हमारे भोजनालय में काम करनेवाले तीन-चार व्यक्तियों में घनिष्ठ शत्रुता हो गयी है। मैं उनकी शिकायतें सुनते-सुनते थक जाता हूं। कल तो इसने बहुत ही गंभीर रूप धारण कर लिया था। मैं बहुत कोशिश करने पर भी कोई कारण नहीं खोज पाया। कृपया सहायता कीजिये।

यह गरमी के कारण है ! मेरी सलाह है '**ठंडे पानी का फव्वारा**' !

आशीर्वाद ।

२७ मई १९६४

२७ मई १९६४ को पं० जवाहरलाल नेहरू का देहावसान हो गया। इसपर माताजी ने संदेश दिया, ''नेहरू अपना शरीर छोड़ गये हैं लेकिन उनकी आत्मा भारत की आत्मा के साथ एक है जो शाश्वत काल तक बनी रहेगी।'' प० ले० ने माताजी से सलाह मांगी कि क्या वह नेहरू के बारे में पुरोधा में संपादकीय टिप्पणी लिख सकता है, अगर हां, तो वह क्या कहे ?

यह ठीक है। इसके सिवाय कोई और सुझाव नहीं कि वर्तमान दुःख और अंधेरे के बावजूद भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

माताजी,

उस दिन मैंने स्वप्न देखा कि हमारे भोजनालय में बहुत-से छोटे-बड़े सूअर पाले गये हैं, उन्हें मारा जायेगा। मैं वहां से भाग जाना चाहता था, फिर मैंने सोचा, अगर माताजी यह चाहती हैं तो यही सही। इसका मेरे ऊपर बहुत असर पड़ा।

यह स्वप्न तुम्हारे पुराने संस्कारों का परिणाम है, ये अभीतक तुम्हारी अवचेतना में जीवित हैं। सूअरों को मारने का कोई इरादा नहीं है जबतक कि वे लोभ और भोजन-लोलुपता के प्रतीक न हों।

आशीर्वाद ।

१० जून १९६४

माताजी,

कभी-कभी मैं अपने विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत बातचीत किया करता हूं। मुझे यह देखकर धक्का लगता है कि कुछ अच्छे विद्यार्थी धन को इतना अधिक महत्त्व देते हैं। वे डॉक्टर भी बनना चाहते हैं तो अधिक पैसा कमाने के लिये !! मैं सोच रहा हूं कि अपने हिंदी के विद्यार्थियों को वाद-विवाद का विषय दूं, 'धन ही जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है या नहीं,' क्या इससे उन्हें इस विषय पर गंभीरता से सोचने का अवसर मिलेगा ? पता नहीं !

हां, प्रयास करो। इसकी बहुत अधिक जरूरत है। ऐसा लगता है कि इन दिनों धन ही परम प्रभु बन गया है। सत्य पीछे पृष्ठभूमि में हट रहा है; रही बात प्रेम की तो वह दृष्टि से बिल्कुल ओझल है!

मेरा मतलब दिव्य प्रेम से है, क्योंकि जिसे मनुष्य प्रेम कहते हैं वह तो धन का बहुत अच्छा मित्र है।

आशीर्वाद।

१३ जून १९६४

माताजी,

एक प्रश्न है, अगर आप उत्तर देना चाहें तो दीजिये। हर बार जब 'क' या उसके लोग मुझसे नाराज होते हैं या भोजनालय से नाराज होते हैं तो आप मेरी ही भूल निकालती हैं। क्यों? और मामलों में तो ऐसा नहीं होता।

भगवान् के लिये तुम भी औरों की तरह बेवकूफ न बनो।

मैं न तो किसी को दोष देती हूं, न कभी किसी का पक्ष लेती हूं। लेकिन मेरे देखने का तरीका कुछ अलग है। मेरी चेतना के लिये धरती पर समस्त जीवन, जिसमें मानव और समस्त मानसिकता भी शामिल है, स्पंदनों की राशि है और ये अधिकतर मिथ्यात्व, अज्ञान और अव्यवस्था के स्पंदन हैं जिनके अंदर उच्चतर लोकों से आनेवाले सत्य और सामंजस्य के स्पंदन अधिकाधिक कार्य में लगे हैं और वे उनके प्रतिरोध में से रास्ता बना रहे हैं।

इस दृष्टि में अहंभाव, व्यष्टिगत हठधर्मी और पार्थक्य बिल्कुल अवास्तविक और भ्रामक ठहरते हैं।

जब वर्तमान अस्तव्यस्तता में कोई **अतिरिक्त** गड़बड़ पैदा हो जाती है तो मैं जितना संभव हो उतना सामंजस्य लाने के लिये उसपर कुछ विशेष स्पंदन भेजती हूं। इसमें स्वयं व्यक्ति को उस '**प्रहार**' का इतना अनुभव नहीं होता जितना उस चीज को जो असामंजस्य के साथ चिपकी होती या उसका पक्ष लेती है।

सच बात तो यह है कि मुझे विश्वास था कि तुम सहज भाव से सत्य का पक्ष लोगे और समझ जाओगे कि ऐसे मामलों में कभी एक पक्ष पूरी तरह ठीक और दूसरा पक्ष पूरी तरह गलत नहीं होता। मिथ्यात्व और अस्तव्यस्तता के साथ जो जितना चिपका है वह उतना दोषी है।

१५ जुलाई १९६४

माताजी का ऊपर दिया हुआ पत्र पढ़कर प० ले० चकरा-सा गया। उसका

मतलब यह बिल्कुल न था कि माताजी पक्षपात करती हैं, उसने नाराज होकर भी माताजी को पत्र न लिखा था। उसने 'क' के साथ हिल-मिल कर काम करने की पूरी कोशिश की थी, इतनी कोशिश शायद और किसी के लिये न की होगी, वह भी इतने लंबे समय तक लगातार, लेकिन परिणाम क्या हुआ ? एकदम असफलता। वह यह सब रोना रोकर माताजी से पूछता है कि इसके पीछे क्या कारण है।

कुछ लोगों का प्राण हमेशा अस्तव्यस्तता और असामंजस्य, छोटे-मोटे लड़ाई-झगड़ों और गड़बड़ों को पुकारता है। उनके अंदर एक उत्पीड़न का पागलपन भी होता है। वे समझते हैं कि हर एक उनके विरुद्ध है। इसे ठीक करना बहुत अधिक कठिन है और इसके लिये प्रकृति के आमूल परिवर्तन की जरूरत है।

ऐसे लोगों के साथ व्यवहार करते हुए सबसे अच्छा यह है कि प्रतिक्रियाओं की परवाह न करो और तुम्हें जो करना है वह सरलता और सचाई के साथ करते चलो। इस मामले में 'क' को मुझसे अपने जीवन भर की सबसे कड़ी डांट मिली है। शायद उसका कुछ असर हो।

आशीर्वाद।

१५ जुलाई १९६४

माताजी,

एक विद्यार्थी ने मुझसे पूछा है कि समय इतनी तेजी से क्यों चलता हुआ मालूम होता है। मेरा ख्याल है कि इसका संबंध हमारे अंदर स्थित शाश्वतता से है। लेकिन बात मुझे भी स्पष्ट नहीं है।

जब तुम वैश्व सामंजस्य के साथ संपर्क में रहते हो तो समय कोई निशानी छोड़े बिना चलता चला जाता है।

संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कई सर्वोत्कृष्ट कवियों ने राधा और कृष्ण के बारे में इस तरह गाया है मानों वे शारीरिक क्षुधा और सेक्स की लालसाओं की बात कर रहे हों। कोई चीज यह मानने को तैयार नहीं होती और कहती है कि यह केवल वासना नहीं हो सकती। शायद उन्हें प्राणमय और शारीरिक भूमिका पर भगवान् के साथ संबंध व्यक्त करने और शरीर और भावनाओं का सर्वभावेन समर्पण व्यक्त करने के लिये और शब्द नहीं मिले। यह प्रश्न बहुधा सामने आता है।

मैंने हमेशा यही माना है कि यह सच्चे शब्द और उचित भाषा पाने की अयोग्यता के कारण है।

१७ जुलाई १९६४

१९६४ आर्थिक दृष्टि से आश्रम के लिये संकट का समय था। भोजनाच्छादन पर भी इसका असर पड़े बिना न रहा। इस सिलसिले में काफी गप्पें भी फैलने लगीं। प० ले० ने इनका ब्योरा दिया तो :

...मैं आशा करती हूं कि जो निष्ठावाले हैं वे इस प्रकार की बातें सुनने में अपना समय नष्ट न करेंगे।

तुमने भोजन के बारे में जो कुछ लिखा है वह मुझे मालूम है—लेकिन तुम स्वीकार करोगे कि अपने कामों को ज्यादा अच्छा बनाना और उन्हें ज्योतिर्मय और बोधगम्य बनाना संभव है।

...जब धन का अभाव हो तो उसके स्थान पर सद्‌भावना और संगठन तथा सुव्यवस्था के असीम प्रयास को लाना चाहिये। मैं उसी प्रयास की मांग कर रही हूं, वह तमस् और प्रमादपूर्ण लापरवाही पर विजय होगी।

मैं नहीं चाहती कि कोई भी हथियार डाल दे, मैं चाहती हूं कि हर एक अपना अतिक्रमण करे।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१८ जुलाई १९६४

लुधियाने के एक वृद्ध सज्जन की हालत बहुत खराब थी। डॉक्टरों ने शल्यक्रिया की सलाह दी।

बहुत संभव है कि अंत आ रहा है। सब कुछ उसके स्वभाव और इच्छा-शक्ति पर निर्भर है। अगर वह संघर्ष किये बिना चुपचाप चला जाना चाहता है तो उसे शांत रहकर जबतक खिंचे, खींचने दो, अगर वह युद्ध करना पसंद करता है तो शल्य-चिकित्सा होने दो और देखो क्या होता है। हर हालत में मेरे आशीर्वाद उसके साथ हैं।

जहांतक आश्रम की अवस्था का सवाल है, हालत वैसी ही है जैसा तुमने वर्णन किया है, शायद उससे भी खराब, मैं भी श्रीअरविंद की तरह कहूंगी, 'जबतक चेतना नहीं बदलती तबतक वास्तव में कुछ नहीं किया जा सकता।'

तुम हस्तक्षेप करोगे—और यह एक उदाहरण और प्रदर्शन के रूप में अच्छा है, लेकिन दूसरे ही दिन स्थिति पहले से भी ज्यादा बिगड़ जायेगी।

हम सत्य को अभिव्यक्त होने के लिये नहीं बुला सकते क्योंकि मिथ्यात्व इतने व्यापक रूप में और गहराई में फैला हुआ है कि उसके आने का परिणाम होगा पूरा-पूरा विनाश।

फिर भी, भागवत कृपा अपार है—वह कोई रास्ता ढूंढ़ निकालेगी।

आशीर्वाद।

१९६४

प० ले० काम के बारे में अनेक समस्याएं गिनाने के बाद कहता है, "इस मुश्किल समय में अपना काम निर्विघ्न रूप से चलाने के लिये जिस चीज की जरूरत हो वह प्रदान कीजिये।"

सतर्क श्रद्धा स्थिति की रक्षा करेगी।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

६ अगस्त १९६४

माताजी,

'क' मुझसे कहता है कि उसके विभाग में काम करनेवाले 'ख' और 'ग' अपने काम की पूरी तरह से उपेक्षा कर रहे हैं। उनकी मशीनें धूल से अटी पड़ी हैं, 'घ' उन्हें तरह-तरह की बुरी आदतें सिखाता रहता है, मेरी समझ में नहीं आता, मैं क्या करूं।

बुरा काम तभी होता है जब शीर्षस्थ व्यक्ति में उचित **चेतना** का अभाव हो।

कोई संगठन ठीक तरह से चले इसके लिये आवश्यक शर्तें हैं कि **स्पष्ट, यथार्थ** दृष्टि हो कि क्या करना है, और उसे कार्यान्वित करनेके लिये **स्थिर, शांत** और **दृढ़** इच्छा-शक्ति हो। और एक सामान्य नियम के अनुसार औरों से उन गुणों की मांग न करो जो स्वयं तुम्हारे अंदर नहीं हैं।

मुझे बहुत जोर से यह लगता है कि इस विभाग में निरीक्षण वैसा नहीं है जैसा होना चाहिये।

२५ अगस्त १९६४

माताजी,

मैं व्यक्तिगत रूप से अपनी जानकारी के लिये यह जानना चाहूंगा कि 'क' का यहां रहना क्यों अवांछनीय है। पिछली फरवरी में उसने हमारे साथ काम किया था और वह रोज बारह घंटे काम करती थी। पिछले छह सप्ताह से वह दस घंटे रोज तो काम करती ही है फिर भी मेरे अंदर कोई चीज उसके रहने की सिफारिश करने से रोकती है।

संभवतः तुम्हारा मूल्यांकन इस तथ्य के आधार पर है कि उसने यहां रहने या यहां लौट आने के लिये सब प्रकार के उपायों का प्रयोग किया है—जिनमें से कुछ सीधे नहीं हैं—जब कि उसे स्पष्ट रूप से कह दिया गया था कि मैं चाहती हूं कि वह चली जाये। इस कारण हम नहीं जानते कि अगर उसे स्थिर रूप से रहने की स्वीकृति दे दी जाये तो वह क्या रूप दिखायेगी।

आशीर्वाद।

२६ अगस्त १९६४

एक स्त्री को आश्रम में रहने की स्वीकृति नहीं मिली। फिर भी वह डटी हुई थी। ऐसे लोगों को भगाने का काम साधारणतः प० ले० का हुआ करता था परंतु इस बार 'क', 'ख', 'ग' इस मामले में पड़े हुए थे और प० ले० इस बात से क्रुद्ध रहा था कि माताजी की आज्ञा का पालन क्यों नहीं हो रहा। उसने माताजी को लिखा कि आखिर यह अराजकता क्यों है ?

हां, सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि सारी बात को एक मुस्कान के साथ लो! क्योंकि ऐसा लगता है कि कम-से-कम अभी तो इससे बचना संभव नहीं है।

जब चीजें गलत होती जा रही हों तो अपनी सर्वोत्तम सद्भावना और सच्चे सहयोग को दिखाने का सबसे अच्छा अवसर होता है।

प्रेम और आशीर्वाद।

३१ अगस्त १९६४

माताजी ने आश्रम के एक लड़के को अमुक काम देने का सुझाव दिया तो प० ले० ने बतलाया कि वह तो अपने नातेदारों के साथ मिलकर निजी कमाई करने में लगा है।

ऐसी ही चीजें आश्रम को आर्थिक बरबादी की ओर लिये जा रही हैं।
१४ सितंबर १९६४

माताजी,

एक बचकाना प्रश्न है। क्या पशु-पक्षी भी हमारी तरह भोजन का स्वाद पाते हैं ?

हां, पाते तो हैं पर वे हमारी तरह उसके बारे में **सोचते** नहीं।
आशीर्वाद।
२२ सितंबर १९६४

लुधियाना में श्रीअरविंद सोसायटी की ओर से एक प्राथमिक विद्यालय शुरू करने का प्रस्ताव था। स्थानीय लोगों की इच्छा थी कि उसे उच्चतर विद्यालय बनाया जाये। पैसे का सवाल न था परंतु प० ले० को यह शंका थी कि उचित अध्यापक जुटाये बिना, जो माताजी और श्रीअरविंद के प्रभाव में न हों, इतना बड़ा कदम उठाना ठीक होगा क्या ? क्या वह माताजी की इच्छा के अनुकूल चल सकेगा ?

पहले अध्यापकों को जुटाओ, बाद में विद्यालय खोला जा सकता है।
आशीर्वाद।
२३ अक्तूबर १९६४

माताजी,

एक संन्यासी यहां रहने के लिये आया था। कुछ ही महीनों में उसने अपना गेरुआ चोला छोड़ दिया और साधारण आदमी बन गया। उसे ध्यान करने का बहुत शौक है, आंखें बंद करते ही उसका शरीर हिलने-डोलने लगता है और उसे बहुत आनंद का अनुभव होता है, लेकिन कभी-कभी उसे अपने चारों ओर सांप-ही-सांप दिखायी देते हैं और कभी-कभी वह अपने-आपको जंगली जानवरों के बीच में पाता है। कुछ दिन पहले उसने ध्यान-कक्ष में बाकायदा एक दृश्य उपस्थित कर दिया। मैंने उसे सलाह दी है कि जबतक आपका उत्तर न आ जाये वह ध्यान न करे।

हो सकता है कि संन्यासी-चोला छोड़ने का भय (शायद अवमानसिक) उसके अंदर सांप आदि के आक्रमण के रूप में अनूदित होता है। तुम उससे कह दो कि वह डरे नहीं, कि मुझे सूचना दे दी गयी है और कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

उसे फिर से ध्यान करने की कोशिश करने दो—वह यह विश्वास रखे कि उसकी रक्षा की जा रही है। लेकिन पहले वह औरों के बीच में प्रयास न करे। अगर उसका ध्यान शांति के साथ होने लगे तो वह फिर से औरों के साथ ध्यान कर सकता है।

आशीर्वाद।

७ दिसंबर १९६४

माताजी,

हमारे रसोईघर के काम करनेवाले कभी-कभी सोडे का उपयोग करना चाहते हैं, क्या आपकी स्वीकृति है?

पेट के लिये यह बहुत अच्छा नहीं होता!

और इमली?

अच्छा।

आशीर्वाद।

१९६४

माताजी,

एक व्यक्तिगत प्रश्न है। अब आपने इमली के उपयोग की स्वीकृति दे दी है, लेकिन लगभग बीस वर्ष पहले आपने मुझे करारी डांट पिलायी थी क्योंकि मैंने 'क' के कहने पर उसके लिये इमली का शरबत बना दिया था। आपने कहा था कि इमली स्वास्थ्य के लिये हानिकर है और भारतीय लोगों के प्रमादी होने में एक बड़ा कारण यह भी है। हमारे प्राचीन मुनियों ने भी लगभग यही बात कही है और उसे तामसिक भोजन बताया है। मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या अब मूल्य बदल गये हैं या आप मानव लालसाओं को सुविधा दे रही हैं।

मैंने भोजन, मसाले आदि के प्रभाव के बारे में इतनी परस्पर-विरोधी बातें सुनी हैं कि अब मैं तर्क-संगत रूप में इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं कि और चीजों की तरह यह भी

व्यक्तिगत मामला है और परिणामतः कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता और आरोपित तो किया ही नहीं जा सकता।

मेरी सदयता का यही कारण है।

आशीर्वाद।

१९६४

माताजी,

'क' पहली तारीख को जा रहा है। उसे अपने व्यापार में अच्छा लाभ हो रहा है, लेकिन उसका कहना है कि यह आपकी कृपा से है। वह जानना चाहता है कि क्या वह इस काम को जारी रखे ?

honest business is getting more and more risky.

ईमानदारी के साथ व्यापार ज्यादा खतरनाक होता जा रहा है।

'क' को अमुक विभाग में काम दिया गया था, लेकिन बीमारी के कारण उसे वह काम छोड़ देना पड़ा। उसके पेट में बहुत तकलीफ रहती है और आंखों में भी रोहे हो गये हैं। वह यहां हतोत्साह और कुंठा की अवस्था में आयी थी। जब वह काम करती है तो अच्छा करती है पर अधिक समय तो बिस्तर पर ही बीतता है! अब वह मरना चाहती है।

जो यहां दुःखी रहते हैं या यह अनुभव करते हैं कि उन्हें आवश्यक सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं उन्हें यहां न रहना चाहिये। हम जितना कर रहे हैं उससे ज्यादा करने की स्थिति में नहीं हैं और आखिर हमारा उद्देश्य लोगों को आरामदेह जीवन देना तो नहीं है। हमारा उद्देश्य है उन्हें दिव्य जीवन के लिये तैयार करना और वह बात ही अलग है।

१९६४

people who feel miserable here and find that they have not the comfort they require ought not to stay.

We are not in a position to do more than we do, and, after all, our aim is not to give to people a comfortable life but to prepare them for a Divine Life which is quite a different affair –

प० ले० फल और मेवे के उपयोग तथा वितरण का काम करता था। वह हर वर्ष अक्तूबर-नवंबर में ये चीजें उत्तर भारत से मंगाया करता था। १९६४ में देश की स्थिति को देखते हुए इनका आना मुश्किल मालूम होता था। उसने माताजी से प्रार्थना की तो उत्तर मिला :

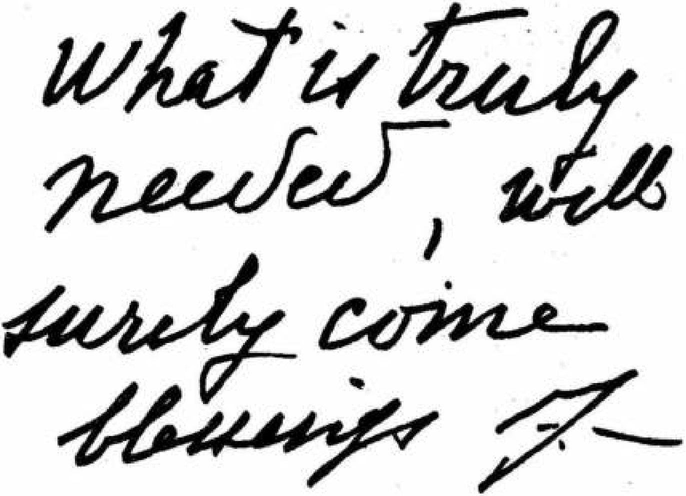
What is truly needed, will surely come
blessings M.

जिसकी सचमुच जरूरत होगी, वह चीज अवश्य आयेगी।

आशीर्वाद।

१९६४

माताजी,

जहांतक काम का संबंध है मुझे कुछ-कुछ इच्छुक कार्यकर्ताओं का स्वागत करके खुशी होगी, लेकिन जब पैसे की बात आती है तो मैं घबरा जाता हूं। दाल, तेल, मसाले आदि की अधिक मात्रा देना उस श्रेणी में आता है।

यह इतना पैसे का सवाल नहीं है जितना नियंत्रित वितरण का। (खाद्यान्न आदि की कमी का)

मेरा प्रस्ताव है कि जो ठीक और उचित है वह किये जाओ और भविष्य की बहुत ज्यादा चिंता न करो। उसे (भविष्य को) भागवत कृपा के भरोसे छोड़ दो।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१९६४

प० ले० की किसी के साथ यह विषय लेकर बहस हो गयी कि काम क्या है। उसके बारे में लिखते हुए वह कहता है, आखिर मेरा कहना था, "माताजी जिस किसी चीज को काम के रूप में स्वीकार कर लें वही काम है।"

मैं निराश नहीं हूं लेकिन मुझे इस बात में मजा आता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूं वह यद्यपि मेरी दृष्टि में काम का 'क' भी नहीं है फिर भी मुझे उसे करते जाना चाहिये क्योंकि आपकी करुणा उसे स्वीकार करती है!

आह! तुम बहुत होशियार होते जा रहे हो और इस सिद्धि तक पहुंच रहे हो कि हम कुछ भी नहीं हैं, हम कुछ नहीं जानते। हम कुछ नहीं कर सकते। केवल परम प्रभु जानते हैं, करते हैं और हैं।

सप्रेम।

१९६४

किसी विभाग में काम के बारे में असंतोष फैला हुआ था, प० ले० ने इस विषय में माताजी को लिखा :

People are here
to change their
consciousness
unless they become,
all of them, true
to their aim; nothing
true can be done

लोग यहां अपनी चेतना बदलने के लिये हैं। जबतक **सब-के-सब** अपने **लक्ष्य के प्रति सच्चे** नहीं बन जाते तबतक कोई **सच्चा** काम नहीं किया जा सकता।
१९६४

माताजी,
'क' मेरे साथ काम करता है, उसमें यह डर भरा हुआ है कि वह दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा है। वह टमाटर, मक्खन, रोटी, तरकारी कुछ भी हजम नहीं कर पाता। उसे श्लीपद भी है और पेट में वायु भी। वह चाहता है कि मैं उसका काम बदल दूं। वह स्वीकार करता है कि उसका काम न तो भारी है न अधिक फिर भी उसका स्वास्थ्य इतना करने की स्वीकृति नहीं देता। मैं उससे कुछ कहता हूं तो वह यही मान बैठता है कि मैं उससे काम हासिल करना चाहता हूं, उसके शरीर की परवाह नहीं करता। वह बस कुरसी पर बैठा-बैठा कुछ करना चाहता है।

उसमें प्राणिक शक्ति **बहुत ही कम** है और मानसिक सुझाव बहुत जोरदार। कुछ समय के लिये जैसा वह चाहता है वैसा ही कर दो। शायद वह जान पाये कि यह सब **कल्पना** है क्योंकि उसकी कल्पना ही उसे दुर्बल बनाती है, बल्कि उसे रुग्ण होने का **आभास** देती है।
१९६४

प० ले० ने जीवन की बहुत-सी कठिनाइयों के बारे में लिखा तो माताजी का उत्तर था—

यह कहने की जरूरत नहीं कि मेरी सहायता और शक्ति तीव्रता के साथ उन लोगों के साथ है जो मेरे साथ मिलकर इस वस्तु-स्थिति के साथ जूझ रहे हैं। मैं बस उनसे इतना ही चाहती हूं कि वे विश्वास बनाये रखें और सहन करें।

सत्य की विजय अवश्य होगी।
साहस बनाये रखो।
प्रेम और आशीर्वाद के साथ।
११ फरवरी १९६५

फरवरी १९६५ में हिंदी-विरोधी आंदोलन के बहाने आश्रम के बहुत-से मकानों

पर पथराव किया गया, कुछ को लूटा और जलाया गया। जब आश्रम के मुख्य भवन पर आक्रमण हुआ तो आश्रम के बहुत-से लोग बाहर निकल पड़े और उन्होंने आततताइयों का सामना किया। उस समय प० ले० को बहुत स्पष्ट और जोरदार अनुभूति हुई मानों उसके शरीर में बिजली दौड़ रही है। आततताइयों का भौतिक रूप से सामना करने की उसके अंदर जरा भी इच्छा न पैदा हुई। वह भीतर ही भीतर माताजी को पुकारने और उनकी उपस्थिति का अनुभव करने की कोशिश करता रहा। अपनी अनुभूति का वर्णन करते हुए वह लिखता है : मुझे लगा कि अगर मैं पूरा विश्वस्त और शांत रह सकूं और आपकी सहायता का आह्वान करूं तो कोई विरोधी आश्रम को छू तक न सकेगा। ऐसी भावना लिये मैं आश्रम के अंदर घूमता भी रहा। यह स्थिति रात के ग्यारह के बाद तक बनी रही।

मुझे इस तरह की अनुभूति का पहले भी स्वाद मिल चुका है पर वह कभी कुछ क्षणों से ज्यादा नहीं रही। अब मेरे अंदर यह शंका पैदा हो रही है कि यह अनुभूति कहीं मेरी भीरुता को छिपाने के लिये एक लबादा तो न थी।

इस प्रकार की अनुभूति पर कभी संदेह न करो।

सभी लोगों को ठीक इसी स्थिति में होना चाहिये था। मैं इस स्थिति को आश्रम में उतारने की कोशिश कर रही थी और अगर सभी ने इसमें हिस्सा लिया होता तो कुछ भी गड़बड़ न हो पाती, अधिक-से-अधिक उग्र आक्रमण भी व्यर्थ चले जाते।

आशीर्वाद।

१८ फरवरी १९६५

माताजी,

मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि भारत की भारतीयों से रक्षा कीजिये।

हां, यह जरूरी मालूम होता है

प्रेम और आशीर्वाद।

२५ फरवरी १९६५

माताजी,

मैं जानना चाहूंगा कि कच्ची तरकारी ले जाने के लिये क्या नौकरों को भोजनालय के पश्चिमी दरवाजे से घुसने की अनुमति दी जा सकती है?

तुम जानते हो कि खाने-पीने की चीजों में मुझे नौकरों का दखल पसंद नहीं—लेकिन ऐसा लगता है कि कुछ लोगों को यह पसंद है, मेरे ख्याल से आलस्य की वजह से !
२६ फरवरी १९६५

प० ले० पुरोधा के संपादक के नाते आश्रम पर आक्रमण का विवरण अपनी पत्रिका में छापना चाहता था, उसने माताजी को इसकी सूचना दी।

मैं तुम्हारे पास यह वक्तव्य भेज रही हूं जो बुलेटिन में छपेगा और आश्रम के साथ संबंध रखनेवाली सभी पत्रिकाओं में—जो इस बारे में कुछ कहना चाहें—छपना चाहिये। तुम देखोगे कि मैंने केवल रचनात्मक भाग ही रखा है। बाकी भाग अपना काम कर चुका और अब उसकी जरूरत नहीं रही।
९ मार्च १९६५

आश्रम पर आक्रमण के बारे में माताजी का वक्तव्य

कुछ लोग ऊपरी दृष्टि से देखते हुए यह प्रश्न करते हैं कि यह क्या बात है कि आश्रम इस नगर में इतने जमाने से है फिर भी यहां के लोग उसे पसंद नहीं करते ?

इसका पहला और तात्कालिक उत्तर तो यह है कि यहां की जनता में वे सब लोग जो संस्कृति, बुद्धि, सद्भावना और शिक्षा की दृष्टि से उच्चतर स्तर के हैं, उन्होंने न केवल आश्रम का स्वागत किया है बल्कि इसके लिये अपनी सहानुभूति, प्रशंसा और सद्भावना भी प्रकट की है। पांडिचेरी में श्रीअरविंदाश्रम के बहुत-से निष्ठावान् अनुयायी और मित्र हैं।

यह सब कह चुकने के बाद हमारी स्थिति स्पष्ट है।

हम किसी भी मत या धर्म के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी प्रकार के शासन-तंत्र के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी सामाजिक वर्ग के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी राष्ट्र या सभ्यता के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम लड़ रहे हैं विभाजन, निश्चेतना, अज्ञान, तमस् और मिथ्यात्व के विरुद्ध।

हम धरती पर एकता, ज्ञान, चेतना, सत्य को स्थापित करना चाहते हैं और हम उस चीज से लड़ते हैं जो प्रकाश, शांति, सत्य और प्रेम की नयी सृष्टि के आगमन का विरोध करती है।

१६ फरवरी १९६५

माताजी,

मैंने सुना है कि आश्रम पर जो आक्रमण हुआ था वह महाकाली के क्रोध का परिणाम था। कहा जाता है कि आपने कहा है कि यह अंतिम नहीं था। मेरा ख्याल था कि यह विरोधी शक्तियों का काम था। अगर सचमुच यह महाकाली का काम था तब तो हमें इसका स्वागत करना चाहिये न ?

मैं जो कुछ कहती हूं लोग उसे हमेशा तोड़-मरोड़ लेते हैं। ज्यादा अच्छा यह है कि उनकी बात पर कान न दो। हां, मैंने इस विषय पर कुछ लिखा जरूर है और जल्दी ही तुम्हें उसकी एक प्रति भेजूंगी।

विनाश का स्वागत करने का तो कोई सवाल ही नहीं। वह जो पाठ पढ़ाता है उसे सीखना चाहिये।

९ मार्च १९६५

(महाकाली के कार्य के बारे में माताजी का वक्तव्य)

समस्त विनाश के पीछे, चाहे वे प्रकृति के भूकंप, ज्वालामुखी, तूफान, बाढ़ आदि विकट, असीम विनाश हों या मानव उग्रता और हिंसा द्वारा लाये गये युद्ध, क्रांति, विद्रोह आदि, उनमें मैं काली की शक्ति देखती हूं जो पार्थिव वातावरण में रूपांतर की गति को तेज करने के लिये कार्य कर रही है।

वह सब, जो केवल तत्त्वतः ही नहीं बल्कि चरितार्थता में भी दिव्य है, वह इन विनाशों से ऊपर और उनसे अछूता रहता है। इस तरह विनाश का परिमाण अपूर्णता का परिमाण बताता है।

इन विनाशों को बार-बार दोहराये जाने से रोकने के लिये सबसे अच्छा तरीका है उनसे पाठ सीखना और आवश्यक प्रगति करना।

१० मार्च १९६५

माताजी,

आपके संदेश के लिये मैं कृतज्ञ हूं। क्या यह सिर्फ मेरे लिये है या 'पुरोधा' में भी छापा जा सकता है ? मैं यह जानना चाहूंगा कि जब महाकाली आपके काम में तेजी लाती हैं तो हम उनके हस्तक्षेप के लिये प्रार्थना क्यों न करें ? मैंने देखा है कि जब आप डांटती हैं तो हमें यह अनुभव होता है कि आपका हाथ हमें पीछे से सहारा दे रहा है ताकि हम गिर न पड़ें। अगर महाकाली के कुछ प्रहार हमें आपके मार्ग पर सीधा चला सकें तो उनका स्वागत क्यों न किया जाये ?

वह संदेश बुलेटिन में छपेगा और उसे वहीं तक रहने दो। लोग आसानी से उसका आंशिक मानसिक अर्थ लगा सकते हैं जिसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। महाकाली एकमात्र शक्ति नहीं है जो संसार में काम कर रही है। प्रेम और कृपा भी तो हैं।

आशीर्वाद।

१६ मार्च १९६५

प० ले० को आश्रम, देश और मानव जाति की बहुत-सी चीजें देख कर निराशा हो रही थी। वह उनका रोना-रोकर माताजी से कहता है, "बाहर से देखने में सारा दृश्य निराशाजनक दीख रहा है लेकिन आप मौजूद हैं। मैं आशा करता हूं कि आप काफी शक्तिशाली हैं।"

मुझे पता नहीं कि मैं शक्तिशाली हूं या नहीं (मैं है कहां?) लेकिन परम प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं—इसके बारे में कोई शंका नहीं, और वे सारी चीज पर नजर रखे हुए हैं।

प्रेम।

२० अप्रैल १९६५

माताजी का कहना था कि भोजन के लिये उपयोग में आनेवाले तेलों में जैतून का तेल सबसे अच्छा है और दूसरे नंबर पर आता है नारियल का तेल। आश्रम के बगीचों में नारियल के पेड़ों की कमी नहीं है। भोजनालय में नारियल के तेल का उपयोग किया गया पर अधिकतर लोगों को वह पसंद नहीं है। विशेष रूप से उसकी गंध लोगों को रास न आयी। प० ले० ने यह सारी कहानी माताजी के सामने रखी।

यह नारियल का मामला आश्रम की सबसे अधिक बेतुकी बातों में से एक है। एक समय मेरी इच्छा थी कि इस मूढ़ता के विरुद्ध आवाज उठाऊं। अब मैं मुस्करा देती हूं और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार करने देती हूं। एक चीज पर मैं अब भी आग्रह करूंगी, पीने के लिये पानीवाले नारियल मिलते रहें क्योंकि यह पानी शरीर के लिये बहुत लाभदायी है। उसके अतिरिक्त सूखे नारियल बेचे जा सकते हैं और रसोई में उपयोग के लिये मूंगफली का तेल खरीदा जा सकता है।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

५ जून १९६५

माताजी,

बाहर से आनेवाले एक मित्र का कहना है कि कुछ समय पहले जब वह आश्रम में आया करते थे तो देखते थे कि यहां बहुत कठोर जीवन है और हर चीज में मितव्ययता बरती जा रही है, आजकल देश में अवस्था वैसी ही है पर आश्रम से वह कठोरता चली गयी है। इसका अर्थ वे यह समझते हैं कि माताजी ने सारे देश की कठिनाई आश्रम के ऊपर ले ली थी और अब यहांपर समस्या सुलझ गयी है। बाहर उसके बचे-खुचे असर दिखायी दे रहे हैं, परंतु जिस तरह आश्रम में स्थिति सुधर गयी है इसी तरह देश में भी सुधरने की तैयारी मालूम होती है। मैं इसके जवाब में केवल हंस दिया क्योंकि मेरे पास कोई जवाब न था।

यह कुछ कहने का तरीका है। एक बहुत बड़े पैमाने पर कोई क्रिया हो रही है जिसे शब्दों में रखना मुश्किल है।

१३ जून १९६५

प० ले० के पास एक बूढ़े सज्जन को लाया गया और उसे बताया गया कि यह वृद्ध होते हुए भी कर्मठ हैं, इन्हें आश्रम में रहने का अवसर दिया जाये तो यह अपने-आपको उपयोगी सिद्ध करेंगे। अमुक बगीचेवाले इन्हें लेने को तैयार हैं। यह गाथा माताजी के आगे पेश करते हुए प० ले० ने लिखा, 'यह आदमी ७० से ऊपर है और बहुत बूढ़ा लगता है। माताजी रखना चाहें तो अमुक स्थान पर रखा जा सकता है।'

मेरा अंतर्दर्शन कहता है : **नहीं**।

मेरी दया की भावना कहती है : उसे एक अवसर दे दिया जाये।

मेरी बुद्धि कहती है : इस तरीके से हम पकड़े जायेंगे।

आशीर्वाद।

१९ जून १९६५

आखिर फैसला किया भागवत कृपा ने और उसे रख लिया गया। आश्रम को उसकी सेवा-टहल और दवा-दारू पर बहुत खर्च करना पड़ा और उसके परिवार से गालियां सुननी पड़ीं कि उसकी उचित देख-रेख नहीं की गयी क्योंकि वह कैंसर से मर गया।

भोजनालय के एक कार्यकर्ता ने माताजी को लिखा कि मैं छह वर्ष से यहां काम कर रहा हूं। मेरी स्त्री को शरीर छोड़े काफी समय हो गया है और मैं अपने मातृहीन तीन बच्चों को उनकी ननिहाल में छोड़ आया हूं। मेरी ससुराल में भी साधनों की कमी है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इन बच्चों को यहां लाने की स्वीकृति प्रदान करें ताकि वे आपकी छत्रछाया में बड़े हो सकें। माताजी ने प० ले० को जवाब दिया।

यह बड़ी अच्छी बात है। मैं तो सारी दुनिया को "शरण" देना चाहूंगी, या कम-से-कम उन सबको जो ज्यादा अच्छे जीवन के लिये अभीप्सा करते हैं। लेकिन हमारे पास स्थान और साधनों की कमी है।

तुम उसे बतला सकते हो कि अभी कुछ ही दिन पहले मैंने 'म' को अपनी स्त्री और बेटी को लाने की स्वीकृति देने से इंकार किया है . . .

इसे इंकार की अपेक्षा स्थगित करना कहा जा सकता है।

नगर और साधनों को बढ़ने दो और हमारा आतिथ्य भी बढ़ता जायेगा।

आशीर्वाद।

२० जून १९६५

(कुछ लोग घर पर पकाते हैं। उन्हें आश्रम से तेल, मसाला आदि मिलता है। इसमें भी नारियल का तेल दिया जाता था।)

माताजी,

लोगों को नारियल का तेल पसंद नहीं है। उसकी जगह वे मूंगफली का तेल चाहते हैं।

उन्हें नारियल का तेल दिया जाता है इसलिये वे मूंगफली का तेल चाहते हैं। लेकिन सब जगह (यूरोप में भी) नारियल के तेल को ज्यादा गुणकारक और सुपाच्य माना जाता है।

फिर भी ये बहुत मामूली बातें हैं जिन्हें लोगों की इच्छा के अनुसार किया जा सकता है।

२४ जून १९६५

भोजनालय के लिये कुछ बड़े-बड़े पकाने के बरतनों की बात चल रही थी। प० ले० ने केवल सूचना देने के निमित्त माताजी को लिखा कि कुछ अकलुष

इस्पात (स्टेनलेस स्टील) के बरतन तैयार हो रहे हैं और कुछ अल्यूमीनियम के बरतन भी आनेवाले हैं। एक ही चीज के लिये आपको दो स्थानों पर पैसा खर्च करना होगा। इसपर :—

तुमने अपने पत्र का उत्तर नहीं मांगा फिर भी मैं लिख रही हूं। मैंने अकलुष इस्पात के बरतनों के लिये स्वीकृति दे दी है लेकिन मुझे अल्यूमीनियम के बरतनों के बारे में कुछ नहीं मालूम और मैं इन्हें पसंद भी नहीं करती क्योंकि अल्यूमीनियम पकाने के लिये ठीक नहीं है। यह बात मैं स्वयं अपने अनुभव से कहती हूं।

आशीर्वाद।

२६ जून १९६५

माताजी,

मुझे खेद है कि मुझे आपको बार-बार तंग करना पड़ रहा है, मैं आपको फिर से उसी विषय पर लिखने के लिये बाधित हूं। अल्यूमीनियम के बरतन भात पकाने के लिये होंगे। मेरा ख्याल था कि अल्यूमीनियम केवल नमक या खटाईवाली चीजों के लिये खराब है। अगर आपको यह पसंद नहीं है तो हम इन्हें नहीं लेंगे और इसके लिये जो पत्र लिखा गया है उसे रद्द कर दिया जायेगा।

साथ ही आपको यह भी बतलाता चलूं कि जब हमारे दही जमाने के लिये फ्रेंच तामचीनी के बरतन पुराने पड़ गये तो हमने भारतीय तामचीनी के बरतन मंगवाये लेकिन वे दो ही दिन में बिगड़ गये और गंध देने लगे। आखिर और उपाय न देखकर हमने इसके लिये अल्यूमीनियम के बरतनों को ही अपनाया जो अभीतक चल रहे हैं। गांवों में इसके लिये मिट्टी के बरतनों का उपयोग होता है, लेकिन यहां उनके कारण बहुत-सी व्यावहारिक समस्याएं आ जायेंगी। आप चाहें तो हम फिर से ज्यादा अच्छे तामचीनी के बरतनों के लिये कोशिश कर सकते हैं।

अल्यूमीनियम से मेरी शिकायत यह है कि वह भोजन को कलछौंहा बना देता है और कुछ अप्रिय-सा स्वाद दे देता है। अगर भात पर यह असर न हो तो ठीक है।

दही के लिये यह निश्चित रूप से अवांछनीय है। मिट्टी के बरतन निश्चित रूप से ज्यादा अच्छे होंगे, सबसे अच्छा तो यह होगा कि वे ठीक तरह से काचित (ग्लेज्ड) हों।

आशीर्वाद।

२७ जून १९६५

(बाद में भारत में बने तामचीनी के बरतन भी मिल गये और अब तो इन सब कामों के लिये अकलुष इस्पात का ही उपयोग होता है।)

प० ले० को कोई अप्रिय काम करने के लिये कहा गया, लेकिन बात इस तरह से कही गयी कि उसे कुछ खटकी। उसने माताजी को लिखा : मैं आशा करता हूं कि मेरा आपके साथ ऐसा संबंध नहीं है कि आपको मुझसे पूछना पड़े कि मैं यह करूंगा या वह। मैं आशा करता हूं कि मुझसे कुछ करने के लिये कहने से पहले आपको संकोच नहीं होता—काम चाहे कैसा भी क्यों न हो, प्रिय या अप्रिय।

नहीं, जब मैं तुमसे कुछ चाहती हूं तो मैं सीधा तुमसे कहती हूं, किसी और के द्वारा नहीं और न यह पूछती हूं कि क्या तुम्हें यह पसंद आयेगा क्योंकि मुझे विश्वास है कि वह तुम्हें **अवश्य पसंद आयेगा**।

प्रेम सहित।

२७ जुलाई १९६५

माताजी,

हर रोज 'क' मुझे अपनी विपदा की कहानियां सुनाया करता है। मेरी राय तो यह है कि जो कुछ आपकी तरफ से आये उसे बिना सोचे स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं जानता हूं कि यह आसान नहीं है। इस हालत में हमें सारी बात आपके आगे रखनी चाहिये और आपके साथ झगड़ भी लेना चाहिये। इससे सारी चीज साफ हो जाती है। आखिर आपको छोड़कर कौन है जो हमारी मुश्किलों में सहायता कर सके? उसे यह विचार पसंद नहीं है। पता नहीं, मैं किस तरह उसकी मदद कर सकता हूं। क्या आप बतला सकेंगी कि वह इस मामले में इतना कठोर क्यों है और क्यों हमेशा ही मुसीबतों के सागर में पड़ता रहता है?

फिर वही बात, मानव मन में श्रद्धा की कमी जटिलताएं और पीड़ा लाती रहती है जब कि भागवत पथ-प्रदर्शन पर शांत श्रद्धा हो तो सब कुछ बहुत सीधा और सरल हो सकता है।

इस श्रद्धा और विश्वास के विकास के लिये ही मैं इतने वर्षों से लगी हूं। स्पष्ट रूप से प्रतिरोध हठीला है।

आशीर्वाद।

११ अगस्त १९६५

१९६५ से पहले आश्रम के भोजनालय में मिर्च-मसाला आदि एकदम नहीं होता था। १९६५ में भोजन में कुछ परिवर्तन किया गया जो यूं तो बहुत लोकप्रिय हुआ क्योंकि उसमें मिर्च-मसाले आदि का प्रवेश मिल गया परंतु प० ले० का शरीर इसे सह न सका। वह लिखता है, "जब लोग कहते थे कि उन्हें भोजनालय का खाना हजम नहीं होता तो मैं उनपर हंसा करता था। व्यंग्य की बात यह है कि अब मुझे भोजन के इस सुधार के बाद इसी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है और मुझे बवासीर हो गयी है। कृपया मेरे शरीर को इस योग्य बना दीजिये कि वह इस परिवर्तन को सह सके।"

यह भौतिक की अपेक्षा मानसिक ज्यादा है।
(इस पत्र के आते ही तकलीफ दूर हो गयी)

जब बेकरी या ब्लांशिसरी[1] की कोई कठिनाई मेरे सामने रखी जाती है तो मैंने उसका हल करने के लिये एक चालाकी पा ली है। मैं फैसला स्थगित कर देता हूं और भीतर से सारा मामला आपके हाथों में छोड़ देता हूं। स्वचालित रूप से समाधान हो जाता है और श्रेय मुझे मिलता है।

यही वस्तुतः सच्चा तरीका है और सब मामलों में इसीका उपयोग होना चाहिये।

लेकिन रसोईघर के बारे में मैं ऐसा कर सकने में असमर्थ रहता हूं। इसलिये मैं उसे टाल जाता हूं।

क्योंकि अभीतक रसोई के बारे में बहुत ज्यादा अहंकार मिला हुआ है।

मैंने हमेशा मुझे आपकी सेवा के लिये अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिये आपसे प्रार्थना की है। पिछले कुछ दिनों से मुझे यह ख्याल आ रहा है कि यह भी एक तरह की महत्त्वाकांक्षा और व्यक्तिगत मांग है और अन्य मांगों की तरह इस मांग को भी दूर रखना चाहिये। मुझे यह आपके हाथों में छोड़ देना चाहिये कि ज्यादा उपयोगी बनूं या . . .। ऊपर से तो बात बड़ी अच्छी लगती है, परंतु मुझे भय है कि इसके पीछे छिपी हुई जड़ता, तमस् या अवसाद की मांग न हो, मैं स्पष्ट रूप से इन चीजों को बाहर से संक्रमण के रूप में आते हुए देखता हूं।

[1] आश्रम का कपड़े धोने का विभाग।

Aspiration is always good, and if some demand is mixed up with it, you can be sure that it will not be granted.

अभीप्सा हमेशा अच्छी होती है। अगर कोई मांग उसके साथ मिल भी जाये तो तुम विश्वास रखो, वह स्वीकृत न होगी।

> *मैं आशा करता हूं कि कश्मीर का झमेला भारत और पाकिस्तान के एक होने के बारे में पहला चरण है।*[1]

परम प्रज्ञा सब कुछ देख रही है।

एक बात के बारे में हमें विश्वास होना चाहिये—जो कुछ होता है वह ठीक वही होता है जो होना चाहिये ताकि हमें और जगत् को जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी लक्ष्य तक पहुंचा सके—लक्ष्य है भगवान् के साथ ऐक्य और अंत में भगवान् की अभिव्यक्ति।

और यह श्रद्धा—सच्ची और सतत—एक साथ हमारी सहायता और सुरक्षा है।

प्रेम।

२ *सितंबर* १९६५

Of one thing we must be convinced — all that happens is exactly what must happen in order to lead us and the world as quick as possible to

[1] पाकिस्तान ने भारत की पश्चिमी सीमा पर जम्मू-कश्मीर पर, १ सितंबर ६५ को आक्रमण किया। तीन सप्ताह बाद २२ सितंबर को युद्ध-विराम हुआ।

the goal — the union with the Divine and ultimately the manifestation of the Divine

And this faith — sincere and constant — is at once our help and protection.

Love

माताजी,

'क' यहां से पंजाब जा रहा है (जाने से पहले उसने माताजी का आशीर्वाद लिया था) मद्रास से उसका तार आया है, "परिस्थिति बदल गयी है। आदेश

भेजें।" शायद वह लड़ाई से डर गया है। क्या मैं उसे तार दे दूं, "आशीर्वाद नहीं बदले, चले जाओ।"

वहां सचमुच लड़ाई चल रही है। अगर वह बिल्कुल **निर्भीक** हो तो जा सकता है।

आशीर्वाद।

७ सितंबर १९६५

(भारत के प्रधान-मंत्री के नाम माताजी का संदेश)

सत्य और सत्य की विजय के लिये भारत लड़ रहा है और उसे तबतक लड़ते जाना चाहिये जबतक कि भारत और पाकिस्तान फिर से **एक** न हो जायें क्योंकि यही उनकी सत्ता का सत्य है।

१६ सितंबर १९६५ —*माताजी*

यह रहा मेरा संदेश (जिसे जगत् की मन और भावना की स्थिति के कारण बदल' दिया गया है) तथा उसके साथ संबंध रखनेवाले कुछ उद्धरण।

तुम्हारे पत्र का स्वागत है।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१६ सितंबर १९६५

माताजी,

युद्ध और संभाव्य आक्रमण के कारण आपको आर्थिक कठिनाई हो रही होगी। आश्रम के कोषाध्यक्ष के पास हमारी ब्लांशिसरी के हिसाब में ४००० रु. जमा हैं। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि इस रकम को अपना मानकर जब चाहें वहां से ले लें। आपकी कृपा से हमारा काम चलता रहेगा। मैंने अपने पास १००रु. रख लिये हैं।

कृपया वर दीजिये, कड़ी परीक्षा के इन दिनों में हम आपके प्रति वफादार रहें। हम कुछ सकारात्मक न कर सकें तो भी कम-से-कम आपके लिये समस्याएं न खड़ी करें। मैं प्रार्थना करता हूं कि भारत सचमुच आपका बन जाये।

' शिष्य को माताजी ने जो संदेश भेजा था उसमें 'लड़ना होगा' लिखा था लेकिन बाद में उसे काटकर 'लड़ते जाना चाहिये' कर दिया।

यह बहुत सांत्वनादायक पत्र है, ऐसे बहुत नहीं आते। यह बहुत सराहनीय है। अभी ब्लांशिसरी का पैसा कोषाध्यक्ष के पास ही रहेगा।

बाद में देखेंगे कि आर्थिक स्थिति क्या रंग लाती है।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१७ सितंबर १९६५

युद्ध-विराम से[1] प० ले० की आशा को धक्का लगा। उसने माताजी की एक फ्रेंच प्रार्थना में से कुछ उद्धरण माताजी को लिख भेजे—गंगाजल से गंगा-पूजा। इस अस्थायी बाधा के समय मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, "सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय पानेवाले प्रभो, तेरी जय हो . . . हमें अपनी विजय में सक्रिय, तीव्र, संपूर्ण और अडिग श्रद्धा प्रदान कर।"

शांत रहो और देखो। परिणाम निश्चित है—उपाय और समय निश्चित नहीं हैं।

आशीर्वाद।

२३ सितंबर १९६५

माताजी,

जब 'क्ष' जैसे लोग आकर मेरे सामने आपके विरोध में बोलते हैं तो मुझे लगता है कि मेरे अंदर की अग्नि-जिह्वाएं लपक रही हैं। अगर यह चीज आगे बढ़े तो मुझे महाकाली की अनुभूतिका-सा अनुभव होता है। उसके आते ही सामने का आदमी गौ बन जाता है। यह क्या है?

शायद तुम काली की शक्ति का आह्वान करते हो।

लुधियाना में जिस विद्यालय की बात चल रही है उसका नाम वहां के लोग श्रीअरविंद विद्यालय रखना चाहते हैं। मेरा ख्याल है कि किसी संस्था को आपके या श्रीअरविंद के नाम का उपयोग करने का अवसर तभी प्रदान किया जाना चाहिये जब आप उसके काम से संतुष्ट हों, कम-से-कम कुछ वर्ष तक काम देखने के बाद।

बिल्कुल ठीक।

[1] कइयों ने यह सोचा कि इससे हिंदुस्तान और पाकिस्तान के एक हो जाने की आशा पर पानी फिर गया।

मेरे साथ 'क' कई वर्षों से काम करता है। उसका कहना है कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता और उसे अधिकतर काम से छुट्टी मिल जानी चाहिये। पहले वह नौ घंटे रोज काम करता था। ९ से ५ तक आ गया। अब घंटे डेढ़ घंटे का ही काम करना चाहता है।

यह एकदम से बेतुकी बात है। अगर वह अपने खर्च पर नहीं रह रहा है, अगर वह अपना काम इतना कम कर देना चाहता है तो हम उसका भोजन भी उसी अनुपात में कम कर देने के लिये बाधित होंगे और तब उसका स्वास्थ्य और भी बिगड़ जायेगा!

आशीर्वाद।

२५ सितंबर १९६५

माताजी,

जब हमारा गेहूं पत्थर की चक्की से पीसा जाता है तो खमीर अच्छी तरह नहीं उठता और रोटी छोटी मालूम होती है और लोग ज्यादा रोटी लेते हैं। इससे खर्च बढ़ जाता है। लोहे की चक्की से पीसने पर यह रोटी खूब फूलती है और ज्यादा संतोषप्रद होती है।

लेकिन अधिक गर्मी के कारण विटामिन नष्ट हो जाते हैं और पोषण का एक महत्त्वपूर्ण अंश निकल जाता है।

३ अक्तूबर १९६५

क्या तुम हिंदी-कक्षा में अपने विद्यार्थियों को डांटते हो?

इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर पाने पर मैं तुम्हें बतलाऊंगी कि मैंने यह विचित्र प्रश्न क्यों किया है।

२१ अक्तूबर १९६५

प० ले० ने उत्तर में बतलाया कि वह अपने विद्यार्थियों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखता है, "परंतु कई लोगों का कहना है कि जब मैं गंभीर होता हूं तो ऐसा लगता है कि किसीको डांट रहा हूं। मुझे डांटने की जगह मजाक करने की आदत है और उसके उत्तर में हमेशा हंसी सुनायी देती है, हां, दो विद्यार्थी बहुत कमजोर हैं। वे न तो काम करते हैं, न नियमित रूप से आते हैं। मैंने

उनसे कहा है कि अगर वे काम नहीं करना चाहते तो उन्हें मेरी कक्षा छोड़ देनी चाहिये। शायद ये ही दो मेरे अत्याचारी होने की शिकायत कर रहे हैं।"

मैंने ठीक यही आशा की थी। एक छोटी लड़की ने मुझसे शिकायत की है कि तुम उसे रुलाते हो। मैंने झट यही सोचा कि वह उनमें से होगी जो प्रगति करने से इंकार करते हैं। मैं उससे यह कहने से पहले कि तुम कक्षा छोड़ दो, तुम्हारी ओर से ज्यादा निश्चित होना चाहती थी . . .

शायद तुम जानते हो कि वह कौन है।

प्रेम और आशीर्वाद।

२२ अक्तूबर १९६५

माताजी,

मुझे यह जानकर बहुत जोर का धक्का लगा कि और कोई नहीं 'क' ने मेरे व्यवहार के बारे में शिकायत की है। वह जबसे आश्रम में आयी है तभीसे उसका मेरे साथ बहुत अच्छा संबंध रहा है, वह हिंदी छोड़ना चाहती है यह जानकर मुझे दुःख हुआ। कुछ दिन पहले ही उसने मेरे साथ मिलकर योजना बनायी थी कि वह लगकर मेहनत करेगी और अपनी पिछली लापरवाही की क्षति-पूर्ति कर लेगी। उसने मुझसे कहा है कि उसे मेरी कक्षा बहुत अच्छी लगती है और वह बहुतों से अधिक रस लेती थी। यह घटना मेरे सामने फिर से वही प्रश्न लाती है, क्या किसी पर भी विश्वास किया जा सकता है और अगर उनकी ऐसी प्रतिक्रिया है तो इन बच्चों के साथ काम करने से फायदा ही क्या ? मेरे अंदर कोई बहुत बड़ी गड़बड़ होगी जो ऐसे अभियोगों को निमंत्रित करती है।

भगवान् को जगत् से ठीक ऐसा ही व्यवहार मिलता है। श्रीअरविंद भी इससे नहीं बच सकते। तो देखो कि तुम अच्छी संगत में हो और निराश होने का कोई कारण नहीं।

२३ अक्तूबर १९६५

माताजी,

आपने कहा है कि सच्ची शिक्षा देने के लिये "तुम्हें रूढ़ियों से बाहर निकलकर अंतरात्मा की प्रगति पर जोर देना चाहिये।" मैं इस विषय पर दो पृष्ठ का लेख लिख सकता हूं, लेकिन इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है यह मैं

नहीं समझ पाता। रामायण पढ़ाते समय मैं भगवान् के प्रति समर्पण आदि विषयों पर जोर दे सकता हूं, लेकिन जब मैं व्याकरण या साहित्य की किसी और विधा की बात करूं तो मुझे क्या करना चाहिये ?

विरोध इस कारण आता है कि तुम सारी चीज को ''मानसिक रूप'' देना चाहते हो और यह असंभव है। यह तो वृत्ति की बात है, अधिकतर आंतरिक वृत्ति की जो 'बाहर' पर भी उतना ही शासन करती है जितना 'भीतर' पर।

यह एक ऐसी चीज है जिसे पढ़ाने की अपेक्षा कहीं अधिक **जीना** चाहिये।

आशीर्वाद।

२८ अक्तूबर १९६५

माताजी,

भारत के प्रधानमंत्री (लालबहादुर शास्त्री) ने देशवासियों से अपील की है कि खाद्यान्न की कठिनाई को नजर में रखते हुए सोमवार की शाम को भोजन न किया जाये। होटलों आदि से भी सहयोग मांगा गया है। क्या इस दिशा में हमें भी कुछ करना चाहिये ?

दिखाने के लिये एक समय का खाना बंद करके उसके पहले और पीछे अधिक खाने की अपेक्षा कई गुना अधिक प्रभावकारी यह होगा कि अन्न का **कभी अपव्यय न किया जाये**। भोजन के अपव्यय के विरुद्ध प्रबल, तीव्र और सच्चा आंदोलन आवश्यक है और मैं पूरे हृदय से उसका समर्थन करती हूं।

आश्रमवाले अपनी सद्भावना और अपना सहयोग इस तरह दिखा सकते हैं कि वे जितना हजम कर सकते हैं उससे अधिक कभी न खाएं और जितना खा सकते हैं उससे **अधिक कभी न मांगें**।

३ नवंबर १९६५

इस बारे में भोजनालय में एक विज्ञप्ति लगा दी गयी।

सारा भारत खाद्यान्न की कठिनाई में है।

सभी अनाजों पर राशन लगा है।

मैं हर एक की सद्भावना से यह अपील करती हूं कि जितना अत्यंत आवश्यक हो उससे अधिक न मांगे।

नवंबर १९६५ —*माताजी*

माताजी,

मुझे ब्लांशिसरी के कुछ बिलों का पैसा चुकाना है, लेकिन बिल आने में अभी देर लगेगी। मेरी बुद्धि कहती है कि चूंकि मुझे मालूम है कि ये बिल आनेवाले हैं इसलिये मुझे आवश्यक रकम रखनी चाहिये। एक और भाग कहता है कि पैसा माताजी को दे दो। जब जरूरत होगी तो पैसा आ ही जायेगा। दोनों में से कोई भी विचार ज्यादा मजबूत नहीं है। निश्चय करने का उचित ढंग क्या है ?

एक बार मन काम करना शुरू कर दे तो वह कृपा के मार्ग में अड़ंगा लगाता है इसलिये ज्यादा अच्छा यही है कि पैसा अपने पास रखो।
१० नवंबर १९६५

माताजी,

एक समय था जब मैं अपने विद्यालय के काम से बहुत निराश था और मैं उसे छोड़ देना चाहता था। आपने कहा, सात वर्ष काम करो, फिर मेरी सलाह मांगना। इस वर्ष सात वर्ष पूरे हो गये हैं। विद्यार्थियों को मेरी कक्षा में मजा आता है, लेकिन वे काम नहीं करना चाहते, यह नहीं चाहते कि मैं उनसे काम करवाऊं। मैं अच्छे-से-अच्छा प्रयास करता हूं लेकिन उन्हें संतुष्ट नहीं कर पाता। कृपया बताइये क्या मुझे अब भी पढ़ाना जारी रखना होगा ? हमारे यहां अध्यापकों की कमी नहीं है। कई हैं जो मेरा स्थान लेना चाहेंगे। उनका ख्याल है कि यह प्रतिष्ठा का पद है !!

अभी **और सात वर्ष** कोशिश करो, उसके बाद देखा जायेगा ! मैं यह भी कह दूं कि पढ़ाना (अपने सभी नैतिक परिणामों के साथ) तुम्हारी साधना का अंग है।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।
११ नवंबर १९६५

माताजी,

अब एक व्यक्तिगत प्रश्न। मैं जानता हूं कि आजकल आश्रम के लिये सहयोग और समन्वय अत्यंत आवश्यक हैं। मैं अपना अधिक-से-अधिक प्रयास करता हूं और मेरा ख्याल है कि करता भी हूं पूरी सचाई के साथ, लेकिन मैं असफल रहता हूं। मैंने अपने बारे में लोगों को कहते सुना है कि

यह बोलता तो बहुत मीठा है पर इसके काम एकदम उल्टे होते हैं। मेरा ख्याल है कि मैं हर एक के साथ ताल-मेल बैठाने की कोशिश करता हूं। मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि यह मान लूं कि सारे आश्रम में बस मैं ही एक सच्चा और निष्कपट आदमी हूं। शायद मेरे अंदर कोई विशेष अड़चन होगी जो इस तरह बाधा देती है। क्या आप मुझे बता सकेंगी कि यह कौन-सी चीज है जो मेरे मार्ग में बाधा देती और मुझे रोकती है और मुझे मेरे काम में सहयोग नहीं मिलता ?

इसे एक व्यक्तिगत चीज के रूप में न लो, असामंजस्य और अस्तव्यस्तता सारे संसार में फैले हैं और इनका कारण है सत्य की क्रिया के विरुद्ध मिथ्यात्व का प्रतिरोध। चूंकि यहां सत्य की क्रिया ज्यादा सचेतन और एकाग्र है इसलिये प्रतिरोध ज्यादा उत्तेजित और क्रुद्ध है। इस खलबली में अधिकतर व्यक्ति शक्तियों के द्वारा अपने संघर्ष में कठपुतलियों की तरह नचाये जाते हैं।

२५ नवंबर १९६५

माताजी,

आपकी प्रार्थना, 'हे प्रभु तेरी जय हो' के अंत में 'परम उपलब्धिकर्ता' से आपका क्या मतलब है। आपने सात-आठ वर्ष पहले मुझे यह समझाया था, लेकिन अब वह बिल्कुल भूल गया है। उसके बाद मैंने आपसे दो-तीन बार मौखिक या लिखित रूप से यह पूछा लेकिन हर बार आप टाल गयीं। कृपया एक बार और समझा दीजिये।

मैंने जान-बूझकर उत्तर नहीं "टाला" लेकिन शायद मैंने तुम्हें वह मानसिक उत्तर नहीं दिया जिसकी तुम्हें चाह थी।

तुम्हें यह ठीक तरह से समझाने के लिये बहुत लंबी व्याख्या करनी होगी और मेरे पास समय बहुत कम है।

मैं संक्षेप में कह सकती हूं कि 'परम उपलब्धिकर्ता' का व्यक्ति के लिये अर्थ है, भगवान् के साथ तादात्म्य और धरती पर समुदाय के लिये इसका अर्थ है अतिमानसिक, नवीन सृष्टि का आगमन।

इसे एक अंध-सिद्धांत न बना लो, यह केवल एक व्याख्या है। और 'उपलब्धिकर्ता' उपलब्धि की परम शक्ति, कर्ता और कार्य है।

आशीर्वाद।

२० दिसंबर १९६५

Do not take it as a personal affair. Disharmony and confusion are spread all over the world because of the resistance of the falsehood to the action of the Truth. Here as the action of the Truth is more conscious and concentrated the resistance is exasperated. And in this great turmoil most of the

in this world all are moved almost like puppets by the forces in their conflict

माताजी,

अमृत ने मुझे बताया है कि आपने आटे की चक्की के बारे में क्या व्यवस्था की है। मैं उसके बारे में खुश हूं। मै आशा करता हूं कि यह ठीक परिणाम देगी।

यह इसपर निर्भर है कि लोग अपनी इच्छा की विजय की अपेक्षा सामंजस्य के लिये कितनी परवाह करते हैं!

Love is with all, working for the progress of each one equally — but it triumphs in those who care for it.

Love

प्रेम सबके साथ है, प्रत्येक की प्रगति के लिये समान रूप से कार्य कर रहा है—लेकिन विजय उन्हींमें पाता है जो उसकी परवाह करते हैं।

प्रेम।

१९६५

प० ले० ने माताजी से पूछा कि निम्नलिखित अनुच्छेद में भगवान् को जीत लेने का क्या अर्थ है, "निश्चय ही पूर्ण योग का मार्ग सरल नहीं है। भगवान् को जीतना कठिन काम है लेकिन सचाई और अध्यवसाय के साथ विजय निश्चित है।"

'जीत' लेने का अर्थ 'प्राप्त करना' या 'पा लेना' समझो।

तुम कह सकते हो कि दिव्य चेतना को जीत लेना कठिन काम है।

भाष्य : मनुष्य के लिये भागवत चेतना के बारे में सचेतन होना और उनकी प्रकृति को पा लेना कठिन काम है।

१९६५

माताजी,

हर बार जब मैं अपनी चेतना में जरा उठने की कोशिश करता हूं तो एक धक्का-सा लगता है और ऐसा मालूम होता है कि मैं उठने की जगह गिर रहा हूं। जब मैं प्रयास छोड़ देता हूं तो सब स्वाभाविक हो जाता है।

जहांतक प्रगति का संबंध है, ऐसा इसलिये होता है कि तुम **मानसिक रूप से** प्रयास कर रहे हो और मन हमेशा चेतना के लिये सीमा-बंधन होता है। केवल हृदय और चैत्य से उठनेवाली अभीप्सा ही प्रभावकारी हो सकती है। (और जब तुम प्रयास करना छोड़ देते हो तो तुम मुझे अपने अंदर काम करने देते हो और मैं उचित मार्ग जानती हूं!)

१९६५

माताजी,

'क' के कुछ ही समय में कई बच्चे हो चुके हैं। मैंने उसे संयम की सलाह दी थी। उसकी जगह उसने गर्भपात का रास्ता अपनाया और असफलता पायी। अब उसकी पत्नी बीमार है। वह जानना चाहता है कि उचित मार्ग क्या है?

संयम और अगर वह न कर सके (?) तो स्वयं उसका ऑपरेशन। आजकल इसका बहुत रिवाज है!

१९६५

माताजी छोटी-से-छोटी चीजों का कितना ख्याल रखती थीं। भोजनालय में दूध की कमी हुई तो उन्होंने प० ले० को लिखा :

मैं दो आंकड़े चाहती हूं। अगर तुम दे सको या प्राप्त कर सको :

१—अगर हम लोगों को दूध की पूरी मात्रा दें तो हमें कितने लीटर दूध की जरूरत होगी?

२—अभी हमारे पास, सब मिलाकर, अधिक-से-अधिक कितना दूध आता है?

ठीक ढंग से व्यवस्था और सावधानी के साथ प्रयास किया जाये तो ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो सके।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१९६५

माताजी,

क्या गाय की कोई विशेष पवित्रता है या यह केवल आर्थिक कारणों पर आधारित प्रथा है?

प्राचीन प्रतीकों पर आधारित परंपरा।

आशीर्वाद।

१९६५

माताजी,

मैंने हास्य और विनोद के बारे में प्राचीन और अर्वाचीन दृष्टि से लिखा हुआ बहुत कुछ पढ़ा है। आपका विनोद उनमें से किसी श्रेणी में नहीं बैठता परंतु मुझे आपका मजाक सबसे ज्यादा विनोदी लगता है, क्या आप मुझे बता सकेंगी कि सच्चा विनोद क्या है?

परम प्रभु का विनोद।

१९६५

माताजी १९४२ में प० ले० को फ्रेंच सिखाना चाहती थीं, लेकिन उसे लगा कि माताजी का इतना समय लेना ठीक न होगा इसलिये उसने स्वीकार न किया। अब जब उसे माताजी की पुस्तक 'केल्क रेपौंस' का हिंदी अनुवाद करना पड़ा तो बार-बार माताजी से अर्थ पूछने पड़ते थे। इसपर अपने ऊपर व्यंग्य करके वह कुछ वाक्यों का अर्थ पूछता है। माताजी ने लिखा है, 'जिन लोगों में साहस है उनके अंदर उनके लिये भी साहस होना चाहिये जिनके अंदर यह बिल्कुल नहीं है।' और, 'खोज में बड़ा आनंद है, लेकिन यह सच है कि मेरा हृदय हमेशा जागरूक रहेगा।' माताजी समझाती हैं—

(व्यंग्य) यह बहुत जरूरी है कि जिनके अंदर साहस है उनमें कुछ साहस उनके लिये भी होना चाहिये जिनके अंदर साहस नहीं है। दूसरे वाक्य का अर्थ माताजी बतलाती हैं, ''खोज में बड़ा आनंद है लेकिन यह सच है कि मेरा हृदय हमेशा (ज्ञान के लिये) प्यासा रहेगा।''
१९६५

कुछ और फ्रेंच वाक्यों का अर्थ बतलाते हुए माताजी कहती हैं:

१—उसके बारे में चिंता न करो या अपने-आपको व्यथित न करो।

२—ऐसा कोई कार्य नहीं है जो स्वार्थ से बच सके या सभी कार्य निरपवाद रूप से निःस्वार्थ हों।

३—अच्छा स्वास्थ्य भीतरी सामंजस्य की अभिव्यक्ति है। अगर हम स्वस्थ हों तो हमें इसपर गर्व करना चाहिये। (इसकी सराहना करें) उससे घृणा न करें। (अच्छे स्वास्थ्य को घृणा से न देखें)
१९६५

एक और फ्रेंच वाक्य का अर्थ—

हो सकता है कि वह (प्रेम) अपने-आपको किसी बाहरी क्रिया में अभिव्यक्त न करे (चिह्नों या रूपों में) भावुकतापूर्ण या प्रेम-भरे रूपों में।

एफ्यूज़िओं शब्द का प्रयोग व्यंग्य में होता है जिसका अर्थ है, प्रेम का दिखावा।
१९६५

माताजी,

पुरानी परंपरा के अनुसार चार युगों के चक्र चला करते हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—ऐसा लगता है कि 'हमारा योग और उसके उद्देश्य' नामक पुस्तक में श्रीअरविंद भी इसका समर्थन करते हैं। अन्य स्थानों पर मैंने इसका कोई स्पष्ट वर्णन नहीं पाया। कृपया बतलाइये कि आप जिस सत्य युग को ला रही हैं क्या उसके बाद फिर से त्रेता, द्वापर आदि आयेंगे और जगत् को फिर से अंधकार में गिरना होगा?

मैं नहीं जानती कि मैं जिसे ला रही हूं उसे क्या कहा जायेगा और श्रीअरविंद के अनुसार इसके बाद नयी सृष्टि आयेगी और अतिमानस का आगमन होगा। मैं बस इतना ही जानती हूं।

आशीर्वाद।

१९६५

प० ले० के पास कुछ कर्मचारियों की शिकायतें आयीं। उनके बारे में माताजी कहती हैं:

कर्मचारियों की विभिन्न शिकायतों के बारे में सावधान रहना, वे हमेशा पक्षपातपूर्ण और एकांगी होती हैं। हर एक अपनी पसंद-नापसंद से बोलता है और बातों को तोड़ता-मरोड़ता है।

आशीर्वाद।

१९६५

माताजी,

मैंने एक अजीब-सा स्वप्न देखा। कम्यूनिस्टों ने मेरे कमरे पर हमला किया है। वे बाहर से मेरी खिड़कियों तक चढ़ आये हैं। वे गाली-गलौज कर रहे और चीख-चिल्ला रहे थे। लेकिन कोई चीज उन्हें अंदर आने से रोक रही थी। मैं कमरे में चुपचाप शांत खड़ा था मानों इसके साथ मेरा कोई संबंध नहीं।

यह देश के बारे में है, स्वयं तुम्हारे अपने बारे में नहीं।

कल मेरी दाहिनी बांह में जरा-सी चोट आ गयी थी। न जाने क्यों मैं मिनट भर के लिये मूर्च्छित हो गया, मुझे इसका कोई कारण नहीं दिखलायी देता।

ज्यादा निरंतर रूप से भागवत उपस्थिति पर एकाग्र रहो। भागवत कृपा ज्यादा सहज होगी।

प्रेम और आशीर्वाद।

१९६५

एक सज्जन अपना काम बदलना चाहते थे, उन्होंने कई बार प० ले० से इसके लिये कहा। जब उसने माताजी की स्वीकृति ले ली तो वह कहने लगे कि मेरे विभागाध्यक्ष से तुम न कहना कि मैं बदलना चाहता था, उनसे कह देना कि यह माताजी की इच्छा है। इस दोरंगी पर प० ले० बहुत नाराज हुआ और उसने माताजी को खबर दी। माताजी ने उत्तर दिया।

मैं इस तरह की कमजोरी पसंद नहीं करती। यह तो ढोंग की हदतक जाती है। क्या इस काम के लिये तुम्हारी नजर में और कोई नहीं है ?

'क' यदि 'ख' के स्थान पर आना चाहे तो उसे अपने विभागाध्यक्ष से कहना होगा कि वह उस काम के लिये जाना चाहता है, मैं उसे **नहीं रखना** चाहती क्योंकि मेरे शब्द कूटनीतिपूर्ण नहीं होते। मैं सच्ची बात ही कहूंगी, परिणाम कुछ क्यों न हो।

वस्तुतः इस काम के लिये किसी और को ढूंढ़ना ज्यादा अच्छा होगा जो जरा अधिक साहसी हो।

यह सब बात 'ग' को बतला दो जो तुम्हारे पास यह पत्र लेकर आ रहा है।

आशीर्वाद।

१५ जनवरी १९६६

माताजी; 'क' नामक एक व्यक्ति जो मेरे साथ काम करता है, उसने आपके लिये यह बंद लिफाफा दिया है। शायद वह अपने बच्चों को लाना चाहता है। पिछले वर्ष आपने कहा था कि स्थिति सुधरने पर आप देखेंगी।

स्थिति सुधरी नहीं है, लेकिन अगर वह अच्छा कार्यकर्ता है तो उसे अपने परिवार को ले आने दो।

मैं कठिनाई जानती हूं, मैं कोशिश कर रही हूं, लेकिन आजकल बहुत ही कम लोग हैं जो सचाई के साथ काम करना चाहते हैं।

मैं जब कभी किसी के बारे में सुनती हूं तो मैं तुरंत उसे तुम्हारे पास भेज देती हूं। लेकिन यह बहुत प्रभावकारी नहीं मालूम होता !

आशीर्वाद।

१९६६

माताजी,

मैंने हिंदी पुरोधा में श्रीअरविंद की कहानियां अपने शब्दों में देने के लिये छापने की स्वीकृति मांगी थी, अनुवाद के लिये नहीं।

मुझे लगता है कि केवल अनुवाद ज्यादा अच्छा रहेगा। अनुवाद करने की जगह अपने शब्दों में कहने के लिये तुम्हारे पास क्या कारण है ?
४ फरवरी १९६६

माताजी,

श्रीअरविंद की कहानियां अपने शब्दों में कहने के लिये मेरा कारण बहुत सीधा-सा है। वह है ईमानदारी। हम उनके 'बाजी प्रभु' या 'मुक्तिदाता परसियस' का अनुवाद कैसे कर सकते हैं। हम मूल के नजदीक कहीं भी नहीं पहुंच सकते ! आपने एक बार मुझसे कहा था कि हमें अच्छे अनुवाद के लिये उस चेतना में जा पहुंचना होगा जहां से वह चीज लिखी गयी थी और यह तो हमारे 'स्वप्नों' के भी परे की बात है। कहानियां बहुत अच्छी हैं। हम उन्हें अपने शब्दों में कहेंगे और साथ ही यह लिख देंगे कि जो पढ़ सकते हैं वे मूल अवश्य पढ़ें। इसी आधार पर आपने स्वीकृति दी थी। जो अनुवाद मूल के बहुत नजदीक रहना चाहता है वह बहुत पंडिताऊ बन जाता है। सभी अनुवाद इस बात को प्रमाणित करते हैं।

इसे ध्यान में रखते हुए एवमस्तु।
प्रेम और आशीर्वाद के साथ।
४ फरवरी १९६६

माताजी,

मैंने योजना बनायी थी, जैसे उपनिषदों की कहानियां हैं या रामायण, महाभारत की कहानियां हैं, उसी तरह पुरोधा में श्रीअरविंद की कहानियां छापी जायेंगी। 'अनु' मूल का अध्ययन करके उसे हिंदी में लिखती है और मैं सारी चीज को दोबारा देखता और ठीक-ठाक करता हूं। मैंने यही समझा था कि इसके लिये आपकी पूर्ण अनुमति है परंतु अब मुझे शंका है कि यह योजना आपको बहुत पसंद नहीं आयी। अब उसे रद्द करना भी मुश्किल है क्योंकि मैं इसकी घोषणा कर चुका हूं। अब क्या किया जाये। मैं इस मामले से जरा भी खुश नहीं हूं।

यह बिल्कुल ठीक है। तुम खुशी से काम आगे बढ़ाओ ! तुमने जिस तरह से इसे रखा है वह मुझे पसंद है।

सब कुछ इसपर निर्भर है कि काम किस भाव से किया जाता है।

तुम्हारी वृत्ति ठीक है इसलिये सब कुछ ठीक है।

मैं राधा और कृष्ण के बारे में कुछ सुंदर कविताएं पढ़ा रहा हूं। राधा जीवित-जाग्रत् मालूम होती है परंतु कई आधुनिक विद्वान् कहते हैं कि राधा अपेक्षाकृत आधुनिक कल्पना है जिसे कृष्ण-भक्ति के संप्रदाय में जोड़ा गया है। क्या आप बतला सकती हैं कि सचमुच राधा का अस्तित्व था या नहीं ?

निश्चय ही वे जीवित थीं और अब भी हैं।

प्रेम और आशीर्वाद।

८ फरवरी १९६६

माताजी,

भारत की राजनीतिक और आर्थिक अवस्था दिन-पर-दिन बेतुकी होती जा रही है। कृपया भारत की भारतीयों से रक्षा कीजिये और हमें अपनी कृपा का योग्य पात्र बनाइये।

भागवत कृपा अद्भुत और सर्वशक्तिमान् है।

और प्रभु के कार्य करने के तरीके आनंदमय और विनोदपूर्ण होते हैं . . .

प्रेम और आशीर्वाद।

६ मार्च १९६६

माताजी,

आज साढ़े आठ बजे लेबर इंस्पेक्टर हमारी ब्लांशिसरी देखने आ रहा है, अगर हम २० कर्मचारी रखें तो हमपर कारखानों के कानून लागू हो जाते हैं। हमारे यहां २३ आदमी हैं, कुछ बुद्धिमान् लोग मुझे सलाह दे रहे हैं कि मैं यह कह दूं कि हमारे यहां कुल १९ आदमी ही हैं, मेरा ख्याल है कि आश्रम का विभाग इस तरह की चीजें नहीं कर सकता। मैं २३ ही कहूंगा और इस कारण आपको 'प्रोविडेंट फंड' आदि का अतिरिक्त खर्च उठाना पड़ेगा।

निश्चय ही तुम झूठे आंकड़े नहीं दे सकते। लेकिन क्या यह संभव नहीं है कि कर्मचारियों की संख्या सचमुच १९ कर दी जाये ?
२१ मार्च १९६६

प० ले० के सामने कोई समस्या थी जिसमें उसकी सत्ता के अलग-अलग भाग अलग-अलग समाधान सुझा रहे थे और उनके पक्ष में परस्पर-विरोधी तर्क दे रहे थे। उसने माताजी को लिखा।

मैं उत्तर देने के लिये पूरी तरह तैयार हूं, लेकिन उत्तर संभवतः चकरानेवाले होंगे . . .

वस्तुतः तुम्हारे सभी भाग अपनी-अपनी युक्ति देने में ठीक हैं। बुद्धिमत्ता इसमें है कि अपनी चेतना की गहराई में जाओ और उस जगह को खोजो जहां वे सब मिलते और सहमत हो जाते हैं, एक-दूसरे का विरोध करने की जगह एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं।

रही बात वास्तविक कार्य की तो कठोर नियमों के कारण पैदा हुई कठिनाइयों की अपेक्षा निर्विघ्न, सामंजस्यपूर्ण काम ज्यादा अच्छा होता है—लेकिन यह भी कोई निरपेक्ष नियम नहीं है—आदर्श स्थिति तो यह है कि हर अवसर पर आंतरिक नीरवता में ऊपर से पथ-प्रदर्शन लिया जाये।

सतत अभ्यास और सद्भावना के साथ यह संभव हो जाता है।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।
२४ मार्च १९६६

भोजन के बारे में बहुत शिकायतें थीं। रसोई पकानेवालों का कहना था कि उन्हें आवश्यक चीजें नहीं मिलतीं इसलिये वे मजबूर हैं। प० ले० ने उनकी शिकायतों को लेकर एक पत्र लिखा।

'र' तुम्हें हुआ क्या है ? मैं हमेशा तुम्हें उन विरले लोगों में गिना करती थी जो मेरे मजाक समझ सकते हैं ! . . . और यह लो ! तुम भी एक स्पष्ट मजाक को गंभीरता से ले बैठे ! . . . मुझे तुम्हारे कार्यकर्ताओं से कोई शिकायत नहीं है। इसके विपरीत, मेरी योजना यह थी कि उनके अंदर काम के लिये एक नया रस जगाऊं और अनुभव के ठोस आधार पर उन्हें वह दूं जो खाने लायक भोजन के लिये जरूरी है। मुझे खेद है कि मुझे सारी चीज पहले से समझानी पड़ती है ताकि गलतफहमी न हो।

जिस कार्यकर्ता ने तुमसे बात की है उससे कहो कि पकाने के लिये जो कुछ

जरूरी है वह सब उसे मिलेगा, लेकिन सारी चीज की पुनर्व्यवस्था करना जरूरी है। जल्दबाजी में कोई स्थायी काम नहीं हो सकता।

अगर मैंने कोई ऐसी बात की या कही है जिससे तुम्हें लगा हो कि मैं तुम्हारे काम से असंतुष्ट हूं तो इसके लिये मुझे बहुत दुःख है क्योंकि इस तरह की कोई चीज मेरी चेतना में नहीं है। मैं जानती हूं कि परिस्थितियां कठिन हैं और जो किया जा सकता है तुम उसमें अच्छे-से-अच्छा कर रहे हो—लेकिन हर व्यक्ति और हर वस्तु में प्रगति हो सकती है और मैं हमेशा उस संभव सुधार के लिये काम करती रहती हूं, यह जानते हुए कि बड़ी-से-बड़ी कठिनाई हमेशा बड़ी-से-बड़ी विजय लाती है।

और मुझे विश्वास है कि इसके लिये तुम मेरे साथ हो।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२६ मार्च १९६६

प० ले० ने भोजनालय के एक कार्यकर्ता के किसी मामले के बारे में लिखते हुए कहा, "मुझे दुःख है कि मैं गुस्से में लिख रहा हूं, लेकिन इस तरह का अविश्वास चोट पहुंचाता ही है और मैं उसे छिपा नहीं सकता।"

इसमें **कोई अविश्वास न था** और मुझे दुःख है कि तुमने इसे इस तरह से लिया है। लेकिन अब मैं तुमसे **गंभीरता के साथ** कहती हूं (क्योंकि ऐसा लगता है कि तुम मेरे मजाक को नहीं समझ पाये) कि सबसे अच्छी चीज है कि तुम 'क' के साथ खुले दिल से, स्पष्ट, मैत्रीपूर्ण बातचीत करो और स्पष्ट रूप से उसे बतलाओ कि तुम समस्या का क्या हल देखते हो।

अगर तुम दोनों एक सामंजस्यपूर्ण और प्रभावकारी समाधान पर आ जाओ तो मैं उसे अपने लिये एक बड़ी विजय मानूंगी।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२ अप्रैल १९६६

माताजी,

आपने पूछा है कि मेरा हाथ कैसा है, पता नहीं, क्या कहूं। आपको सूचना देने से पहले मुझे एक टमाटर उठाने के लिये भी आपकी सहायता का आह्वान करना पड़ता था, आपको याद करते और पुकारते हुए किसी तरह मैंने अपना काम पूरा किया, लेकिन आपका आशीर्वाद पाने के बाद मैंने तीस-तीस किलोग्राम के बक्से उठाये और आपको बुलाना तक भूल गया। अब आप ही निश्चय कीजिये कि कौन-सी अवस्था ज्यादा अच्छी है !!

तुम्हारे बारे में यह एक और प्रमाण है कि भौतिक संपर्क (इस बार लेखन द्वारा) शुद्ध मानसिक संपर्क की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी है।

प्रेम और आशीर्वाद।

७ अप्रैल १९६६

माताजी,

जब मैं यहां आया था तो आपने मुझे भोजनालय में काम दिया था। दर्शन का दिन था (आखिरी दर्शन जब श्रीअरविंद को प्रणाम किया जा सकता था) मेरा काम साढ़े नौ तक चलता रहा। मेरे दल को दर्शन के लिये नौ बजे बुलाया गया था। भोजनालय के सभी लोग मुझे सलाह देने लगे कि मैं काम छोड़कर दर्शन के लिये चला जाऊं वरना दर्शन से रह जाऊंगा। मैंने इसकी परवाह न की और अपना पूरा काम समाप्त करके ही आया। और मजा यह कि श्रीअरविंद को थोड़ी देर हो गयी थी और मेरे दल की बारी मेरे पहुंचने पर ही आयी।

यह स्वाभाविक है!

जब आपने मुझे चिन्मयी का काम करने के लिये ऊपर अपने कमरे में बुलाया तो आपने कहा कि अगर तुम अपने काम से काम रखोगे और जब कभी मुझे देखो तो मेरी ओर ताकने की कोशिश न करोगे तो तुम बहुत-सी कठिनाइयों से बच जाओगे। मैंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूरी तरह इसका पालन करने की कोशिश की है और इससे मुझे बहुत सहायता मिली है। इसी भांति यद्यपि दिन में कई बार मुझे श्रीअरविंद के कमरे की तरफ जाने का काम पड़ता था परंतु मैंने कभी उन्हें देखने की कोशिश नहीं की। मैंने हमेशा यही समझा कि इतना काफी है कि आप मुझे देख लें। मेरा आपको देखना जरूरी नहीं है। अगर आप चाहें कि मैं इस तरीके को बदल दूं तो मैं उसके लिये भी तैयार हूं, आप जितना कहें, जैसा कहें। जीवन एक पहेली है। है न?

तुम्हारी वृत्ति उत्तम है। काम के लिये और स्वयं तुम्हारे लिये बहुत सहायक भी है।

तो हम इसे यूं ही जारी रखें।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

८ अप्रैल १९६६

दूध की कठिनाई चल रही थी। प० ले० माताजी को लिखता है, 'दूध बांटने

की भावी व्यवस्था के बारे में अपनी ओर से कोई सुझाव देने की जगह मैं यह जानना चाहूंगा कि आप क्या और कैसे देना चाहेंगी। बालक किन्हें माना जाये और अतिरिक्त दूध कैसे दिया जाये?'

मैं पंद्रह वर्ष से कम आयु वालों को बच्चे मानती हूं। दस वर्ष तक के बच्चे को मैं दिन में पूरे दो प्याले दूध देना चाहूंगी। (जिन्हें दूध पसंद न हो उनसे जबर्दस्ती पीने के लिये न कहा जाये)

बीमार अगर चाहें तो उन्हें भी डॉक्टर की सिफारिश पर दूध दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सब कुछ मैं तुम्हारी "बुद्धिमत्ता" पर छोड़ती हूं।

१४ अप्रैल १९६६

माताजी,

मेरी छत पर जो कांच का बक्सा रहा करता था, जिसमें मैं चीजें सुखाने के लिये रखता था, उसे कल के तूफान ने उठाकर दो मीटर दूर फेंक दिया। कांच चूर-चूर हो गया। ऐसा लगता है कि इस तूफान को आश्रम और पांडिचेरी के लिये विशेष प्रेम था।

हो सकता है।

तूफान के पीछे जो शक्तियां थीं वे विरोधी न थीं बल्कि उनमें रूपांतर करने की शक्ति भरी थी। तुमने ठीक ही किया। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि अपने भीतर जाना और वहां से शक्ति पाना अपने-आपको उत्तेजित कार्य में फेंकने की अपेक्षा ज्यादा सहायक है। निश्चय ही 'तमस्' अच्छा नहीं है, लेकिन तमस् को बदला जा सकता है केवल भागवत चेतना के प्रति समर्पण द्वारा।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

६ मई १९६६

माताजी, उस दिन मेरे पास एक आदमी आया और बोला कि वह अपने कपड़े धोने के लिये देना चाहता है। मैंने कहा, 'नियमानुसार तुम यहां एक वर्ष रहने के बाद ही कपड़े दे सकते हो।' उसने झट अपनी जेब से आपके हस्ताक्षरवाली एक परची निकाली!!

हस्ताक्षर करने से पहले मैं **हमेशा** पूछ लिया करती हूं कि क्या इसे एक वर्ष हो गया है और मुझसे कहा जाता है **'जी हां'**। मेरे पास नियंत्रण का कोई उपाय नहीं होता

क्योंकि मुझे पता नहीं होता कि कौन आ रहा है और किसे प्रवेश मिल गया है। मैं बहुत कम मामलों में ही जानकारी पाती हूं, अतः इस मामले में करने लायक यही है कि जबतक परची तुम्हारे द्वारा न आये तबतक मैं उसपर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया करूं।

आशीर्वाद।

१७ मई १९६६

माताजी,

एक गुजराती पति-पत्नी एक वर्ष रहने के लिये आये हैं। बात तो यह हुई थी कि वे अपने खर्च पर रहेंगे। पति बेकरी में काम करता है और पत्नी रसोईघर में। उनका कहना है कि वे जहां से पैसे की आशा कर रहे थे वहां से पैसा नहीं आ रहा। काम में दोनों बुरे नहीं हैं।

जबतक वे काम करते रहें उन्हें खाना दिया जा सकता है।

कुछ मित्रों की सलाह है कि हम पुरोधा में आपकी और श्रीअरविंद की साधनासंबंधी चीजें और ज्यादा छापा करें। मेरा ख्याल है कि हमारी पत्रिका अधिकतर युवकों के लिये है और हमें उनके साथ सीधी-सीधी साधना की बात न करनी चाहिये। हमें उनका ध्यान आश्रम और आपकी शिक्षा की ओर खींचना चाहिये, फिर वे आपकी पुस्तकें पढ़ें। जहांतक पत्रिका का संबंध है, मेरा ख्याल है कि उसका मूल्य इसपर निर्भर है कि लेख किस चेतना से लिखे जाते हैं, क्या लिखा गया है वह इतना अधिक महत्त्व नहीं रखता।

तुम्हारी बात ठीक है।

२ जुलाई १९६६

आश्रम में कई स्थानों से भोजनालय का टिकट मिलता था, कोई ठीक व्यवस्था न थी। प० ले० माताजी को इसके बारे में लिखता है।

बात मजेदार है पर अप्रत्याशित नहीं। जबसे मैं 'निवृत्त' हुई हूं हर एक अपने-अपने विचारों के अनुसार, एक-दूसरे के साथ ताल-मेल बिठाये बिना काम कर रहा है और मुझे कष्ट न देने के बहाने मुझसे सलाह नहीं ली जाती है, न मुझे सूचना दी जाती है!

मैं अपने ही साधनों से न्यूनाधिक रूप में जान लेती हूं कि क्या हो रहा है। मैं केवल मुस्कुरा देती हूं लेकिन बीच में नहीं पड़ती, हर एक को अपने अनुभवों से सीखना होगा।

मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूं जब व्यवस्था अव्यवस्था को जीत लेगी और सामंजस्य गड़बड़झाले का मालिक होगा। मैं इस दिशा में किये जानेवाले हर प्रयास के साथ हूं।

आशीर्वाद।

६ जुलाई १९६६

माताजी,

बहुत-से भारतीय संतों के जीवन में ऐसी घटना आती है कि पूरे विश्वास के साथ उन्होंने निश्चय किया कि जबतक स्वयं भगवान् मानव रूप में उनके पास आकर भोग न लगायेंगे तबतक वे खाना न खायेंगे। भगवान् सचमुच प्रकट हुए, उन्होंने मनुष्यों की तरह व्यवहार किया और खाना खाया। क्या इन कहानियों में कुछ सत्य है ?

एक मनोवैज्ञानिक सत्य क्योंकि अगर तुम निश्चय कर लो तो तुम्हारे लिये कोई भी भगवान् बन सकता है। आत्मनिष्ठ दृष्टि उसकी अपेक्षा बहुत ज्यादा व्यापक है जितना लोग समझते हैं।

२३ जुलाई १९६६

माताजी,

मैं श्रीअरविंद की कविता 'प्रेम और मृत्यु' पढ़ रहा हूं। क्या सचमुच शाश्वत रात्रि और दुःख के ऐसे प्रदेश हैं जैसों का यहां चित्रण किया गया है ? क्या हम मृत्यु के बाद वहां जाते हैं ? वे साक्षात् नरक मालूम होते हैं जिनमें दुःख, निराशा, अंधकार और वैतरणी जैसी नदियां हैं। सत्ता का कौन-सा भाग वहां जाता है और क्यों ?

प्राणिक जगत् अधिकतर ऐसा ही है और जो ऐकांतिक रूप से भौतिक और प्राणिक जीवन में रहते हैं वे मृत्यु के बाद वहां जाते हैं. . .लेकिन भागवत कृपा भी है ! . . .

२ अगस्त १९६६

माताजी,

आपने कहा है कि जो लोग ऐकांतिक रूप से भौतिक और प्राणिक जीवन में रहते हैं वे "प्रेम और मृत्यु" में चित्रित प्राणिक लोकों में जाते हैं, तो क्या पशु और वनस्पतियों को भी वहां जाना पड़ता है ? वे वहां से कैसे निकल पाते हैं ?

विरले अपवादों को छोड़कर पशु व्यष्टि रूप नहीं होते और जब वे मरते हैं तो जाति की आत्मा में लौट जाते हैं।

क्या "प्रेम और मृत्यु" के रुरू और प्रियम्वदा सावित्री सत्यवान के ही पहले रूप हैं ?

श्रीअरविंद ने मुझे इस बारे में कुछ नहीं बताया।

६ अगस्त १९६६

माताजी,

'क' मेरे विद्यार्थियों में से एक है। वह बहुत मेहनत करती है, लेकिन कुछ रख नहीं पाती। उसे दुःख होता है, फिर से प्रयास करती है लेकिन वही ढाक के तीन पात। उसका प्रयास देखकर मैंने उसे ऊंची कक्षा में ले लिया था, यद्यपि वह उसके योग्य नहीं। इस वर्ष भी वही बात है। उसकी बहन चतुर तो है पर है आलसी। मुझे कई बार अपने-आपको धीरज खोने से रोकना पड़ा है। उसे रस है। कभी-कदास काम करती है पर परिणाम कम ही आता है। ऐसे लोगों के साथ कैसे व्यवहार किया जाये ?

धीरज धरे रहो। यह एक तरह का मानसिक तमस् है; एक दिन वे जाग उठेंगी।

६ अगस्त १९६६

माताजी,

क्या अभी जो तूफान आया था वह भी भगवान् की रूपांतरकारिणी शक्तियों द्वारा लाया गया है ?

प्रकृति अपने तरीके से सहयोग दे रही है। सब कुछ सहज सचाई के विकास के लिये है।

आशीर्वाद।

७ नवंबर १९६६

माताजी,

मैं अपनी पत्रिका के लिये कहानियां लिखा करता हूं। लीजिये, आप भी एक सच्ची कहानी सुन लीजिये। एक सज्जन यहां आये थे। उनका कहना था कि वह गरीब आदमी थे। उनकी आमदनी १२०० से १६०० मासिक थी। वे आपका विशेष दर्शन चाहते थे और आपने इंकार कर दिया—कैसी निर्दयता थी यह! गरीब आदमी ने अपना मन पक्का किया और आपको फिर से लिखा कि आप उसे विशेष दर्शन दें तो वह आपको दस रुपये भेंट करेगा, उसकी पत्नी पंद्रह—इसके बाद भी आपने स्वीकृति न दी। उसके एक मित्र ने सुझाव दिया, इस बार तुम १०० देने की बात लिखो। बेचारे गरीब ने कहा, मेरे पास इतने रुपये हैं ही कहां और वह दुःखी और निराश होकर चला गया। रास्ते में उत्पात हो रहा था। कुछ उपद्रवी विद्यार्थियों ने उसे पकड़ लिया। वह रोया-धोया, भगवान् से प्रार्थना की। विद्यार्थियों ने उसे छोड़ने से पहले ५०० उससे गिनवा लिये!!

यह कहानी बार-बार दोहरायी जाती है, मंच अलग-अलग होते हैं। इसे बहुत बार, उफ कितनी बार सुनाया जा सकता है! . . .

और भागवत कृपा की समर्थता की कहानियों के बारे में? शायद वे गिनती में कम हों पर कितनी अधिक सुखद होती हैं! . . .

प्रेम और आशीर्वाद।

८ नवंबर १९६६

माताजी,

कल रात मेरे पास 'च' आया था। वह अपने काम के बारे में लंबी बात करता रहा। मुझे लगा है कि वह काफी संतुष्ट होकर गया है। काश! मैं इस विषय में जितना बोल सकता हूं उसका आधा भी कर पाता! लेकिन, ऐसा हो नहीं पाता। कभी-कभी तो मुझे शंका होती है कि मैं काम में रस खोता जा रहा हूं। यहांतक कि फलों के काम में भी उतने उत्साह से काम नहीं करता—शायद उसके आधे उत्साह से भी नहीं! हो सकता है कि मेरा रस कम होता जा रहा है या मैं बूढ़ा हो चला हूं या फिर ज्वर के बिना काम करना सीख रहा हूं। यह तो आप ही जानें।

मैं इसके अंदर **बुद्धिमत्ता** का आगमन देखती हूं जो सच्ची समता की ओर लिये जा रही है।

आशीर्वाद।

१७ नवंबर १९६६

(एक विभाग के काम के बारे में) माताजी; जहांतक मुझे मालूम है, मुझे विभागाध्यक्ष होने का चाव बिल्कुल नहीं है। मैं इसका काफी रस ले चुका हूं। साथ ही अगर मुझे कोई काम दिया जाये तो मैं उससे भागता भी नहीं, अगर मुझे इस काम में लगे रहना है तो बतलाइये कि मैं कैसे उपयोगी हो सकता हूं? अगर आपकी दृष्टि में कोई और हो तो मुझे यहां से खिसकने में ज़रा भी बुरा न लगेगा।

मैं चाहती थी कि तुम इस विभाग के रुपये-पैसे की देख-रेख करो क्योंकि यही एक तरीका है जिससे पैसा मेरे पास आ सकता है।

जहांतक काम की व्यवस्था का सवाल है वह किसी और को भी सौंपी जा सकती है बशर्ते कि वे मिलकर काम करना स्वीकार करें।

मैं तुमसे कुछ अधिक समय और धैर्य की मांग करती हूं और आशा करती हूं कि चीजें ज्यादा निश्चित रूप ले लेंगी।

रही बात लोगों के नाराज होने की, तो वे तो हमेशा कुढ़ते और शिकायतें करते रहेंगे। हमें उसे कोई महत्त्व न देना चाहिये।

१९६६

(शिष्य ने लिखा कि वह कुछ विभागों की व्यवस्था के बारे में सब कुछ देख लेगा, लेकिन रुपये-पैसे का हिसाब न रख पायेगा क्योंकि उससे वह अनभिज्ञ है।)

मुझे उचित व्यवस्था बहुत पसंद है। जो लोग व्यवस्था करते हैं अगर वे यह कार्य सचाई से करना चाहें तो मुझे बस आवश्यकता रहती है स्पष्ट और यथार्थ सूचना पाने की। जब वह मिल जाये और व्यवस्थापिका शक्ति में काफी श्रद्धा हो तो ठीक है। बाकी सब हो जायेगा।

आशीर्वाद।

१९६६

माताजी,

तकलीफों को निमंत्रण देने के लिये मनुष्य की क्षमता की आपको सराहना करनी होगी। मैं बिल्कुल ठीक और स्वस्थ था। आकाश में उड़ते कौए की तरह एक विचार आया, "तुम भगवान् के संरक्षण की बात करते हो। देखो 'क' और 'ख' को। वे तुमसे अधिक उपयोगी हैं।" मैंने विचार को खदेड़ तो

दिया पर जाते-जाते वह जुकाम के रूप में एक लात मारता गया। सौभाग्यवश आपका संरक्षण हमारी मूढ़ता की परवाह नहीं करता।

यह उपयोगिता का प्रश्न नहीं है। भागवत कृपा का पूर्ण और समग्र परिणाम पाने के लिये श्रद्धा भी **पूर्ण** और **समग्र** होनी चाहिये। कहां है वह ???

प्रेम।

१९६६

माताजी,

बेकरी का एक कार्यकर्ता चला गया है। एक और कुछ दिनों में जा रहा है। हमें वहां के लिये दो और भोजनालय के लिये एक आदमी की सख्त जरूरत है।

आजकल मेरा लोगों के साथ कोई संपर्क नहीं है और न कार्यकर्ता खोजने के लिये कोई बाहरी साधन ही है। एकमात्र आशा है अदृश्य शक्ति की सामर्थ्य से!

प्रेम और आशीर्वाद।

१९६६

माताजी,

मेरे एक विद्यार्थी ने एक लेख लिखा है जिसमें उसका कहना है कि हमसे आशा की जाती है कि सेक्स से कोई संबंध न रखें फिर भी हिंदी बोलते समय हमेशा स्त्रीलिंग और पुल्लिंग का ख्याल रखना पड़ता है!

यह या तो **शुद्ध मजाक** होगा या मन का एक मरोड़ और हमारी सलाह का ठीक अर्थ समझने से इंकार करने की एक चालाकीभरी तरकीब।

आशीर्वाद।

१९६६

माताजी,

हमें भारत सरकार से मौखिक आश्वासन मिला था कि वे लोग पुरोधा की ५०० प्रतियां हर महीने लिया करेंगे। आज सात महीने बाद सरकारी आदेश आया है, वह भी १५० प्रतियों का!

हमने उनके लिये इतनी अतिरिक्त प्रतियां छापकर रखी थीं, वे सब बट्टे-खाते में। मैंने कभी न सोचा था कि मुझे पैसे के बारे में सोचना पड़ेगा, अब मुझे अधिकाधिक की मांग करनी पड़ रही है आपसे !!

क्या किया जाये ? सभी ओर यही हाल है। यह एक नयी समस्या मालूम होती है जिसका चमत्कारपूर्ण ढंग से समाधान करना होगा—कम पाना और बहुत अधिक खर्च करना !

प्रेम और आशीर्वाद।

१९६६

माताजी,

क्या कोई डॉक्टर विश्वास करेगा कि कल जब मैं आपको पत्र लिख रहा था तो मेरे वंक्षण में इतनी सूजन थी कि चलना मुश्किल हो रहा था। आज सवेरे जब आपको मेरा पत्र मिला तो मुझे लगना शुरू हुआ कि सूजन कम हो रही है, उत्तर आने तक वह आधी रह गयी और अब तो मैं दौड़ सकता हूं ! पैर की सूजन भी इसी तरह चली जाती है, लेकिन दोनों में से कोई भी मुझे पूरी तरह छोड़ती नहीं। वे एक ऐसे बिंदु तक कम हो जाती हैं कि उनसे कष्ट न हो और फिर प्रगति बंद हो जाती है।

इससे तुम्हारे शरीर की ग्रहणशीलता का ठीक परिमाण मालूम होता है। रुग्ण अंगों पर शक्ति को एकाग्र करो और वे ठीक हो जायेंगे।

१९६६

एक मित्र ने किसी काम के लिये बहुत बड़ी योजना बनायी थी। उसे देखकर माताजी कहती हैं :

साधारणतः महत्त्वाकांक्षाभरी योजनाएं असफल होती हैं। ज्यादा अच्छा है धीरे-धीरे किंतु स्थिरता से चलो।

आशीर्वाद।

१९६६

माताजी,

हमने ब्लांशिसरी के कार्यकर्ताओं के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये

हैं। अब वे उसमें परिवर्तन करना चाहते हैं। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि वे जो नयी मांग कर रहे हैं उसमें उन्हें कम लाभ होगा लेकिन वे यह मानने को तैयार नहीं हैं कि हम कोई ऐसी चीज कर सकते हैं जो उनके लिये ज्यादा लाभदायक हो। उनके इस अविश्वास को कैसे हटाया जाये ?

क्या तुम अंधे को दिखला सकते हो ?

कुछ अपवादों को छोड़कर समस्त मानवजाति भगवान् पर अविश्वास करती है, फिर भी उनकी कृपा हमेशा सक्रिय रहती है।

१९६७

माताजी,

यूं ही एक प्रश्न है यदि आप उसका उत्तर देने की कृपा करें; रामायण का कहना है कि जब राम ने देखा कि अब धरती पर उनका काम पूरा हो गया है तो वे अपने संगी-साथियों को लेकर सरयू नदी में प्रवेश कर गये, हमें अवतार के कार्यों पर राय न बनानी चाहिये, फिर भी प्रश्न उठता है, यह तो आत्मघात हुआ और आत्मघात सबसे बड़ा पाप है। इसे कैसे समझाया जाये ?

१ —परम प्रभु के लिये कोई पाप नहीं होता।

२ —भक्त के लिये इससे बड़ा पाप कोई नहीं कि वह अपने प्रभु से दूर रहे।

३ —जिस समय रामायण लिखी या सोची गयी थी तबतक श्रीअरविंद द्वारा प्रकट किया गया यह ज्ञान प्राप्त या स्वीकृत न हुआ था कि इस धरती को दिव्य जगत् में रूपांतरित किया जा सकता है और यह परम पुरुष का आवास हो सकती है।

अगर तुम इन तीन बातों पर विचार करो तो इस क्या को समझ जाओगे यद्यपि यह निश्चित नहीं है कि वास्तविक घटनाएं इस तरह की थीं या नहीं, जैसी वे हमें बतलायी जाती हैं।

माताजी,

लुधियाना के एक युवक के नाम तार आया है कि घर पर कोई सख्त बीमार है। उसे बुलाया जा रहा है। वह आपका आदेश मांगता है।

क्या यह बहुत जरूरी है ? साधारणतः ऐसे बुलावे बहुत सच्चे नहीं होते।

१९६७

माताजी ने १९६७ में नववर्ष के संदेश में कहा था, "मनुष्यो, देशो और महाद्वीपो, चुनाव अनिवार्य है—सत्य या रसातल" इसपर प० ले० कहता है: 'चुनाव तो बहुत पहले किया जा चुका है, लेकिन उस दिशा में कोई प्रगति नहीं दिखायी देती, रसातल सामने मुंह बाये खड़ा है, फिर भी विश्वास यह है कि उसे रास्ते से हटा दिया जायेगा।'

विश्वास बिल्कुल उचित है। यह संदेश उन लोगों के लिये है जो अभीतक सोये पड़े हैं और अपनी नींद से संतुष्ट हैं।

आशीर्वाद।

२ जनवरी १९६७

माताजी,

नवजात मुझसे आग्रह कर रहे हैं कि मैं ध्यान, समर्पण आदि विषयों पर लेख लिखूं। उनका कहना है कि मैं ही यह काम भली-भांति कर सकता हूं। मुझे लगता है कि यह ऐसा होगा जैसा अंधा अंधे को रास्ता दिखलाये। अपनी ओर नजर डालने पर मुझे लगता है कि मैं जानता ही क्या हूं जो इन विषयों पर कलम चलाऊं और दूसरों को बताऊं।

लिखते जाओ। तुम्हें क्या पता कि **प्रेरणा** तुम्हारे पास आने के लिये तैयार नहीं खड़ी है?

प्रेम।

१० फरवरी १९६७

माताजी,

आपने पुरोधा में साधना-संबंधी विषयों पर लिखने के लिये कहा था। और मैंने पहला लेख लिखा है ध्यान पर!! आपने एक बार कहा था कि अगर मुझे दंड देना हो तो आप मुझसे बैठकर आधा घंटा ध्यान करने के लिये कहेंगी!

लेकिन मैंने यह कभी नहीं कहा कि तुम इस विषय पर लिखने में असमर्थ हो!

आशीर्वाद।

८ मार्च १९६७

माताजी,

मुझे पत्रिका के लिये लेख लिखने में कठिनाई हो रही है। मैं भली-भांति देख सकता हूं कि मैं जो लिखता हूं वह खोखला है, उसमें जान नहीं है, लेकिन फिर भी मुझे लिखना पड़ता है, मासिक पत्रिका के संपादन की जिम्मेदारी के कारण।

सहायता के लिये श्रीअरविंद को पुकारो और सब कुछ ठीक हो जायेगा।
२४ मार्च १९६७

मेरे नाम से तुम्हें जो कुछ सुनाया जाता है उसके बारे में सावधान रहा करो—वह बात जिस भाव से कही जाती है वह गुम हो जाता है!
२९ मार्च १९६७

२९ मार्च, पांडिचेरी में माताजी के प्रथम आगमन का दिन होने के नाते आश्रम में विशेष दिन माना जाता है। अपने काम में आनेवाली कठिनाइयों का वर्णन करते हुए प० ले० कहता है, 'आह! आज २९ तारीख को मुझे यह सब कहना पड़ रहा है। ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे भी इस कटुता का चेप न लग जाये।'

जब हम कटु होते हैं तो भगवान् के साथ संपर्क खो बैठते हैं क्योंकि हम बहुत ''कटु रूप'' में मानव बन जाते हैं...

प्रेम और आशीर्वाद।
२९ मार्च १९६७

माताजी,

मैं कटु नहीं हूं इसका साधारण-सा कारण यह है कि मैं उत्तरदायित्व की भावना खोता जा रहा हूं। शब्द मेरे भाव को भली-भांति वहन नहीं कर पाते। 'क' अधिकाधिक कटु होता जा रहा है—आपके विरुद्ध भी। उसे लगता है कि हम सब पुरानों को असहाय अवस्था में उठाकर फेंक दिया जायेगा। मैं प्रार्थना कर रहा था कि मेरे अंदर इसका चेप न लग जाये।

All that happens
is to teach us one
and the same lesson.

Unless we get
rid of our ego
there is no peace
either for ourselves
or for the others.

And without ego
the life becomes
such a wonderful
marvel! ...

Love M

जो कुछ भी होता है हमें एक और समान पाठ सिखाने के लिये होता है। जबतक हम अपने अहंकार से छुटकारा नहीं पा लेते तबतक कोई शांति नहीं हो सकती, न हमारे लिये न औरों के लिये और अहंकार के बिना जीवन एक अद्‌भुत चमत्कार हो उठता है!...

प्रेम।

३० मार्च १९६७

माताजी,

शायद आपको मालूम हो कि हमारी शक्कर की मात्रा कम कर दी गयी है। मैं नयी नीति के बारे में आपसे पथ-प्रदर्शन चाहता हूं, आप चाहें तो मैं इस बारे में विस्तृत सूचना दे सकता हूं।

मुझे कल ही इस विषय का पता चला है। मैं तुमसे बस यही कह सकती हूं, **'अपना अच्छे-से-अच्छा करो'**।

अगर तुम मेरे लिये शक्कर का उपयोग करते हो तो उसे पूरी तरह बंद कर दो। जरूरत हो तो तुम उसकी जगह ग्लूकोज़ का उपयोग कर सकते हो।

शायद ये सब बातें हमें नमनीय होना सिखाने के लिये हैं।

प्रेम और आशीर्वाद।

१३ अप्रैल १९६७

माताजी,

शायद आप सोचती हैं कि आप बहुत ज्यादा खाती हैं! आपके शक्कर बंद कर देने से बहुत बचत होगी! शायद १९५१ से मैं आपके लिये शक्कर का उपयोग नहीं कर रहा क्योंकि आपने मना किया था। सवेरे की ठंडाई में मैं शहद का उपयोग करता हूं और शाम को गन्ने के रस का। और किसी फल के रस में जरूरत हो तो गन्ने का रस ही मिलाता हूं।

मैं यह जानकर बहुत खुश हुई कि तुम मेरे पेयों में शक्कर का उपयोग नहीं करते। मैं उन्हें काफी मीठा पाती हूं। मैंने जो कहा था उसे याद रखने के लिये तुम्हें बधाई—वस्तुतः यह एक असाधारण बात है!...

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१४ अप्रैल १९६७

माताजी ने विद्यालय को कई संदेश दिये थे जिनमें भूत को पीछे छोड़कर भविष्य की ओर बढ़ने पर जोर दिया था। उनके संदर्भ में प० ले० लिखता है : "हिंदी भाषा के अध्यापक के नाते मैं तुलसी रामायण, सूर, कबीर, मीरा आदि पर जोर देता रहा हूं, उपनिषदों और महाभारत आदि की कहानियों को भी मैंने लिया है, इस स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये। अगर मैं उन्हें इस कारण छोड़ दूं कि वे भूतकाल की चीजें हैं तो उनके स्थान पर क्या लाऊं और अगर मैं उन्हें जारी रखूं तो क्या मैं आपकी धारा के विरोध में न जा रहा होऊंगा ?"

बिल्कुल नहीं, महत्त्व है वृत्ति का।

निचली कक्षाओं में भी मैं भारतीय साहित्य की कथा-कहानियों पर जोर देता हूं। हमें भविष्य का अंतर्दर्शन प्राप्त नहीं है और अगर हम भूतकाल की इन सब चीजों को छोड़ दें तो फिर साहित्य में बच क्या जायेगा ?

भूत भविष्य की ओर छलांग लगाने के लिये तख्ता होना चाहिये, हमें आगे बढ़ने से रोकने के लिये जंजीर नहीं।

जैसा मैंने कहा, सब कुछ भूतकाल के प्रति तुम्हारी वृत्ति पर निर्भर है।

जहां तक मैं अपने बारे में देख सकता हूं, सबसे अच्छा तो यह होगा कि लिखना, पढ़ना, पढ़ाना, छोड़कर शुद्ध रूप से भौतिक काम में लग जाऊं और आगमन की प्रतीक्षा करूं। लेकिन यह तो आपकी भूल निकालना होगा क्योंकि आपने ही मेरी ऊपर से दीखनेवाली अनिच्छा के बावजूद मुझे ये काम दिये हैं।

और मैं तुम्हें यह काम देना जारी रखती हूं। अगर तुम्हें लगता है कि परिवर्तन की जरूरत है तो वह **मनोवृत्ति** में हो सकता है, जो कहना है, जो प्राप्त करना है उसपर अधिक जोर दो और भूतकाल का उपयोग करो भविष्य की तैयारी के लिये।

यह करना बहुत कठिन नहीं है—मुझे विश्वास है कि तुम इसे आसानी से कर सकोगे।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१७ अप्रैल १९६७

प० ले० ने लिखा कि भोजनालय के कार्यकर्ता एक निरीक्षक के व्यवहार से

बहुत असंतुष्ट थे, "इन परिस्थितियों में कृपया देखिये कि काम ज्यादा बिगड़ने न पाये। रसोईघर में अच्छे कार्यकर्ता नहीं हैं। यह हमारे सबसे अधिक उपेक्षित विभागों में से है। मैं आशा करता हूं कि इस सब गड़बड़ में से ज्यादा अच्छी चीज निकल आयेगी। मुझे चमत्कारों पर विश्वास है।"

जब मानव आवेग काम चलाते हों तो मैं केवल साक्षी बनकर एक ओर खड़ी रह सकती हूं। जो कुछ निश्चय हुआ हो उसके बारे में मुझे सभ्यता से सूचना दी जाती है—मुझसे यह नहीं पूछा जाता कि क्या किया जाये।

मैं आज्ञा नहीं दे सकती क्योंकि अगर इन आज्ञाओं की अवज्ञा की जाये तो वह अवज्ञा अपने-आप संकट को ले आयेगी।

तो इस समय धीरज के साथ आवेगों के ठंडे पड़ने की प्रतीक्षा करने के सिवाय कुछ नहीं किया जा सकता . . . और अच्छे-से-अच्छे के लिये आशा रखो।

शायद कुछ लोग कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता के प्रति जाग जायें . . .

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१९ अप्रैल १९६७

माताजी,

पिछले कुछ अवसरों से मैं दर्शन के काम के बाद बहुत थक जाता हूं। मैं ज्यादा शारीरिक काम नहीं करता, न मैं घबराता हूं, न उत्तेजित होता हूं, इस बार तो मुझे जिम्मेदारी का भार भी नहीं लगा। मैं सारे समय उपस्थित रहता हूं और अंत में थककर चूर हो जाता हूं। अगर मुझे काम करना पड़े तो बड़ा अच्छा लगता है, लेकिन थकान बाद में आती है। क्यों? क्या किया जाये?

क्योंकि जब तुम काम करते हो तो शक्ति के प्रति ग्रहणशील रहते हो और वह तुम्हें संभाले रहती है, लेकिन जब तुमपर कार्य-भार नहीं होता तो तुम कम ग्रहणशील होते हो। तुम्हें सब परिस्थितियों में सदा ग्रहणशील रहना सीखना चाहिये—विशेष रूप से तब जब तुम आराम करते हो—वह तामसिक "विश्राम" नहीं बल्कि सच्ची ग्रहणशीलता का विश्राम होना चाहिये।

आशीर्वाद।

९ मई १९६७

माताजी,

भोजनालय की चटाइयां बहुत फट गयी हैं। नयी चटाइयां मांगने से पहले

मैं यह जानना चाहूंगा कि हमें चटाई की प्रथा जारी रखनी है या हम बड़े पैमाने पर मेज और स्टूल चलाएं। अभी कुछ कमरों में मेज और स्टूल हैं और बाकी में चटाइयां।

ऐसे लोग हमेशा रहेंगे जो जमीन पर बैठना पसंद करेंगे। चटाइयां मांग लो।
११ मई १९६७

माताजी,
क्या आप बतला सकेंगी कि आपको सृष्टि की योजना बनाने में कितनी देर लगी थी और उसे कार्यान्वित करनेवाला कौन था ?

पहले से कुछ नहीं। सब कुछ तत्काल, सीधा, सहज और किसी मध्यस्थ के बिना। मध्यस्थों के बीच में पड़ने से काम सरल होने की जगह ज्यादा कठिन हो गया। यह एक लंबी कहानी है।
आशीर्वाद।
१३ मई १९६७

माताजी,
१९४७ के पहले आपने मुझसे कहा था कि भारत कैंसर जैसी किसी चीज से व्यथित है। प्रत्येक अंग और अंगों को दबाकर अपने-आप बढ़ना चाहता है। उस समय हमारे लिये यह देख पाना असंभव था पर आज हम कैंसर और साथ ही कोढ़ भी देख सकते हैं। आपकी उपस्थिति के सिवा सब जगह अंधेरा ही अंधेरा है। भारत अपना उद्देश्य पूरा कर पाये उससे पहले पूर्ण विनाश की जरूरत होगी क्या ? क्या इसमें बहुत समय लगेगा ?

जहां कुछ काम करना हो वहां उसके बारे में जितना ही कम बोला जाये उतना ही अच्छा।
१७ मई १९६७

माताजी,
'क' का मेरे साथ बहुत मैत्रीपूर्ण संबंध है। वह कई बार मेरे पास सलाह

के लिये आती है। कभी-कभी उसे बहुत अकेला अनुभव होता है और वह शादी करने की सोचती है। कभी उसे लगता है कि उसका स्थान यहां आश्रम में है और बाकी सब चीजें बेकार हैं। मैं उसे कभी सीधी सलाह नहीं देता, लेकिन मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या वह इस जीवन के लिये है। जब वह अगली बार इस तरह की सलाह करने आये तो क्या सलाह दूं?

यह तथ्य कि वह यहां है, इस बात को प्रमाणित करता है कि उसकी सत्ता में कहीं पर अभीप्सा है और कुछ सहायता के साथ वह सारी सत्ता में फैल सकती है।

प्रेम सहित।

५ जून १९६७

आश्रमवासियों को फल बांटना भी प० ले० का काम है। १९६७ में चारों ओर से फलों की कमी हो गयी, शक्कर की भी कठिनाई थी तो उसने माताजी से फरियाद की।

शक्कर मुख्य रूप से बच्चों के लिये उपयोगी है। औरों को उसकी जगह कुछ और दिया जा सकता है।

निश्चय ही ये सब चीजें हमें यह **शांत श्रद्धा** सिखाने के लिये आती हैं कि जिस चीज की **सचमुच जरूरत** होगी वह हमें मिल जायेगी। बाकी के लिये हमें परेशान न होना चाहिये!

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१५ जून १९६७

माताजी,

'क' भोजनालय पर अधिकार पाने के लिये बहुत ही उत्सुक है। मुझे इसकी परवाह नहीं है। आप चाहें तो दिसंबर से जब आप नयी व्यवस्था करनेवाली हैं, वह भोजनालय का काम संभाल सकता है।

मुझे नहीं लगता कि यह संभव है, इसके कई कारण हैं जिन्हें मैं यहां नहीं लिख सकती। मैं पुनर्व्यवस्था **नहीं** कर रही, मैं एक **और** रसोई[1] खोल रही हूं क्योंकि खानेवालों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि एक साथ इतनों के लिये पकाना मुश्किल हो गया है।

[1] कॉर्नर हाउस, आश्रम विद्यालय का एक भोजनालय।

और फिर विद्यालय के बच्चों के भोजन और आश्रमवासियों के भोजन में कुछ फर्क जरूरी है। बच्चों को **विकास** के लिये विशेष भोजन की जरूरत होती है।

२६ जून १९६७

माताजी,

क्या आप मुझे यह बतला सकती हैं कि यहां श्रीअरविंद के आश्रम में आपकी उपस्थिति में अधिकतर लोग अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये भोजन, व्यायाम और चिकित्सक की बात क्यों सोचते हैं? भागवत सहायता चौथा स्थान ले सकती है अगर वह चाहे तो। आपकी सहायता के बारे में बोलना जरा कठिन होता है। इसके बारे में बोलने से लोगों को लगता है कि व्यक्ति दिखावा कर रहा है या पागल है।

श्रीअरविंद ने कहा है कि शरीर को भी योग में लेना जरूरी है। उसे त्यागा नहीं जा सकता, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। और यहां प्रायः सभीने समझ लिया है कि वे शरीर में योग कर रहे हैं और वे भौतिक "आवश्यकताओं" और कामनाओं के शिकार बन गये . . .

स्पष्ट रूप में कहा जाये तो मैं इन भूलों को ज्यादा पसंद करती हूं उन तथाकथित तपस्वियों की अपेक्षा जो औरों के लिये तिरस्कार, दुर्भावना और घृणास्पद भाव से भरे होते हैं।

इस विषय पर जितना कहा जा सकता है वह सब कहने के लिये समय नहीं है।

लेकिन किन्हीं बुरी आदतों की अपेक्षा आलोचना करने का भाव ज्यादा विनाशकारी होता है।

आशीर्वाद

१२ जुलाई १९६७

माताजी,

मैंने न तो कभी अपने शरीर से घृणा की है, न उसे आराधा है। मेरा झुकाव वैराग्य और तपस्या की ओर जरूर रहा है। कल मैं किसी की आलोचना नहीं कर रहा था।

मेरी टिप्पणी तुम्हारे लिये न थी। वह एक सामान्य टिप्पणी थी।

लेकिन मुझे दुःख, क्रोध और घृणा होती है जब मैं देखता हूं कि लोग अपने

अस्वस्थ होने की शिकायत करते हुए मेरे पास आते हैं और बतलाते हैं कि हमने यह किया, वह किया फिर भी कोई फायदा न हुआ। मैं उनके चेहरे से देख सकता हूं कि अगर मैं उनसे आप पर श्रद्धा रखने के लिये कहूं तो वे मेरे ऊपर विश्वास न करेंगे। वे यही समझेंगे कि मैं उन्हें अतिरिक्त फल, दूध आदि नहीं देना चाहता इसलिये कहानियां गढ़ रहा हूं। मैं इस चीज को निराशाजनक मानता हूं।

निराशाजनक क्यों! अगर सौ में से एक में भी सच्ची श्रद्धा है तो यह अपने-आपमें एक चमत्कार है!

मैं वर्तमान दलाई लामा की आत्मकथा पढ़ रहा हूं। क्या दलाई लामा की खोज और उसकी पुनर्जन्मसंबंधी दंतकथा में कोई सत्य है?

एक समय था जब मुझे इस दंतकथा का पता था, लेकिन अब मैं भूल गयी हूं इसलिये मैं उसके बारे में कुछ नहीं कह सकती। एक सामान्य वक्तव्य यह हो सकता है कि मनुष्य ऐसी किसी चीज की कल्पना नहीं कर सकता जो कम-से-कम एक बार तो न हुई हो। इसलिये वक्तव्य के पीछे हमेशा कोई-न-कोई सत्य होता है। भूल यह है कि लोग उसे लेकर सामान्य नियम बना डालते हैं।

प्रेम और आशीर्वाद।

१३ जुलाई १९६७

माताजी,

मैंने परीक्षाओं के बारे में आपके संदेश देखे हैं। मैं पूरी तरह स्वीकार करता हूं कि परीक्षाएं बेकार होती हैं। मुझे व्यक्तिगत रूप से कुछ प्रश्न पूछने हैं। मैं एक भाषा सिखाता हूं। मुझे जानना चाहिये कि मेरे विद्यार्थी भाषा सीख रहे हैं या नहीं। एक कक्षा में मैंने परीक्षा की जगह निबंध-लेखन शुरू करवाया है और परिणाम संतोषजनक है। लेकिन इस प्रकार के मामलों में क्या किया जाये?

१. 'क', उसे हिंदी पर अच्छा अधिकार है लेकिन वह बहुत लापरवाह है। काम नहीं करती और बहुत बार अनुपस्थित रहती है।

२. 'ख', बहुत बुद्धिमान् और योग्य है लेकिन काम से बहुत बचती है। अपनी मधुर और बुद्धिमत्तापूर्ण बातों से मुझे भरमाना चाहती है। मुझे छोड़ देना पड़ा।

३. 'ग', इसे रस तो बहुत है, साहित्य का अच्छा मूल्यांकन कर सकती है लेकिन एक वाक्य भी ठीक नहीं लिख सकती।
इसी तरह और भी कई हैं जो इन्हीं की श्रेणियों में आते हैं।

जो सच्चे नहीं हैं वे सचमुच कुछ सीखना नहीं चाहते। वे अच्छे अंक और अध्यापकों से प्रशंसा चाहते हैं—वे मजेदार नहीं होते।

क्या अध्यापक के लिये हमेशा यह संभव हो सकता है कि अपने आंतरिक संबंध के बल पर यह जान सके कि विद्यार्थी भाषा भली-भांति जानता है या नहीं और क्या उसे उपरली कक्षा में भेजा जाये? मेरी कक्षा में 'क' वर्ष में दस दिन के लिये अद्भुत होती है और बाकी दिन वह सामान्य श्रोता की तरह रहती है। इन दस दिनों की संभावना को देखते हुए मैं उसे उपरली कक्षा में भेज देता हूं।

यह बिल्कुल ठीक है।

स्वभावतः अध्यापक को यह जानने के लिये विद्यार्थी की जांच करनी होगी कि उसने कुछ सीखा है या प्रगति की है या नहीं। लेकिन यह जांच हर विद्यार्थी के अनुसार व्यक्तिगत होनी चाहिये, सभी के लिये एक जैसी यांत्रिक जांच न हो। वह सहज और अप्रत्याशित जांच होनी चाहिये जिसमें दिखावे और कपट के लिये कोई स्थान न हो। इसी तरह स्वाभाविक रूप से यह अध्यापक के लिये बहुत ज्यादा कठिन है, लेकिन है बहुत ज्यादा जाग्रत् और मजेदार।

मैंने विद्यार्थियों के बारे में तुम्हारी टिप्पणियों में मजा लिया। इनसे प्रमाणित होता है कि तुम्हारा अपने विद्यार्थियों के साथ व्यक्तिगत संबंध है—और यह अच्छे अध्यापक के लिये जरूरी है।

आशीर्वाद।

२५ जुलाई १९६७

माताजी,

तीन दिनों से मैं रात के समय बहुत ज्यादा अस्वस्थ रहता हूं लेकिन मैं आपको बतला पाऊं उससे पहले सब कुछ ठीक हो जाता है। प्राणायाम हमेशा मेरा बल रहा है। लेकिन चरबी के कारण श्वास गहरा नहीं जाता और न जाने क्या क्या!

अगर तुम ठीक तरह श्वास लेना **चाहो** तो ऐसा कर **सकते** हो।

समय आ गया है कि केवल भगवान् की इच्छा पर निर्भर रहा जाये और उसे **'मुक्त रूप से'** अपने द्वारा **काम करने दिया जाये।**

यह वही उत्तर है जो मैं तुम्हें कल भेजना चाहती थी, लेकिन मेरे पास लिखने के लिये समय न था।

मैं फिर से कहती हूं—आखिर समय आ गया है जब अपनी इच्छा पर निर्भर न रहा जाये और सारा मामला भगवान् की इच्छा को सौंप दिया जाये और उसे अपना कार्य हमारे द्वारा करने दिया जाये, न केवल हमारे मन और भावों के द्वारा ही बल्कि मुख्य रूप से शरीर द्वारा—और अगर तुम उसे सचाई के साथ करो तो ये सारी शारीरिक मूर्खताएं गायब हो जायेंगी और तुम मजबूत और अपने काम के लिये योग्य बन जाओगे।

आशीर्वाद।

२८ जुलाई १९६७

माताजी,

आप शिक्षा-क्षेत्र में क्या चाहती हैं यह समझना बहुत मुश्किल है, लेकिन जितना कुछ मैं समझ पाया हूं उससे तो यही लगता है कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह एकदम बेकार है। हिंदी काव्य में कुछ ऊंची चीजें हैं पर आप जिस ऊंचाई की मांग करती हैं उसकी तुलना में उनकी क्या गिनती है? अगर हम अच्छी भाषा सीखना चाहें, उचित प्रयोग जानना चाहें तो उपन्यास, कहानियां आदि पढ़ना जरूरी है परंतु वे बहुत ही निचले स्तर की चीजें हैं क्योंकि वे सामान्य मानव जीवन का चित्रण करती हैं।

मुश्किल तब आती है जब मुझे वह करना पड़ता है जिसके बारे में मैं जानता हूं कि यह वह नहीं है जो आप चाहती हैं। मेरे अंदर इतना साहस नहीं है कि अपने-आपको पूरी तरह आपके हाथों में छोड़ दूं।

तुम्हारी कठिनाई इस बात से आती है कि तुम अब भी पुराना विश्वास रखे हुए हो कि जीवन में कुछ चीजें ऊंची हैं और कुछ नीची। यह ठीक नहीं है। चीजें या क्रियाएं अपने-आपमें ऊंची या नीची नहीं हैं, करनेवाले की **चेतना** सत्य या मिथ्या होती है।

अगर तुम अपनी चेतना को परम चेतना के साथ एक कर दो और उसे अभिव्यक्त करो, तब तुम जो कुछ सोचो, अनुभव करो या **करो** वह आलोकमय और सत्य हो जाता है। पढ़ाने के विषय को नहीं बदलना है, तुम जिस चेतना से पढ़ाते हो उसे आलोकमय बनाना है।

प्रेम और आशीर्वाद।

३१ जुलाई १९६७

माताजी के किसी शब्द से प० ले० को शंका हो गयी कि वे भोजनालय के किसी काम से असंतुष्ट हैं। उसने पूछा तो उत्तर मिला :

मैं किसी चीज को या किसी व्यक्ति को दोष नहीं देती और जानती हूं कि हर एक जितना अच्छे-से-अच्छा कर सकता है, करता है। यह तो स्पष्ट है कि काम बहुत कठिन है। लेकिन क्या हम यहां कठिनाइयों पर विजय पाने के लिये नहीं हैं ?

सप्रेम।

२३ अगस्त १९६७

माताजी,

मैं पुरोधा के अक्तूबर अंक में आपका यह संदेश दे रहा हूं, "जिस समय चीजें बद से बदतर हो रही हों उसी समय हमें श्रद्धा का एक परम कार्य करना चाहिये और जानना चाहिये कि भागवत कृपा हमें कभी निराश न करेगी।" मैं "श्रद्धा का एक परम कार्य" का मतलब नहीं समझ पाया।

मेरा मतलब है समस्त परिणामों की परवाह किये बिना आंतरिक विश्वास के अनुसार कार्य करना और सभी दीखनेवाले तथाकथित विपरीत प्रमाणों के बावजूद श्रद्धा को अटल बनाये रखना।

२८ अगस्त १९६७

माताजी,

आपकी नब्बेवीं वर्षगांठ पर फरवरी में बहुत लोग आयेंगे। मेरे ऊपर हिसाब और आंकड़े सभी संभव और असंभव मुश्किलें दिखलाने के लिये लादे जा रहे हैं। मेरा ख्याल है कि हमारी समस्त त्रुटियों के बावजूद आप रास्ता निकाल लेंगी और सब कुछ आसानी से हो जायेगा। मुझे लगता है कि अगर मैं अपने काम में आपके साथ ज्यादा मजबूत संबंध नहीं पा सकता तो विभागाध्यक्ष होना बेकार है। एक साधारण-सा होटल मैनेजर ज्यादा अच्छा काम कर लेगा।

कृपया मुझे वह सब दीजिये जो इस अवसर के लिये और मेरी व्यक्तिगत अभीप्सा के लिये जरूरी हो।

हिसाब-किताब और आंकड़े शुद्ध रूप से मानसिक होते हैं और यहां सारे समय उच्चतर शक्ति की क्रिया द्वारा सभी मानसिक नियमों का प्रतिवाद होता रहता है।

तुम्हारी आंतरिक प्रतिक्रिया प्रायः ठीक होती है, लेकिन तुम्हें उस पर विश्वास नहीं हो पाता क्योंकि एक लंबे समय तक वह अहंकारपूर्ण प्रतिक्रिया से मिली रहती थी।

अब मिश्रण कम होता चला जा रहा है। इसलिये आशा की जा सकती है कि अगले वर्ष पूरी विजय पायी जा सकेगी और तब सबके लिये नहीं तो तुम्हारे लिये चीजें स्पष्ट और सरल हो जायेंगी . . .

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

३ सितंबर १९६७

प० ले० को किसी काम के लिये सलाह दी गयी। उसे अंदर से लगा कि यह ठीक नहीं है फिर भी उसने 'क' के कहने पर उसके बारे में माताजी से पूछ लिया। माताजी को वह विचार पसंद नहीं आया और उसके लिये मना करते हुए उन्होंने लिखा :

मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हें ठीक प्रेरणा मिली। अब तुम्हें उसके अनुसार चलना सीखना चाहिये . . .

प्रेम और आशीर्वाद।

९ सितंबर १९६७

माताजी के पास काफी शिकायतें पहुंच रही थीं कि विद्यार्थियों पर गृह-कार्य का भार बहुत होता है। इसके बारे में विद्यालय की ओर से अध्यापकों के पास एक परिपत्र आया। प० ले० ने उसपर अपनी टिप्पणी लिख भेजी तो—

यह बहुत-से बच्चों और माता-पिता के पत्रों के उत्तर में है जिनमें उन्होंने शिकायत की है कि बहुत गृह-कार्य होने के कारण बच्चे बहुत देर से सोते हैं और काफी नींद न पाने की वजह से थके-थके रहते हैं।

मैं जानती हूं कि ये शिकायतें बढ़ा-चढ़ाकर की गयी हैं, लेकिन ये इस बात का संकेत भी हैं कि हमारे यहां जो ढर्रा चल रहा है उसमें कुछ हेर-फेर की जरूरत है।

इस योजना को नमनीयता तथा लचीलेपन के साथ अपने सभी ब्यौरों में क्रियान्वित करना होगा।

मैं सभी बच्चों के साथ एक-सा व्यवहार करने के पक्ष में नहीं हूं। इससे एक जैसा स्तर तो बन जाता है, यह पिछड़े हुओं के लिये लाभदायक होता है पर जो सामान्य ऊंचाई से ऊपर उठ सकते हैं उनके लिये हानिकर होता है।

जो काम करना और सीखना चाहते हैं उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिये, लेकिन जो पढ़ाई-लिखाई से कतराते हैं उनकी शक्ति को किसी और दिशा में निकास मिलना चाहिये।

चीजों को व्यवस्थित और संगठित करना है। कार्य का ब्यौरा पीछे निश्चित किया जायेगा।

आशीर्वाद।

२६ सितंबर १९६७

कुछ लोग काम से कतराते थे, उनके बारे में व्यंग्य करते हुए प० ले० ने लिखा, "शायद वे विशेष सत्ताएं हैं जो यहां किसी और कारण से आयी हैं और हम उनसे गलत आशाएं करते हैं!"

'विशेष सत्ताएं' पर निशान लगाकर माताजी ने लिखा —

मुझे तो नहीं मालूम!

महान् सत्ताएं हमेशा बहुत सरल और विनयशील होती हैं।

आशीर्वाद।

२ अक्तूबर १९६७

माताजी,

'क' बहुत कमजोर और अनियमित लड़की है, लेकिन वह चाहे तो अच्छा कर सकती है। 'ख' के जन्म-दिन के अवसर पर उसने समारोह में भाग लिया था और तबसे ज्यादा समझदार मालूम होने लगी है, उसे कक्षा में चढ़ाया जाये या नहीं?

बुद्धि और समझने की क्षमता निश्चित रूप से काम में नियमित होने की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, स्थिरता बाद में प्राप्त की जा सकती है।

५ अक्तूबर १९६७

माताजी,

मैं अपने विद्यार्थियों को अपनी मरजी मुताबिक बोलने की छूट देता हूं। कभी-कभी वे गंदी चीजें लिखते हैं। एक ने लिखा है, "यौवन मौज के लिये

है, बेकार ही बूढ़े लोग कहते हैं कि हमें भविष्य के लिये काम करना चाहिये आदि।" वे जानते हैं कि सत्य क्या है फिर भी वे ऐसी बातें लिखते हैं। इस बारे में मैं क्या वृत्ति अपनाऊं? मैं नहीं चाहता कि वे मुझे खुश करने के लिये मीठी-मीठी बातें कहें।

तुम उनसे कह सकते हो कि अगर उनको लगता है कि वे यहां पर ऐसी कोई चीज नहीं सीख सकते जो और कहीं नहीं सिखायी जाती तो ज्यादा अच्छा यही है कि वे विद्यालय बदल लें . . . हमें उनका अभाव नहीं अखरेगा।

सामान्य भीड़ की अपेक्षा चुने हुए कुछ लोगों का होना ज्यादा अच्छा है।

आशीर्वाद।

५ अक्तूबर १९६७

माताजी,

कल रात मैं फरासीसी क्रांति के बारे में श्रीअरविंद का लेख पढ़ रहा था। इसे पढ़ने के बाद लगता है कि हम जो कुछ पढ़ते या सीखते हैं वह मिथ्यात्व का ढेर है। तो यह मिथ्यात्व पाने के लिये मेहनत क्यों की जाये?

मेरा ख्याल है कि यह मन के लिये जिम्नास्टिक्स है!

प्रेम और आशीर्वाद।

१६ अक्तूबर १९६७

माताजी,

कल रात मैंने रेडियो पर वह कार्य-क्रम सुना जिसमें हमारे विद्यार्थी भाग ले रहे थे। मेरा ख्याल है कि ऐसे कार्य-क्रम बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

मुझे नहीं मालूम कि क्या आप 'सामान्य ज्ञान' को कोई महत्त्व देती हैं या नहीं। हमारे चारों लड़कों से पूछा गया, 'क्या तुम जानते हो कि आरकाट बंधु कौन हैं।' किसीको भी पता न था। ये दोनों मद्रास के शिक्षा और प्रशासन क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण आदमी हैं। आजकल उनका ८१वां जन्मदिन मनाया जा रहा है और अखबार उनके चित्रों से भरे रहते हैं। स्थानीय जनता यह मान लेगी, जैसा कि द्र० मु० क० वाले कहते नहीं थकते कि हम दक्षिण में रस नहीं लेते या उन्हें नीची नजर से देखते हैं।

खेद है कि स्वयं मुझे भी इन दोनों महत्त्वपूर्ण लोगों के अस्तित्व के बारे में पता न था

इसलिये मुझे विश्वास है कि उन्हें जाने बिना भी हम बुद्धिमान् हो सकते हैं . . .

हम दक्षिण भारत को बाकी सारे जगत् से अधिक महत्त्व नहीं दे सकते—और धरती पर **इतने अधिक महान्** व्यक्ति भरे हुए हैं जिनके अस्तित्व के बारे में भी हमें पता नहीं है ! . . .

२६ अक्तूबर १९६७

किन्हीं कारणों से प० ले० श्रीअरविंद की पुस्तकों के अनुवाद-कार्य में भाग नहीं लेना चाहता था। उसने अपनी कठिनाइयां गिनाते हुए माताजी को लिखा, 'अगर आपका ख्याल है कि मैं उपयोगी हो सकता हूं, कि इस मामले में आप मेरे द्वारा काम कर सकती हैं तब और केवल तभी मैं इसमें भाग लेना पसंद करूंगा और आपको देखना होगा कि मुझे कठिनाई में न पड़ना पड़े। अगर काम आपकी ओर से आता है तो मेरा संकोच उड़ जायेगा और जिस किसी चीज की जरूरत होगी वह आ जायेगी।'

काम के लिये इसमें **कोई संदेह** नहीं कि तुम्हारे साथ देने से चीजें बहुत सुधर जायेंगी। वस्तुतः मुझे लगता है कि इस काम की सफलता उसीपर निर्भर है।

अतः तुम्हारा साथ देना अनिवार्य मालूम होता है—लेकिन मैं आशा करती हूं कि यह तुम्हारे लिये बहुत ज्यादा भार न हो जायेगा।

आशीर्वाद।

६ नवंबर १९६७

माताजी,

आजकल 'क' योगी के रूप में यूरोप में बहुत लोकप्रिय हो रहा है। उसने एक योग विश्वविद्यालय खोला है और अब वह एक अंतर्राष्ट्रीय नगर का आरंभ कर रहा है। वह आपकी नकल करता है। उसने ध्यान के बारे में एक ग्राफ बनाया है जिसकी एक प्रति आपको भेज रहा हूं, कहते हैं यह परात्पर ध्यान है !

नवीन सृष्टि की दृष्टि से धरती को तैयार करने के लिये कोई भी चीज और सभी चीजें परम प्रज्ञा का यंत्र बन सकती हैं ! . . .

आशीर्वाद।

२८ नवंबर १९६७

Everything and anything can be an instrument for the Supreme Wisdom to prepare the earth in view of the new creation ! — — .

Blessings

मााताजी,

पिछले तीन-चार दिनों से मैं अस्वस्थ-सा हूं। वमन और विरेचन इसके लक्षण हैं। साधारणतः ऐसा तब होता है जब मेरा मन क्षुब्ध हो, लेकिन इस बार ऐसा नहीं है। मैंने तीन दिन तक कुछ नहीं खाया और मैं बिल्कुल ठीक

था। कल मैंने थोड़ा-सा खा लिया और गड़बड़ फिर से शुरू हो गयी। असली कारण कहीं और होगा।

यह बेचैनी और उत्तेजना के कारण है। मामला क्या है ?

शांति को नीचे उतारो, अपने पेट में **भागवत शांति** को लाओ और सब कुछ ठीक हो जायेगा।

प्रेम और आशीर्वाद।

२ दिसंबर १९६७

माताजी,

मुझे किसी बेचैनी या उत्तेजना का पता नहीं। हां, कभी-कभी ऐसा लगता है कि पेट के अंदर तितलियां उड़ रही हैं। पिछले कुछ दिनों से मैं सुस्त-सा रह रहा हूं। सामान्यतः मैं आपकी शांति को पुकारता हूं और वह कभी निराश नहीं करती। लेकिन इस बार हड़ताल है! पुकार उठती ही नहीं।

मामला गंभीर है! पता करने की कोशिश करो कि "क्यों" ?

२ दिसंबर १९६७

माताजी,

मैं नहीं जानता कि क्यों, इसका उत्तर तो आपको देना होगा। ऐसे मंद, निर्जीव समय बहुधा ऐसे आलोकमय समय के बाद आया करते हैं जब सब कुछ आपको बुलाता और आपके प्रति समर्पित मालूम होता है। इस मंदकाल में शुद्ध रूप से तमस् का राज्य होता है। साधारणतः वे कुछ दिनों बाद चले जाते हैं।

यह इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारी सत्ता केंद्रीय चैत्य पुरुष के चारों ओर एकत्र नहीं हुई है।

यह एक व्यक्तिगत कार्य है जो हर एक को अपने लिये करना होगा। सहायता तो हमेशा रहती है लेकिन उसकी क्रिया की प्रभावकारिता ग्रहणशीलता और सचेतन पुकार के परिमाण के अनुसार होती है।

आखिर यह उद्योग में धीरज का प्रश्न है।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

३ दिसंबर १९६७

माताजी,

फिर एक बार मैं आपके संरक्षण के बाहर फिसल गया। यह बुरी बात है। मैं फल के कमरे और पवित्र के कमरे के बीच की छत पर वर्षा के समय गिर पड़ा। कांच के सभी बरतन टूट गये। मुझे थोड़ी चोटें आयीं। शायद यह ग्रहणशीलता की कमी की ओर संकेत है, इसे आप ही ठीक कर सकती हैं, इसे मेरे प्रयास पर न छोड़िये !

बल्कि बात उल्टी है—तुम निष्क्रिय रूप से विश्वस्त रहो और मुझे सब कुछ करने दो . . . और वह हो जायेगा। तुम्हारे पिछले पत्र के बाद से लगभग सारे समय तुम्हारे ऊपर शक्ति की प्रबल और सतत एकाग्रता रहती है, उसे ठीक तरह ले सको तो तुम्हें **बिल्कुल स्वस्थ** रहना चाहिये।

प्रेम और आशीर्वाद।

८ दिसंबर १९६७

माताजी,

हिंदी के प्रसिद्ध कवि दिनकर (जो यहां आते रहते हैं) ने लिखा है कि उनपर जोर डाला जा रहा है कि वे भारत सरकार द्वारा दी गयी उपाधि पद्म-भूषण को लौटा दें। यह सरकार की भाषा-नीति के विरुद्ध असंतोष का प्रदर्शन होगा। वह आपकी सलाह मांगते हैं, उन्हें क्या जवाब दूं ?

वह धमकियों की परवाह क्यों करता है ? उसे अपने भीतरी आदेश के अनुसार काम करना चाहिये, सार्वजनिक राय के अनुसार नहीं।

क्या मैं उन्हें बतला दूं कि आप अखिल भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत को चाहती हैं ?

हां।

आशीर्वाद।

२९ दिसंबर १९६७

हमारे एक मित्र ने, जो विनोबाजी के भी मित्र हैं, यह लिखा है कि विनोबाजी जानना चाहते हैं कि माताजी ने भारत की राष्ट्रीय भाषा के रूप में संस्कृत के बारे में ठीक-ठीक क्या कहा है।

मैं अपनी ओर से यह और पूछ लूं कि क्या आप चाहती हैं कि संस्कृत का कठिन व्याकरण सभी को सीखना है ? यह साधारण उपयोग के लिये होगी या विशेष अवसरों के लिये जैसे इंग्लैंड में लेटिन है ?

मैं सामान्य व्यवहार के लिये, व्याकरण की दृष्टि से सरल की गयी संस्कृत की बात सोच रही थी। लेकिन वास्तव में, मैं नहीं जानती कि क्या यह संभव है।

८ मार्च १९६८

माताजी,

जब मैं मानसिक या शारीरिक रूप से पूरी तरह स्वस्थ न होऊं तब आपके लिये फलों के रस आदि तैयार करना ठीक है क्या ? मन दोनों ओर संतुलित युक्तियां देता है।

अगर तुम पेय तैयार करना बंद कर दो तो मुझे उसके बिना रहना पड़ेगा और अगर तुम अस्वस्थ होते हुए बनाओ तो मुझे पहले तुम्हारी कठिनाई पर क्रिया करनी होगी। इसलिये एक ही उपाय है, पेय बनाते समय तुम बिल्कुल स्वस्थ रहो—यह हम दोनों के लिये अच्छा होगा।

प्रेम और आशीर्वाद।

८ मार्च १९६८

माताजी,

मैं भोजनालय में तीस वर्ष काम कर चुका हूं। अगर आपको लगे कि भविष्य की आवश्यकताओं की दृष्टि से मेरे स्थान पर युवकों को रखना ज्यादा अच्छा रहेगा तो मैं खुशी से सरक जाऊंगा। मैं गंभीरता से कह रहा हूं।

काम के लिये ज्यादा अच्छा है कि तुम जारी रखो क्योंकि तुम मुझे बुला सकते और अनुभव कर सकते हो। एक युवक शायद अछूती ऊर्जा से तो भरा होगा पर यह मानेगा कि वह स्वयं काम कर रहा है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे बने रहने के लिये ईमानदारी, सचाई तथा अन्य अच्छे कारण भी हो सकते हैं जिनका उल्लेख करने की जरूरत नहीं।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१५ मार्च १९६८

प० ले० को एक बिजली का पंखा उपहार में मिल रहा था। उसके अंदर की तपस्या-वृत्ति उसे स्वीकार करना नहीं चाहती थी। ना कहने से पहले उसने माताजी को लिखा, 'मुझे अब भी आराम की चीजें लेते हुए झिझक होती है।'

झिझक उतनी ही बुरी है जितनी कामना—पंखा ले लो और भगवान् की इच्छा पूरी होने दो। अंत में उन्हींकी इच्छा सदा विजयी होती है!

प्रेम और आशीर्वाद।

१५ अप्रैल १९६८

माताजी,

१९६० में आपने मेरे पैर में फाइलेरिया की सूजन को ठीक कर दिया था। एक सप्ताह हुआ, सूजन फिर से भयंकर रूप में लौट आयी है। टांग गरम है, उसमें तनाव, खुजली और दर्द है। मैं लंगड़ा कर चल रहा हूं, पांव दोगुना हो गया है।

तुम्हारी श्रद्धा में गंभीरता से गिरावट आयी होगी क्योंकि शक्ति उसी तरह काम कर रही है। (बहुधा वह अधिक समर्थ प्रमाणित हुई है), लेकिन श्रद्धा जितनी सच्ची होगी शक्ति उतनी ही प्रभावकारी होगी।

नलिनी ने मेरे पास दो कार्यकर्ता भेजे हैं। मेरे सामने प्रश्न है कि उन्हें कहां काम दिया जाये। प्रेस के पास रहने के कुछ कमरे हैं। और विभागों को जिन्हें आदमी की जरूरत है उनके पास रहने की व्यवस्था नहीं है।

काम देते समय दो बातों का ख्याल रखना जरूरी है। एक तरफ आवश्यकता और दूसरी तरफ कार्यकर्ता की क्षमता। बाकी बातें राजनीतिक मिथ्यात्व की गंध देती हैं।

२० मई १९६८

माताजी,

कई बार आपने मुझसे मेरी 'श्रद्धा में गिरावट' की बात की है। सचमुच यह बात मेरी समझ में नहीं आती। सच्ची बात तो यह है कि मैं नहीं जानता कि मेरे अंदर श्रद्धा है या नहीं है। मैं श्रद्धा के बारे में लेख लिख सकता हूं परंतु यह नहीं जानता कि श्रद्धा है क्या—तो आप मुझसे ज्यादा श्रद्धा की आशा कैसे

कर सकती हैं ! मुझे इसकी बहुत परवाह नहीं है कि मेरा पांव ठीक होता है या नहीं, कम-से-कम थोड़ी श्रद्धा तो आये मेरे अंदर।

सच कहूं तो मैं तुम्हारे अंदर श्रद्धा होने या यह मानने की कि तुम्हारे अंदर श्रद्धा नहीं है, बहुत परवाह नहीं करती। मैं बस यही चाहती हूं कि तुम स्वस्थ रहो और हंसी-खुशी अपना काम करते रहो। तुम्हारे बारे में, तुम्हारे शरीर के बारे में मुझे बहुत विशिष्ट ग्रहणशीलता और तुरंत रोगमुक्ति देखने का अभ्यास था—इसी कारण मैंने यह टिप्पणी की थी।

यह सच है कि "हम" एक कठिन समय में से गुजर रहे हैं ("हम" का मतलब है दुनिया) लेकिन जो स्थिर रहेंगे वे इसमें से पहले की अपेक्षा ज्यादा मजबूत होकर निकलेंगे।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२१ मई १९६८

माताजी,

आपके सिवा कोई इस बात पर विश्वास न करेगा कि कल मेरा पांव घुटने तक सूजा हुआ था। वह गरम और सख्त था और अपने साधारण आकार से दो गुना मोटा था। तब आयी आपकी चिट्ठी। मेरी आंखें सूजन को कम होते हुए देखने लगीं। हर मिनट सूजन कम होती जा रही थी और कुछ ही मिनटों बाद केवल टखने तक रह गयी और निचला भाग भी काफी अच्छा हो गया। लगभग आधे घंटे में सब कुछ प्रायः स्वाभाविक हो गया। कुछ घंटों के बाद थोड़ी-सी सूजन लौट आयी है, मुझे विश्वास है कि उसके लिये मुझे आपको फिर से तंग न करना पड़ेगा—वह चली जायेगी—और इसका श्रेय मेरी श्रद्धा को नहीं दिया जा सकता !

शाबाश ! यह ठीक है, यह सच्ची चीज है और जारी रहनी चाहिये।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२२ मई १९६८

हमारी कुछ नयी अध्यापिकाएं अपना काम ठीक तरह करने की कोशिश कर रही हैं, लेकिन उनके पढ़ाने में जान नहीं होती। वे नीरस होती हैं। ऐसा लगता है कि सारी कक्षा सो रही है। उनके काम में जान कैसे डाली जाये ?

खेल-कूद में प्रतियोगिताएं होती हैं, पुरस्कार होते हैं। विद्यालय में तो पुरस्कार भी बंद कर दिये गये हैं ?

पुरस्कार जीवन की निचले स्तर की चीजें हैं—लेकिन अगर हम अब भी वही हैं . . .
अगर तुम्हें जरूरी लगे तो कर सकते हो।
२९ मई १९६८

माताजी,
जब लोग मेरे पास अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयां लेकर आते हैं तो मैं बहुत थक जाता हूं। मैं आपको बुलाता हूं और पांच-दस मिनट में ठीक हो जाता हूं। कल 'क' आयी थी और वह अपने पारिवारिक झमेलों का दुखड़ा सुनाती रही। मैं बिल्कुल जाग्रत् और जीवंत था परंतु उसके जाते ही पूरी तरह से ढह गया। सारा शरीर बहुत अधिक थक गया और अब चौबीस घंटे बीत चुके हैं और मैं अभी तक ठीक नहीं हो पाया।

हां, क्योंकि वह लेती तो है पर कुछ दिये बिना। मुझे बुलाते समय जरा-सी एकाग्रता रखो और सब कुछ ठीक हो जायेगा . . .
प्रेम और आशीर्वाद।
२७ जून १९६८

माताजी,
आपने मुझसे कहा था कि मुझे जब कभी जरूरत होगी, आपका आंतरिक पथ-प्रदर्शन मेरे साथ रहेगा। वह आता तो है परंतु बहुधा मैं उसे पहचान नहीं पाता और अपनी ही राय मान लेता हूं और उसपर जोर नहीं देता। परिणाम दिखलाता है कि यह मेरी भूल थी।

यह भी विवेक सीखने का एक तरीका है !
प्रेम और आशीर्वाद सहित।
५ मार्च १९६९

माताजी,
अधिकतर लोग स्वीकार करते हैं कि अब भोजनालय की तरकारी का स्तर

काफी ऊंचा हो गया है और दूध की मात्रा भी बढ़ गयी है। फिर भी अतिरिक्त दूध और तरकारी की मांग बनी रहती है। क्या करूं?

अधिकतर लोग **लोभी** होते हैं और इस मामले पर विचार करने की जरूरत नहीं। हां, अगर स्वास्थ्य के कारण उसपर विचार करने की जरूरत हो तो तुम उदार हो सकते हो।

आशीर्वाद।

१६ मई १९६९

('लाइफ डिवाइन' के हिंदी अनुवाद के बारे में सलाह।)

जो यहां से प्रकाशित हो वह **अच्छा अनुवाद** होना चाहिये अन्यथा असंभव है। यहां व्यक्तियों और भावनाओं का प्रश्न नहीं है। काम ठीक तरह से होना चाहिये, बस।

१७ जून १९६९

प० ले० ने लिखा कि तरकारियां मुश्किल से मिल रही हैं। माताजी के हिमालय के बगीचे से आनेवाले फल रास्ते में कहीं इधर-उधर हो गये हैं . . .

इसलिये हमें श्रद्धा रखनी और सहन करना चाहिये।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१२ अगस्त १९६९

माताजी,

मुझसे श्रीअरविंद की जीवनी के बारे में एक छोटी-सी पुस्तक लिखने के लिये भारत सरकार के एन० सी० ई० आर० टी० की ओर से कहा गया था। मैंने पांडुलिपि भेज दी थी। उन्होंने कई परिवर्तन सुझाये हैं। क्रिप्स-प्रस्तावों पर श्रीअरविंद का संदेश उन्हें स्वीकार नहीं है, लेकिन चीन के आक्रमण और कोरिया के युद्ध के बारे में पत्र स्वीकार्य हैं। ब्रह्मचर्य की मनाही है, कोई ऐसी बात नहीं लिखी जा सकती जिसे प्रमाणित न किया जा सके। मैंने उन्हें अपनी पुस्तक देने से इंकार कर दिया है। आपको सूचना भर दे रहा हूं।

लेकिन तब वे किसी ऐसे आदमी से लिखवा लेंगे जो श्रीअरविंद के बारे में कुछ नहीं जानता और वह बहुत-सी ऊल-जलूल बातें लिख देगा ! . . .

क्या किया जाये ? . . .

(आखिर यह पुस्तक कविवर सुमित्रानंदन पंत को दिखलायी गयी और उनके कहने पर छापी गयी)

५ सितंबर १९६९

माताजी,

मैं पुरोधा के विज्ञापनों से दस हजार रुपये की आशा कर रहा हूं। मुझे दो विचार आ रहे हैं। (१) इस राशि को जमा करवा दूं और उसके ब्याज से विद्यालयों और पुस्तकालयों को निःशुल्क पुरोधा भेजूं या (२) भविष्य की चिंता किये बिना सारी राशि आपका संदेश लोगों तक पहुंचाने में खर्च कर दूं और भविष्य को आपके हाथों में छोड़ दूं। मैं फैसला नहीं कर पा रहा। कृपया सलाह दीजिये।

मैं धन पर ब्याज लेने के पक्ष में नहीं हूं। उसका उपयोग किसी और तरीके से, जो तुम्हें अच्छे-से-अच्छा लगे, करो।

आशीर्वाद।

५ सितंबर १९६९

माताजी,

मैं चक्कर में पड़ा हूं। हम पुरोधा के आजीवन सदस्य बनाते हैं, उनका पैसा जमा करवा देते हैं जिसपर हमें चौदह प्रतिशत ब्याज मिलता है। अब आपने कहा है कि ब्याज लेना आपको पसंद नहीं है तो इस मामले में मैं क्या करूं ? हमारे लगभग चालीस आजीवन सदस्य हैं और कुछ नये बन रहे हैं। वैसे भी पुरोधा के पास कुछ पैसा है जिसपर हमें ब्याज मिलता है। ऐसी हालत में क्या किया जाये ?

मैं जो देखती हूं वह आगामी कल की दुनिया है, लेकिन विगत कल की दुनिया अभीतक जिंदा है और कुछ समय और जिंदा रहेगी। तबतक पुरानी व्यवस्था ही चलने दो, जबतक वह जिंदा है।

धरती पर परिवर्तन धीमे-धीमे आते हैं।

चिंता न करो—और भविष्य के लिये आशा बनाये रखो।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

६ सितंबर १९६९

माताजी,

इस वर्ष अपने विद्यालय के काम से मैं कुछ निराश-सा हूं। इस वर्ष मैं कोशिश कर रहा था कि पहल विद्यार्थियों की ओर से हो, उनके साथ मेरा मैत्रीपूर्ण संबंध हो। वे मुझे पसंद करते हैं, मैं उनके सामने दर्जनों प्रस्ताव रखता हूं कि हम यह कर सकते हैं और वह कर सकते हैं लेकिन मुझे कोई उत्तर नहीं मिलता, कोई पहल नहीं, कोई प्रस्ताव नहीं—मानों मैं दीवार से बात कर रहा हूं। फिर भी विद्यार्थी अच्छे, मैत्रीपूर्ण और बुद्धिमान हैं। मेरे अंदर ही किसी चीज की कमी होगी जिससे मुझे कोई उत्तर नहीं मिल पाता। मेरी इच्छा होती है कि पढ़ाना छोड़ दूं। पहली बार मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है। कल मैं यह कहने-कहने को था कि अबसे कक्षा लेने न आऊंगा। किसी चीज ने मुझे रोक दिया। लेकिन इस कक्षा में भी यदि मैं अपनी इच्छा चलाऊं तो अच्छा उत्तर मिलता है।

तुम अपनी इच्छा क्यों नहीं चलाते? यह निश्चय ही उनकी इच्छा की अपेक्षा अधिक आलोकित है और उसे उन्हें मार्ग दिखाने का अधिकार है।

निश्चय ही तुम्हारे कक्षा छोड़ने का सवाल नहीं उठता—अपनी इच्छा-शक्ति का उपयोग करो और उन्हें आगे बढ़ाओ।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

६ सितंबर १९६९

माताजी,

१९१९ में श्रीअरविंद ने लिखा था कि अव्यवस्था और विपदाएं शायद नवीन सृष्टि की प्रसव वेदना हैं। यह प्रसव वेदना कबतक चलती रहेगी—आश्रम में, भारत में और फिर सारे संसार में?

वह तबतक जारी रहेगी जबतक जगत् नवीन सृष्टि को ग्रहण करने के लिये इच्छुक और तैयार न हो जाये। इस नयी सृष्टि की चेतना इस वर्ष के आरंभ से ही काम में लगी हुई है।

अगर विरोध करने की जगह लोग सहयोग दें तो काम जल्दी होगा।

परंतु मूढ़ता और अज्ञान बहुत दुराग्रही हैं।

प्रेम और आशीर्वाद।

२९ सितंबर १९६९

माताजी,

'क', 'ख', 'ग' ने ओरोवील में ओरो स्टील नामक कारखाना बनाने की योजना बनायी है। वे उसमें अलग-अलग राशियां लगायेंगे। मुनाफा किस तरह बांटा जायेगा, उनकी पूंजी के अनुपात में या किसी और तरह? सब मिलाकर दो लाख लगेंगे।

शायद उन्हें यह नहीं मालूम कि ओरोवील में सब खर्च निकालने के बाद—जिसमें उनके भरण-पोषण का खर्च भी शामिल है, मुनाफा नगर को मिलेगा।

आशीर्वाद।

१७ अक्तूबर १९६९

किसी नये काम के सिलसिले में—

समय आ गया है कि आश्रम में शांति और सामंजस्य का राज्य हो।

प्रेम और आशीर्वाद।

६ नवंबर १९६९

माताजी,

मैं पुरोधा के विषय में बहुत खुश नहीं हूं। वह अब भी बहुत अधिक भूतकाल पर आधारित है और उसे भविष्य में अपनी राह नहीं दीखती।

भविष्य अनिवार्यतः भूतकाल से अधिक अच्छा है। हमें बस आगे बढ़े चलना है।

प्रेम और आशीर्वाद।

१७ जनवरी १९७०

माताजी ने स्कूल के विद्यार्थियों को एक संदेश भेजा था जिसमें समाचार-पत्र

पढ़ने के बारे में कुछ तेज टिप्पणी थी और उन्हें मिथ्यात्व का प्रचारक बतलाया गया था, और उन्होंने यह भी कहा कि समाचार पढ़ना बड़े-से-बड़े सामूहिक मिथ्यात्वों में भाग लेना है। इसपर प० ले० ने पूछा कि क्या यह उसपर भी लागू होता है, क्या उसे भी समाचार-पत्र पढ़ना बंद कर देना चाहिये? इसपर माताजी ने कहा—

पढ़ना बंद करने की आवश्यकता नहीं है। अबतक तुम्हें विवेक प्राप्त हो गया होगा।
४ फरवरी १९७०

माताजी,

इससे पहले कि मैं अपनी बात को कपोल कल्पना मान बैठूं, मैं आपको एक बात सुनाना चाहता हूं। दर्शन से ठीक पहले मेरे गुदद्वार के पास टेनिस की गेंद जैसा एक फोड़ा हो गया। चलना-फिरना भी कठिन हो गया। सोने से पहले मैंने आपसे कहा: "इससे काम न चलेगा। अगर यह बना रहा तो दर्शन के सारे सप्ताह मुझे बिस्तर पर पड़ा रहना पड़ेगा," मुझे इस बात की संभावना पर विश्वास नहीं होता, लेकिन सवेरे जब मैं उठा तो फोड़ा अपने स्थान से तीन इंच दूर हट गया था और मुझे चलने-फिरने में जरा भी असुविधा न रही। दो एक दिन में वह फट गया और अब सूख चुका है। अब भी मुझे आश्चर्य हो रहा है कि क्या फोड़े इस तरह अपने स्थान से हट सकते हैं।

सब कुछ हो सकता है, केवल तुम्हारा "तार्किक" मन सीमाएं बांधता है। मुझे तुम्हारे शरीर को उसकी ग्रहणशीलता के लिये बधाई देनी चाहिये।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।
२५ फरवरी १९७०

माताजी,

यहां आने से पहले मैं जर्मन सीखने के लिये बहुत उत्सुक था परंतु कोई अवसर नहीं मिला। अब एक अवसर मेरा द्वार खटका रहा है। मैं उत्सुक नहीं हूं। बताइये क्या करूं?

अगर अवसर आया है तो इसका मतलब है कि यह कुछ उपयोगी हो सकता है।

प्रेम और आशीर्वाद।
२३ मार्च १९७०

माताजी,

एक कॉलिज का विद्यार्थी सामान्य जीवन से बाहर निकलना चाहता है और प्रायः मुझे पत्र लिखा करता है। वह बहुत स्पष्टवादी है। वह कहता है कि वह आपके फोटो पर ध्यान एकाग्र करता है, लेकिन हाल में उसने आपके लिये लड़के-लड़की जैसा आकर्षण अनुभव करना शुरू किया है। वह मेरी सलाह मांग रहा है।

हो सकता है कि कोई पुराना फोटो हो। उसे कोई हाल का फोटो ले लेना चाहिये।

अन्यथा उसे उस संवेदन को ऊपर खींचकर अपने हृदय-चक्र में समर्पित कर देना चाहिये।

आशीर्वाद।

२१ अप्रैल १९७०

माताजी,

मेरे अंदर एक भय उठ रहा है। यहां आने से पहले मेरे मन में मनुष्यों का नेता बनने की महत्त्वाकांक्षा थी और मैंने अपने-आपको उसके लिये तैयार करने की भी कोशिश की। जब मैं यहां आया तो यह सारी चीज बह गयी। अभी कुछ दिन पहले रामकृष्णदास और प्रपत्ति मुझे पकड़कर अपने युवा सम्मेलन में ले गये और मुझे भाषण देना पड़ा। कहते हैं, मेरा भाषण अच्छा था और उन लोगों ने निश्चय किया कि जब कभी उनके सम्मेलन होंगे तो मुझे बोलना पड़ेगा। मुझे भय है कि कहीं मेरी पुरानी महत्त्वाकांक्षा नये रूप में आकर मेरे अहंकार को न फुलाये। कृपया मुझे दूसरा 'क' बनने से बचाइये।

तुम सुरक्षित हो। तुम्हें बस मेरी तरह यह याद रखना चाहिये कि जब कभी हम कोई समझदारी की बात कहने की कोशिश करते हैं तो हमारे द्वारा श्रीअरविंद बोलते हैं।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२ जून १९७०

माताजी,

मैं कुछ सप्ताह पहले ओरोवील गया था और वहां के लोगों का काम देखकर बहुत खुश हुआ। हममें इतना काम कर सकनेवाले ज्यादा नहीं हैं।

तुमने जो लिखा है उसे पढ़कर मैं बहुत खुश हुई और मैं तुम्हारे साथ सहमत हूं। सब कुछ ठीक है।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२३ जून १९७०

माताजी,

मेरे कुछ अच्छे कार्यकर्ता मुझसे पूछते हैं कि क्या वे 'श्रीअरविंद ऐक्शन'[1] में जा सकते हैं ? मैंने उनसे कहा है कि वे इस समय भी 'मदर्स ऐक्शन' के सदस्य हैं और उन्हें इसे छोड़कर दूसरे की ओर भागने की जरूरत नहीं।

बिल्कुल ठीक।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२५ जून १९७०

माताजी,

पुरोधा के आधे पृष्ठों में आपकी और श्रीअरविंद की चीजों के अनुवाद होते हैं और बाकी में आपकी और श्रीअरविंद की शिक्षा पर आधारित लेख, कहानियां आदि। आपने मुझे कहा था कि मैं क्या लिखता हूं इसका महत्त्व नहीं है। महत्त्व इस बात का है कि मैं किस चेतना से लिखता हूं। अब कुछ मित्र आग्रह कर रहे हैं कि मुझे 'श्रीअरविंद ऐक्शन' के साथ ताल-मेल बैठाना चाहिये। मैं इसका अर्थ नहीं समझ पाता। कृपया बतलाइये कि मैं अपनी नयी पत्रिका अग्नि[2] के लिये कौन-सी लीक अपनाऊं।

कोई परिवर्तन नहीं—सब बिल्कुल ठीक है।

अग्नि के लिये—बच्चों को यह शिक्षा देनी चाहिये कि जीवन सुंदर हो सकता है।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१७ जुलाई १९७०

हिंदी केवल हिंदीभाषी प्रदेशों के लिये अच्छी है। संस्कृत सारे भारतीयों के लिये अच्छी है।

१९७०

[1] श्रीअरविंद का काम करने के लिये बनी एक नयी संस्था।

[2] दूसरी पत्रिका का नाम माताजी ने अग्नि ही चुना था परंतु सरकारी कारणों से वह नाम स्वीकृत न हुआ और उसका नाम अग्निशिखा कर दिया गया।

Hindi is good only for those who belong to a Hindi speaking province, Sanskrit is good for all Indians.

प० ले० ने सुना था कि श्रीअरविंद हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में थे। उसने माताजी से पूछा कि फिर आपने किस आधार पर कहा कि संस्कृत भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिये।

मैंने संस्कृत इसलिये कहा क्योंकि श्रीअरविंद ने मुझसे यही कहा था।

आशीर्वाद।

१९७१

माताजी,

भोजनालय के विरोध में एक आंदोलन-सा चल रहा है। और हमेशा एक ही स्थान से शुरू होता है। मुझे किसी ऐसे आदमी के पक्ष में निवृत्त होने में खुशी होगी जो मेरे आलोचकों को स्वीकार हो ताकि बार-बार आपको परेशान न किया जाये।

तुम्हारे बिना मुझे सारे समय परेशानी रहा करेगी। इसलिये मेरे लिये ज्यादा अच्छा है कि तुम अपना काम जारी रखो।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

४ मई १९७१

निम्नलिखित पत्रों की तारीख का पता नहीं

प० ले० ने दो व्यक्तियों के बारे में लिखा जो साथ काम करते थे परंतु एक-दूसरे के प्रति बहुत कटु थे।

जीवन में सभी कटुता **हमेशा** अहंकार के अपदस्थ होने से इंकार करने से आती है।

आशीर्वाद।

पार्थिव जीवन का उद्देश्य है प्रगति करना। अगर तुम प्रगति करना बंद कर दो तो मर जाओगे। प्रगति किये बिना बीतता हुआ हर क्षण तुम्हें अपनी कब्र की ओर ले जानेवाला कदम होता है।

माताजी,

मैं जानना चाहूंगा कि आपके लिये क्या अधिक सुविधाजनक होगा : अगर मुझे आपसे कुछ काम हो तो मैं स्वयं आकर आपसे पूछूं या लिखकर पूछ लूं ?

तुम हमेशा मुझसे आकर पूछ सकते हो और शायद यह अधिक सुविधाजनक हो, क्योंकि अगर मुझे कुछ पूछना हो तो मैं तुमसे उसी समय पूछ सकती हूं और समस्या को तुरंत सुलझाया जा सकता है।

द्युमान आश्रम के एक विभागाध्यक्ष हैं। उनके साथ प० ले० का किसी बात पर मतभेद हो गया। आज उसका काल या संदर्भ याद नहीं है। प० ले० ने शायद सारी चीज माताजी के सामने रखी होगी। उसपर उत्तर मिला।

यह कहने की जरूरत नहीं कि तुम और द्युमान दोनों ही ठीक (या गलत) हो। ये प्रश्न के दो पहलू हैं। अन्य दृष्टिबिंदु भी अपनाये जा सकते हैं।

एक बात ध्यान में रखने की जरूरत है कि कोई भी पूरी तरह ठीक या पूरी तरह गलत नहीं होता और इस या उस दृष्टिकोण के पक्ष में निर्णय नहीं किये जा सकते।

हर एक वही करे जो उसके अपने विचार या अपने अनुभव के अनुसार अच्छे-से-अच्छा हो . . . भागवत चेतना परिणाम की व्यवस्था कर लेगी।

आशीर्वाद।

Needless to say that you and Dyuman are both right (or wrong); it is two aspects of the question and other points of view can be adopted too.

The only thing to keep in mind is that nobody is completely right or completely wrong and decisions cannot be taken favouring this or that point of view.

Let each one do his best according to what he thinks or feels to be the best and … the Divine Consciousness will manage the result.

Blessings

मेरे प्यारे बालक,

तुम्हें छोड़ने देने की अपेक्षा तुम्हारे दिमाग को साफ करना बहुत आसान है। दूसरा विकल्प तो एकदम असंभव है। मुझे यहां पर तुम्हारी जरूरत है और तुम्हें जाने देने का कोई इरादा नहीं है। सच कहा जाये तो मैं यह मानती हूं कि मैंने तुम्हें जो जिम्मेदारी और काम सौंपा है उसे छोड़ना **कहीं अधिक विश्वासघात होगा** उन अप्रिय किंतु उड़ती हुई प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा जो काम के ब्योरों में अनिवार्य उतार-चढ़ाव के कारण आती हैं।

अपने अंदर इस सारे विक्षोभ को किसी विरोधी शक्ति के आक्रमण (परीक्षा) के रूप में लो, कार्य की व्यवस्था में छोटे-मोटे परिवर्तनों के कारण नहीं।

मैं आशा करती हूं कि तुम इस अस्तव्यस्तता में से बाहर निकल आये हो। मैं यह सब तुम्हें इसलिये भेज रही हूं ताकि उसका कहीं नामो-निशान भी बचा न रहे . . .

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

सचमुच प० ले० को बाद में इतना भी याद नहीं रहा कि यह किस विषय की बात हो रही है।

ऊपर से दीखनेवाले विरोधों की परवाह न करो।

इनके पीछे सत्य को देखना, खोजना है।

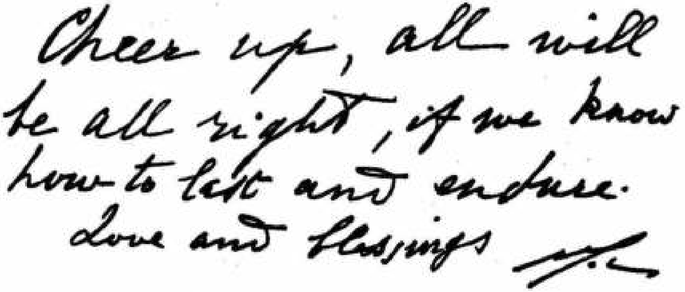
Cheer up, all will be all right, if we know how to last and endure.
Love and blessings

उठो, खुश हो जाओ, सब कुछ ठीक हो जायेगा, अगर हम टिके रहना और सहन करना जानें।

प्रेम और आशीर्वाद।

एक दिन किसी कारण से प० ले० बहुत उदास था। माताजी उसे अपने पास बिठाकर कुछ समझा रही थीं। पास में ही एक रद्दी कागज का टुकड़ा पड़ा था। माताजी ने उसे उठा लिया और बातें करते-करते फाउंटेन पेन से हंसती हुई बिल्ली का यह चित्र बनाकर उसे दे दिया। उदासी गायब हो गयी और हंसी के फव्वारे छूटने लगे।

पत्रमाला ४

पत्रमाला ४

[एक ऐसे साधक के नाम पत्र जो १९३१ में इकत्तीस वर्ष की उम्र में आश्रम में आया था। इसने १९४० के बीच तक गृहनिर्माण-विभाग में काम किया, फिर फर्नीचर-विभाग का अध्यक्ष बन गया जहां इसने १९७० तक अपनी मृत्युपर्यंत काम किया।]

श्रीअरविंद, माताजी,

हम आपकी शिक्षा को समझने का जो प्रयास कर रहे हैं उसमें अपनी सहायता प्रदान कीजिये।

१९४२

(यह शिष्य एक कक्षा को पढ़ाया करता था, उसके लिये कार्यक्रम)

१ प्रार्थना :
(श्रीअरविंद और माताजी—हम आपकी शिक्षा को समझने का जो प्रयास कर रहे हैं उसमें अपनी सहायता प्रदान कीजिये।)
२. **श्रीअरविंद की पुस्तक का पढ़ना**
३. एक क्षण के लिये मौन
४. **जो कुछ पढ़ा गया है** उसके बारे में जो चाहे एक प्रश्न कर सकता है
५. प्रश्न का उत्तर
६. **सामान्य वार्तालाप नहीं**

यह एक दल की बैठक **नहीं** है, श्रीअरविंद की पुस्तकें पढ़ने के लिये एक कक्षा है।

३१ अक्तूबर १९४२

माताजी,

हमारी 'योग समन्वय' की कक्षा में चैत्य सत्ता का प्रश्न आया है। 'दिव्य जीवन' के 'मनुष्य में द्विविध आत्मा' नामक अध्याय में श्रीअरविंद पहले उस चैत्य-सत्ता की बात कहते हैं जो "साक्षी और नियंता, गुप्त पथ-प्रदर्शक, सुकरात का 'डीमन' (देव)" आदि है। उसके बाद वे इस सत्ता के हमारे अंदर चैत्य-पुरुष का रूप धारण करने की बात करते हैं जिससे स्पष्टतः उनका

मतलब है चैत्य-सत्ता से जो बढ़ती और विकसित होती है और जो 'जन्म और मृत्यु' के बीच यात्री है।'

तो हमारे अंदर चैत्य अस्तित्व है, प्रकृति में उसका आत्मनिक्षेपण है चैत्य-सत्ता और इनका निवास मनुष्य के गुह्य हृदय में है।

१. तब फिर वे भगवान् कहां हैं जो गीता और उपनिषदों के अनुसार मनुष्य के हृदय में निवास करते हैं?

२. क्या यहां जिसकी बात की गयी है वह चैत्य-सत्ता है या अंतर्यामी भगवान्? क्या चैत्य-सत्ता को व्यष्टिगत भगवान् कहा जा सकता है?

३. क्या केवल चैत्य-सत्ता ही विकसित होती है और पीछे से चैत्य-पुरुष उस विकास को केवल सहारा ही देता है?

श्रीअरविंद की शिक्षा में ये कड़े भेद-भाव नहीं हैं। चैत्य-सत्ता और चैत्य-पुरुष भिन्न दृष्टिकोण से देखी गयी, एक और समान वस्तु ही हैं। यह अंतर्यामी भगवान् नहीं हैं लेकिन हम कह सकते हैं कि भगवान् इसमें हैं।

आशीर्वाद।

६ जुलाई १९४३

माताजी,

कल अपनी कविता की कक्षा में मैंने बतलाया कि हमने कविता के अध्ययन में अपने आगे क्या लक्ष्य रखा है: विश्वभर में व्यापक दिव्य सौंदर्य और दिव्य आनंद का प्रत्यक्षण और रसग्रहण। और मैंने कहा कि जैसे हम योग में समस्त जीवन का आलिंगन करते हैं, उसी तरह कविता में जीवन की आत्मा की समस्त सच्ची आत्माभिव्यक्ति को स्वीकार करते हैं। हमें दिव्य सौंदर्य के अनासक्त पुजारियों और दिव्य आनंद के जिज्ञासुओं की तरह काव्य-सृजन के समस्त क्षेत्र में ऊपर-नीचे विचरण करना चाहिये।

बाद में तीसरे पहर मुझसे 'क' ने कहा कि 'ख' को प्रेम की कविताएं अच्छी नहीं लगतीं इसलिये कुछ दिन पहले मैंने उनके बारे में जो कहा था उसका उसने विरोध किया था। ऐसा लगता है कि कल भी उसे किसी ऐसी ही चीज से चोट पहुंची। चीजों के बारे में उसकी दृष्टि बहुत संकुचित और कठोर है और वह दूसरों की दृष्टि के बारे में अत्यंत असहिष्णु है।

मेरा ख्याल है कि कविता के अध्ययन में प्रेम के मानव पार्श्व पर बहुत ज्यादा जोर न

डालना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि वह साधना में सहायक नहीं है और कुछ लोगों के लिये निश्चित रूप से हानिकर है।

मेरे आशीर्वाद।

१३ जुलाई १९४३

माताजी,

क्या मैं अपनी कक्षा से कह सकता हूं कि आपकी इच्छा है कि जहांतक हो सके हम केवल श्रीअरविंद की कृतियों का ही अध्ययन करें और दर्शन और काव्य दोनों में अपनी तुलनात्मक अध्ययन की आदत को छोड़ दें क्योंकि उससे उनकी शिक्षा की पवित्रता में बहुत-सा अचेतन मिश्रण और फीकापन आ जाता है?

निश्चय ही उनसे यह कह देना अच्छा है।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

३ नवंबर १९४३

माताजी,

''अमर वल्लरी के सौर द्राक्ष'' मैंने इसका अर्थ किया, अमर चेतन सत्ता की प्रकाश-किरणें, कालनर्तक के पद तले कुचले जाने से उनसे गुलाबी-लाल प्रेम-मदिरा निकलती है। लेकिन इस बारे में कुछ मतभेद रहा . . .

मेरे लिये कविता दर्शन तथा व्याख्या के परे है।

७ दिसंबर १९४३

माताजी,

ऐसा लगता है कि 'क' को समाधि और उसके विभिन्न रूपों में विशेष रस है। 'योग-समन्वय' की अगली कक्षा में हठयोग और राजयोग के अध्यायों का संक्षिप्त रूप देते हुए, आपकी अनुमति और आशीर्वाद के साथ मैं विभिन्न प्रकार की समाधियों के बारे में बोलूंगा और यह बतलाऊंगा कि हमारे योग में उन्हें क्या महत्त्व दिया जाता है और हम उनका क्या उपयोग करते हैं।

बिल्कुल व्यर्थ।

१८ जनवरी १९४४

माताजी,

आपकी चुप्पी का मैं यह अर्थ लगाता हूं कि आपने मेरे प्रणाम के लिये आने के दिनों को कम करने के प्रस्ताव को पसंद नहीं किया, इसलिये मैं पहले की तरह सप्ताह में दो दिन आता रहूंगा। ऐसा प्रस्ताव रखने के लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूं।

यह ठीक है—यह बहुत सद्भावना से आया था, लेकिन चीजों की वर्तमान स्थिति में (हर रोज लगभग १२० व्यक्ति आते हैं) एक कम या एक अधिक से बहुत फर्क नहीं पड़ता।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१२ दिसंबर १९४४

माताजी,

क्या यह कहा जा सकता है कि अतिमानस के पूर्ण आविर्भाव के बाद भी आगे विकास की संभावना है? या क्या यह कहा जा सकता है कि अनंत प्रगति तो हो सकती है परंतु अतिमानस के पूर्ण आविर्भाव के बाद, जो अब भी यहां अंतर्लीन है, आगे विकास नहीं हो सकता?

अनंत प्रगति तो एक स्पष्ट तथ्य है—रही बात आगे विकास होने या न होने की तो यह अनुमान की बात है जिसका अभी तो कोई उपयोग नहीं दिखायी देता।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२७ फरवरी १९४५

माताजी,

क्या मैं समय-समय पर दर्शन और कविता की कक्षा में स्पष्टीकरण और दृष्टांत के लिये अन्य कवियों और दार्शनिकों के कुछ उद्धरण दे सकता हूं? मैंने देखा है कि उचित उद्धरण तुरंत कठिन विषय को स्पष्ट कर देता है।

मेरा अनुभव है कि उद्धरण देकर स्पष्ट करने की जगह व्यक्ति उसे अधिक पेचीदा बना देता है।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

११ दिसंबर १९४५

माताजी,

कुछ दिन पहले 'क' ने मुझे "विचार और झांकियां" का हिंदी अनुवाद दिखलाया था। मुझे लगा कि उसमें कुछ गंभीर भूलें थीं। क्या यह संभव नहीं है कि छपने से पहले 'क' और 'ख' के अनुवाद दोहराने के लिये 'ग' के पास भेजे जा सकें ?

तब तुम "आत्म-सम्मान" के लिये कौन-सा स्थान छोड़ोगे ? . . . लोगों को यह समझाना बहुत कठिन है कि वे भूलें कर रहे हैं।
१८ जून १९४६

मधुर मां,

कल 'योग-समन्वय' की कक्षा में आपने कहा था कि श्रीअरविंद के लेखों पर टीका-टिप्पणी करना बेकार ही नहीं, मूर्खतापूर्ण है। मधुर मां, मैं अपनी कक्षाओं में यह मूर्खता वर्षों से करता आ रहा हूं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इन्हें बंद करने की अनुमति प्रदान करें।

बहुत-से आलसी मनवाले श्रीअरविंद की पुस्तकों की व्याख्या पाकर बहुत खुश होते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे वे ज्यादा अच्छी तरह समझ पाते हैं। इसलिये मैंने हस्तक्षेप नहीं किया। वस्तुतः लोगों के लिये श्रीअरविंद की कृतियों के साथ कोई संपर्क न रखने की अपेक्षा ज्यादा अच्छा है कि वे उनका पाठ सुनें और उनमें रस लें।

अतः तुम अपनी कक्षाएं जारी रखो; लेकिन टीका-टिप्पणी करते समय यह याद रखो कि वे अपर्याप्त हुए बिना नहीं रह सकतीं और तुम जो कुछ कह सकते हो उसकी अपेक्षा मूल पाठ कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

मेरे आशीर्वाद सहित।
११ नवंबर १९४७

(इसके बाद के सभी पत्र उस समय लिखे गये थे जब यह साधक अपने छठे दशक में था और फर्नीचर-विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम करता था)

मधुर मां,

मैं निम्नलिखित प्रस्ताव आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूं, आपकी अनुमति हो तो स्वीकृति प्रदान करें।

हम फर्नीचर की कुछ चीजें बनाकर प्रदर्शन के लिये 'ऑनेस्टी सोसायटी' में रखने के लिये तैयार हैं। उनमें हर एक पर दाम लिखा होगा। हमारा फर्नीचर मजबूत और सुंदर है और दाम भी उचित है। 'क' भी इससे सहमत है। हम उसे पांच प्रतिशत देंगे।

लेकिन क्या यह संभव होगा कि आश्रम को जिन चीजों की जरूरत है वे सब देने के साथ-साथ बेचने के लिये भी फर्नीचर बनाया जा सके? आश्रम की आवश्यकताओं को प्राथमिकता मिलनी चाहिये।

आशीर्वाद।

१२ मार्च १९६४

मधुर मां,

मैं डा० 'क' से मिलने गया था। वह मुझसे नाराज है क्योंकि किसीने उससे कहा है कि माताजी ने हर रोगी के लिये एक मेज, एक कुर्सी, एक पलंग और कपड़ों की एक घोड़ी की स्वीकृति दी है। मुझे आश्चर्य है कि उसने ऐसी बात कैसे कह दी जब कि आपने ऐसा कुछ नहीं कहा है।

बहरहाल, इस व्यर्थ की बक-बक को कम करने के लिये मैंने उससे पूछा कि 'क्योर-हाउस' में कितने रोगी रह सकते हैं। उसने कहा, 'दस'। तो अगर आपकी स्वीकृति हो तो मैं उसे दस मेजें, दस कुर्सियां इत्यादि दे दूं—तब शिकायत का कोई कारण न रहेगा।

हां, हम मिथ्यात्व की दुनिया में रहते हैं। शांति के लिये ज्यादा अच्छा है कि कोई ध्यान न दिया जाये।

मेरे आशीर्वाद।

१४ जुलाई १९६४

मधुर मां,

समय-समय पर मैं बंगला और हिंदी पत्रिकाओं में ऐसे लेख देखता हूं, जिनमें श्रीअरविंद की शिक्षा को गलत तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। क्या ऐसी चीजों को रोकने के लिये कुछ नहीं किया जा सकता?

स्पष्ट है कि ये बातें खेदजनक हैं और ये ऐसी चीजों की पूरी शृंखला का भाग हैं जो

आश्रम में हो रही हैं क्योंकि ऐसा लगता है कि हर एक बिना किसी रोक-टोक के जो मर्जी हो वही कर रहा है। दुःख की बात है कि चेतना की सचाई, निष्कपटता और ईमानदारी की कमी है।

मेरे आशीर्वाद।

३० जुलाई १९६४

मधुर मां,

पिछले कुछ दिनों से मैं बहुत थका-थका महसूस कर रहा हूं और मेरा यकृत भी खराब है। शायद यह मेरी अपनी मूढ़ता के कारण है। मैंने सोचा कि मैं जितना अधिक काम और व्यायाम करूंगा उतना ही अच्छा लगेगा, इसलिये मैं दूर-दूर तक घूमने के लिये जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि अब मैं बोलने से भी थक जाता हूं और जरा-सी कसरत भी मुझे कमजोर बना देती है।

मधुर मां, अगर आप इस बारे में कुछ बतला सकें तो मैं बहुत खुश होऊंगा।

मन हमेशा अपना नियम शरीर पर आरोपित करना चाहता है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वह नियम दिव्य प्रज्ञा के अनुकूल हो, इसलिये शरीर कष्ट पाता है।

अब तुम्हें अपने शरीर को विश्राम देना चाहिये जिसकी उसे जरूरत है ताकि वह अपना संतुलन फिर से पा ले।

मेरे आशीर्वाद सहित।

२१ अगस्त १९६४

मधुर मां,

आपने १९३०-३१ के वार्तालाप में चैत्य उपस्थिति और चैत्य सत्ता की बात कही है, "चैत्य सत्ता अपनी परिपूर्ति, अपनी समग्र परिपूर्णता तब पाती है जब वह ऊपर की किसी सत्ता या व्यक्तित्व के साथ एक हो जाती है।"[1] मधुर मां, मैं यह वाक्य नहीं समझ पाया। क्या आपका मतलब जीवात्मा से है? अगर नहीं तो "ऊपर की किस सत्ता या व्यक्तित्व" से आपका मतलब है?

मैंने "ऊपर की सत्ता" ज्यादा सुनिश्चित होने से बचने के लिये लिखा है क्योंकि बहुत-सी संभावनाएं हैं, यह अधिमानस देव की विभूति से लेकर अतिमानस सत्ता या परम प्रभु के सीधे आविर्भाव (अवतार) तक हो सकता है।

आशीर्वाद।

२९ अक्तूबर १९६४

[1] श्रीमातृवाणी खण्ड ३, पृ. १४५।

मधुर मां,

क्या मैं आपसे सत्प्रेम की पुस्तक 'एडवेंचर ऑफ कॉनशसनेस' की एक प्रति मांग सकता हूं ? मुझे मांगते हुए संकोच हो रहा था क्योंकि वह महंगी है, लेकिन मेरा ख्याल है कि मेरे वर्तमान कार्य में ही नहीं बल्कि बाद में भी यह पुस्तक मेरे लिये बहुत उपयोगी होगी। अगर मैं उसमें से उद्धरण देना चाहूं तो दे सकूंगा।

तुम फ्रेंच जानते हो इसलिये निःसंदेह रूप से अनुवाद की जगह उसे मूल भाषा में पढ़ना ज्यादा अच्छा है। मैं तुम्हें फ्रेंच पुस्तक भेज रही हूं, शायद वह तुम्हारे पास न हो।

मेरे आशीर्वाद।

२६ दिसंबर १९६४

मधुर मां,

जैसा कि मैंने पहले कहा था, 'क' की काम करने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। आपने उससे दिन में आठ घंटे काम करने के लिये कहा था, लेकिन उसने केवल चार घंटे काम करने का वचन दिया। धीरे-धीरे उसने अपने घंटे कम करने शुरू किये और अब लगभग सब काम छोड़ बैठा है। लेकिन जबतक कि हमें उसके स्थान पर कोई और न मिल जाये, हम उसके बिना काम नहीं चला सकते। इस बीच मैं आशा करता हूं कि वह आपकी कृपा से अनुभव करेगा कि उसे ज्यादा सचाई के साथ काम करना चाहिये।

जिसके अंदर सचाई नहीं है उसे सचाई देना, मरते हुए मनुष्य के उपचार करने से ज्यादा कठिन है।

आशीर्वाद।

३० जनवरी १९६५

मधुर मां,

'क' की आंखों में दो वर्षों से भेंगापन आ रहा है। लगभग वर्ष भर से वह चश्मे का उपयोग भी कर रहा है परंतु समस्या बढ़ती ही जा रही है। अब शल्य-क्रिया की सलाह दी गयी है, लेकिन वह आपके दिये निर्णय का पालन करना चाहता है। कृपया अपना निर्णय दीजिये।

इस तरह की चीजों में मैं अपना निर्णय नहीं दे सकती, परंतु मैं विशेषज्ञों को अपना आशीर्वाद देती हूं ताकि वे ठीक निर्णय दे सकें।

आशीर्वाद।

२५ फरवरी १९६५

मधुर मां,

कल 'क' का मुझे जो पत्र मिला है वह आपको भेज रहा हूं। कृपया चिह्नित अनुच्छेद को देख लीजिये। वह कहता है कि वह आपको भी लिखेगा। मधुर मां, मैं प्रार्थना करता हूं कि आपकी इच्छा ही उसका पथ-प्रदर्शन करे ताकि वह अपने मन के भटकावे में न आ जाये। उसका मन अपने बारे में जरा ज्यादा ही विश्वस्त मालूम होता है।

सब कुछ इसपर निर्भर है कि 'भागवत प्रेरित' से उसका क्या मतलब है। उसके पहली बार आने के बाद मैंने उसे लिखा था कि भौतिक दृष्टिकोण से आश्रम को पूरी-पूरी पुनर्व्यवस्था की जरूरत है और यह कि वह इस दिशा में मेरी सहायता कर सकता है। लेकिन यह तभी संभव होगा जब कि वह अमरीका से अर्पण के रूप में या बिना ब्याज के पच्चीस वर्ष के लिये धन ला सके। मैंने दस करोड़ की राशि बतलायी थी।

उसने हमेशा यही समझा कि यह ऐसी शर्त है जिसे पूरा नहीं किया जा सकता—लेकिन **है यह एक अनिवार्य शर्त**। उसके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता।

मेरे आशीर्वाद।

पुनश्च : लेकिन अब दस करोड़ की राशि पर्याप्त न होगी क्योंकि हमने ओरोवील-योजना भी जोड़ दी है और केवल उसके लिये ही कम-से-कम पचास करोड़ की जरूरत होगी।

हमारी वर्तमान कार्य-शैली में धन के बिना **कुछ भी** नहीं बदला जा सकता।

२७ मई १९६५

मधुर मां,

जैसा कि मैंने कुछ दिन पहले आपको बतलाया था, 'क' अब बिल्कुल काम नहीं करना चाहता। उसने लगभग सारा काम छोड़ दिया है और केवल हिसाब-किताब के छोटे-से भाग में कुछ करता है और उसमें भी बहुत-सी भूलें करता है। मधुर मां, मैं नम्रतापूर्वक आपसे निवेदन करूंगा कि आप उससे कह

दें कि उसे छह घंटे काम करना ही होगा और सवेरे के समय वह काम छोड़कर न जाया करे जब मैं ऊपर जाया करता हूं।

आश्चर्य की बात है: अपने-आपको पूरी तरह आपके काम में डालने की जगह लोग अपने-आपको अधिकाधिक बचाकर रखते हैं। विभागों का काम बढ़ता जा रहा है और हर जगह अव्यवस्था है। केवल आपकी कृपा हमारे अंदर की प्रमाद और कपट की शक्तियों पर विजय पाकर इस अव्यवस्था में व्यवस्था ला सकती है। मैं आपकी कृपा के हस्तक्षेप के लिये प्रार्थना करता हूं!

ऐसा लगता है कि कपट ऐसा रोग है जिसे ठीक नहीं किया जा सकता, जो सत्ता के अंदर कृपा के कार्य को व्यर्थ कर देता है। निश्चित रूप से कपट और पाखंड ने ही जगत् में काली के उग्र हस्तक्षेप को आवश्यक बना दिया।

मेरे लिये किसी कपटी आदमी को आज्ञा देना संभव नहीं है क्योंकि वह कपट और पाखंड के साथ उत्तर देगा और उससे वह अंधकार और भी बढ़ जाता है जिसमें वह डूबा रहता है।

या तो तुम्हें कपटी लोगों के साथ कोई संबंध न रखना चाहिये या फिर उन्हें उसी रूप में लेना चाहिये जैसे वे हैं।

आशीर्वाद।

२ जून १९६५

मधुर मां,

होम्योपैथी डॉक्टर 'क' ने लिखा है: "माताजी की कृपा से मेरे नये खुले दवाखाने का काम दिन दूना रात चौगुना बढ़ गया है।" इसका अर्थ यह हुआ कि आपकी कृपा ने रोगियों की संख्या बढ़ा दी है और इससे डॉक्टर प्रसन्न हैं। मुझे इस बात से आश्चर्य भी होता है और मजा भी आता है।

सौभाग्यवश उसके लिये यह वाक्य केवल एक नम्र अभिव्यंजना मात्र है जिसका किसी भाव के साथ संबंध नहीं है। यह ठीक उन लोगों की तरह है जो कहते हैं, 'भगवान् को धन्यवाद' लेकिन उनका किसी वास्तविक विचार से संबंध नहीं होता।

आशीर्वाद।

५ अगस्त १९६५

मधुर मां,

मैं देखता हूं कि बिजली की मालिश ने मेरे पेट को और भी कमजोर बना

दिया है, जो पहले से ही कमजोर और नाजुक था। परिणामतः मुझे पहले से भी ज्यादा थकान मालूम होती है। आपकी स्वीकृति हो तो मैं इस चिकित्सा को बंद कर देना चाहता हूं। मुझे अधिकाधिक यह अनुभव होता है कि आपकी कृपा के सिवा कोई और मुझे स्वस्थ नहीं कर सकता और मैं अपने-आपको उसीको सौंपता हूं। अगर मैं आपसे प्रेम करता हूं और अगर मुझे आप पर श्रद्धा है तो मुझे विश्वास है कि आप इस भौतिक शरीर को रूपांतरित कर देंगी।

यह ठीक है; अगर चिकित्सा तुम्हारे लिये अनुकूल नहीं है तो तुम्हें उसे बंद कर देना चाहिये।

यह ठीक है कि रूपांतर केवल भागवत शक्ति के द्वारा ही हो सकता है, लेकिन पृथ्वी की वर्तमान स्थिति में इस प्रक्रिया में बहुत लंबा समय लगेगा और हमारी श्रद्धा को बहुत ज्यादा धीरज की जरूरत है।

आशीर्वाद।

३० अगस्त १९६५

मधुर मां,

युद्ध[1] *और जीवन की कठोरता के कारण क्या आप चाहेंगी कि फर्नीचर देने के मामले में भी हम कुछ बचत करें? क्या हम ऊल-जलूल मांगों को रद्द कर दें और वर्तमान अवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार बचत भी करें?*

हां, कम-से-कम ऊल-जलूल मांगें बंद होनी चाहियें क्योंकि वे यहां पर पूरी तरह अस्थानीय हैं।

आशीर्वाद।

२२ सितंबर १९६५

मधुर मां,

पिछले तीन दिनों से मैं प्राकृतिक चिकित्सा का परीक्षण कर रहा हूं और चिकित्सक की सलाह से मैंने दूध और पानी की मात्रा आधी कर दी है। अगर आपकी अनुमति हो तो मैं कुछ समय तक यही चिकित्सा जारी रखना चाहूंगा।

मैं तुम्हें दूध कम करने की सलाह न दूंगी क्योंकि वैसे ही तुम **बहुत कम** खाते हो और तुम जब कम और अधिक कम खाते हो तो तुम्हारी खाने की क्षमता कम होती जाती है जिससे प्राण-शक्ति कम होती है।

[1] सितंबर १९६५ का हिंद-पाक युद्ध।

मधुर मां,

मुझे विश्वास है कि मेरी शिकायत इस वर्ष के अंततक हमेशा के लिये चली जायेगी। आपकी अनुमति हो तो मैं प्राकृतिक चिकित्सा जारी रखूं अन्यथा बंद कर दूं। मैं अपने-आपको पूरी तरह आपकी शक्ति के सुपुर्द करता हूं।

तुम्हें प्राकृतिक चिकित्सा लाभप्रद मालूम हो रही है अतः उसे जारी रखो और अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण और जीवित-जाग्रत् बनाये रखो क्योंकि वह रोगमुक्ति के लिये अनिवार्य है।

आशीर्वाद।

२ अक्तूबर १९६५

मधुर मां,

पहले मैं दिन में तीन बार सवेरे, दोपहर और शाम को दूध लिया करता था लेकिन 'क' और 'ख' ने मुझसे कहा है कि दोपहर को छाछ ज्यादा आसानी से हजम होती है और कमजोर शरीर के लिये ज्यादा अच्छी है। इसलिये मैं दोपहर को दूध की जगह छाछ लेता हूं।

लेकिन ये सब सुझाव महत्त्वहीन हैं। मैं वही करूंगा जो मधुर मां कहेंगी।

छाछ बड़ी अच्छी चीज है, लेते जाओ, मेरी सलाह केवल यही थी कि अपने-आपको भूखा न मारो, काफी पोषण लेते रहो।

आशीर्वाद।

३ अक्तूबर १९६५

मधुर मां,

अपने पिछले पत्र में 'क' ने लिखा है, ''मुझे अपने पिछले दो पत्रों का माताजी से कोई उत्तर नहीं मिला। क्या आपको लगता है कि वे पत्र कहीं भटक गये हैं ?'' मैं उसे क्या उत्तर दूं मधुर मां ?

यह कि मुझे उसके दोनों पत्र मिल गये हैं और मैंने पढ़ भी लिये हैं और तुरंत मन के द्वारा उनका उत्तर भेज दिया गया था और जब कभी उसके विचार आते हैं उत्तर भेज दिया जाता है। यह जरूरी है कि पत्र-व्यवहार का यह मानसिक तरीका उसकी साधना

का भाग बन जाये और कुछ हदतक पूर्णता तक पहुंचे। फिर भी जब भौतिक रूप से उसे यह बताने का समय आये कि मैं उससे क्या आशा करती हूं तो मैं उसे लिखने की सोच रही हूं।

"उसे अपने-आपको तैयार करते और अपने विकास को पूर्ण बनाते जाना चाहिये ताकि जो करना है उसे करने के लिये वह तैयार हो जाये।

"मेरे आशीर्वाद उसके साथ हैं।"

तुम इसका अनुवाद करके उसे भेज सकते हो।

आशीर्वाद।

१८ अक्तूबर १९६५

मधुर मां,

'क' ने नये वर्ष के लिये नये खाते बनाने से इंकार कर दिया है। 'ग' न तो इच्छुक है न कुछ करने योग्य ही है। उसने अपने-आपको काम के एकदम अयोग्य बना लिया है। मैं आपको इसलिये सूचना दे रहा हूं कि आपकी कृपा से स्थिति सुधर जाये।

मुझे भय है कि कृपा का आलसी लोगों पर कोई असर नहीं होता।

आशीर्वाद।

१० दिसंबर १९६५

मधुर मां,

जैसा कि आपने कहा था, मैं दूध और कम उबला हुआ अंडा रोज सवेरे ले रहा हूं। आपने आज जो अंडा भेजा है उसे मैं कल सवेरे साढ़े छह बजे लूंगा।

मुझे और एक तरकीब बतलायी गयी है : ताजे अंडे को पानी में उबाले बिना तोड़कर दूध में डालकर पी लिया जाये।

मैं इन दोनों में से कौन-सा तरीका अपनाऊं ? क्या मैं कल का अंडा आज के दूध में डाल सकता हूं ? क्या वह सुपाच्य होगा ?

अंडों को हजम करना सबसे आसान तब होता है जब वे **बिना उबले** हों।

उन्हें जितना अधिक उबाला जाये उतने ही पचाने में कठिन हो जाते हैं। अगर तुम अपने अंडे को किसी ठंडी जगह रखो तो तुम उसे आसानी से दूसरे दिन दूध के साथ अच्छी तरह मिलाकर ले सकते हो और चाहो तो जरा-सा मीठा भी डाल सकते हो।

आशीर्वाद।

२८ जनवरी १९६६

मधुर मां,

डॉक्टर जो कुछ कहते हैं उसे मैं आपके सामने रख देता हूं ताकि आपकी कृपा उसपर कार्य कर सके, लेकिन शरीर का क्या होगा इसकी मुझे चिंता नहीं है। मेरा शरीर आपका यंत्र है और केवल आप ही जानती हैं कि उसे कैसे पूरी तरह से रोगमुक्त करके रूपांतरित किया जा सकता है।

रही बात आंतरिक सत्ता की, वह आपके प्रेम में डूबी और उससे भरी हुई है। आपका प्रेम मेरा जीवन है, मेरा एकमात्र अवलंब, मेरी शांति और मेरा आनंद है।

अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण बनाये रखो और इस शाश्वत प्रेम में निमग्न रहो। वही एकमात्र वास्तविकता है।

मेरी शक्ति और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

९ मई १९६६

मधुर मां,

कल सवेरे डॉक्टर मुझे देखने आये थे। उनका कहना है कि मुझे अधिक भोजन करना चाहिये और ज्यादा पौष्टिक आहार लेना चाहिये। उनका कहना है कि जबतक मैं ठोस, पौष्टिक भोजन न लूं तबतक यह रोग नहीं जा सकता। आमाशय विरोध करेगा पर उसे अपने-आपको ठीक करना होगा।

मैं कुछ समय से तुमसे कहना चाहती थी कि तुम्हें अधिक खाना चाहिये और ज्यादा पौष्टिक भोजन लेना चाहिये।

तुम्हारे शरीर को मजबूत बनाने के लिये यह जरूरी है। जब तुम ज्यादा मजबूत हो जाओगे तो खाना आसान हो जायेगा।

आशीर्वाद।

२० मई १९६६

मधुर मां,

मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे अनिद्रा से बचायें जो मुझे पिछले पच्चीस वर्षों से या उससे भी अधिक समय से तंग कर रही है। पिछली रात मैं केवल एक घंटा सोया और पिछली बीस रातों से मुझे नींद ही नहीं आ रही। डॉक्टर का कहना है कि इसके लिये नींद की गोलियां छोड़कर और कोई

इलाज नहीं है। लेकिन कुछ वर्ष पहले आपने मुझे नींद की गोलियां न लेने के लिये कहा था।

अनिद्रा का एकमात्र इलाज है इच्छानुसार मानसिक नीरवता प्राप्त करना जानने के द्वारा नींद की आवश्यकता से मुक्त हो जाना। जब तुम इच्छानुसार नीरवता पा सको तो तुम्हें अपने शरीर को पूर्ण विश्राम की अवस्था में, बिस्तर पर आराम से लिटा देना चाहिये। तब तुम अपने अंदर पूर्ण मानसिक नीरवता में चले जाओ जो बहुत गहरी नींद के जैसी होती है। अगर तुम इसे इच्छानुसार करना जानो और हर रात नियमित रूप से करो तो तुम बिना सोये भी काम चला सकते हो।

अन्यथा तुम्हें नींद की गोलियां लेने के लिये तैयार रहना चाहिये।

आशीर्वाद।

३० मई १९६६

मधुर मां,

जैसे ही आपने मुझे बतलाया कि मेरे हृदय की अवस्था क्रमशः बिगड़ती जा रही है, मैंने अपनी दवाई खाना बंद कर दिया और सोचा, "मैं केवल वही लूंगा जो लेने के लिये माताजी कहेंगी।" अगर आप चाहें कि मैं कोई भी दवाई न लूं और अपने-आपको ऐकांतिक रूप से आपकी सर्वशक्तिमत्ता के आगे खुला रखूं तो मैं खुशी से यही करूंगा।

शरीर चाहता है कि उसकी देख-रेख भौतिक परंतु प्रबुद्ध उपचारों से की जाये।

आशीर्वाद।

१९६८ या १९६९

मधुर मां,

मैं बड़ी तीव्रता के साथ प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस अस्वस्थ अवस्था में से निकाल लीजिये और मुझसे संपूर्ण प्रगति करवाइये। आप जानती हैं कि मेरी अंतरात्मा की एकमात्र अभीप्सा है कि वह आपसे प्रेम करे और आपकी सेवा करे। मुझे आप अपनी सेवा के लिये शरीर से सक्रिय बनाइये।

तुम हमेशा निष्ठावान् सेवक रहे हो और अब भी हो। चिंता न करो: आज तुम्हारा शरीर शारीरिक काम के योग्य नहीं रहा है तो तुम्हारे पास जितना समय है उसे अपनी

आंतरिक चेतना को विकसित करने में लगाओ और भगवान् के साथ अधिकाधिक सचेतन रूप से एक होने में लगाओ।

पढ़ना, ध्यान, चिंतन, आत्मदान, नीरवता और एकाग्रता में उन भगवान् के प्रति आत्मदान जो सदा तुम्हारी बात सुनते और तुम्हें मार्ग दिखाने के लिये उपस्थित रहते हैं।

आशीर्वाद।

१९६८ या १९६९

मधुर मां,

मैंने 'क' के साथ २३ तारीख तक काम किया, लेकिन मेरे चक्कर इतने बढ़ गये कि मैं बाहर जाने का साहस नहीं कर सकता। डॉक्टर के अनुसार मेरा रक्तचाप ९६/७० तक उतर गया है।

मधुर मां, अगर संभव हो तो मुझे इस अंधकार और कष्ट में से बाहर निकालिये और संभव न हो तो कृपा कीजिये कि मैं अपने अंदर आपकी जीवित-जाग्रत् उपस्थिति का अनुभव कर सकूं, तब मैं कोई भी दुःख-कष्ट सह लूंगा।

जैसे ही तुम्हें अस्वस्थता का अनुभव होने लगे, तुम यह जपना शुरू कर दिया करो, "प्रभो, मुझे वह शक्ति दो कि मैं केवल तुम्हारे बारे में ही सोचा करूं।"

मेरे समस्त प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२५ मार्च १९६९

मेरे प्यारे बालक,

क्षमा करने के लिये कुछ भी नहीं है, तुमने कोई भूल नहीं की है।

जब मुझे तुम्हारा पत्र मिला तो मैंने तुम्हारी प्रार्थना परम प्रभु के पास पहुंचा दी ताकि सत्य निर्विघ्न अभिव्यक्त हो सके।

निश्चल, धीर और विश्वस्त रहो। जो कुछ हो रहा है वह तुम्हारी चैत्य सत्ता के लिये अच्छे-से-अच्छा है और आंतरिक निश्चलता में तुम अनुभव करोगे कि प्रभु तुम्हारे अंदर हैं ताकि तुम्हें हर अग्निपरीक्षा में से सफलतापूर्वक निकाल सकें।

रही बात काम की, मैं देखूंगी कि क्या व्यवस्था की जा सकती है ताकि तुम अपने शरीर पर उसकी सहज शक्ति से अधिक भार डाले बिना व्यस्त रह सको।

मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

२६ अगस्त १९६९

मेरे प्यारे बालक,

मैं तुमसे जरा भी नाखुश नहीं हूं—इसके विपरीत, मैं देखती हूं कि तुम साहस और सहिष्णुता से भरे हो।

लेकिन मेरा काम इतना अधिक अवशोषक है कि मेरे पास एक पंक्ति लिखने के लिये भी समय नहीं होता।

अनिद्रा में रातें काटने और परिणामस्वरूप कष्ट भोगने की अपेक्षा ज्यादा अच्छा है कि नींद की गोलियां लेते रहो। यह कल्पना कभी न करो कि मैं तुमसे असंतुष्ट हूं।

मेरी शक्ति, मेरा प्रेम, मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं ताकि तुम्हारे लिये शांति, अचंचलता और संतोष ला सकें।

२२ जनवरी १९७०

पत्रमाला ५

पत्रमाला ५

[एक शिष्या के नाम पत्र जो १९४४ में आठ वर्ष की उम्र में आश्रम आयी थी और ग्यारह वर्ष की उम्र में यहां के शिक्षण-विभाग में कप्तान बन गयी। उसने तीस वर्षों तक इस विभाग का कार्य किया।]

प्यारी मां,

क्या आप क्रीड़ांगण के सामूहिक ध्यान के समय हमारे साथ होती हैं?

निश्चय ही, मैं वहां हमेशा होती हूं।

उससे लाभ पाने के लिये हमें किस चीज पर ध्यान करना चाहिये? और किस तरह?

तरीका हमेशा वह-का-वही है : उन सभी ऊर्जाओं को इकट्ठा करो जो सामान्यतः बाहर बिखरी रहती हैं; सतह के आंदोलन के नीचे, अंदर की चेतना पर एकाग्र होओ, जहांतक हो सके अपने हृदय तथा सिर में एक पूर्ण शांति प्रतिष्ठित करो; फिर अगर तुम्हारे अंदर कोई अभीप्सा हो तो उसे सूत्रबद्ध करो और ऊपर से भागवत प्रकाश को ग्रहण करने के लिये स्वयं को खोलो।

१ जुलाई १९६०

प्यारी मां,

मेरे लिये कुछ ऐसी बात लिखिये जिसे मैं सारे साल याद रख सकूं।

हमारा लक्ष्य है अपनी सत्ता की पूर्णता को चरितार्थ करना और मानव पशु को भागवत मनुष्य में बदल देना।

मेरे आशीर्वाद सहित।

५ जुलाई १९६०

प्यारी मां,

अगर किसी अंतरात्मा ने एक जन्म में लड़के का शरीर धारण किया हो तो क्या वह भावी जीवनों में हमेशा लड़का ही बनी रहेगी या वह लड़की के रूप में जन्म ले सकती है?

मत और संप्रदाय के अनुसार सिद्धांत बदलते रहते हैं और प्रत्येक शिक्षा अपने दावों के समर्थन के लिये अच्छे-से-अच्छे कारण दे सकती है।

निश्चय ही इन सभी कथनों में सत्य का तत्त्व है और न केवल ये सभी मामले संभव हैं बल्कि पार्थिव इतिहास के क्रम में ये जरूर घटे होंगे और अब भी हो रहे हैं।

इस विषय पर मैं निश्चिति के साथ जो कह सकती हूं वह मेरी अपनी अनुभूति है।

मेरी अनुभूति के अनुसार, अंतरात्मा भागवत है, परम प्रभु का शाश्वत अंश है, अतः उसे किसी भी सीमा या नियम में—सिवाय उसके अपने—बांधा नहीं जा सकता। ये अंतरात्माएं धरती पर प्रभु का कार्य करने के लिये उनसे प्रकट होती हैं और प्रत्येक धरती पर एक विशेष प्रयोजन के लिये, कार्य-विशेष के लिये तथा लक्ष्य-विशेष के लिये आती है, प्रत्येक का अपना विधान होता है जो उसी पर लागू होता है और उसे व्यापक नियम नहीं बनाया जा सकता।

अतः संभवन की शाश्वतता में, हर कल्पनीय और अकल्पनीय संभव मामले को निश्चित रूप से घटना चाहिये।

१४ जुलाई १९६०

मधुर मां,

मेरे भाई ने अन्य कुछ लड़कों के साथ रात को स्पोर्ट्स ग्राउंड में काम करना शुरू किया है। मुझे पता नहीं कि दिन भर की पढ़ाई और तीसरे पहर की कसरत के बाद उसके लिये ऐसा करना ठीक है। वह दोपहर के भोजन के बाद आराम भी नहीं लेता। वह कहता है कि उसे थकान नहीं आती। कल वह स्पोर्ट्स ग्राउंड से आधी रात के बाद लौटा था। वह कहता है कि आगे से वह जल्दी लौटा करेगा।

मां, यदि आपको लगता है कि यह ठीक है तो मैं उसे यह जारी रखने दूं।

अगर वह **खुशी** से करता है तो उसकी उम्र में इसमें कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते कि यह लंबे समय तक न चले। बहरहाल जैसे ही उसे थकान लगे उसे **विश्राम करना चाहिये**।

आशीर्वाद।

२४ मई १९६३

उदार हृदय हमेशा पुराने दुर्व्यवहारों को भूल जाता है और दुबारा सामंजस्य लाने के लिये तैयार रहता है।

आओ, हम सब उसको भूल जायें जो अतीत में अंधकारमय और कुरूप है, ताकि ज्योतिर्मय भविष्य को ग्रहण करने के लिये हम अपने-आपको तैयार कर सकें।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२ अप्रैल १९६७

मैंने रजत-शून्य में अपने स्वप्न सजा रखे हैं,
एक ओर नीलिमा, दूसरी ओर स्वर्ण-संपुट निर्मल।
रक्खा है संपुटित उन्हें कर ऊपर बड़े जतन से,
स्वप्न तुम्हारे जो हीरों से जड़े हुए अतिशय उज्ज्वल।

"एक देवता का श्रम" —श्रीअरविंद

रजत-शून्य आध्यात्मिक क्षेत्र है, स्वर्ण अतिमानसिक है और नील है मन।

"स्वप्नों" का अर्थ है वे सब प्रत्याशाएं जो चरितार्थ नहीं हुई हैं और जिन्हें भविष्य में चरितार्थ होना है। ये "स्वप्न" कोमलता और प्रेम के साथ चरितार्थ होने की प्रत्याशा में सुरक्षित रखे गये हैं।

२६ जुलाई १९६९

मधुर मां,

१. कहा जाता है कि "एक देवता का श्रम" पृथ्वी पर श्रीअरविंद के अपने अनुभवों का वर्णन करता है। क्या यह सच है ?

२. आपने समझाया है कि "स्वप्नों" का अर्थ है, "वे सब प्रत्याशाएं जो चरितार्थ नहीं हुई हैं और जिन्हें भविष्य में चरितार्थ होना है।" अंतिम पंक्ति में श्रीअरविंद कहते हैं, "मेरे तुम्हारे बारे में हीरों से जड़े स्वप्न में" यहां "तुम" का क्या मतलब है ?

केवल वही रखना काफी है जो श्रीअरविंद हमें बतलाना चाहते थे; भगवान् अपनी सृष्टि, पृथ्वी से बोल रहे हैं।

२७ जुलाई १९६९

मेरी प्यारी बच्ची,

मैं जानती हूं कि रातों-रात अपनी प्रकृति को बदलना असंभव है, लेकिन तुरंत जो

तुम समझ सकती और मान सकती हो वह यह है कि अपना आपा खोना और अशांत होना बहुत बड़ी कमजोरी का लक्षण है। और, जैसा कि मैंने तुमसे कहा है, जिस क्षण तुम इस दुर्बलता को—जो तुम्हारे योग्य नहीं है—जीतने का निश्चय कर लोगी, मेरी शक्ति तुम्हारे साथ होगी। अतः मैं तुमसे कहती हूं कि अभी से इस शक्ति का उपयोग करो जो मैं तुम्हें तुम्हारी प्रतिक्रियाओं को वश में करने के लिये दे रही हूं और तबतक शांत रहो जबतक तुम्हारा गुस्सा उतर न जाये। यह पहला अनिवार्य कदम है। बाद में क्रमशः मैं तुम्हें यह समझने में मदद दूंगी कि तुम्हारा गुस्सा अनुचित और निराधार था।

अपने समस्त प्रेम के साथ मैं तुमसे यह कहती हूं कि इस महान् प्रगति को प्राप्त करने के लिये कृपया आवश्यक प्रयास करो; यह रूपांतर का दरवाजा खोल देगी।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

अगस्त १९६९

मधुर मां,

हमें किस तरह की चीज पढ़नी चाहिये या न पढ़नी चाहिये इसमें चुनाव कैसे करें। क्या 'हल्की-फुल्की चीजें' उदाहरण के लिये सामान्य अखबार या पत्रिकाएं पढ़ना अच्छा है ?

सामान्य अखबार, पत्रिकाएं या किताबें, जैसे उपन्यास इत्यादि, उन आलसी मस्तिष्कवाले लोगों के लिये हैं जो कुछ सीखने के लिये नहीं बस मौज और आराम के लिये पढ़ते हैं। ऐसे लोग जीवन को, वह जिस रूप में आये, स्वीकार कर लेते हैं और प्रगति या चीजों के बारे में एक गभीरतर समझ से कोई वास्ता नहीं रखते।

कुछ लोग जगत् में जो हो रहा है उसे जानने के लिये पढ़ते हैं और यह मानव प्रगति का सूचक है, पढ़ने के साथ-साथ वे सिनेमा जा सकते और रेडियो सुन सकते हैं।

जो लोग अच्छी शैली विकसित करने के लिये पढ़ते हैं उन्हें बहुत अधिक पढ़ना चाहिये और उन्हें साहित्यिक-मूल्य की पुस्तकें चुननी चाहियें।

कुछ लोग सीखने के लिये पढ़ते हैं, उन्हें जिस विषय या जिन विषयों में रुचि हो : दर्शन, विज्ञान, कला इत्यादि, उनके बारे में प्रशिक्षणात्मक पुस्तकें चुननी चाहियें।

और फिर बहुत कम हैं ऐसे जो जीवन को, उसके उद्देश्य तथा उसके लक्ष्य को समझना चाहते हैं। उनके पढ़ने के लिये श्रीअरविंद की पुस्तकें ही सबसे अच्छी हैं।

आशीर्वाद।

१० सितंबर १९६९

मधुर मां,

आपकी सच्ची बालिका बनने में मेरी सहायता कीजिये।

यह अच्छा निश्चय है। तुम अपने साथ मेरी सहायता तथा मेरी चेतना की उपस्थिति के बारे में सुनिश्चित हो सकती हो कि वह तुम्हारा रास्ता आलोकित करे और जब कभी तुम उसे पुकारो वह तुम्हें रास्ता दिखाये। नीरव अभीप्सा में ही तुम इस उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकती और उसकी सहायता पा सकती हो।

प्रेम तथा आशीर्वाद सहित।

१० नवंबर १९६९

मधुर मां,

आश्रम में आपने विवाह की अनुमति देना क्यों शुरू कर दिया ?

मैंने उन लोगों को अनुमति दी जिन्होंने कहा कि वे कोई लैंगिक संबंध नहीं चाहते—इस आशा के साथ कि वे सच्चे हैं। यह उनके और उनके अंतःकरण के बीच का मामला है।

और जो सच्चे नहीं हैं (जैसा कि बच्चे का जन्म दर्शाता है) उन्हें ओरोवील में जाना होगा।

आशीर्वाद।

२३ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

हम यहां "बड़ा दिन" क्यों मनाते हैं, हमारे लिये इस दिन का विशेष अर्थ क्या है ? और बड़े दिन पर यहां यूरोपियन तथा भारतीयों में भेद क्यों किया जाता है ?

ईसाई धर्म द्वारा ईसा का जन्मदिवस २५ दिसंबर मनाने से बहुत पहले यह दिवस सूर्य के वापिस आने का, प्रकाश के दिवस के रूप में मनाया जाता था। प्रकाश के पुनर्जन्म के इस बहुत अधिक प्राचीन प्रतीक को हम मनाना चाहते हैं।

जहांतक मुझे मालूम है, आश्रम का हर कोई क्रिसमस का पेड़ देखने और उपहार-वितरण के समय आ सकता है।

यूरोपियन तथा अमेरिकनों को विशेष टोकरी भेजने के इस रिवाज के पीछे यह

तथ्य है कि उन देशों में वे लोग एक-दूसरे को पहली जनवरी को उपहार देने की बजाय सामान्यतः बड़े दिन पर दिया करते हैं। बस इतना ही।

आशीर्वाद।

२६ दिसंबर १९६९

मधुर मां,

नये साल के संदेश में क्या आप भौतिक रूपांतर की बात कर रही हैं जब आप कहती हैं, "जगत् एक बड़े परिवर्तन के लिये तैयारी कर रहा है?" और हम उसमें सहायता कैसे कर सकते हैं?

सत्ता का आविर्भाव मनुष्य का स्थान लेगा, उस सत्ता का, जो मनुष्य के लिये वैसी ही होगी जैसा मनुष्य अभी पशु के लिये है, उसीकी तैयारी हो रही है और उस नयी चेतना की क्रिया के साथ कार्य शुरू हो चुका है जो पहली जनवरी १९६९ को उतरी थी और उन सभी में कार्य कर रही है जो तैयार हैं। इस चेतना की क्रिया तीव्रता से हो रही है और अधिकाधिक भौतिक बन रही है। अगर हम उसके कार्य के परिणाम को जल्दी लाना चाहें तो यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम ग्रहणशील बनें।

आशीर्वाद।

१ जनवरी १९७०

मधुर मां,

आज से ठीक नौ वर्ष पहले 'क' ने अपना शरीर छोड़ा था। अब वह कहां है? क्या उसने नया जन्म ले लिया है?

'क' की चैत्य सत्ता विश्राम में चली गयी है और अभी तक वहीं है।

आशीर्वाद।

१९ मार्च १९७०

मधुर मां,

जब चैत्य सत्ता शरीर को छोड़ गयी हो और विश्राम में चली गयी हो तो क्या उसके साथ कोई संपर्क रखना संभव होता है? मैं बहुत बार 'क' के बारे में स्वप्न देखती हूं और सामान्यतः ये स्वप्न बहुत स्पष्ट होते हैं। क्या इसका

यह कारण है कि उसके साथ कुछ संपर्क है या ये स्वप्न मेरी अवचेतना से आते हैं ?

अधिक संभव यह है कि ये स्वप्न अवचेतना के क्रिया-कलाप हैं जो तुम्हारे स्वप्न में ऊपर उठते हैं।

व्याख्या के अनुसार, चैत्य विश्राम निष्क्रिय होता है।

लेकिन अगर तुम्हें अपना कोई स्वप्न ठीक तरह याद हो तो मुझे बतलाओ, तब मैं देखूंगी।

आशीर्वाद।

२० मार्च १९७०

मधुर मां,

'क' के बारे में अपने हाल के स्वप्नों में मैं हमेशा उसे बहुत परिचित परिवेश में देखती हूं, उदाहरण के लिये अपने घर में, खेल के मैदान में या आश्रम में। और मैं जब कभी देखती हूं तो यही लगता है कि वह लंबे समय के बाद लौट आया है और बहुत दूर से आया है। मैं उसे कभी अधिक समय के लिये नहीं देखती, यह हमेशा कुछ क्षणों के लिये होता है और वह कभी बोलता नहीं है। दो बार मैंने पूछा कि वह कहां गया था, तो वह बस मुस्करा दिया और चुप रहा।

सवेरे जब मैं उठती हूं तो उसकी स्मृति बहुत स्पष्ट होती है, यद्यपि रात के दूसरे स्वप्नों की याद नहीं होती।

तुम्हारे स्वप्नों से ऐसा लगता है कि उसने हाल में ही कहीं जन्म ले लिया है जिसकी मुझे खबर नहीं है। यह बिल्कुल संभव है।

वह उन बच्चों में से नहीं हो सकता जिन्हें मैंने देखा है क्योंकि तब मैं उसे पहचान लेती। लेकिन और भी तो बहुत-से हैं !

आशीर्वाद।

२१ मार्च १९७०

मधुर मां,

क्या यह जानने का कोई निश्चित तरीका नहीं है कि अमुक चैत्य सत्ता ने नया शरीर लिया है या नहीं ?

एक तरीका है।

तुम्हें सचेतन रूप से चैत्य जगत् में जाना और यह देखना होगा कि तुम विचाराधीन चैत्य को वहां पाते हो या नहीं। अगर तुम उसे देख लो तो बस मामला ख़तम। अगर तुम उसे नहीं पाओ तो तुम्हें उसपर एकाग्र होना चाहिये ताकि तुम उसके साथ संपर्क साध लो और उससे यह कहो कि तुम्हें दिखाये कि वह किस मानव शरीर में है। यह लंबा और नाजुक कार्य हो सकता है।

क्या तुम इसे करने का प्रयास करना चाहोगी ?

आशीर्वाद।

२३ मार्च १९७०

मधुर मां,

अगर आप मुझे रास्ता दिखलायें तो मैं इस परीक्षण के लिये प्रयास करने को बहुत उत्सुक हूं।

मैं तुम्हारी सहायता करने के लिये तैयार हूं।

पहला कदम है अपनी चैत्य सत्ता के साथ सचेतन रूप से ऐक्य स्थापित करना। क्या तुमने कोशिश की है ? अगर की है तो मुझे यह बताओ कि तुम्हारे अंदर क्या हुआ ?

आशीर्वाद।

२४ मार्च १९७०

मधुर मां,

इन दिनों मेरा मन ऐसी अशांति में है कि मैं अपनी चैत्य सत्ता के साथ किसी प्रकार के संपर्क का अनुभव नहीं करती। मेरे ख्याल से अब मेरे अंदर कोई चैत्य सत्ता नहीं बची।

उदास मत हो मेरी प्यारी बच्ची, तुम्हारी चैत्य सत्ता अब भी है, क्योंकि अगर वह चली गयी होती तो तुम्हारा शरीर जिंदा नहीं रह सकता।

हो सकता है कि तुम अब इसकी उपस्थिति के बारे में बहुत सचेतन न हो क्योंकि तुम्हारा मन कुछ कोलाहलपूर्ण हो गया है, इसलिये तुम चैत्य उपस्थिति को अनुभव करने के लिये काफी शांत नहीं रहीं। लेकिन उसका उपचार किया जा सकता है। और चूंकि तुमने मुझसे कहा कि तुम कोशिश करना चाहोगी अतः तुम्हें भेजने के लिये कल मैंने श्रीअरविंद का यह उद्धरण चुना :

"सतत और निष्कपट अभीप्सा तथा केवल भगवान् की ओर मुड़ने की इच्छा ही चैत्य को सामने लाने के एकमात्र उत्तम तरीके हैं।"

एक ऐसा समय निश्चित कर लो जब तुम रोज खाली और शांत रह सको, आराम से बैठ जाओ और इस अभीप्सा के साथ अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सोचो कि तुम्हारा उसके साथ संपर्क स्थापित हो जाये। अगर तुम तुरंत सफल न हो सको तो, निराश मत होना। एक दिन तुम अवश्य सफल होगी। मैं बस तुमसे यही मांग करती हूं कि तुमने जो समय चुना हो उसकी मुझे सूचना दे देना ताकि मैं अधिक सचेतन रूप से तुम्हारी सहायता कर सकूं।

मेरे समस्त प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२५ मार्च १९७०

मधुर मां,

मैं रोज दोपहर १२-४५ से १ बजे तक इसे करने की कोशिश करूंगी। अगर मैं कुछ करने में सफल हुई तो आपको लिखूंगी। मेरी सहायता कीजिये मधुर मां।

अच्छा है; यह मेरे लिये भी सुविधाजनक समय है और तुम सुनिश्चित हो सकती हो कि मैं तुम्हारी सहायता करूंगी।

आशीर्वाद।

२६ मार्च १९७०

मधुर मां,

मैं यह जानने के लिये उत्सुक हूं कि आप क्या करेंगी जब आपने कहा कि रोज दोपहर को मेरी एकाग्रता के समय आप मेरी सहायता करेंगी।

मैं तुम्हारे ऊपर एकाग्र होऊंगी और अगर तुम्हारी चेतना की किसी चीज ने प्रत्युत्तर दिया तो मैं उसे चैत्य जगत् में ले चलूंगी ताकि वह अपनी खोज जारी रख सके।

आशीर्वाद।

२७ मार्च १९७०

मधुर मां,

क्या आपको विश्वास है कि 'क' अपने अगले जन्म में आश्रम में वापिस आयेगा ?

नहीं, यह बिल्कुल निश्चित नहीं है।

जिन सत्ताओं का एक जीवन में आपके साथ संपर्क स्थापित हो जाता है क्या वे अपने नये जीवनों में हमेशा लौटकर आपके पास ही आती हैं ?

ऐसी सत्ताओं की संख्या बहुत कम है जो अपने चुने हुए स्थान पर सचेतन रूप से वापिस आती हैं। जो वापिस आयी हैं वे अधिकतर ऐसी सत्ताएं हैं जिन्होंने अपना शरीर छोड़ने से पहले नये शरीर में वापिस आने की मांग की थी।

लेकिन सब कुछ संभव है।

आशीर्वाद।

२८ मार्च १९७०

मधुर मां,

अपने पूर्वजन्मों को याद करना कैसे संभव है ?

चैत्य के साथ संपर्क से तुम्हें पूर्वजन्मों की आंशिक स्मृतियां प्राप्त होती हैं—उन घटनाओं की स्मृति जिनमें चैत्य ने हिस्सा लिया था।

यह तब सहज रूप से होता है जब चैत्य के ये समान तत्त्व फिर से क्रियाशील हो उठते हैं।

जान-बूझकर किये गये किसी भी मानसिक प्रयास में भ्रामक कल्पनाओं को लाने की संभावना बनी रहती है।

आशीर्वाद।

३ अप्रैल १९७०

मधुर मां,

जब विशेष तारीखें होती हैं तो क्या उन दिनों जगत् में विशेष शक्तियां कार्यरत होती हैं ?

आज, श्रीअरविंद के यहां आने की ६०वीं जयंती पर कौन-सी विशेष बात हो रही है ?

शक्तियां हमेशा इस प्रतीक्षा में उपस्थित रहती हैं कि कोई उन्हें ग्रहण करे। विशेष तारीखों का उत्सव मुख्य रूप से मंद स्मृतियों और कुंठित ग्रहणशीलताओं को जगाने

के लिये मनाया जाता है। वास्तव में पांडिचेरी शहर को यह ६०वीं जयंती मनानी चाहिये थी क्योंकि श्रीअरविंद के आगमन ने इसकी नियति को बहुत अधिक बदल दिया।

आशीर्वाद।

४ अप्रैल १९७०

बच्चे के जन्म के पहले से ही मां अपनी मनोवृत्ति तथा अपने विचारों से अपने बच्चे को शिक्षा देना आरंभ कर सकती है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१६ जुलाई १९७०

तुम्हारी सत्ता की बहुत गहराइयों में, तुम्हारे वक्ष की गहराई में, ज्योतिर्मयी तथा शांत, प्रेम तथा प्रज्ञा से भरपूर भागवत उपस्थिति हमेशा मौजूद रहती है। वह वहां इसलिये है कि तुम उसके साथ तदात्म हो जाओ, कि वह तुम्हें एक ज्योतिर्मय तथा दीप्त चेतना में रूपांतरित कर दे।

हम तुम दोनों मिलकर तुम्हारी सत्ता की सतह के समस्त बाहरी शोर को शांत करने की कोशिश करेंगे ताकि निश्चल नीरवता तथा शांति में तुम इस आंतरिक भव्यता के साथ एक हो सको।

तब वह दिवस तुम्हारे नूतन जन्म का दिवस बन जायेगा।

१ अगस्त १९७०

नीरव रहना जानना कभी-कभी अमूल्य निधि होता है।

नीरवता सच्चे ज्ञान का दरवाजा खोल देती है।

२ अगस्त १९७०

मैंने तुम्हारी सत्ता के अंदर खड़ी तुम्हारी चैत्य सत्ता को देखा जो तुम्हारे जीवन के उत्तरदायित्वों को लेने और तुम्हें परम प्रकाश और सत्य तक ले जाने के लिये प्रस्तुत थी। उसकी गरिमा महान् है, उसका संकल्प अचूक है।

वह जीत हासिल करेगी।

३ अगस्त १९७०

तुम्हारी चैत्य सत्ता मूर्ति की तरह अचल लेकिन सचेत और जागरूक, तुम्हें भगवान् की ओर ले जाने के लिये तुम्हारे जीवन की निगरानी कर रही है।

५ *अगस्त* १९७०

प्रकाश तथा शांति में तुम्हारी चैत्य सत्ता . . . दीप्त है।

७ *अगस्त* १९७०

तुम्हारा हृदय ज्योतिर्मय भलाई का घर है, वह तुम्हारी सारी सत्ता पर राज करे।

प्रेम।

२९ *अक्तूबर* १९७०

शब्दों की अपेक्षा—चाहे वे कितने भी शक्तिशाली क्यों न हों—नीरवता में अधिक महान् शक्ति होती है। सबसे अधिक महान् रूपांतरों को एकाग्रता की नीरवता में ही प्राप्त किया गया है।

२ *नवंबर* १९७०

सभी परिस्थितियों में मुस्कुराना जानना भागवत प्रज्ञा की ओर जाने का सबसे शीघ्रगामी रास्ता है।

अहंकार नाराज और बेचैन हो उठता है और यही अहंकार तुम्हारी चेतना को धुंधला बनाता और तुम्हारी प्रगति में बाधा डालता है।

अहंकार इसलिये नहीं बदलता क्योंकि उसे इस निश्चिति का अनुभव होता है कि वह हमेशा ठीक होता है।

आशीर्वाद।

२४ *नवंबर* १९७०

मधुर मां,

इन दिनों मुझे अपने दल के काम में कोई रस नहीं आता। मैं बिना उत्साह, केवल कर्तव्य जानकर इस काम को कर रही हूं। क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि मेरी जगह कोई और ले ले? मुझे लगता है कि अगर मैं अपना

अच्छे-से-अच्छा न दे सकूं तो यह बच्चों के साथ न्याय न होगा। आप जो कुछ कहेंगी मैं वही करूंगी।

तुम्हें ज्ञान और अनुभव है और अच्छी तरह सिखाने के लिये ये अनिवार्य शर्तें हैं। मैं विश्वास करती हूं कि तुम बहुत अच्छी शिक्षिका हो और अगर तुम बच्चों को सिखाना बंद कर दो तो बच्चों को बहुत अधिक नुकसान होगा। जारी रखो, और तुम देखोगी कि जल्दी ही फिर से रस लेना शुरू कर दोगी।

प्रेम और आशीर्वाद।

१६ जून १९७१

मधुर मां,

मेरे अंदर के इस तूफान को शांत करो और शांति प्रतिष्ठित करो। इस उग्रता को स्थिर, अचंचल बनाओ और प्रेम का राज्य होने दो। इस क्षण मैं अपने पूरे हृदय के साथ तुम्हारी सच्ची बालिका होना चाहती हूं। वर दो कि मैं तुम्हारे योग्य हो सकूं।

मेरी प्यारी बच्ची,

तुमने जो लिखा है उसे पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई।

तुम्हारा जन्म-दिन सचमुच एक नयी चेतना में तुम्हारा जन्म हो, उस सत्य चेतना में जो तुम्हें दिव्य उपलब्धि की ओर ले जाये।

लेकिन इस समय मैं तुमसे यही कहना चाहती हूं कि मेरा प्रेम और मेरी सहायता सदा मार्ग पर तुम्हारी सहायता करने के लिये तुम्हारे साथ हैं।

आशीर्वाद।

२ जुलाई १९७१

(विजया दशमी के अवसर पर)

यह वह विजय है जो हमें स्वयं अपने ऊपर पानी है ताकि हम केवल भगवान् के होकर रहें।

प्रेम।

२९ सितंबर १९७१

(काली पूजा)

सृष्टि में महाकाली दिव्य प्रेम को व्यक्त करती हैं; लेकिन यह प्रेम इतना शक्तिशाली और उदात्त है कि अधिकतर मनुष्य इससे डरते हैं।
१८ अक्तूबर १९७१

हम धरती पर प्रगति करने और अपने-आपको उत्तरोत्तर जीवनों में अधिक पूर्ण बनाने के लिये हैं। जो कुछ हम इस बार नहीं कर सकते उसे अगली बार करेंगे और इस बार हम जो भी प्रगति कर लेंगे वह तब हमारी सहायता करेगी।

काली उन सबकी सहायता करती है जो उन्हें पुकारते हैं और उनकी सहायता से प्रगति अधिक तेजी से आती है।

आशीर्वाद।
१५ नवंबर १९७१

व्यष्टिगत जीवन इसलिये बनाया गया है ताकि भगवान् को पाने और उनके साथ एक होने के आनंद को संभव बनाया जाये।

आशीर्वाद।
२९ नवंबर १९७१

उसका पूरा मूल्य पाने के लिये जरूरी है कि अगला ठहराव सहज आवश्यकता का परिणाम हो।

आशीर्वाद।
३० नवंबर १९७१

श्रीअरविंद ने इस विषय में क्या लिखा है उसे सावधानी से पढ़कर, मानव पूर्णता क्या होनी चाहिये इस विषय में स्पष्ट धारणा विकसित करो।

अपने स्वभाव का निकट से निरीक्षण करके इस बारे में जानकारी प्राप्त करो कि किस चीज को रूपांतरित करने की जरूरत है ताकि आदर्श स्थिति प्राप्त हो जाये। तब सचाई के साथ काम में लग जाओ, अपनी भीतरी और बाहरी गतिविधियों का अवलोकन करती चलो और हर बार जब तुम कोई ऐसी चीज देखो जो तुम्हारे उस

आदर्श का विरोध करती है जो तुमने अपने आगे रखा है तो उसे ठीक करने का प्रयास करो।

आशीर्वाद।

१ दिसंबर १९७१

मधुर मां,

युद्ध' के बारे में हमें क्या मनोवृत्ति अपनानी चाहिये?

मनोवैज्ञानिक रूप से बस एक ही चीज करनी चाहिये, स्थिर, अचल श्रद्धा बनाये रखो।

भौतिक रूप से, यह परिस्थितियों पर निर्भर होगा।

आशीर्वाद।

३ दिसंबर १९७१

मनुष्यों की जो अधिकतर कठिनाइयां होती हैं उनका कारण होता है, उनका अपनी क्रियाओं पर और दूसरों की क्रियाओं पर अपनी प्रतिक्रियाओं के नियंत्रण का अभाव।

व्यक्ति को अपने स्वभाव और अपनी दुर्बलताओं के अनुसार अपने लिये एक अनुशासन बना लेना चाहिये जिसका बिना हेर-फेर किये अनुसरण करना चाहिये। उदाहरण के लिये, कभी झगड़ा न करो, जब कोई कुछ अप्रिय चीज कहे या करे तो कभी उत्तर न दो। जब तुम सहमत न हो तो बहस मत करो। स्पष्ट है जब चीजें या लोग वैसे न हों जैसे तुम चाहते हो तो कभी झल्लाओ मत।

स्वभावतः यदि व्यक्ति को अपने ऊपर नियंत्रण रखने की आदत नहीं है तो यह आदत डालने में बहुत समय लगता है, लेकिन अगर तुम प्रगति करना चाहते हो तो यह एकदम अनिवार्य है।

मार्ग लंबा है। इसलिये तुम्हारे अंदर धीरज होना चाहिये और अपने प्रति अचूक सचाई होनी चाहिये। औरों के साथ शांति से रहने के लिये आत्मानुशासन जरूरी है और इसका अभ्यास उन्हें भी करना चाहिये जो रूपांतर की अभीप्सा नहीं करते।

आशीर्वाद।

१२ दिसंबर १९७१

जब तुम अपना प्रेम किसी और मनुष्य को देते हो तो प्रायः पहली भूल यह होती

' भारत और पाकिस्तान का युद्ध।

है कि तुम उस व्यक्ति से भी प्रेम चाहते हो, उसके तरीके और उसके स्वभाव के अनुसार नहीं बल्कि अपने ही तरीके और अपनी कामना की पूर्ति के लिये। समस्त मानव दुःखों, निराशाओं और कष्टों का सबसे पहला कारण यही है।

प्रेम करने का अर्थ है, अपने-आपको मोल-भाव किये बिना देना—अन्यथा वह प्रेम नहीं होता। लेकिन इसे विरले ही समझ सकते हैं और उनमें भी विरले ही व्यवहार में ला सकते हैं और परिणाम दुःखद होते हैं।

जब कोई प्रगति करनी हो तो तुम्हें बस उसके लिये काम में लग जाना चाहिये, यह बहाना बनाये बिना कि और लोग ऐसा नहीं कर रहे।

हर एक पहले अपने लिये जिम्मेदार है और अगर तुम औरों की सहायता करने की अभीप्सा रखते हो तो तुम जैसा होना चाहिये उसका उदाहरण बनकर ही सबसे अधिक प्रभावकारी ढंग से उन्हें सहायता दे सकते हो।

और फिर भागवत कृपा तो हमेशा ही है जो अद्‌भुत रूप से उन सबके लिये प्रभावकारी है जो सच्चे और निष्कपट हैं।

२८ *दिसंबर* १९७१

हमें एक महिमामय भविष्य पर श्रद्धा प्रदान कर और उसे चरितार्थ करने की क्षमता भी।

३० *दिसंबर* १९७१

हे प्रभो, परम सत्य,

हम तुझे जानने और तेरी सेवा करने की अभीप्सा करते हैं।

हमें अपने योग्य बालक बनने में सहायता कर।

और इसके लिये हमें अपने सतत आशीर्वाद के बारे में सचेतन बना ताकि कृतज्ञता हमारे हृदयों को भर दे और हमारे जीवन पर शासन करे।

२ *जनवरी* १९७२

तुम्हें अपने अध्यवसाय में सच्चा होना चाहिये तब तुम आज जो चीजें नहीं कर सकतीं उन्हें एक दिन नियमित और आग्रहपूर्ण प्रयासों के बाद कर सकोगी।

अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण कर दो। भागवत सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी।

४ *जनवरी* १९७२

जब तुम भगवान् के साथ पूरी तरह, सचाई के साथ प्रेम करते हो तो तुम उनकी सृष्टि और उनके प्राणियों से भी प्रेम करते हो; और स्वभावतः उन प्राणियों में कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें तुम अपने ज्यादा नजदीक पाते हो और जिनसे तुम विशेष प्यार करते हो। लेकिन तब तुम जिस प्रेम का अनुभव करते हो वह सामान्य मानव प्रेम की तरह स्वार्थ-भरा नहीं होता, वह ऐसा प्रेम नहीं होता जो पकड़े रखना चाहता है या अधिकार करना चाहता है, बल्कि ऐसा प्रेम होता है जो बदले में कुछ मांगे बिना अपने-आपको देता है।

शांत और सुखी जीवन के लिये प्रेम करने के आनंद के लिये प्रेम करना सबसे अच्छी स्थिति है। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी चीजों के अंदर भगवान् से प्रेम करना।

अगर इसका चरम बिंदु यह हो कि तुम वही चाहो जो भगवान् चाहते हैं, तो पूर्ण शांति प्राप्त हो जाती है।

५ जनवरी १९७२

मानव जीवन की दीर्घता के लिये सौ की संख्या अपने-आपमें कोई विशेष अर्थ नहीं रखती। चूंकि मनुष्य-जीवन इतना जटिल रहा है इसलिये वह अपेक्षया छोटा भी हो गया है और अब विरले ही सौ वर्ष तक जीते हैं।

जब मनुष्य प्रकृति के साथ सामंजस्य में जीते थे तो उनका आयुष्य अधिक होता था।

जब मनुष्य भगवान् से और भगवान् के लिये जीता है तो उसका जीवन ज्यादा लंबा होता है और एक दिन भगवान् उसे अमरता का रहस्य बतला देंगे।

६ जनवरी १९७२

जो लोग श्रीअरविंद की शताब्दी मना रहे हैं उनका आह्वान उनकी उपस्थिति को अधिक सक्रिय और प्रभावकारी बनाता है। लेकिन जो हमेशा उनके साथ रहते हैं उन्हें इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता।

जब लोग समाधि के पास उनपर एकाग्र होते हैं तब भी यही होता है। वे हमेशा वहां रहते हैं परंतु उनकी पुकार के उत्तर में उनकी उपस्थिति अधिक सक्रिय हो जाती है।

७ जनवरी १९७२

यहां उन सब विद्यार्थियों की जरूरत नहीं है जो जीवन में सफल होना और पैसा

कमाना सीखना चाहते हैं, उनकी यहां जरूरत नहीं है। हम यहां केवल उन्हीं को चाहते हैं जो उच्चतर जीवन जीना चाहते हैं। बच्चों को निश्चय करना चाहिये कि वे नव जीवन के होना चाहते हैं या ''सफल'' होना और सामान्य जीवन बिताना चाहते हैं। मेरा ख्याल है कि कुछ बच्चे चले जायेंगे।

३० जनवरी १९७२

उस अज्ञानमय सद्भावना से हमारी रक्षा कर जो सोचती है कि वह हमारी सेवा कर रही है परंतु सचमुच हमें भ्रष्ट करती है।

हमारी चेतना को समस्त अज्ञान से शुद्ध कर ताकि हम 'सत्य' में तेरी सेवा कर सकें।

१२ फरवरी १९७२

मैंने परम प्रभु से कहा है कि वे 'उन्हें' पाने में तुम्हारी सहायता करें और मैं तुम्हें रोज इस शोध में सहायता करने में एक मिनट देने को तैयार हूं।

मैं बस इतना ही चाहती हूं कि जब हम दोनों मिलकर एकाग्र हों तो तुम नीरव रहो।

अगर तुम शिथिल हो सको और सहज निश्चिंत रह सको तो बहुत अच्छा होगा, अगर तुम नीरवता में प्रवेश कर सको तो यह सबसे अच्छा होगा। हर रोज हम इस प्रार्थना के साथ शुरू करेंगे : ''वर दो कि मैं तुम्हारी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकूं'' और हम दोनों मिलकर नीरवता और अपनी अभीप्सा के उत्साह में क्षण भर के लिये अभीप्सा करेंगे।

१० मार्च १९७२

जिस भगवान् को हम खोजते हैं वह कहीं दूर और पहुंच के बाहर नहीं है। वे अपनी सृष्टि के हृदय में हैं और वे हमसे बस यही चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें और अपने-आपको रूपांतरित करके उन्हें जानने योग्य बनें, उनके साथ तदात्म होकर अंततः सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करें।

हमें अपने-आपको इसके लिये अर्पित कर देना चाहिये; हमारे जीवन का यही सच्चा कारण है।

और इस उच्चतम उपलब्धि की ओर हमारा पहला ठहराव है अतिमानसिक चेतना की उपलब्धि।

२० मार्च १९७२

नवीन सृष्टि की ओर यह कदम उठाने के लिये हमें मन को नीरव करना और चेतना में ऊपर उठना होगा।
२ अप्रैल १९७२

चेतना नीरवता में बढ़ती है। वह तुझे अधिकाधिक पूर्णता के साथ जानने की अभीप्सा करती है।
३ अप्रैल १९७२

नीरवता में सबसे बड़ी अभीप्सा होती है।
हम प्रार्थना करते हैं कि उसमें अधिक-से-अधिक ग्रहणशीलता भी हो।
४ अप्रैल १९७२

धन्यवाद प्रभो, आप हर सच्ची अभीप्सा का चमत्कारिक रूप से उत्तर देते हैं।
५ अप्रैल १९७२

नीरवता में बड़ी-से-बड़ी भक्ति होती है।
६ अप्रैल १९७२

जब चेतना पूरी तरह तेरी उपस्थिति की ओर जाग जाती है तो एक क्षण ऐसा आता है कि नीरवता में ही सबसे अधिक शक्तिशाली क्रिया होती है।
७ अप्रैल १९७२

हमेशा और हर स्थिति में वही चाहना जो तुम चाहते हो, यही परम पावन शांति का रस लेने का एकमात्र तरीका है।
८ अप्रैल १९७२

हम कभी अकेले नहीं होते : भगवान् हमेशा हमारे साथ होते हैं। यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम उनकी उपस्थिति के बारे में सचेतन हों।
आशीर्वाद।
१ जनवरी १९७३

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं और भगवान् को पाने के लिये तुम्हारी यात्रा में हमेशा तुम्हारे साथ रहूंगी—चिर सुख पाने का यही तरीका है। मैं तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हें देखने की आशा करती हूं। इस कृपा के लिये प्रार्थना करो जो तुम्हारे जीवन का सच्चा लक्ष्य है।

मैं तुमसे बस यही चाहती हूं कि श्रद्धा और विश्वास रखो।

मैं अपने-आपको तुम्हारे हृदय में रख रही हूं ताकि तुम मुझे हमेशा वहां पा सको।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

पत्रमाला ६

पत्रमाला ६

[एक ऐसे शिष्य के नाम पत्र जो २१ वर्ष की उम्र में १९३९ में आश्रम में आया था। पहले आश्रम के सचिव के साथ काम करता रहा फिर आश्रम की अतिथिशालाओं की देखभाल करने लगा। बाद में १९९३ तक मृत्युपर्यंत आश्रमसंबंधी लेखन, संपादन और भाषण में व्यस्त रहा।]

(शिष्य ने अपने बारे में फैल रही अफवाहों के बारे में माताजी को लिखा।)

मेरे प्यारे बालक,

पिछले कुछ महीनों से तुम आध्यात्मिक रूप से बड़ी तेजी से प्रगति कर रहे हो और मैं चाहती हूं कि तुम इन सभी प्रहारों को उन सामान्य परीक्षाओं की बाहरी अभिव्यक्ति के रूप में लो जिन्हें विरोधी शक्तियां साधना को मजबूत तथा तीव्रतर बनाने के लिये लाती हैं। यह तुम्हें भागवत कृपा में निरपेक्ष श्रद्धा तथा विश्वास रखना सिखा रही है, क्योंकि जब ये परीक्षाएं पूर्ण तथा समग्र हो जायेंगी तब समस्त दुःख तथा विक्षोभ तुम्हारे अंदर से निकल जायेगा।

मैं तुम्हारे हृदय में पढ़ सकती और तुम्हारे मन में देख सकती हूं—किसी दूसरे की मनोवृत्ति, गप-शप तथा सुझावों का मेरे निश्चयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मेरे एकमात्र पथ-प्रदर्शक हैं परम प्रभु, और मेरा एकमात्र लक्ष्य है परम सत्य।

प्रेम तथा आशीर्वाद सहित।

२५ दिसंबर १९६१

(शिष्य ने अपने ऊपर लगाये गये दोषारोपणों के बारे में लिखा जिसमें यह अभियोग भी था कि वह धन का दुरुपयोग कर रहा है।)

इन अभियोगों की मूढ़ता इतनी अधिक स्पष्ट है कि किसी ने मेरे सामने इन्हें दोहराने का साहस नहीं किया। मैंने ये पहली बार तुम्हारी चिट्ठी में पढ़े।

विशेष रूप से जहांतक पैसे का सवाल है, यह तुम्हारी प्रकृति के इतना विपरीत है कि यह कल्पना करना मुश्किल है कि लोगों ने किस तरह इसका आविष्कार किया। लेकिन निस्संदेह मानव-कुटिलता की कोई सीमा नहीं है।

हां, तो करने लायक एकमात्र चीज यह है कि इन सबको पूरी तरह से भूल जाओ और अपने अंदर इस श्रद्धा को जीवंत बनाये रखो कि भगवान् सत्य और असत्य में विभेद करके रहेंगे।

अपने प्रेम और आशीर्वाद के साथ मैं तुम्हें यह आश्वासन देती हूं कि मैं तुम्हारे कार्य की निष्कपटता के बारे में अभिज्ञ हूं।

१९६२ के *आरंभ में*

मेरे प्यारे बालक,

मैंने तुम्हारा अच्छा-सा पत्र पढ़ा। तुम्हें ठीक वही अनुभूति हुई जिसे मैं तुम्हारे लिये चाहती थी और वह उसी रूप में आयी जिसकी मैंने आशा की थी। इसे बनाये रखो तथा सतत रूप से विकसित होने दो ताकि यह तुम्हारे अंदर हमेशा के लिये बनी रहे।

रही बात हाल की घटनाओं की, किसी चीज से न डरो। भागवत प्रेम परम सत्य का सार है और मानव अस्तव्यस्तता से प्रभावित नहीं हो सकता।

बादल आते हैं और बादल छंट जाते हैं, लेकिन सत्य का सूर्य कभी चमकना बंद नहीं करता।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

७ जून १९६२

(शिष्य ने अपनी हाल की अनुभूति का वर्णन किया जिसमें वह अपने-आपको अन्य पुरुष के रूप में रख रहा है।)

एक और भ्रम का पर्दाफाश हुआ। उसने यह जाना कि कितनी ही बार जिन व्यक्तियों के लिये उसने परिश्रम किया, यहांतक कि उनकी सेवा भी की, उन्होंने बहुत बार उसके विरुद्ध कार्य किया। बहुत ही तीव्र भावना के साथ उसने देखा कि जिन लोगों की उसने कष्ट में सहायता की, जरूरत पड़ने पर जिनका साथ दिया, उन्होंने पहली ही परीक्षा में उसका चुपके से साथ छोड़ दिया। वह एकदम से भौंचक्का रह गया और उसे मालूम नहीं था कि अब आगे कैसे बढ़ा जाये। ऐसा लगा कि उसके पैरों तले कुछ भी नहीं है। अचानक निर्णायक भाव के साथ ये पंक्तियां उतरीं :

"कोई किसी का नहीं है। केवल भगवान् ही तुम्हारे होंगे अगर तुम भगवान् के लिये हो।"

एक कौंध में सारा रास्ता उसके लिये प्रकाशित हो उठा और उसपर चलने का बल प्रदान किया गया।

क्या ये हमारी मां के शब्द नहीं हैं ?

ये शब्द **ठीक-ठीक** वह संदेश हैं जो मैंने कल शाम तुम्हें तब भेजा जब मुझे लगा

कि तुम्हें मेरा कार्ड मिल गया, मैंने जो कुछ लिखा था यह उसकी व्याख्या के रूप में था। अपना विश्वास **केवल** भगवान् पर रखो। भगवान् तुम्हें कभी निराश न करेंगे।

प्रेम तथा आशीर्वाद सहित।

३१ जुलाई १९६२

(शिष्य ने अमुक काम छोड़ने का निश्चय कर लिया—दो व्यक्तियों को पुराने मकान से नये मकान में भेजने का—लेकिन माताजी को सूचना नहीं दी। बाद में, जब माताजी ने पुछवाया तो उसने अपने निश्चय के कारणों को समझाया और माताजी से विचार-विमर्श न करने के लिये क्षमा मांगी।)

मेरे प्यारे बालक,

जहां प्रेम हो वहां क्षमा की आवश्यकता नहीं रहती। यहां पूर्ण समझ है। काम के वास्ते मैंने यह लिखा था और इसलिये भी कि यह चीजों को अधिक आसान बनाने का एक तरीका है। और उसके लिये मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूं।

सबसे पहले मैं तुम्हें चेतावनी दे दूं: जब लोग दूसरों ने जो कहा है उसका विवरण करें तो उनकी बात पर कभी विश्वास मत करो।—यह **हमेशा मिथ्यात्व** होता है; बहुधा शब्द बिल्कुल ठीक-ठीक नहीं होते और अगर, शब्द ठीक-ठीक हों तो भी उनके भाव को **हमेशा** तोड़-मरोड़ दिया जाता है।

दूसरे, किसी व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के बारे में—अंतिम निर्णय लेने से पहले यदि तुम परिवर्तन से संबद्ध व्यक्ति से पूछ लो और उस व्यक्ति ने अगर कोई आपत्ति उठायी हो तो उसकी सूचना मुझे दे दो तो बहुत-सी कठिनाइयां आसानी से सुलझायी जा सकती हैं और दुर्भावना से बचा जा सकता है।

प्रेम तथा आशीर्वाद सहित।

११ दिसंबर १९६२

प्यारी मां,

. . . अपने बारे में मैंने इन अफवाहों का जिक्र सूचना के तौर पर किया है, आपकी कृपा से अब मैं इन प्रहारों से अवसाद में नहीं डूब जाता। हर बार जब मैं ऐसा कुछ सुनता हूं तो मैं आपके प्रेम को याद करता हूं और शांत दृढ़ निश्चय के साथ फिर से काम में जुट जाता हूं।

मुझे ऐसा लगता है कि बाहरी परिस्थितियां चाहे जो क्यों न हों, अंततः आपकी शक्ति ही चीजों को ठीक रूप देगी। अभी से ही मैं ऊपर जाती हुई

नयी रेखा का आरंभ देख रहा हूं और मैं नये सिरे से आपकी सेवा के लिये अपने-आपको समर्पित कर रहा हूं।

हां, इस विश्वास के कारण तुम्हें विश्वस्त तथा शांत रहना होगा। हमें सहते रहना होगा—अग्निपरीक्षा के अंत में है 'विजय'।

प्रेम तथा आशीर्वाद के साथ।

६ जनवरी १९६३

जब साधक यह समझ लेंगे कि उनके लिये क्या अच्छा है यह मैं उनसे ज्यादा अच्छी तरह जानती हूं तब उनकी अधिकतर कठिनाइयां विलीन हो जायेंगी।

आशीर्वाद।

३० मार्च १९६३

मधुर मां,

मैं कुछ संतों की वाणी के आधार पर यह पढ़कर चकरा गया कि कुछ सिद्ध-पुरुष जो शरीर त्याग चुके हैं, इस धरती पर शेरों और सांपों के जैसे प्राणियों के रूप में विचरण करते हैं। क्या सचमुच ऐसा हो सकता है? और यह अवमानुषिक शरीर धारण करने का प्रयोजन क्या हो सकता है?

यह बिल्कुल संभव है—परंतु चूंकि मुझे इस तरह की चीज का कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है इसलिये मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकती।

आशीर्वाद।

१७ मई १९६३

प्यारी मां,

पिछले कुछ दिनों से मैं बुरी अवस्था में हूं। आज सवेरे से बुरी तरह से पढ़ने और गलत तरीके से टाइप करने की आदत बहुत प्रबल है।

यह तब होता है जब चेतना में "साधन" को कर्म से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है।

यह बहुत शीघ्र चला जायेगा।

आशीर्वाद सहित।

२४ मई १९६३

जब मैंने कुछ मास पहले प्रकाशन की कुछ कठिनाइयां आपके सामने रखी थीं तो माताजी ने मुझे लिखा था कि 'योग के आधार', 'योग पर दीप्तियां' जैसी छोटी-छोटी किताबें बाहर के प्रकाशकों द्वारा सस्ते संस्करण में निकाली जा सकती हैं। इसके अनुसार मैंने कलकत्ता पाठमंदिर के साथ संपर्क साधा और उन्होंने 'योग के आधार' छापने की व्यवस्था की। तीन हजार प्रतियां छापी जा रही हैं। कागज खरीदा जा चुका है। आधी पुस्तक के प्रूफ देखे जा चुके हैं। प्रेस के साथ अनुबंध भी तैयार हो रहा है।

अब सुना है कि सारी योजना को रद्द करने का विचार है, लेकिन जहांतक 'योग के आधार' का सवाल है, काम बहुत आगे बढ़ चुका है और अब उसे रद्द करना संभव नहीं है। माताजी कृपया इसपर पुनः विचार करें।

मुझे बहुत खेद है, लेकिन यह सारी है गलतफहमी। क्योंकि श्रीअरविंद नहीं चाहते कि उनकी कोई भी पुस्तक सस्ते रूप में छापी जाये—उनकी पुस्तकें जन-साधारण के लिये नहीं हैं। उनकी पुस्तकें कुछ गिने-चुने लोग ही पढ़ सकते हैं और उन्हें ही पढ़नी चाहियें।

उन्होंने हमेशा यही कहा है, मैंने हमेशा यही कहा है और अब उसे बदल नहीं सकती। मैं एक सस्ते संस्करण को प्रकाशित करने देने की अपेक्षा यह ज्यादा पसंद करूंगी कि इसमें जो खर्च हुआ है उसे चुका दूं।

मई १९६३

मधुर मां,

कल रात मुझे एक बड़ा अप्रिय स्वप्न दिखायी दिया। आप छज्जे पर दर्शन देने के लिये आ रही थीं, बहुत भीड़ जमा थी और जब आप आयीं तो इधर-उधर छिपे कुछ दुष्ट लोग निकल आये और गड़बड़ पैदा करने के लिये उछल-कूद करने लगे। आपके नीचे ही सैनिक-वेश में व्यूह बनाकर एक दल खड़ा था जो अपने हथियार आपकी ओर दिखा रहा था। लेकिन दर्शन ठीक तरह से हो गया। आपने इन घटनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

स्वप्न में कुछ दुष्ट वस्तु थी जो बनी हुई है।

संसार में स्पष्ट रूप से दिव्य रूपांतर का विरोध हो रहा है, लेकिन ये शक्तियां उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं जिनमें सच्ची श्रद्धा है।

अब जब कि तुम इस स्वप्न के बारे में बतला चुके हो, उसके बारे में कुछ न सोचो और उसका प्रभाव गायब हो जायेगा।

प्रेम और आशीर्वाद।

२८ जुलाई १९६३

मधुर मां,

कुछ समय से मैं बहुधा एक अजीब-सा स्वप्न देखता हूं। मेरे मुंह से धागे की-सी कोई अंतहीन चीज निकलती चली आती है। मैं उसे खींचता जाता हूं और देखता हूं कि खींचे जाने के लिये और भी तैयार है। मुझे राहत का अनुभव तभी होता है जब अंतिम धागे भी खींचकर फेंक दिये जायें। क्या यह इस बात का संकेत है कि आपकी शक्ति की क्रिया मेरे अंदर से किसी चीज को निकाल रही है या यह मेरे द्वारा किसी विशेष दिशा में प्रयास की मांग करती है।

यह दिव्य शक्ति की क्रिया मालूम होती है और जरूरत केवल एक ही चीज की है—तुम्हारी ओर से सहयोग करनेवाली सहमति की।

आशीर्वाद।

१५ सितंबर १९६३

(शिष्य ने कई दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बारे में लिखा। अपने पत्र के अंत में उसने लिखा :)

मुझे माफ कर दीजिये प्यारी मां कि मैंने यह सब लिखने की छूट ले ली। लिखते समय मेरा हृदय अंदर रो रहा है। मुझे आश्वासन का एक शब्द दे दीजिये कि चीजें बदल जायेंगी। अपनी रक्षात्मक शक्तियों को कार्य करने की खुली छूट दे दीजिये और हमें और अधिक अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था में डूबने से बचाइये।

मनुष्य को दया और कृपा के लिये मांग करनी चाहिये, शक्ति और न्याय के लिये नहीं, क्योंकि अगर काली अभिव्यक्त हो जायें तो कौन खड़ा रह सकेगा! . . .

प्रेम और आशीर्वाद।

८ अक्तूबर १९६३

प्यारी मां,

दूसरों के लिये अच्छे भाव रखने तथा माताजी की सृष्टि में सामंजस्य की एक शक्ति बनने के लिये मेरे सतत प्रयास के बावजूद कुछ ऐसी चीजें होती हैं जो मुझपर बहुत ही प्रबल रूप से प्रहार करती हैं। उदाहरण के लिये, हाल ही में 'क्ष' ने मेरे बारे में कहा : "तुम उसे नहीं जानते; केवल माताजी और मैं

जानते हैं कि वह क्या है। उसके विभागों में पीछे-पीछे क्या चलता रहता है, वह किस तरह लोगों को सताता है, तुम नहीं जानते।" इत्यादि।

मेरा प्रश्न बस यह है कि ऐसी परिस्थितियों में मेरी मनोवृत्ति क्या होनी चाहिये? 'क्ष' के तथा अपने बीच तनाव को कम करने तथा सामंजस्य स्थापित करने के लिये इतने दिनों तक मैंने क्या-क्या कदम नहीं उठाये। क्या मैं उन्हें बंद करके उससे एकदम से नाता तोड़ लूं? या फिर मैं लगा रहूं यह जानते हुए कि वह मेरे बारे में क्या-क्या कह रहा है?

मेरे प्यारे बच्चे,

उस स्थान की अस्त-व्यस्तता की अवस्था से मुझे सचमुच खेद है। यह तो मुझे एकदम से दुर्व्यवस्था मालूम होती है।

मैं तुम्हारे प्रयत्नों तथा सामंजस्य पैदा करने के प्रयासों से अच्छी तरह अवगत हूं। मैं उनके पीछे सहायता के लिये हूं—तुम यह जानते ही हो। मैं इसके बारे में भी पूरी तरह से अभिज्ञ हूं कि चीजें कहां विकृत और मोड़-तोड़ दी जाती हैं। जीतने का केवल एक ही तरीका है—वह है हर चीज के बावजूद, समस्त विरोधों तथा प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करते हुए **बड़े आग्रह के साथ** उचित वृत्ति में **लगे रहना**।

सत्य की संपूर्ण चेतना में हम वही करते हैं जो हमें करना चाहिये, हमेशा उचित वस्तु, उचित समय पर, दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, दूसरों के उत्तरों तथा परिणामों की परवाह किये बिना करते हैं। सत्य पर आंखें गड़ाये हम आगे बढ़ेंगे तथा **विजय प्राप्त करेंगे**।

प्रेम तथा आशीर्वाद के साथ।

१६ अक्तूबर १९६३

मधुर मां,

मैं फिर से गड़बड़ में पड़ गया हूं और उससे बाहर नहीं निकल सकता। मेरे अंदर सिर से पैर तक अव्यवस्था, एक उत्पीड़क शुष्कता और बेचैनी है। मन काम करने से इंकार करता है। इसके परिणामस्वरूप समय के अपव्यय के कारण मैं बहुत दुःखी हूं। कृपया कुछ कीजिये।

यह चारों ओर एक सामान्य आक्रमण है।

जहांतक हो सके अचंचल और स्थिर रहने की कोशिश करो और इसे निकल जाने दो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

३१ अक्तूबर १९६३

मधुर मां,

कल रात स्वप्न में ढेर सारे फीते जैसे मेरे मुख से निकल रहे थे। राहत और साथ-साथ जुगुप्सा का-सा अनुभव हो रहा था। अभी हाल ही में यह पहले भी कई बार हो चुका है। कोई अर्थ है इसका ?

हो सकता है कि यह पुरानी आसक्तियों का प्रतीक हो। यह अच्छी बात है कि वे बाहर निकल जायें।

आशीर्वाद।

२९ जनवरी १९६४

माताजी ने एक बार कहा था कि कोषाणुओं में लोभ अर्बुदों की जड़ में होता है। तो मस्तिष्क के अर्बुद के लिये कौन-सी मनोवैज्ञानिक विकृति होती है ?

ख्याति के लिये लोभ।

फरवरी १९६४

मधुर मां,

मुझे थकान लगती है। बहुत लोगों के साथ मिलने के बाद मैं चुसा हुआ-सा अनुभव करता हूं। कल रात मैं सो भी न सका। मेरे कार्यालय में काम करनेवाले और लोगों में भी थकान के लक्षण दीखते हैं। कृपया सहारा दीजिये।

तुम्हें सहायता देने के लिये शक्ति मौजूद है। अपने बारे में नहीं, केवल भगवान् के बारे में सोचो।

आशीर्वाद।

२ मार्च १९६४

मधुर मां,

जब हृदय के आघात या दौरे की बात की जाती है तो क्या सचमुच किन्हीं बाहरी शक्तियों का आघात या दौरा होता है या स्वयं शरीर के अंदर कुछ क्षय या गलत अवक्षेपण होता है ?

हर मामले में अलग चीज होती है। प्रायः यह बाहर से प्रहार होता है और उससे भी अधिक भौतिक शरीर में क्षति।

कभी-कभी दोनों चीजें साथ होती हैं और तब यह मारक होता है।

जून १९६४

मधुर मां,

इस प्रकार की घटनाओं की क्या व्याख्या हो सकती है?

१. एक बच्चा सुंदर कपड़ों में सजाकर घूमने के लिये भेजा जाता है। कोई उसकी ओर देखकर कहता है, "कैसा सुंदर है!" उसी रात बच्चे को ज्वर आ जाता है। लेकिन अगर शाम को बच्चे के लौटने के साथ-ही-साथ थोड़ा-सा अनुष्ठान कर लिया हो तो सब कुछ ठीक-ठाक रहता है।

२. खाना पकाया जा रहा है। छौंक देते समय कोई उधर से गुजरता है और व्यंजन में से छौंक की गंध गायब हो जाती है। आटा गूंथकर, मसाले वगैरह देकर पकाने की पूरी तैयारी की जाती है, तब कोई आता है, उसकी नजर पड़ती है और सारा गुड़ गोबर हो जाता है।

इन मामलों में कोई भूत-प्रेत वगैरह मनुष्य के माध्यम से काम करते हैं या स्वयं मनुष्य के अंदर ही शरारत की जड़ होती है?

कोई भी कारण हो सकता है और वस्तुतः अलग-अलग कारण हो सकते हैं, बहुत सरल से गलत मानसिक रूपायण से लेकर विरोधी शक्ति या सत्ता की क्रिया तक हो सकती है जो मानव दुर्भावना के समस्त सोपान से आ सकती है।

सितंबर १९६४

प्यारी मां,

मेरे पास एक प्रश्न आया है: तांत्रिक पद्धति में छह चक्रों में से होती हुई निम्नतर चेतना उच्चतर चेतना से मिलने तथा एक होने के लिये ऊपर उठती है और इस आरोहण के समय ये छह चक्र या ग्रंथियां टूट जाती हैं। क्या हमारे योग में भी ये ग्रंथियां टूटती हैं? या फिर ढीली होकर खुल जाती हैं? अगर ऐसा है तो इसकी क्या प्रक्रिया है?

ऐसा लगता है मानों यह केवल शब्दों का प्रश्न है। टूटने का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? टुकड़े-टुकड़े हो जाना? बहुत संभव नहीं लगता। वे चक्र शक्ति को ऊपर की

ओर गुजरने देने के लिये अचानक **खुल सकते** हैं—यह अधिक संभव है।

लेकिन हर एक के लिये अलग अनुभूति होती है और इस तरह के किसी नियम को बनाने की कोशिश करना जिससे समस्त अनुभूतियां आगे बढ़ें, एक बचकानी मानसिक बेवकूफी है।

आत्मा **मुक्त** है और अपनी क्रियाओं में हमेशा मुक्त रहेगी।

३ अक्तूबर १९६४

प्यारी मां,

पिछले अगस्त में 'ज्ञ' मुझसे मिला और उसने मुझसे पूछा कि क्या श्रीअरविंद तथा माताजी के भक्तों के लिये अपने केंद्रों में अन्य देवी-देवताओं की पूजा करना उचित है। उसका कहना है कि ऐसे लोगों के द्वारा बहुत भ्रांति फैली हुई है जो यह लिखते तथा इसकी शिक्षा देते हैं कि अतिमानसिक योग उन देवी-देवताओं द्वारा किया जा सकता है और लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है जिनकी पूजा करने के लोग अभ्यस्त हैं। पुराने पुराणों, तुलसी रामायण इत्यादि की व्याख्या श्रीअरविंद तथा माताजी के आदर्श को बढ़ाने की दृष्टि से की जाती है। उनका दृष्टिकोण यह है कि श्रीकृष्ण, राम, सीता—सभी अतिमानसिक सत्य प्रदान कर सकते हैं।

यह रहा 'ज्ञ' का पत्र जिसमें वह माताजी से पथ-प्रदर्शन की मांग कर रहा है।

जो लोग अब भी देवताओं पर विश्वास करते हैं वे निश्चय ही उनकी पूजा जारी रख सकते हैं—अगर वे ऐसा करना चाहें—लेकिन उन्हें इस बात का पता होना चाहिये कि इस सिद्धांत तथा इस पूजा-अर्चना का श्रीअरविंद की शिक्षा के साथ कोई वास्ता नहीं और अतिमानसिक उपलब्धि के साथ **किसी तरह का कोई संबंध नहीं है।**

अक्तूबर १९६४

(शिष्य ने एक भक्त के बारे में लिखा जो ऊंचे ब्याज पर आश्रम को धन देने के लिये तैयार था)

मैं तो उचित ब्याज पर भी धन उधार लेने के विरुद्ध हूं, यह तो अत्यधिक और गैर कानूनी है—इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता।

जिन्हें श्रीअरविंद के योग पर विश्वास है उन्हें समझना चाहिये कि धन और अधिक

धन कमाने के लिये नहीं बल्कि धरती को नवीन सृष्टि के आगमन के लिये तैयार करने के लिये है।

आशीर्वाद सहित।

२३ दिसंबर १९६४

(शिष्य ने अन्य लोगों के साथ मिलकर श्रीअरविंद की पुस्तकों के प्रकाशन के लिये योजना प्रस्तुत की। उसके पीछे भाव यह था कि उनका दाम कम रखकर उन्हें जनता के लिये सुलभ बनाया जा सके। शुरू में अस्सी-अस्सी पृष्ठों की छः पुस्तकें छापने की बात थी जिनका दाम एक-एक रुपया होता। माताजी ने पत्र पर लिखा :)

योजना अच्छी है पर धरती पर श्रीअरविंद के काम के लिये **नहीं**।

आशीर्वाद।

(पत्र के अंत में माताजी ने लिखा :)

यह मानसिक रूप से बनायी गयी बहुत अच्छी योजना है, लेकिन मैं तुम्हें याद दिला दूं कि श्रीअरविंद ने हमें चेतावनी दी है कि उनके ग्रंथ जन-साधारण के लिये नहीं हैं और उनके साथ ऐसा व्यवहार न करना चाहिये।

अतः ज्यादा बुद्धिमानी इसीमें है कि इस विचार को छोड़ दिया जाये।

आशीर्वाद।

२१ जून १९६५

पिछले कुछ दिनों से मेरा अतीत जीवंत रूप से मेरी आंखों के सामने आ रहा है। मैं देखता हूं कि कैसे मैं गलती पर था, कैसे मैं पक्षपातपूर्ण था और कैसे मैंने औरों को नुकसान पहुंचाया है। माताजी के प्रति मेरी कृतज्ञता हजार गुनी हो जाती है जब मैं देखता हूं कि माताजी मेरे सभी दोषों के बावजूद मुझे संभाले रही हैं।

वर दो कि मेरा व्यक्तित्व लुप्त हो जाये और मैं तुम्हारे सागर में एक बिंदु बन जाऊं।

जो कुछ कठोर या अंधकारमय है वह निश्चय ही शाश्वत 'प्रेम' में घुल जायेगा . . .

१९६५

(शिष्य ने पूछा कि दो रिश्तेदार जिनकी आपस में बनती नहीं है, उन्हें क्या एक ही मकान में एक साथ रहना चाहिये।)

समता के अभ्यास के लिये मनोवैज्ञानिक कठिनाइयां उत्तम अवसर के रूप में ली जा सकती हैं।

प्रेम तथा आशीर्वाद के साथ।

१९६५

प्यारी मां,

मैंने अभी-अभी सुना कि यद्यपि गुरु के समस्त अवयवों से कृपा बहती है (जैसे आंख, हाथ से) लेकिन चरणों से जो चीज प्रवाहित होती है वह सबसे अधिक ऊर्जाशील तथा अनुकंपा से भरी होती है। कहा जाता है कि इसी कारण भारतीय परंपरा में चरण छूने का रिवाज है। क्या यह सच है?

यह रहा तुम्हारे प्रश्न का श्रीअरविंद के शब्दों में उत्तर :

. . . जहां कहीं वे अपने चरण धरती हैं वहीं सम्मोहक आनंद के चमत्कारिक झरने बहने लगते हैं।

*

समस्त प्रकृति मूक भाषा में केवल उसीका आवाहन करती है ताकि वह अपने चरणों से जीवन के पीड़ादायक कंपनों को स्वस्थ कर दे।[1]

आशीर्वाद।

१९६७

दूसरों के लिये पूछे गये प्रश्न

'क' के मन में यह सुझाव आ रहा है कि वह अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से परिवर्तन के लिये आश्रम से बाहर चला जाये। वह पूछता है कि उसे इन सुझावों को अस्वीकार कर देना चाहिये या माताजी उसे परिवर्तन के लिये बाहर जाने की सलाह देंगी।

[1] श्रीअरविंद की रचना से उद्धृत ये दोनों अंश एक कार्ड पर छपे थे जिसे माताजी ने शिष्य के पास भेजा था। पहला अंश 'माता' पुस्तक से तथा दूसरा 'सावित्री' से उद्धृत है।

मुझे परिवर्तन पर विश्वास नहीं है। उसके लिये यह स्वभाव और प्रकृति का प्रश्न है। वह जहां कहीं जायेगा यह उसके साथ रहेगी। उसका उपचार कर सकता है केवल साधना द्वारा स्वभाव का परिवर्तन।

तुम उसे यह दिखा सकते हो, मेरे आशीर्वाद सहित।

१ जून १९६२

प्यारी मां,

'क्ष' अपने वर्तमान अस्वास्थ्यकर कमरे से खुश नहीं है; कमरा अंधेरा है तथा हवादार नहीं है। अगर माताजी सहमत हों तो मैं उसे उस अतिथिशाला में स्थान दिलवाना चाहता हूं जिसका संचालन 'त्र' के हाथ में है। वे दोनों अच्छे दोस्त हैं और वे दोनों मिलकर अतिथिशाला का संचालन अधिक आसानी से कर पायेंगे।

जैसा तुम सोचते हो यह ठीक चल सकता है, कोशिश कर देखो।

लेकिन जिनका झींखने का स्वभाव होता है उनका सामान्यतः वैसा स्वभाव बना रहता है और वे कभी संतुष्ट नहीं होते . . . जबतक परिस्थितियों तथा दूसरों को असुविधा के कारण का दोषी ठहराया जाता है तबतक व्यक्ति मिथ्यात्व में गहरा धंसा होता है। बुद्धिमान् मनुष्य जानता है कि उसके साथ जो कुछ होता है उसका उत्तरदायित्व उसीका है और वह अपने स्वभाव को ठीक करने की कोशिश करता है।

आशीर्वाद।

९ जून १९६२

'क्ष' दौरतुआर छात्रालय से अपनी बेटी 'त्र' को नवंबर की छुट्टियों में घर ले जाना चाहता है। वह माताजी की स्वीकृति मांग रही है। लड़की पहली दिसंबर के सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग नहीं ले रही।

ठीक है, बशर्ते कि 'त्र' की इच्छा हो।

अक्तूबर १९६२

निम्नलिखित बच्चे विद्यालय की छुट्टियों में अगले महीने घर जाना चाहते हैं। (चार नाम दिये गये)

मैं बच्चों के छुट्टियों में बाहर जाने को कभी प्रोत्साहन नहीं देती क्योंकि साधारणतः इसके बुरे परिणाम होते हैं। लेकिन जब स्वयं बच्चे जाने के लिये कहें तो मैं हां कह देती हूं, बशर्ते कि वे विद्यालय खुलने से पहले लौट आयें।

आशीर्वाद।

अक्तूबर १९६२

पुणे की एक अध्यापिका आजकल यहां आयी हुई है। कुछ वर्ष पहले उसने आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने का निश्चय किया था और तबसे भरसक प्रयास कर रही है। लेकिन उसे सेक्स का आकर्षण बहुत प्रबल मालूम होता है और समझ में नहीं आता कि उससे कैसे पिंड छुड़ाये। वह माताजी से पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना करती है। उसका फोटो संलग्न है। वह जानना चाहती है कि उसे शादी कर लेनी चाहिये या चाहे जैसी कठिनाइयां हों, साधना-मार्ग पर चलना चाहिये।

उसे शादी कर लेने दो और बाद में आध्यात्मिक जीवन आ सकता है; वह अभीतक तैयार नहीं है।

जब सचमुच पुकार आती है तब कोई हिचकिचाहट संभव नहीं रहती।

आशीर्वाद।

अक्तूबर १९६२

बंगाल के एक भक्त 'क' का कई वर्षों से आश्रम के साथ संबंध है। अभी हाल में वह कुछ साधुओं के संपर्क में आया था। अब उसमें यह संदेह दबाव डाल रहा है कि क्या इस संपर्क के कारण माताजी के साथ उसका नाता टूट गया है। वह जानना चाहता है कि क्या अब भी वह माताजी की ओर खुला है या खुला रह सकता है।

अगर वह संपर्क रखना चाहता है तो उसे बहुत सावधान रहना चाहिये। साधारणतः प्रभावों को मिलाना सहायक नहीं होता।

आशीर्वाद।

अक्तूबर १९६२

मधुर मां,

'क्ष' फिर से गड़बड़-झाले में पड़ा है। वह कहता है कि वह मरना चाहता

है। आज उसकी जो स्थिति है उसमें उसे प्रगति की कोई संभावना नहीं दिखायी देती। भीतर कोई उल्लास नहीं है और उसे लगता है कि आश्रम आकर उसने भूल की। सब मिलाकर वह बहुत अधिक निराश है और कहता है कि कहीं उसका दिमाग चल न जाये। केवल माताजी ही उसके अंदर जीवन वापिस ला सकती हैं।

मैंने उसे हमेशा इसी रूप में देखा है और इसीलिये मैं हमेशा उसे यहां आने की स्वीकृति देने से इंकार करती रही। वह हमेशा वहां होना चाहता है जहां वह नहीं है।

लेकिन अब जब कि वह यहां है, उसकी प्रगति और उसके उपचार के लिये बस एक ही संभावना है, वह अपनी सारी संभव इच्छा-शक्ति के साथ और यहां से चले जानेवाले सभी सुझावों के बावजूद यहीं **टिका रहे**। निश्चय ही मैं उसकी सहायता करूंगी, बशर्ते कि वह करने दे; लेकिन उसे पता होना चाहिये कि उसके निस्तार का **बस यही एक तरीका** है।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

१४ जनवरी १९६३

मधुर मां,

मैं एक दर्शक के एक प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हूं। वह कडलोर का एक युवा अध्यापक है। वह तीन-चार वर्षों से यहां आता है। वह कहता है कि वह जब कभी लगभग आधे घंटे के लिये ध्यान करने बैठता है तो उसे बड़ी तेज भूख लग आती है। ध्यान करते समय उसे शांति का अनुभव होता है और खुशी होती है। लेकिन यह भूख क्यों और कैसी है ? उसने ध्यान से पहले अच्छी तरह पूरा-पूरा खाना खाया फिर भी भूख आ टपकी। क्यों माताजी ?

क्योंकि ध्यान की अचंचलता से वह शरीर की शक्ति के प्रति ग्रहणशीलता बढ़ा लेता है। ग्रहण करने और आत्मसात् करने की यह क्षमता अपने-आपको खाने की क्षमता में अनूदित कर सकती है—यह जरूरी नहीं है—लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उस समय भोजन की जरूरत है।

२६ जनवरी १९६३

(एक दर्शक को आश्रम में केवल दो-चार दिन रहने के बाद जाना पड़ा क्योंकि

वह और दो साथियों के साथ यात्रा कर रहा था। वह यहां से बहुत प्रभावित हुआ था। साधक ने सारी कहानी माताजी को सुनायी और अंत में लिखा, "इस सारी घटना ने मुझे दुःखी बना दिया।" उनके चित्र संलग्न थे।)

मैंने उनके फोटो देखे। उनमें से कोई भी अभीतक तैयार नहीं है, लेकिन शक्ति काम करेगी और बाद में कुछ परिणाम आ सकता है।

दुःखी मत होओ—चीजें घटती हैं क्योंकि उन्हें घटना होता है और अंत में हर चीज परम प्रभु की चरम विजय की ओर ले जाती है।

आशीर्वाद सहित।

जनवरी १९६३

'क' को 'ख' की सिफारिश और आग्रह पर दो वर्ष पहले तीन बच्चों के साथ आश्रम में प्रवेश दिया गया था। पिछले डेढ़ वर्ष से वह हमारे एक छात्रावास की अच्छी तरह देखभाल कर रही है। उसकी दो लड़कियां एक स्थानीय विद्यालय में जाती हैं और लड़का हमारे विद्यालय में। 'क' और 'ख' दोनों को आशा है कि अब उन्हें आश्रमवासियों की स्थायी सूची में स्थान मिल जायेगा।

इस धरती पर **स्थायी** है ही क्या? 'ग' यहां १९२१ से (४२ वर्षों से) है और उसने कभी **स्थायी** बनाये जाने की मांग नहीं की।

सितंबर १९६३

डॉक्टरों का कहना है कि 'डिटैचमेंट ऑफ रेटिना' के कारण 'क' की एक आंख बिल्कुल बेकार हो गयी है और दूसरी में मोतिये की संभावना है। उसका सामान्य स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, वह माताजी से सहायता के लिये प्रार्थना करता है और पूछता है कि वह कौन-से डॉक्टर की चिकित्सा करे।

उसे अपने-आप अपना डॉक्टर चुनने दो क्योंकि डॉक्टर पर **विश्वास सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण** बात है।

आशीर्वाद।

अक्तूबर १९६३

प्यारी मां,

'त्र' कई वर्षों से निरंतर एक या दूसरी बीमारी भोग रहा है। सामान्यतः हाथ-

पैरों में जलन तथा दूसरे स्नायविक रोग हैं। "सच्चे कारण" के बारे में दो सुझाव हैं। १ —शायद कोई जादू-टोना कर रहा हो। उसके बहुत-से द्वेषी हैं। २ —एक मंदिर के रमालिये ने कहा है कि गड़बड़ घर के साथ लगे किसी बहुत पुराने पेड़ पर रहनेवाली आत्मा के नाराज होने के कारण हो रही है।

केवल माताजी ही जानती हैं कि सच्चाई क्या है। 'त्र' माताजी के दयापूर्ण हस्तक्षेप तथा सुरक्षा के लिये प्रार्थना करता है।

सबसे पहले उसे समस्त भौतिक संभावनाओं को निकाल बाहर कर देना चाहिये। उदाहरण के लिये, अहाते का कोई अस्वास्थ्यकर कोना।

और अगर यह इन दोनों में से किसी एक गुह्य कारण से हो, फिर भी उसके वश में भला क्यों रहा जाये ? सच्चे दिल से सहायता तथा सुरक्षा को पुकारने तथा **समस्त भय** का त्याग करने से इसे आसानी से बाहर निकाला जा सकता है।

आशीर्वाद सहित।

९ नवंबर १९६३

'क' का कहना है कि वह यह मार्ग अपनाना चाहता है और वह ध्यान, साधना इत्यादि कर रहा है, लेकिन उसकी पत्नी इस मार्ग में बाधक है और आग्रह करती है कि वह उसे सेक्स-जीवन से वंचित नहीं कर सकता। वह पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना करता है। क्या वह साधना के लिये अपनी पत्नी से संबंध-विच्छेद कर ले या कोई और मार्ग है ?

इसके सिवाय कोई सलाह नहीं दी जा सकती कि वह सच्चा और निष्कपट रहे और आंतरिक पथ-प्रदर्शन का अनुसरण करे।

मैं साधना की दृष्टि से बच्चे पैदा करने की दृष्टि को छोड़कर सेक्स-संबंध का कोई और उपयोग नहीं देखती।

दिसंबर १९६३

(शिष्य ने माताजी से पूछा कि क्या वह आश्रम की एक अतिथिशाला में आयोजित हो रहे रात्रि-भोजन की तैयारियों को रद्द कर दे क्योंकि वहां के मैनेजर के पास काम बहुत अधिक है।)

इस काम को अच्छी तरह से करने के लिये व्यक्ति को मजबूत तथा **नमनीय** होना

होगा और यह जानना होगा कि उस **अक्षय ऊर्जा** का किस तरह उपयोग किया जाये जो तुम सबको सहारा दे रही है।

मुझे इससे अधिक और कुछ नहीं कहना। लेकिन मैं यहां हर एक से आवश्यकताओं की ऊंचाई तक उठने की आशा रखती हूं। अगर हम इतना भी नहीं कर पाते तो हम परम सत्य के प्रकाश के अवतरण के लिये तैयार रहने की आशा भला कैसे कर सकते हैं जब वह सत्य पृथ्वी पर अभिव्यक्त होने के लिये उतरेगा!

आशीर्वाद।

१५ जनवरी १९६४

'क' मुझसे बार-बार अपने अवसाद की और जीवन में रस न होने की बात करता रहा है। कल शाम को वह विशेष रूप से बुरी अवस्था में था। उसने कहा कि वह मरना चाहता है। हर रात को वह सोते समय आशा करता है कि वह सवेरे तक मर जायेगा। एक बार तो वह काम बदलना चाहता था, अब उसे लगता है कि अगर उसे जिंदा रहना है तो उसे आश्रम के बाहर जाना चाहिये।

'ख' ने उसे आश्रम के बाहर कोई काम देने का प्रस्ताव रखा था, लेकिन उसने इंकार कर दिया। उसके काम या वातावरण को बदलने की जगह उसकी प्रकृति को बदलना जरूरी है।

यह एक तरह से उसके प्राण की वृत्ति है, अवसाद की वृत्ति, जिसमें वह मजा लेता है। जबतक वह प्रकाश और शक्ति को अपने अंदर उतरकर इस सबको साफ नहीं करने देता तबतक मुझे नहीं मालूम कि उसके लिये क्या किया जा सकता है।

आशीर्वाद।

जनवरी १९६४

'क' प्रार्थना करता है कि माताजी का एक फूल उसे हर रोज हस्पताल में भेजा जाये। वह पूछ रहा था कि माताजी ने उसका पत्र पाकर क्या कहा। मैं उससे आज साढ़े ग्यारह बजे मिला था, तब वह उदास था।

तुम उससे कह सकते हो कि तकलीफ में से निकलने का एक ही तरीका है—**श्रद्धा**, सच्ची, निष्कपट, **निष्कंप श्रद्धा**, ऐसी श्रद्धा जो **कोई मांग** नहीं करती। बाकी सब तो **सौदेबाजी** है।

आशीर्वाद।

जनवरी १९६४

मधुर मां,

कुछ समय पहले 'क्ष' ने मुझे कहला भेजा था कि वह बहुत अस्वस्थ अनुभव कर रहा है और चाहता है कि मैं उसे देखने जाऊं। मैं जाकर उससे मिला। उसका कहना है कि वह बहुत दुर्बल है। हस्पताल के डॉक्टर सारे दिन उसमें दवाइयां ठूंसते रहते हैं। वह बहुत थकान का अनुभव कर रहा है और अब ज्यादा नहीं खींच सकता।

हर बार हस्पताल जाने पर मुझे अनुभव होता है कि बाहर का जीवन कितना नारकीय है। मुझे अधिकाधिक शक्ति के साथ पता लगता है कि आपने हमें यहां आश्रम में कैसी स्वर्गिक परिस्थितियों में रखा है। सभी कुढ़नेवालों को जबरदस्ती सप्ताह में एक बार हस्पताल भेजना चाहिये!

यह बिल्कुल सच है; परंतु 'क्ष' के मामले में कुढ़ना और शिकायत करना बहुत अधिक था और सचमुच इसी कारण से वह इस अवस्था में है।

अब भी उसे शांत रहना और चीजें जैसी हैं उस रूप में उन्हें स्वीकार करना सीखना चाहिये।

मैं उसके नाम एक पत्र भेज रही हूं जिसे तुम प्रोत्साहन के दो शब्दों के साथ उसे दे सकते हो।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

९ फरवरी १९६४

मधुर मां,

'क' हमारे कार्यालय में पिछले पंद्रह दिनों से काम कर रही है। उसने बहुत अच्छा काम किया है और मुझे उसकी क्षमता और समर्पण-भाव पर गर्व है। वह जल्दी ही मद्रास जानेवाली है। मैं माताजी से प्रार्थना करूंगा कि उसका जीवन एक नया मोड़ ले। अपनी चौमुखी प्रतिभा के बावजूद उसका जीवन कदम-कदम पर अवसाद के उतार-चढ़ाव वाला रहा है। वर दीजिये कि अब वह बंद हो जाये।

कठिनाइयां हमेशा आशीर्वाद होती हैं, बशर्ते कि हम उनका सामना करना जानें।

आशीर्वाद।

मार्च १९६४

कम्पाला-केंद्र की एक सदस्या ने शिकायत की कि वहां २९ फरवरी के उत्सव

के दिन केंद्र के व्यवस्थापक ने उसका अपमान किया। वह माताजी से सांत्वना चाहती है।

वह अपने बारे में नहीं भगवान् के बारे में सोचे।

मार्च १९६४

'क' के मकान में हमने कई कमरे किराये पर ले रखे हैं। वह इन कमरों के लिये 'ख' से फर्नीचर किराये पर लेता है। अब शायद 'ख' ने फर्नीचर का किराया बढ़ा दिया है अतः 'क' का कहना है कि या तो कमरों का किराया बढ़ाया जाये या उससे फर्नीचर का अतिरिक्त किराया न लिया जाये। यह दस रुपये महीना होगा।

कितनी छोटी-छोटी चीजें! सद्‌भावना और अनासक्ति के साथ सभी चीजों का आसानी से समाधान किया जा सकना चाहिये।

अप्रैल १९६४

'क' की इच्छा है कि उसकी बीमारी के बारे में निम्नलिखित तथ्य मैं आप तक पहुंचा दूं: १—हस्पताल का डॉक्टर उसकी स्थिति से संतुष्ट नहीं है। तीन महीने के इलाज के बाद भी स्थिति अभीतक डांवाडोल है और डॉक्टर कह नहीं सकते कि आगे क्या होगा। 'क' चाहता है कि मैं माताजी से पूछूं कि क्या वे वेल्लोर या किसी और हस्पताल में उसे भेजे जाने की व्यवस्था कर देंगी? २—पिछले तीन महीनों से उसे बड़ी तेज दवाइयां दी जा रही हैं और परिणामस्वरूप वह बहुत कमजोरी का अनुभव करता है। उसके मित्र 'ग' की सलाह है कि वह आयुर्वेद के किसी हरताल योग का उपयोग करे। लेकिन क्या आयुर्वेद और एलोपैथी की दवाइयों को इस तरह मिलाना ठीक होगा? 'क' अपने-आप उत्तर नहीं दे सकता और चाहता है कि माताजी इसका फैसला कर दें।

मैं इन सब जटिलताओं और इस कष्ट का कारण बहुत अच्छी तरह जानती हूं और इस कारण कोई सलाह नहीं दे सकती, क्योंकि उसके चरित्र का आमूल आंतरिक परिवर्तन ही इस कठिन परीक्षा को समाप्त कर सकता है। उसके अंदर शक्ति का सचेतन, स्थिर केंद्रीकरण पहले से था और अब भी है जो उसे बहुत पहले रोगमुक्त

कर सकता था, लेकिन उसकी आंतरिक निराशा और असंतोष सारी क्रिया को बिगाड़ देते हैं।

वह सच्ची श्रद्धा रखे तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।

आशीर्वाद।

मई १९६४

'क' इतिहास का प्रवक्ता है, वह आश्रम में प्रवेश चाहता है। वह तन्दुरुस्त शरीर का वैसा आदमी है जैसे की 'ख' को जरूरत है।

हमें प्रवक्ताओं की जरूरत नहीं है! लेकिन तुम उसे 'ख' के पास भेज सकते हो, देखें वह क्या कहता है।

जुलाई १९६४

मधुर मां,

हमारी कन्नड़ पत्रिका के एक गृहस्थ पाठक ने ये दो प्रश्न पूछे हैं। मैं इनका उत्तर नहीं दे पाता। क्या माताजी कृपया सहायता करेंगी?

(१). भोजन के लोभ को कम करने (अगर उसे निकाला न जा सके) के लिये क्या किया जाये?

(२). सेक्स की इच्छा को कम करने (अगर उसे निकाला न जा सके) के लिये क्या किया जाये?

दोनों का एक ही उत्तर है: अपने-आपको किसी अधिक रुचिकर चीज में व्यस्त रखो, अन्यथा अत्यधिक भौतिक से लेकर अत्यधिक आध्यात्मिक तक सैंकड़ों तरीके हैं।

आशीर्वाद।

अगस्त १९६४

रोडेशिया से हमारे चक्र के एक सदस्य ने लिखा है कि वह किसी और आदमी के द्वारा विदेशी मुद्रा की तस्करी में पुलिस के हाथों पड़ गया है। वह आदमी पकड़ लिया गया है और पुलिस आ गयी है। वह सहायता के लिये प्रार्थना कर रहा है।

उसने भगवान् के कार्य के लिये क्या किया है जो वह सहायता मांगता है?

सितंबर १९६४

हमारे एक छात्रावास की लड़की 'क' के मां-बाप ने लड़की को विद्यालय की छुट्टियों में बंबई ले जाने के लिये माताजी की स्वीकृति मांगी है। लड़की जाना चाहती है।

सामान्यतः जब बच्चे छुट्टियों में बाहर जाते हैं तो काफी बिगड़ कर लौटते हैं—लेकिन अगर लड़की सचमुच जाना चाहती है तो जा सकती है।
अक्तूबर १९६४

'क' के रोडेशिया से विदेशी मुद्रा की तस्करी के सिलसिले में जेल जाने की संभावना है। वह सहायता मांगता है।

मेरा इस तरह की चीज से कोई संबंध नहीं है।
दिसंबर १९६४

'क' का अपनी पत्नी के बारे में एक पत्र संलग्न है। वह उसके लिये आपकी कृपा की कोई निशानी चाहता है।

वह अपनी बाहरी सत्ता को शुद्ध करे और परम भगवान् के प्रति पूर्ण और समग्र समर्पण द्वारा अहंकार को लुप्त कर दे तो सब कठिनाइयां गायब हो जायेंगी।

विरोधी शक्तियों को केवल इसलिये काम करने दिया जाता है ताकि वे हमें अपने-आपको शुद्ध करने और अवरोहण तथा ऐक्य के लिये पर्याप्त रूप से बाधित करें।

प्रेम तथा आशीर्वाद सहित।
३० *दिसंबर १९६४*

'क' एक गरीब आदमी है जो प्रायः नियमित रूप से हर सप्ताह यहां आता है, समाधि के पास बैठकर ध्यान करता और नियमित रूप से कुछ भेंट-पूजा चढ़ाता है। उसे माताजी की उपस्थिति और पथ-प्रदर्शन का अनुभव होता है, लेकिन बहुत बार जब उसे कोई अच्छी आध्यात्मिक अनुभूति होती है तो साथ ही उसके कारोबार में या घर के जीवन में कोई बुरा अनुभव भी होता है। उदाहरण के लिये कल उसने एक उद्धरण पढ़ा जिसमें कहा गया था कि अगर

तुम हृदय की गहराई में जाओ तो वहां माताजी को पाओगे। उसने तुरंत माताजी को अपने हृदय में आसीन देखा, उसके कुछ समय बाद उसका छोटा बेटा एक बस की चपेट में आते-आते बचा। दो घंटे बाद उसका बड़ा लड़का बड़ी बुरी तरह दीवार पर से गिर पड़ा। वह आश्चर्यचकित है क्योंकि ऐसी बातें उसके लिये बार-बार नियमित रूप से हुआ करती हैं। वह माताजी के कृपा-कटाक्ष और उनके आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करता है।

जो भी होता है वह कृपा का परिणाम है और आध्यात्मिक दृष्टि से जो हो सकता है उसमें अच्छे-से-अच्छा है।

प्रेम और आशीर्वाद।

मार्च १९६५

मेरे एक पारिवारिक मित्र का दो वर्ष का पोता तीन महीने की उम्र तक बिल्कुल स्वस्थ था, उसके बाद उसे जोर का खसरा हो गया। लगभग दस दिन के लिये उसे तेज दवाइयां दी गयीं। उसके बाद वह कभी ठीक न हो पाया। उसे दौरे पड़ने लगे और अब वह स्तब्धता की-सी अवस्था में है। वह आसानी से न तो खड़ा हो सकता है, न चल सकता है, न बोल सकता है, न ही लोगों को पहचान सकता है।

बच्चे की बीमारी से पहले और बाद के फोटो संलग्न हैं। उसका परिवार माताजी की कृपा और आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करता है।

आधुनिक दवाइयां बच्चों के लिये ठीक नहीं होतीं।

आशीर्वाद।

(फोटो के साथ लगी एक पर्ची पर माताजी ने लिखा :)

अगर प्रकृति को अवसर दिया जाये तो शायद वह क्षति को ठीक कर सके।

जून १९६५

एक अमरीकन महीला 'क' अतिथिशाला के लिये एक बड़ी समस्या बन गयी है। वह नौकरों पर बरस पड़ती है, मेज पर असभ्य व्यवहार करती है और अपने-आपको एक मुसीबत बना देती है। कल उसने सवेरे तीन बजे टंकण शुरू कर दिया। अतिथिशाला के दोनों व्यवस्थापक 'ख' और 'ग' उसे रखना असंभव मानते हैं।

फिर भी यह सच है कि 'ख' ने उसे नाना प्रकार की विशेष व्यवस्थाओं के बारे में वचन दिये थे, जैसा कि वह सबके साथ शुरू में किया करता है। क्या किया जाये ?

उसने मुझे लिखा है और उसकी चिट्ठी से मैंने यह समझा कि एक कमरा उसे अपने लिये चाहिये और एक सामान वगैरह रखने के लिये, इसके अतिरिक्त अपने खाने-पीने का सामान रखने के लिये उसे रेफरिजरेटर में भी थोड़ी जगह चाहिये। खाने-पीने के मामले में वह बहुत सावधान है। अगर कुछ वचन दिये गये हैं तो उनका पालन करना चाहिये। मैत्रीपूर्ण और समझौते से भरी भावना की जरूरत है। आश्रम में इसके सिवा कोई और मनोवृत्ति लज्जाजनक और श्रीअरविंद के अयोग्य है।

आशीर्वाद।

३० जून १९६५

मधुर मां,

'क' मुश्किल में है। पिछले सप्ताह उसकी पुरानी तकलीफ, जिसमें वह अनैच्छिक रूप से शरीर के बाहर चली जाती है, फिर से शुरू हो गयी। वह तीसरे पहर दस मिनट के लिये सोयी थी और नींद में ही शरीर के बाहर निकल आयी और फिर वापिस न आ सकी। उसने आपको पुकारा। उसने लपेटती हुई प्रबल शक्ति और कुछ गुदगुदी का सिर से पैर तक अनुभव किया और तब वह शरीर में वापिस आ सकी। उसके बाद उसे बहुत थकान का अनुभव हुआ। वह रात को व्याकुल रही, शरीर में दर्द था और चेहरे पर मुर्दनी-सी छायी थी। नींद में उसने एक अंग्रेजी वाक्य सुना, "बाहर निकलना तुम्हारी आंतरिक आवश्यकता है।"

दूसरे दिन तीसरे पहर की नींद में वह फिर शरीर से बाहर हो गयी और उसके ऊपर लटकती रही पर उसके भीतर न घुस पायी। उसने आपको टेर लगायी पर कोई उत्तर न मिला। उसने फिर-फिर आवाजें दी पर कुछ न हुआ। वह सिर या पैर कहीं से भी अंदर न जा सकी, शरीर में कहीं से भी रास्ता न मिला। उसने सोचा कि मौत आ गयी और वह कभी शरीर में न घुस सकेगी। वह घबरा गयी पर किसी तरह उसने अपने-आपको ठीक रखा और शरीर के चारों ओर घूमती रही। वह ऊपर की ओर उड़ी और वहां आपके चरणों का रंगीन चित्र देखा जो दीवार पर लटक रहा था। वह उसके पास चली गयी और बड़े जोरों से उन चरणों से प्रार्थना करने लगी। बड़ी कठिनाई के साथ वह सिर में से होकर शरीर में घुस पायी जिससे बहुत पीड़ा हुई, बड़ा कष्ट हुआ। सारा

शरीर ठंडा और निर्जीव-सा हो गया था, उसे सामान्य होने में काफी समय लगा।

वह आपकी सहायता के लिये प्रार्थना करती है।

उसे हृदय-चक्र द्वारा शरीर में प्रवेश **करना चाहिये**। सिर और पैर को लगभग असंभव माना जाता है। सिर में से प्रवेश तो चमत्कारिक मालूम होता है और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वह पीड़ाजनक था।

लेकिन सबसे बुरी चीज है **भय**। अगर सभी परिस्थितियां सामान्य हों तो भी भय कठिनाइयों को आकर्षित करता है।

एकमात्र सच्चा समाधान है भागवत कृपा पर दृढ़ श्रद्धा। उस सच्ची और पूर्ण श्रद्धा के साथ तुम हमेशा सुरक्षित रहते हो।

आशीर्वाद।

१५ सितंबर १९६५

'क्ष' (शिमला की एक गुह्यवादी स्त्री) लिखती है कि उसकी बड़ी बेटी (उम्र नौ वर्ष) असामान्य रूप से भुलक्कड़ है और हमेशा अपने सपनों में ही खोयी रहती है। 'क्ष' का ख्याल है कि शायद इसका कारण यह है कि बच्ची की चैत्य सत्ता अभीतक शरीर में पूरी तरह से उतरी नहीं है। वह पूछती है कि क्या ऐसा संभव है और यह भी कि क्या इस मामले में माताजी कृपया कुछ करने का सुझाव दे सकेंगी। उसका फोटो संलग्न है।

बच्ची एकदम खुश दीखती है। वह जैसी है घरवालों को उसे वैसे ही छोड़ देना चाहिये और उसका विरोध नहीं करना चाहिये। जब उसके लिये सामान्य मनुष्य बनने का समय आयेगा तब वह बन जायेगी। समस्त हस्तक्षेप आध्यात्मिक अपराध होगा।

नवंबर १९६५

(शिष्य ने एक लड़के के बारे में लिखा जिसे सिर में झटकों के बहुत दौरे आया करते थे।)

यह बालक बहुत अधिक संवेदनशील है। उसके अंदर अच्छी संभावनाएं हैं। लेकिन उसके साथ बहुत धीरज और विशेष रूप से पूर्ण **अचंचलता** और **स्थिरता** के साथ व्यवहार करने की जरूरत है। जरा-सी अधीरता, रूखापन, और उत्तेजना उसे पूरी

तरह घबरा देंगी। कोई तेज गति दौरा ला सकती है। मैं इस पर जोर दे रही हूं क्योंकि अगर मां-बाप सचाई के साथ उसे ठीक करना चाहते हैं तो उन्हें उसके साथ बहुत ही कोमल रहना चाहिये।

आशीर्वाद।

नवंबर १९६५

'क' विशेष कृपा के लिये प्रार्थना करता है। वह तकलीफ में है। उसके व्यापार में हर रोज नया संकट आता है और वह उस स्थिति का सामना करने में असमर्थ है।

अगर वह अपने मन को स्थिर और हृदय को शांत रख सके तो वह स्थिति का सामना कर सकेगा।

आशीर्वाद।

दिसंबर १९६५

'क' से ज्योतिषियों ने कहा है कि अगले तीन साल उसके लिये बहुत खराब होंगे। उसका अफसर कंपनी छोड़ने की सोच रहा है इसलिये संभव है कि उसकी स्थिति इतनी सुरक्षित न रहे। उसका शिकमी किरायेदार मकान छोड़ गया है अतः उसे जो मकान आपकी कृपा से किराये पर मिला था उसे रख सकना मुश्किल हो रहा है।

वह माताजी का आशीर्वाद चाहता है।

उसे श्रद्धा और विश्वास के साथ स्थिति का सामना करना चाहिये और अंत में सब कुछ ठीक हो जायेगा।

आशीर्वाद।

मार्च १९६६

प्यारी मां,

ऐसा लगता है कि 'क्ष' के विरुद्ध किसी ने जादू-टोना किया है। एक खम्भे पर नींबू पड़ा मिला। घर में सब बीमार पड़ रहे हैं और वहां बहुत ही विक्षुब्ध वातावरण छाया है।

श्रीअरविंद के नाम का आह्वान करते हुए वे उसी खम्भे पर अगरबत्तियां जलायें।
१९ मार्च १९६६

कुछ दिनों से 'क' के दांत में दर्द हो रहा था। अभी हाल में एक दिन उसके पति ने कहा : माताजी ने 'बुलेटिन' में जो लिखा है उसका प्रयोग क्यों नहीं कर देखती ? शरीर से बाहर हो जाओ और पीड़ा के स्थान पर केंद्रित होओ। उसने ऐसा ही किया। दर्द गायब हो गया, लेकिन इसके बाद जो हुआ वह मजेदार है। दिन भर जरा भी दर्द नहीं रहा, लेकिन सोते समय बहुत जोर का दर्द होने लगा।

सोते समय दर्द क्यों हुआ ?

क्योंकि उसकी चेतना कहीं और चली गयी थी और वह अपने शरीर पर एकाग्र न थी।
मार्च १९६६

मधुर मां,

कल आपने 'ख' के परिवार का एक बच्चा देखा था। 'ख' प्रार्थना करता है कि माताजी उसकी चिकित्सा के बारे में पथ-प्रदर्शन करें। आप जो कहेंगी वह उसका अक्षरशः पालन करेगा।

अगर मां-बाप बच्चे के बारे में चिंतित और कुछ अधीर रहना छोड़ दें तो यह चीज उसके स्वस्थ होने में बहुत सहायक होगी।

आशीर्वाद।
जुलाई १९६६

'क' को उसकी बेटी ने सूचना दी है कि वह बंबई में किसी ऐसे आदमी से शादी कर रही है जिसके बारे में 'क' कुछ भी नहीं जानता। लड़की और उसकी मां ने उस आदमी को बंबई में एक फ्लैट की व्यवस्था करने के लिये १८,००० रु० भेजे हैं। 'क' माताजी से प्रार्थना करता है कि उसे इस आशंकित दुर्घटना से बचाने के लिये सहायता प्रदान करें।

हर एक को, स्त्री हो या पुरुष, अपने जीवन के बारे में फैसला करने की छूट होनी चाहिये।

अप्रैल १९६७

(शिष्य ने एक भक्त की ओर से लिखा जिसे भय है कि उसके व्यापार के साझेदार ने उसे हानि पहुंचाने के लिये एक जादूगर लगाया है।)

जो भगवान् पर भरोसा करता है उसे कहीं कोई भय नहीं।

आशीर्वाद।

जनवरी १९६८

अनुक्रमणिका

अंतरात्मा दे० 'चैत्य'
अंतर्दृष्टि [आंतरिक दृष्टि]
क्या है ? ५५, [२८]
अंतर्भास ३४
अंदर [भीतर]
से किस तरह सुनना ३९ दे० 'नीरवता' भी
हर जगह अंधकार की व्यथा ११४
गहराई में जाओ १२५, १५०, २००, २२९, २५०, ३४०
से आना चाहिये उपचार १७४
से अनुशासित करना भौतिक चेतना व जीवन को २२३
जाना और वहां से शक्ति पाना अपने को उत्तेजित कार्य में फेंकने की अपेक्षा ज्यादा सहायक ३४३
(दे० 'करना' वहीं भी)
अंधकार [अंधेरा] १००, १६५, १६६, २४१, ४००
पर प्रकाश डालना ९८
-मय अवस्था से व्यथित ११४, ११९, १२०, [१५२], १५७, [१८०], १८२, १९१
से सचेतन हो गये हो १५६
किस भाग में है और कब तक रहेगा ? १५६
के बजाय प्रकाश को चुनो १५७
वापस क्यों आ जाता है १५८
अंदर है या बाहर से आता है ? १६३
से छुटकारा १७४, [३९, १८२], १८९

सूचना

ऐसे पढ़ें :—

१.	**चीज**	**कठिनाई**	**दूसरे**	**क्रिया**
	˜	-यां	-ों के	-एं मेरी,
	चीजें	कठिनाइयां	दूसरों के	मेरी क्रियाएं

२. जिस वाक्य के शुरू में (') है वह अपने-आपमें स्वतंत्र वाक्य है, उसे मूल शब्द के साथ मिलाकर न पढ़ें, मूल शब्द के साथ उसका संबंध समझ लें। 'उदाहरण', 'प्रतीक', 'साधक' के नीचे के सभी वाक्य स्वतंत्र वाक्य हैं।

३. कहीं-कहीं अधिक स्पष्टता के लिये लिखा है दे० 'सत्य' और मिथ्यात्व भी, इसका मतलब है 'सत्य' के नीचे का वह वाक्य जो और मिथ्यात्व से शुरू होता है।

४. पृष्ठ-संख्या के बाद अ का मतलब है वह प्रसंग उस पृष्ठ के अंत से शुरू होकर, बस, अगले पृष्ठ के आरंभ तक ही गया है। और दे० का मतलब है देखो, टि० का मतलब है टिप्पणी।

५. [ ] में पृष्ठ-संख्या का मतलब है कि गौण या अवांतर रूप से वह बात वहां भी है।

६. जहां कहीं वाक्य-रचना मूल शब्द के साथ संगत न जान पड़े, वहां मूल शब्द के आगे कोष्ठ में जो शब्द दिया गया है उसके साथ मिलाकर पढ़ने से वह संगत बन जायेगी।

७. वाक्य के अंत में (,) का मतलब है कि मूल शब्द को वहां अंत में पढ़ें।

८. लगातार के वाक्यों (running) में (;) के बाद के वाक्य को मूल शब्द के साथ पढ़ें, पर यदि पहले (:) हो और पृष्ठ-संख्या के बाद (;) न होकर (,) दिया हो तो मूल शब्द को (:) तक के वाक्य के साथ मिलाकर अगला वाक्य पढ़ें।

९. मूल शब्द के आगे या उसके वाक्यों में जो पृष्ठ-संख्याएं होती हैं वहां मूल शब्द का कोई भी पर्याय हो सकता है। यह बात 'भगवान्' शब्द पर विशेष रूप से लागू होती है।

का आक्रमण २१६, [१०२]
(दे० 'भूतकाल' भी)
अंधेरे काल [संकट काल]
में क्या करना चाहिये ? ११६, ११७, १२०
'परिवर्तन-काल १५६
अकबर हैदरी (सर) २६४
अग्नि [आग] २६०
का अर्थ क्या है ? ४४
की ज्वाला १४१
को बुझाना होगा या शुद्धि के लिये उपयोग . . . १६४
का विरोधी सुझाव १६४
पवित्र, है एक जो . . . १६५
में ईंधन १८५, १८६
को प्रज्वलित रहना चाहिये क्रिया-कलापों के बीच १८६
को जलाना तुम्हारा काम नहीं, तुम्हें बस . . . १८६
है प्रगति के लिये संकल्प २०७
(दे० 'अभीप्सा' भी)
अग्नि-परीक्षा दे० 'परीक्षा'
अग्निशिखा ३८२
अखबार दे० 'पढ़ना'
अचंचलता २७, ११८, १३३, १७३, २५४अ, ४०७, ४४७
हर समय १२
का अभास नहीं, सच्ची, १२
'अचंचल (और स्थिर) रहो ३३, ११२, ११६, ११७, १५२, १९९, २५१, ४३९
और स्थिरता में सहने की शक्ति (माताजी की शक्ति को शरीर में) १०६
को पा सकते हो चैत्य केंद्र में ११८
से आपका क्या मतलब है ? १३७
में ही चैत्य चेतना से संपर्क १५२
मानसिक, और पढ़ाई २१९
तनाव की प्रभावकारी दवा २५२
और स्थिरता इस बालक के साथ ४५७अ
अचेतना ९७, १४८, १६६
के क्षण और खेंख लगना २३
अच्छा और बुरा
की कसौटी २१, [२४]
पास-पास रहते हैं १५९ दे० 'सत्य' और मिथ्यात्व भी
अच्छे-से-अच्छा १५
के लिये आशा रखो ३५७
है जो कुछ हो रहा है ४०६, ४५५
(दे० 'करना' भी)
अज्ञान १०, १५, २४, ४२, ६१, ११९, १३१, १४८, १६२, १६६, १९०, २२९, २४०, २५४, ३०१, ३१४
ही दुःखी बनाता है १८७
में नम्रता का अभाव १८८
में नहीं रहना चाहता मैं १८९
और विद्रोही भाग १९९
और मूढ़ता बहुत दुराग्रही है ३७९
से शुद्ध कर हमारी चेतना को ४२८
अति नहीं करनी चाहिये १६०
अतिमानस
के बारे में अभी से अटकलबाजी १०८, ३९४
के बारे में न बोलना अच्छा १३३
के लिये तैयारी १३३
और भगवान् १४१
के अवतरण से अवचेतना पर विजय २४०
का आगमन ३३६
का पूर्ण आविर्भाव, और आगे विकास ३९४
अतिमानसिक चेतना
की उपलब्धि पहला ठहराव ४२८
(दे० 'नयी चेतना' भी)
अतिमानसिक योग दे० 'पूर्ण योग'
अतिमानसिक सत्ता और मनुष्य ४१६
अतिमानसिक सृष्टि दे० 'नयी सृष्टि'
अधर्म
सामाजिक कर्तव्य (ऋणमोचन, परिवार की

देखभाल, देशसेवा) को छोड़ देने का ५३
अधिकार
अपने ऊपर १३९
(दे० 'इच्छा', 'प्रभुता' भी)
अधैर्य [अधीरता] ४५९
सहायता नहीं देगा १५२, [१३३]
ही अवसाद का कारण १७४
(दे० 'धीरज' भी)
अध्ययन दे० 'पढ़ना'
अध्यवसाय
चाहिये इन चीजों के लिये ९४, ११२, ३३३, ४२६
अध्यापक
और विद्यार्थी ३६२, ३७८
अच्छा ३६२
'सिखाने के लिये अनिवार्य शर्तें ४२३
(दे० 'पढ़ाना' भी)
अनंतता में उड़ान भरना २३९
अनातोल फ्रांस १२७
अनासक्ति १६७, ४५२
का क्या अर्थ है? ४८
अनुकंपा का क्या अर्थ है? १५
अनुबेन [अनु] २७८, ३३८
अनुभव ३६३, ४२३
करना किसी की गलत क्रिया को ३४
-ों अपने, से सीखना होगा हर एक को ३४५ [२९३]
अनुभूति [अनुभव]
शांति [सुख] का २२, ५०, १३४, २६०
के बाद मौन रहना २६
शक्ति के अवतरण का ४९
'छत को ऊंचा उठते देखा . . . ५०
वापस आ सकते हैं स्थिरता, शांति में ११४
बार-बार खोने के, के बाद भी तुमने जाना जारी क्यों रखा? ११५
आनंद और प्रेम के पीछे हटने का १३३अ
भागवत उपस्थिति का १३४
चेतना के नये क्षेत्र में प्रवेश की १४९
-यों सब, के साथ खुशी और प्रेम नहीं आते १४९
अच्छी, और अवांछनीय शक्ति १५४अ
केवल उन्हीं के सम्मुख प्रकट . . . २४२
प्रकाश का २६०
आश्रम पर आक्रमण के समय ३१३
पर कभी संदेह न करो ३१३
चक्रों के खुलने की ४४१अ
-यां, और नियम बनाना ४४२
अनुवाद २६२, २६४
यहां से प्रकाशित ३७६
में भूलें ३९५
अनुशासन २१५
नियम-पालन का ३५अ
भंग करना ३७
क्या है? ४२
पढ़ाई का १२६, १२७
अपने लिये १३४, ४२५
के बिना तुम जीवन में कुछ नहीं कर सकते १३४
अंदर से भौतिक चेतना [जीवन] का २२३
अन्याय २२९
अपमान ४५२
अपूर्णता ३६, १८५
की अभिज्ञता और प्रगति २२१, २२६
और विनाश ३१५
अभयदेव (स्वामी, आचार्य) २६४, २६५
अभिरुचि [पसंद-नापसंद] १११, २३०, २३६
अभीप्सा ७८, १०३, १४२, १६२, २३१, ३५९, ४११, ४२८
गलत काम से तुरंत सचेतन होने की ७
का क्या अर्थ है? २६
हमेशा, करने का अर्थ होता है उच्चतर चीजों को बुलाना २६
को सदा जाग्रत् कैसे रखें? २९, २०२

से भगवान् के साथ संपर्क ४४, [३०, ३१], भगवान् के प्रति ४८, २४७, २५५
की आग ४४, ७४; की अग्नि को प्रज्ज्वलित करना माताजी को फिर से पाने के लिये १८५; की अग्नि को प्रज्ज्वलित रखने के लिये १८५, १८६; की अग्नि को प्रज्ज्वलित रखना और बाहरी चेतना २०२
लैंगिक शक्तियों को दूर रखने की ४५
हृदय की, द्वारा चैत्य पुरुष सामने [४८]; सतत और निष्कपट, से चैत्य सामने ४१९; हृदय से उठनेवाली ही प्रभावकारी ३३३
पूर्णरूप से सच्चा [निष्कपट] बनने की ६०
विशाल चेतना के लिये ६४
द्वारा निश्चल-नीरवता ६७
की पूर्ण निष्कपटता से भौतिक मन प्रदीप्त ६८
में पूर्ण निष्कपटता बनाये रखने से सब गलतियां अंत में . . . ६९
और श्रद्धा ही घटना-चक्र को बदल सकती है ७०
और श्रद्धा ही भागवत कृपा को कार्य करने देती है ७०
और मांगना एक चीज नहीं ७०
निष्कपट, और प्राण का परिवर्तन ७१
निष्कपट, का क्या अर्थ है ? ७१
गहरी, में रहने के लिये ९४
मेरी, कम क्यों हो गयी है ? ९७
सारी सत्ता से, कराने के लिये ११९
सच्ची और सतत, हमेशा पूरी होती है १२२; हर सच्ची, को उत्तर ४२९
प्रेम व शांति के लिये सत्ता का कौन-सा भाग करता है ? १३६
करते जाओ जबतक कठिनाइयां दूर न हो जायें १७०
आंतरिक परिवर्तन के लिये १८२
सामान्य चेतना से ऊपर उठने के लिये १८९
उच्चतम, के अनुरूप बनाना अपनी समस्त क्रियाओं को १९०
भौतिक में, का फूल २५०
अधिक उपयोगी बनने की कहीं महत्त्वाकांक्षा और व्यक्तिगत मांग तो नहीं ! ३२१अ
तुझे जानने की ४२६, ४२९
(दे० 'चाहना' भी)

अमरता ४२७

अमृत (साधक) २७४अ, ३३२

अर्जुन
की सगे-संबंधियों को न मारने की चाह १४

अर्पण (माताजी व भगवान् के प्रति)
प्राणिक गतिविधियों का २८
केंद्रीय सत्ता का ३१
अपने-आप का ७९, ४२६
सभी कठिनाइयों, कामनाओं, अपूर्णताओं का १८५
(दे० 'आत्मदान', 'क्रिया', 'समर्पण' भी)

अवचेतना [अवचेतन]
का एक हिस्सा हमेशा जागरूक ११
पर विजय १५०, २४०
और रोग २१६, २२४अ
और डॉक्टरी सुझाव २४७
और सहज आवेश २५१
को परिष्कृत करना २५१

अवतरण दे० 'विरोधी शक्तियां'

अवलोकन [निरीक्षण] ३४, ८१
अपना १५, [७], २८, ३२, ९२अ, ११२, १३३, १४६, १५०, ४२४
में भूल न करने के लिये १५
विभाग में ३०४

अवसाद [विषाद, उदासी], ५७, १७३, २२८, ४१८, ४५१
आये तो क्या करना चाहिये ? ६०, ७०, ७८, [१३४], १७८, १८७, ४५०
वातावरण में ७८, १६९अ
प्रकृति में अपूर्णता के कारण ८९अ
छुतहा होता है ९१

और संकट-काल ११७
के बारे में दूसरों से कहना १२८
अपने, से दूसरों को बाधा १३७
पर विजय पढ़ाई द्वारा १३७-८, १७२अ
कठिनाइयों के कारण, जरूरी नहीं १४४
प्रणाम के बाद १५७अ
में डूबना अधिक बुरा १६४, १७४
का कारण है अधैर्य १७४
में डूब जाता है तुम्हारा प्राण तब १७५; में मजा ले रहा है प्राण १७८, ४५०
और रोग १७५
माताजी की इच्छा से! १७६
की झूठी कल्पना १७८
अवस्था १७८
तुम्हारी, जिस चीज का परिणाम होती है १७०, [४४५]
अच्छी, पर पर्दा, जब पुराने क्रिया-कलाप वापस . . . १८०
अंधेरी दे० 'अंधकार'
(दे० 'स्थिति' भी)
अविद्या २४१
अव्यवस्था [अस्तव्यस्तता] ३६, ३०२, ३८६, ४३४
प्रतिरोध से १७०, ३३०
सारे संसार में : कारण ३३०
और विपदाएं नवीन सृष्टि की प्रसववेदना ३७८
(दे० 'आश्रम', 'व्यवस्था', 'स्पंदन' भी)
अशांति ३८, १०३, १०९, ४१८
'अशांत होना बड़ी कमजोरी है ४१४
(दे० 'क्षोभ', 'बेचैनी' भी)
अशिष्टता दे० 'व्यवहार'
अशुद्धियां (यों)
और निश्चल-नीरवता ६७
के बारे में बहुत सोचना ७७
को जानना ९२, ९४
(दे० 'दोष' भी)
असफलता
से न डरना चाहिये भागवत जीवन चाहनेवाले को १२२ दे० 'निराशा' भी
असामंजस्य २३०, ३०१, ३०२, ३३०
अस्वीकार दे० 'त्याग'
अहं २३४, ३०१
के लिये नहीं, भगवान् के लिये जीना २६, [३८]
से छुटकारा ३१अ, ४१अ, १११, [१३१]; से छुटकारा जबतक नहीं ३५५
और दूसरों की मदद करना ७३
का त्याग ७९, [४१अ]
चेतना के हर स्तर पर १०७
आध्यात्मिक, भी १०७
अधिमन के देवों में भी १०७
का विघटन [विलयन] : १०७, १६७, ४५४, से पहले जो करना होगा १०८
सहायक था, अहं बाधक है १११
-वादी दृष्टिकोण १७२
का प्रतिरोध, और जटिलता [अस्तव्यस्तता] २२६, ३०१
को संतुष्ट करना है अपनी साधना के बारे में जानने की इच्छा करना २३०
को संतुष्ट करना चाहा और तुम अपनी आत्मा से दूर हट गये २३३
का फूलना शक्ति के दबाव में २९५
के बिना जीवन एक चमत्कार ३५५
और कटुता ३८४
और सभी परिस्थितियों में मुस्कुराना ४२२
चेतना को धुंधला बनाता है ४२२
प्रगति में बाधा ४२२
नहीं बदलता क्योंकि उसे लगता है वह हमेशा ठीक है ४२२

आंतरिक पथ-प्रदर्शन ४४९
पाना ३७५
(दे० 'भागवत पथ-प्रदर्शन' तथा 'करना वही भी)

आकर्षण (प्राणिक) ८३, १२१, १५३
आक्रमण ८८
शरीर पर ६४, इन्हें रोकना ६४
विरोधी विचारों का ९१
जब हो तो सबसे अच्छी चीज ११७, [११२, ११६, ४३९]
अंधकार का २१६
'आक्रामक स्पंदन : करणीय २९८
(दे० 'आश्रम', 'विरोधी शक्तियां' भी)
आज्ञा
मानना (बड़ों की) ४२
-पालन काम में २२८
की अवज्ञा जब ३५७, [१९०]
(दे० 'माताजी' भी)
आत्मदान
भगवान् के प्रति २६, ४३, ७०, २५५, ४०६
में मोल-तोल और प्रेम १५८-९, ४२६, ४२७
ही आनंद तक पहुंचा सकता है १६६
'सब कुछ देना सच्चे रूप में पाने के लिये १७२
का उपहार २५१
उपचार शुष्कता का २५५
आत्म-निंदा २६९
आत्म-नियंत्रण दे० 'नियंत्रण'
आत्म-सम्मान ३९५
आत्मा
सच्ची, और भागवत चेतना १२९
की शोध और नींद में हुए की याद २४८
(दे० 'नियम' भी)
आदत
शांत, अचंचल रहने की ६८
बुरी, को क्यों मान्यता देते हो? ८८
डालो एक ही समय सोने की ९१
-ों पुरानी, में जा गिरना १०२, [१८०]
एक की, को दूसरों पर लागू करना १०३
आदर्श
को आंखों से ओझल न होने दो ८७, [२८०]
को व्यवहार में उतारना १४९
आध्यात्मिक चेतना
सारे समय क्यों नहीं बनी रहती? १५१-२
का क्या मतलब है? १५२
और जीवन का निर्माण-कार्य, और सामान्य स्तर पर शक्ति को बिखेरना २६२
आध्यात्मिक जीवन १८४, १९०
और सामाजिक कर्तव्य ५३
अधिक, के लिये क्या करना चाहिये? २३१
आनंद ४५, २४९, ३३५, ४२४
क्या है? ४०
और सुख ४०, १६६
और हर्ष : भेद ६२
और कामना १६६
आत्मदान से १६६
परमोच्च, के वरदान से भागना २३९
(दे० 'भागवत आनंद', 'सत्ता' भी)
आयुष्य लंबा [२८४], ४२७
आरकाट बंधु ३६७
आराम [विश्राम] १३, ५७, ७७, १५७, २१०, २३८
देना शरीर को १९, ४१२
करने का मतलब २०
करना दिन में २३ दे० 'सोना' भी
एकाग्र शक्ति का, दुर्बलता नहीं २८४
तामसिक नहीं, सच्ची ग्रहणशीलता का ३५७
आर्य १२टि०, ५१टि०
के विषय में प्रश्न पूछना ७५
(दे० 'उद्धरण' भी)
आर्यसमाज का सत्याग्रह २६४
आलोचना
नेहरू और उनकी सरकार की २८१
करने का भाव ३६०
आवश्यकता की ऊंचाइयों तक उठना ४५०

आवेग [आवेश, संवेग] २८, ३१
-ों के स्वामी कैसे बनें ? २७, [१३९]
और कामनाएं कहां से आती हैं ५६
चैत्य प्रेम में बदल जाये ९६
-ों और निम्न कामनाओं की दासता है वह, स्वतंत्रता नहीं १७६
-ों और कामनाओं को जीतना १७९
'मानव आवेग जब काम चलाते हों ३५७
(दे० 'अवचेतना', 'प्राण' भी)

आश्रम (श्रीअरविंदाश्रम)
से चले जाना : ४९, १८७, ४४७, वायु-परिवर्तन के लिये ४४४अ; यह तथ्य कि वह यहां है प्रमाणित करता है कि उसकी सत्ता में कहीं पर अभीप्सा है ३५९
में साधक-साधिकाएं भाई-बहन हैं या केवल मित्र ? ६०
'हमारा उद्देश्य ७६, ३०८
'नये केंद्रों की स्थापना ७६
वालों की आदत—अज्ञानभरी बातों की ८९; वालों को सूचना—चीन के आक्रमण के समय २८१; वालों को सलाह दर्शकों और विदेशियों के साथ व्यवहार करते समय २८३
और माताजी १३२
'यहां चीजें इसी तरह होती हैं १८१; यहां सत्य की क्रिया ज्यादा सचेतन और एकाग्र है इस लिये प्रतिरोध ज्यादा उत्तेजित और क्रुद्ध है ३३०; यहां सारे समय उच्चतर शक्ति की क्रिया द्वारा मानसिक नियमों का प्रतिवाद ३६४
'जो यहां खुश नहीं . . . १८७; जो यहां दुःखी रहते हैं आवश्यक सुविधाएं प्राप्त न होने से ३०८; में कुढ़ना और शिकायत करना ३४८, ४५१
-प्रॉस्पेरिटी से चीजें मांगना २००, २१३
में रहने की अनुमति २२२अ, २२४, २४८; 'स्त्री-बच्चों को लाने की स्वीकृति ३१८, ३३७; 'स्थायी होने की आशा ४४८; (क्षय-ग्रस्त नये व्यक्ति को रखना २८६; 'हमें 'बड़े लोगों' की जरूरत नहीं २९६; 'हमें प्रवक्ताओं की जरूरत नहीं ४५३)
का काम और शक्ति के प्रति ग्रहणशीलता २२५, २७१, ३५७; 'काम मेरे अधिक नजदीक आने में सहायता देगा २६८; में जो काम दिया जाता है उसके साथ बल और कृपा भी २७१; 'काम कम करना २७७, ३२६, ४०३; 'कार्यकर्ताओं और कार्य में ह्रास २९१; 'इच्छुक कार्यकर्ता और अधिक दाल-तेल की मांग ३१०; 'काम हम नहीं प्रभु करते हैं की भावना ३११; 'कोई सच्चा काम तबतक नहीं किया जा सकता . . . ३१२; 'कम लोग हैं जो सच्चाई के साथ काम करना चाहते हैं ३३७; 'शायद कुछ लोग कड़ी मेहनत करने की आवश्यकता के प्रति जाग जायें ३५७; ओरोवीलवालों जितना काम करनेवाले ज्यादा नहीं ३८१अ
('काम की व्यवस्था की जिम्मेदारी २७९-८०; काम देते समय दो बातों का ख्याल ३७३)
में आयुर्वेद का औषधालय खोलना २६१-२
और लोकोपकार का काम २६२
का आध्यात्मिक कार्य तक अपने-आपको सीमित रखने का कारण २६२
और राजनीति २६४, [२६३]
में जब शारीरिक शिक्षण . . . २७०; 'क्रीड़ांगण में चुप रहने की सूचना २७१
की स्थिति के बारे में निराशाजनक दृष्टि २७३, ३१६, ३६१; 'हम जितना कर रहे हैं उससे ज्यादा करने की स्थिति में नहीं हैं ३०८; 'स्थिति सुधरी नहीं ३३७; 'परिस्थितियां कठिन हैं ३४१; 'मानव आवेग जब काम चलाते हों . . . ३५७; में माताजी ने हमें स्वर्गिक परिस्थितियों में रखा है ४५१
में अव्यवस्था [अस्तव्यस्तता] २७३, २८६, २९१, ३०१, [३०३अ, ३०५] ३४४अ, [३९६अ] ४००, ४३९
के किसी व्यक्ति या चीज के बारे में कहने के लिये कोई अच्छी बात न हो तो चुप रहो २८३

में हिंदी २८८, २९५
में झगड़ा और मारपीट २९०-१; 'तीन-चार व्यक्तियों में घनिष्ठ शत्रुता २९९अ
के फाटक पर नवागंतुकों के बारे में कठिनाइयां २९२
'आर्थिक कठिनाई [संकट] २९६-७, ३०३, ३२४-५; को आर्थिक बरबादी की ओर ऐसी चीजें ही लिये जा रही हैं ३०५अ
'यहां लोग अपनी चेतना बदलने के लिये हैं ३१२; (उन्हें दिव्य जीवन के लिये तैयार करना है हमारा उद्देश्य ३०८)
पर आक्रमण (फरवरी १९६५ में) : ३१२-४, के बारे में माताजी का वक्तव्य ३१४, और महाकाली ३१५-६
की स्थिति पांडिचेरी में ३१४
'हम किन चीजों के विरुद्ध नहीं, और किन चीजों के विरुद्ध लड़ रहे हैं ३१४
'हम धरती पर जिन चीजों को स्थापित करना चाहते हैं ३१४
और दक्षिण भारत ३६८
में शांति और सामंजस्य का राज्य हो ३७९; में मैत्रीपूर्ण भावना के सिवाय कोई और मनोवृत्ति लज्जाजनक . . . ४५६
'फर्नीचर बेचना ३९६
की आवश्यकताओं को प्राथमिकता ३९६
'फर्नीचर विभाग से ऊलजलूल मांगें ४०१
की पुनर्व्यवस्था के लिये धन की जरूरत ३९९
में विवाह की अनुमति क्यों ? ४१५
में 'बड़ा दिन' क्यों मनाते हैं ? ४१५-६
'समाधि पर जाना ४२७
आश्रम ब्लांशिसरी
'कर्मचारियों की संख्या और लेबर इन्सपेक्टर ३३९अ
'नवागंतुक के कपड़ों की पर्ची ३४३अ
'कार्यकर्ताओं के अविश्वास को कैसे हटाया जाये ? ३५०अ
आश्रम भोजनालय
में पंखे २८९
का भोजन और आर्थिक संकट ३०३
'खाद्यान्न का वितरण ३१०
'कच्ची तरकारी ले जाने के लिये नौकर ३१३अ
'नारियल के तेल की जगह मूंगफली का तेल ३१६, ३१८
'पकाने के लिये अकलुष इस्पात के बरतन और अल्यूमीनियम के बरतन ३१८-९
'मिर्च-मसाला ३२१, [३०७अ]; 'कठिनाई भौतिक की अपेक्षा मानसिक ज्यादा ३२१
'आटे की चक्की ३३२
'दूध की कमी की समस्या ३३४; 'दूध कैसे दिया जाये ? ३४२अ
'शिकायत कि रसोई पकानेवालों को आवश्यक चीजें नहीं मिलतीं ३४०-१
का टिकट ३४४अ
'शक्कर की कठिनाई ३५५, ३५९
के कार्यकर्ता एक निरीक्षक के व्यवहार से असंतुष्ट ३५६-७
'चटाई की प्रथा जारी रखें या . . . ३५७अ
के साथ एक और रसोई (कॉर्नर हाउस) ३५९अ
का काम ३६४
'अतिरिक्त दूध और तरकारी की मांग ३७५अ
तरकारियां मुश्किल से मिल रही हैं ३७६
(दे० 'भोजन' भी)
आश्रम विद्यालय
'विद्यार्थी की जांच परीक्षा के बिना ३६१-२
'विद्यार्थी पर गृह-कार्य का भार ३६५
बदल लें वे अगर वे यहां ऐसी कोई चीज नहीं सीख सकते जो . . . ३६७
'भीड़ की अपेक्षा चुने कुछ लोग . . . ३६७
'विद्यार्थियों का 'सामान्य ज्ञान' ३६७-८
'किन विद्यार्थियों की जरूरत नहीं, और

किन्हें चाहते हैं हम ४२७अ
'छुट्टियों में बाहर जाना ४४५-६, ४५४
की एक कक्षा का कार्यक्रम ३९१
'कक्षा योग-समन्वय की: ३९१, में समाधियों के बारे में ३९३
'कक्षा कविता की, और प्रेम की कविताएं ३९२-३
'कक्षा दर्शन और कविता की, में स्पष्टीकरण के लिये अन्य कवियों और दार्शनिकों के उद्धरण देना ३९४
'कक्षा योग-समन्वय की (माताजी की) ३९५
आसक्ति १५३, ४४०
से पीछा छुड़ाने के लिये ७३
योग के विपरीत है ९९
पैदा करता है स्नेह ९९, १००
खतरनाक है क्या ? १९०अ
भावात्मक और प्राणिक १९१
की अभिव्यक्ति : मतलब १९१
(दे० 'अनासक्ति' भी)
आह्वान दे० 'पुकारना'

इंकार करना
मन का, प्राण से प्रभावित होने से ८२
विरोधी सुझावों पर विश्वास करने से १०४, १६९
ऐसी हर चीज से जो मन में रोग को सहारा दे १२४
कोई भी ऐसी चीज करने से जो भगवान् से दूर ले जाये १२६
(दे० 'त्याग' भी)
इच्छा
अपनी, को औरों पर थोपने का अधिकार ६, ८०, ३७८
केवल भगवान् की का पालन, और किसी की नहीं २६
एक व्यक्ति की, का दूसरे पर प्रभाव ८०, ८२
करो [कर के] ८४, १००, १०३, १०४, [११२], १८९
करो इसकी आग्रह के साथ १११, १३३, १४७
निष्कपट, तो माताजी की शक्ति सहायता रूप में १२१
अगर है तो अंततः वह सफल होगी १२२
और अभीप्सा १८२
पवित्रतम, के अनुरूप क्रियाओं को बनाना १९०
इस या उस प्रकार का होने की २४३
अपनी, की विजय की अपेक्षा सामंजस्य के लिये परवाह ३३२
अपनी, पर नहीं, भगवान् की इच्छा पर निर्भर ३६३
केवल भगवान् की ओर मुड़ने की ४१९
(दे० 'इच्छा-शक्ति', 'भागवत इच्छा', 'चाहना' भी)
इच्छा-शक्ति [इच्छा] ४४, ७४
अथक ७८; दृढ़ और सतत १७९, १८०, २१०; शांत और दृढ़ ३०४
मजबूत, होना अच्छा है ८२, ८३
को मजबूत बनाने के लिये ८४; को मजबूत बनाना होगा १४०, १७८, १८९; मजबूत, से लैस १९५, [१९९]
को प्रशिक्षित करना ८४, १९७
की बात है यह (करना) १४०; में हमेशा शक्ति २४७
अपनी, लगानी होगी १५९, १६०, [१८२, १९५] २०९, २१६
तुम्हारी अपनी, के सिवाय कोई चीज तुम्हें मेरा बालक और वफादार सेवक होने से नहीं रोक सकती १७३
द्वारा अभीप्सा की अग्नि पर दृष्टि रखना २०२
का प्रयोग सोने से पहले २१०
का उपयोग प्राप्त किये को संजोये रखने के लिये २१३

द्वारा अपने-आपको नीचे खींचे जाने से रोकना २१५अ
है किसलिये ? २१६
(दे० 'निश्चय' भी)
ईमानदारी ११७, २८३
और व्यापार ३०८
की कमी ३९७
ईर्ष्या ८६अ
से पिंड छुड़ाना कैसे ? २६
से मुक्ति ८०
विश्वास में बदल जाये ९६
के बारे में दुःखी १०१
से सावधान २५४
ईसा केवल विभूति थे १३७

उचित
और अनुचित गतिविधि २४, [२१]
वृत्ति दे० 'वृत्ति'
और ठीक जो है वह किये जाओ भविष्य की बहुत चिंता न करो ३१०
वस्तु करना दूसरों की और परिणामों की परवाह किये बिना ४३९, [३०२]
उच्चतर चेतना में उठने के लिये ६४
उत्सर्ग [आत्मोत्सर्ग] ११२, १५५, २६९
उदारता ३९, [४१२]
उदासी दे० 'अवसाद'
उदाहरण
बुरे, का अनुसरण न करो १२८
बनकर ही औरों की सहायता . . . ४२६
उदाहरण
जैसे मांसपेशियों को प्रशिक्षित . . . ८४, ९७; जैसे बच्चे को प्रशिक्षित . . . १७१
विद्यार्थी अध्यापक से : गृहकार्य नहीं किया क्योंकि अवसाद में था १३७अ
वहमी, हमेशा नाड़ी की जांच कि उसे बुखार है या नहीं १३८
समुद्र में डूबा हुआ और पानी की कमी की शिकायत १७४
स्नेह से भरे शब्दों का आदान-प्रदान या संवेदी हाव-भाव जैसे हाथ पकड़ना, प्यार से सहलाना १९१
राई से पहाड़ १९५, १९७
'क्ष' योग करना चाहती है, यहां आने की अनुमति नहीं मिली, विवाह के लिये बाध्य किया जा रहा है, क्या करे ? २२२-३
जैसे तुम किसी कमरे की हवा में सांस लिये बिना प्रवेश नहीं कर सकते २५४
दिमाग चल जाने के कारण जिसे आश्रम से भेजा गया और मना करने पर भी वापस आ गया २६१, २६५
स्त्री जो पागल हो गयी उसे बलपूर्वक निकालना . . . २८८
आदिम मानव और उसकी गुफा की ओर वापस जाने के जैसा २९०
एक गुरु के दो शिष्यों (दाएं और बाएं पांव की सेवा करनेवाले) की कहानी २९२-३
'क्ष' अपरिपक्व है, अहंकार बहुत है, उस की महत्त्वाकांक्षा का उपयोग . . . २९६
भूकंप, सूखा, बाढ़ आदि के समय राहत-कार्यों के लिये बचत . . . २९७
ठंडे पानी का फव्वारा ३००
लुधियाना के एक वृद्ध सज्जन को डॉक्टरों की शल्यक्रिया की सलाह ३०३
'क' का यहां रहना अवांछनीय क्यों जब कि वह इतना काम करती है ३०५
एक स्त्री को आश्रम में रहने की स्वीकृति नहीं मिली, परंतु 'क', 'ख', 'ग' इस मामले में पड़े . . . ३०५
आश्रम का एक लड़का अपने नातेदारों के साथ मिलकर निजी कमाई में लगा है ३०५
लुधियाना में श्रीअरविंद सोसायटी की ओर से एक विद्यालय खोलने का प्रस्ताव ३०६, उसका नाम श्रीअरविंद विद्यालय . . . ३२५
संन्यासी-चोला छोड़ चुके एक आश्रमवासी

के ध्यान में सांप व जंगली जानवर ३०६
'क' कमजोर होता जा रहा है, काम बदलना चाहता है ३१२
एक बूढ़े सज्जन को आश्रम में रहने का अवसर ३१७
एक सज्जन काम बदलना चाहते थे, पर चाहते थे कि विभागाध्यक्ष से कहा जाये कि यह माताजी की इच्छा थी ३३७
एक गुजराती पति-पत्नी एक वर्ष रहने के लिये आये हैं... जबतक काम करते रहें खाना दिया जा सकता है ३४४
कहानी एक सेठ की: दस रुपये से अधिक की भेंट उसकी गरीबी इजाजत न देती थी, रास्ते में उपद्रवियों से छूटने के लिये उसने ५०० दिये ३४७
क्या तुम अंधे को दिखला सकते हो? ३५१
साधक के नाम तार कि घर पर कोई सख्त बीमार है ३५१
'क' को अकेलापन... कभी शादी की सोचती है कभी लगता है उसका स्थान आश्रम में है ३५८
'क' योगी के रूप में यूरोप में लोकप्रिय ३६८
माताजी के हिमालय के बगीचे से आनेवाले फल रास्ते में कहीं इधर-उधर ३७६
बाहर कॉलिज के एक विद्यार्थी को माताजी की फोटो पर ध्यान एकाग्र करने पर उनके प्रति लड़के-लड़की का-सा आकर्षण ३८१
मरते हुए मनुष्य का उपचार करने से ज्यादा कठिन ३९८
'क' की आंखों में भेंगापन, शल्यक्रिया की सलाह, माताजी के निर्णय की चाहना ३९८अ
बादल और सत्य का सूर्य ४३४
सिद्ध-पुरुष जो शरीर त्याग चुके हैं धरती पर शेरों और सांपों के रूप में... ४३६
बच्चे को देखकर, छोंक देते समय, पकाने के समय... किसी की नजर... ४४१
दो रिश्तेदार जिनकी नहीं बनती उन्हें क्या एक ही मकान में... ४४४
पुणे की अध्यापिका: शादी कर ले या साधना-मार्ग ले? ४४६
वह हमेशा वहां होना चाहता है जहां वह नहीं है ४४७
साधना-पथ में पत्नी बाधक ४४९
'क' द्वारा रोडेशिया से विदेशी मुद्रा की तस्करी ४५३, ४५४
'क' को आध्यात्मिक अनुभूतियां और बाहरी जीवन में बुरे अनुभव ४५४अ
अमरीकन महिला अतिथिशाला के लिये समस्या... ४५५-६

उद्घाटन [खोलना, खुला होना] ५, १८६, २१०
प्रकाश के प्रति ११, ४११
भागवत चेतना के प्रति २९, ३३, [६२] २७२
माताजी के प्रति ३०, ३१, ४०, १८७
माताजी की शक्ति के प्रति ३०, ३३, ६४
'खुलता कैसे है व्यक्ति? ३२, ४०, [२०९]
दूसरे के प्रभाव के प्रति ८२
प्राणिक संपर्कों के प्रति ९२, ९३
केवल भगवान् की ओर १२१
हृदय का १४७, १९७
बंद दरवाजे २४७

उपन्यास दे० 'पढ़ना'

उपलब्धि
-यां पार्थिव: मतलब २४४
एक सुंदर के सामने (हैं हम) २९७
उच्चतम ४२८
(दे० 'भागवत उपलब्धि', 'संभावना' भी)

उपस्थिति दे० 'माताजी' की उपस्थिति, 'भागवत उपस्थिति'

उपहार जरूरी नहीं कि भौतिक हों २५१

ऊर्जा
और संकल्प की एकाग्रता ४९

'जीवन-ऊर्जा ६२अ
और शक्ति का अपव्यय १३२
-ओं को इकट्ठा करो, एकाग्र होओ ४११
अक्षय, का उपयोग करना ४४९अ

एक देवता का श्रम
में रजत-शून्य, स्वर्ण, नील, स्वप्न के अर्थ ४१३

एकांत
में जाने की इच्छा १५९-६०, १६१, १६४, १८५, १८५अ
चैत्य चेतना के, में प्रवेश करो १५९
से अगर तुम्हारा मतलब १६०
को तुम्हें अपने अंदर पाना होगा १८५

एकाग्रता [एकाग्रचित्तता, एकाग्र होना] ३१, १०३, १६०, २१४, २१९
किसी विचार या शब्द पर ४६
संकल्प और ऊर्जा की ४९
भागवत उपस्थिति पर ७७; भगवान् पर २१६; भागवत चेतना पर ऐकांतिक रूप से २७५; भागवत उपस्थिति पर निरंतर ३३७
सच्ची, और प्राणिक अतृप्ति की ११०
और माताजी की उपस्थिति १२९; और माताजी की ओर मुड़ना २११
पढ़ाई पर : परिणाम १३१, १३९; और पढ़ाई २११
धैर्यपूर्ण, और चैत्य संपर्क १५६
हृदय में, और चैत्य की खोज १५७
और चैत्य चेतना को पाना १६२
निम्न प्रकृति पर, अच्छा नहीं १६५
उस चीज पर जिसे तुम विकसित करना चाहते हो, उस पर नहीं जिसे तुम नष्ट करना चाहते हो १६५
चैत्य चेतना पर, और प्रेम १७९
'एकाग्र किस तरह हुआ जाये ? १८९
के बिना तुम कुछ नहीं कर सकते २२०
काम पर २२८
अंदर की चेतना पर ध्यान के लिये ४११
की नीरवता में रूपांतरों को प्राप्त . . . ४२२
के समय नीरव रहना ४२८

एडवेंचर ऑफ कॉनशसनेस ३९८

ऐक्य दे० 'तादात्म्य', 'भगवान्', 'माताजी'

ओरोवील
में ओरो स्टील नामक कारखाना ३७९
में मुनाफा नगर को मिलेगा ३७९
के लोगों का काम ३८१अ

औषध दे० 'दवाई'

कक्षा दे० 'आश्रम विद्यालय'

कटुता ३५३-५, ३८४

कठिनाई [बाधा, मुश्किलें, विपदा] २५, ६३, १२२, १४५, १८५, २०७, ३१२, ३७५
और अवसाद १४४
को जीतने के लिये १४४, १९१अ; बड़ी-से-बड़ी हमेशा बड़ी-से-बड़ी विजय लाती है ३४१; -यों पर विजय पाने के लिये क्या हम यहां नहीं हैं ? ३६४
जल्दी खत्म तब १५२, [२७२, ४३५] ४३६, ४५४
-यां जबतक दूर न हो जायें शांति के साथ अभीप्सा करते जाओ १७०
और दुःख-कष्ट १८७, २०८
-यों से अभिज्ञ, पर इनपर विजय का बल क्यों नहीं ? १८९ दे० 'गलत' भी
-यां और भागवत कृपा १९७
-यां और योग २२२अ
काम में : ठीक वृत्ति २७४, ३४०
-यों में मदद इससे २८०
में सतर्क श्रद्धा की जरूरत ३०४
-यां श्रद्धा की कमी से ३२०
का हल पाने का सच्चा तरीका ३२१

'सहायता के लिये श्रीअरविंद को पुकारो ३५३
'हम कठिन समय में से गुजर रहे हैं, जो स्थिर रहेंगे वे पहले की अपेक्षा ज्यादा मजबूत होकर निकलेंगे ३७४
नयी सृष्टि की प्रसववेदना ३७८
-यों अधिकतर, का कारण ४२५
'बादल आते हैं, छंट जाते हैं ४३४
-यां मनोवैज्ञानिक, समता के अवसर ४४४
-यां आशीर्वाद होती हैं बशर्ते कि हम उनका सामना करना जानें ४५१
का सामना दे० 'स्थिति'
-यों को आकर्षित करता है भय ४५७
कपट १९३, ४००
(दे० 'ढोंग', 'सचाई' भी)
कमजोरी दे० 'दुर्बलता'
करना [करो] ३११, ३६३
अपना अच्छे-से-अच्छा: ८७, [१९५] २७८, ३५५, ३६४, और परिणाम . . . २९५
वही जो तुम्हारे अंतर की गहराई से आये ९०, ३६४, ३७१, ४४९; अपनी सहजवृत्ति के निर्देशानुसार १०९
जब कुछ हो तो दो उत्तर: मत करो, इसमें कोई हर्ज नहीं—कौन निश्चय . . . १०१
क्या चाहिये और क्या नहीं मुझे बताइये मैं प्रयास करूंगा १२२अ
वही जो मैंने समझाया था १५७
की अनुमति न दो उस चीज को जिसे न करने का तुम निश्चय कर चुके हो १९७
जो तुम्हें है वह सरलता और सचाई के साथ करते चलो, प्रतिक्रियाओं की परवाह न करो ३०२; करते हम वही हैं जो करना चाहिये परिणामों की परवाह किये बिना ४३९
'करने लायक चीज अभियोग लगने पर ४३३
(दे० 'काम', 'चीज', 'प्रयास' भी)
कर्मचारी
-यों के बारे में शिकायतें ३३६
(दे० 'आश्रम ब्लांशिसरी' भी)
कलियुग १८३अ
कल्पना
मानसिक, प्राणिक, चैत्य १२५
ऐसी चीज की नहीं कर सकता मनुष्य जो . . . ३६१
(दे० 'रोग' भी)
कविता ३९२-३, ३९४
कहानी
-यां पढ़ना दे० 'पढ़ना'
-यां लिखना १२३
प्राणिक सत्ताओं और भूतप्रेतों की १६८
का प्रकाशन २६३
काम [कार्य, कर्म] १२१
में थकान और भागवत शक्ति पर श्रद्धा १८-९, [२७०अ]
करने से पहले पूछना: भगवान् इसे पसंद करेंगे या नहीं २१अ, [१४०]
सब, भगवान् तुम्हारे द्वारा करते हैं तभी २४
करते हुए पीछे भगवान् की चेतना ३६
जल्दबाजी में ४१, ३४१
का समर्पण ६६, २३५
'किसी चीज को सोचे बिना करना ९७, [१४०]
कोई ऐसा, न करो जिसे मेरे सामने करने में लज्जा आये १०७ दे० 'चीज' भी
कर सकोगे माताजी की इच्छानुसार १३०
में रस १५१
करना हर क्षण उत्तम रूप में १९५
केवल अपने, पर एकाग्र १९९
निस्पृह, २०६
जब कोई किसी के लिये करता है तो उसके साथ एकात्म होना जरूरी है क्या? २२०
नियमित रूप से आठ घंटे २२५, २९६
अच्छा, चेतना के परिवर्तन से २२५
सीखना और नम्रता २२६, [१३१]
में आज्ञापालन २२८

के बारे में सोचना सारे समय २२८

ठीक तरह न चलने का कारण २३०

करती हूं जो 'तुझे' समर्पित नहीं होते २३५

और प्राणशक्ति २३८

अनुवाद का, इस हदतक कि तुम उसी में डूब न जाओ २६२; यहां से प्रकाशित अनुवाद का ३७६

चुपचाप करना २६८

में बाहरी मन के हस्तक्षेप के बिना सहज रूप में चैत्य गतिविधि को प्रकट होने दो २६९

में बाहरी उत्सर्ग के साथ-साथ आंतरिक उत्सर्ग भी २६९

में कठिनाइयां : ठीक वृत्ति २७४, ३४०

करना किसी चीज से विक्षुब्ध हुए बिना २७४

हर एक अपना, अधिक-से-अधिक क्षमता के साथ करे २८०

अपना, शांति से करते चलो २८९

और 'बड़े लोग' २९६

को ज्यादा अच्छा बनाना संभव है ३०३

(विभाग का), बुरा तभी जब शीर्षस्थ व्यक्ति में उचित चेतना का अभाव हो ३०४

कोई ऐसा, नहीं जो स्वार्थ से बच सके ३३५

और भाव (वृत्ति) ३३९

सामंजस्यपूर्ण, और कठोर नियम ३४०

उत्तेजित, में अपने-आपको फेंकना ३४३

में सच्ची समता की ओर ३४७

के लिये बड़ी योजना से ज्यादा अच्छा ... ३५०

जहां कुछ, करना हो, वहां उसके बारे में जितना ही कम बोला जाये ... ३५८

शारीरिक, के योग्य नहीं रहा शरीर, तो आंतरिक काम ... ४०५अ

से साधन को जब अधिक महत्त्व ४३६

की आवश्यकता की ऊंचाई तक उठना ४४९अ

या वातावरण को बदलने की जगह प्रकृति को बदलना जरूरी ४५०

(दे० 'करना', 'भागवत कार्य', 'आश्रम' भी)

कामना [लालसा] ३१, ५०, ५२, ५४, ६१, ८३, १५४, १५८, १७९, १८५

-ओं के स्वामी कैसे बनें? २७; -ओं पर प्रभुत्व जब १४६

-एं तब गायब २८

से कैसे पिंड छुड़ाएं? २९अ, ४१अ, [१३९]

बन जाती है वह विकृत होकर ५१

का त्याग जब ७९

-ओं को मर जाने दो १२२; -ओं को छोड़ना होगा १६०

-ओं को छोड़ने के लिये जब प्राण से कहा जाता है १२२, २६०

-ओं (निष्फल), से आता है दुःख १६०, [१५८]; और दुःख-कष्ट २०८

सहायक थी, कामना बाधक है १६६

और आनंद १६६

-ओं अपनी, की संतुष्टि में माताजी के दिये बल और शक्ति का दुरुपयोग १९४

-ओं की संतुष्टि ... अंतरात्मा से दूर ... २३३

चीजों की, और उनसे झिझक ३७३

(दे० 'इच्छा', 'आवेग' भी)

काली दे० 'महाकाली'

काली पूजा ४२४

कालेलकर (काका) २६३

काश्मीर का झमेला ३२२

कीर्ति प्राप्त करानेवाले गुण १४

कुटिलता ४३३

कुरुक्षेत्र

के युद्ध में एक ओर धर्म और दूसरी ओर अधर्म? १४

कृतज्ञता १५७, ४२६, ४४३

क्या है? ४३

को आने से रोकनेवाली चीज १५८

कृपा दे० 'भागवत कृपा'

केंद्रीय सत्ता
क्या है ? ३१, १४५
को भगवान् के अर्पण कैसे . . . ? ३१
ने जब समर्पण कर दिया तो मुख्य कठिनाई चली गयी १४५
केल्क रेपाँस ३३५
कौर्नेई की भाषा २०४
क्रिया [क्रिया-कलाप, गतिविधि]
अपनी, को देखना ७ दे० 'अवलोकन' भी; -ओं अपनी, का अवलोकन और उन्हें ठीक करना ४२४अ
उचित और अनुचित २४, [२१]
न करना कामनाओं व आवेशों के अनुसार २७, [१३४]
-एं आंतरिक, कौन-सी हैं ६६
गलत दे० 'गलत'
-ओं का अर्पण १३० दे० 'अर्पण' भी
-एं मेरी, आपके साथ समस्वर कब ? १३९अ
करना दे० 'काम' करना
बाहरी, से अलग करना सीखना होगा १६४
के बीच अग्नि को प्रज्वलित रखना १८६
-ओं को उच्चतम अभीप्सा के अनुरूप बनाना १९०
हर, इस योग में जिस अभिज्ञता के साथ २००
मानसिक दे० 'मन'
प्राणिक दे० 'प्राण'
आध्यात्मिक जीवन की २३१
अगर तुरंत, करो माताजी से अलग करनेवाले प्रभावों पर . . . २३३
-एं ऊंची और नीची का विश्वास ३६३
-ओं और प्रतिक्रियाओं (अपनी) पर नियंत्रण का अभाव ४२५
सबसे अधिक शक्तिशाली, नीरवता में ही ४२९
(दे० 'सत्य' भी)

क्रोध [गुस्सा] ३१, ५४, ९६
'अपना-आपा खोना कमजोरी है ४१४
जबतक उत्तर न जाये शांत रहो ४१४
'झल्लाओ मत, जब चीजें या लोग वैसे न हों जैसा तुम चाहते हो ४२५
क्षमा १५, २७३, ३९४, ४०६, ४३५
क्षोभ [विक्षोभ, क्षुब्धता]
'विचलित : होना १०९, ११४, कोई चीज या व्यक्ति न कर सके इसके लिये ११५अ, नहीं होना ११७
'क्षुब्ध न होना ११०, १३७, २१०, २७८; परेशान न होना १४२, ३५९
का कारण ११९, १४२, १४९अ, २६७; खलबली का कारण २१७
से बचने (दूर करने) का तरीका १४२, २२३, २६७
की ओर मोड़ दो अगर अपना ध्यान १४९
और अधैर्य सहायता न देंगे १५२
'विक्षुब्ध हुए बिना काम करना और हर चीज को देखना २७४
के स्पंदनों के स्थान पर . . . २९९
'कुढ़ना और शिकायत करना ३४८, ४५१
और विरोधी शक्तियां ३८६, ४३३
'झींखने का स्वभाव ४४५
(दे० 'अशांति', 'बेचैनी' भी)

खेलना [खेल-कूद]
'कंचे खेलना प्रणाम के पहले २१४
और यह योग २१८अ
और प्राणिक आमोद २१९
खोज
में बड़ा आनंद है ३३५
(दे० 'भगवान्' भी)

गतिविधि दे० 'क्रिया'
गलत
क्रिया से तुरंत सचेतन होने के लिये ७

क्रिया या मजाक को अनुभव करना ३४
गतिविधियां ठीक गतिविधियों में कब बदल सकती हैं? ३८
गतिविधि को रूपांतरित करने में शक्ति का उपयोग १०१
रास्ते पर चलने में मजा लेती है कोई चीज मनुष्य में १२०
गतिविधि से बचना १४०
क्रियाओं से अभिज्ञ हूं, पर उन्हें वश में नहीं कर पा रहा १५९ दे० 'कठिनाई' भी
स्पंदनों को ठीक करने की शक्ति जबतक न पा ली हो तबतक दूसरों के वातावरण को अनुभव न करना अच्छा १७९
सुझावों को झाड़ फेंको १९०
(दे० 'बुरी', 'भूल' भी)
गलती [त्रुटि] दे० 'भूल'
गीता ३९२
गीता-प्रबन्ध १२, १४
गुण (धैर्य, स्थिरता . . . आदि) ३०४
कीर्ति प्राप्त करानेवाले १४
काम का निरीक्षण करने के लिये २२५
जो उपलब्धि के लिये आवश्यक २२९
गुरु
अपनी इच्छा शिष्य पर आरोपित . . . ८०
के आदेश की अवज्ञा . . . १९०
के चरण छूना ४४४
गुरुकुल (कांगड़ी) २६१, २६५
गोलकुंड २२५टि०
का काम २२५अ
के काम में असामंजस्य और उपचार २३०
ग्रहणशीलता [ग्रहण करना] १४२, १५७, २०९, ३७०, ३७१, ४१६, ४२०, ४२९, ४४७
जानते हो, रखना नहीं जानते १३२
खो बैठना १३२, २७१
निश्चल-नीरवता में १६६, १८८
के लिये प्रतीक्षा करना १८४
प्रकाश को १८८
और भागवत कृपा १९८
और आश्रम का काम २२५, २७१, ३५७
शरीर की दे० 'रोग'
सभी परिस्थितियों में, विशेषतः आराम के समय ३५७

घटना
-चक्र को बदलना ७०, [२४७]
(दे० 'चीज', 'स्थिति' भी)

चक्र [ग्रंथियां]
टूट जाती हैं या खुल जाती हैं? ४४१अ
चमत्कार [२८८अ] २९३, २९५, ३५०, ३५५, ३६१
चरण
छूना ४४४
जहां कहीं वे धरती हैं . . . ४४४
-ों अपने, से जीवन के पीड़ादायक कंपनों को स्वस्थ कर दे ४४४
चाहना
तीव्रता से ७, ८
निरंतर ७४
निष्कपट रूप से और पूर्ण रूप से ११८
भागवत जीवन के सिवा और कुछ नहीं १२२
वही, जो भगवान् चाहते हैं २४३, ४२७, ४२९
(दे० 'इच्छा', 'अभीप्सा' भी)
चिंता [४५९], परेशानियां १७८
मत (न) करो १०८, १५९, १७०, [१७१], १७७, २४९, २५१, २५३, २५५, [२७८], ३३५, ३७८, ४०५
करना अपने बारे में बहुत अधिक २५५ दे० 'सोचना' भी
न करो भविष्य की ३१०
चित्त ५३
चित्र
लड़की का, सिंह की पीठ पर हाथ १७

शिकारियों के १७
हंसती हुई बिल्ली का ३८७
चित्र [सिनेमा] देखना १३२अ, ४१४
चीज [वस्तु]
कोई, ऐसी न करना जिसे मैं पसंद नहीं करती ५; किसी, को अपने अंदर सहन न करो जिसे तुम बिना भय के न दिखा सको १०७; ऐसी कोई भी, करने से इंकार करना जो भगवान् से दूर ले जाये १२६; ऐसी हर एक, से बच कर रहना जो चेतना को नीचे ले जाये १९२
˜ आसान हों, यह क्यों चाहते हो ? २२
-ें उच्चतर, को बुलाना २६
किसी, को अपना न मानना २६
'मांगना अच्छी चीज नहीं ३९
-ें इन दूसरी, में रस न लो ४१
खो देने या तोड़ देने पर क्या बेचैनी और दुःख होना चाहिये ? ५८अ, १४८; -ें भौतिक, की देख-रेख न करना १४८; -ें भौतिक, में भागवत अंश १४८; -ें को नष्ट करना २१३
-ें को केवल उसी तरह देखना जैसी वे बाहरी मन या इंद्रियों को दीखती हैं ६४
˜ लेना किसी से योग में ६५अ
˜ भूल जाना ७६
-ें छोटी-छोटी को महत्व न दो ८७; ˜, कितनी छोटी-छोटी ! ४५२
हर, से मुंह मोड़ लो उसके सिवा १२२
तुम पर क्या असर डालती है उसी के अनुसार निश्चय करो १३३
˜, बहुत कम की जाती हैं भागवत इच्छा के अनुसार १३५
रुचिकर बन जाती है जब उसे ध्यान से करते हो १५१
-ें जड़-भौतिक, में हर जगह अंधकार १६३
कोई भी नुकसान न पहुंचा सके इसके लिये कैसी वृत्ति अपनानी चाहिये ? १६७
बुरी, का पूर्वाभास १७०अ
-ें अवांछनीय, को बार-बार करना १९३
-ें अवांछनीय, के बीज पनपने से पहले मर जाने चाहियें १९७
प्रत्येक, को उसके सच्चे स्थान पर रखना २१४
कोई अपरिहार्य नहीं, हर क्षण हस्तक्षेप हो सकता है २४७
कोई ऐसी, नहीं जो प्रगति का अवसर न बन सके २५३
˜, इतनी खराब नहीं जितना तुम सोचते हो २७३
किसी भी, से विक्षुब्ध हुए बिना काम करना और हर चीज को देखना २७४
को शांति से लो २८९; को मुस्कान के साथ लो ३०५; ˜ ये सब, हमें यह शांत श्रद्धा सिखाने के लिये आती हैं कि . . . ३५९
जो, आये उसे स्वीकार कर लो, अगर जाये तो छोड़ने को तैयार २८९; -ें से झिझक उतनी ही बुरी जितनी कामना ३७३
˜ जब गलत होती जा रही हों तो . . . ३०५; ˜, बद-से-बदतर हो रही हों जिस समय ३६४
जिस, की सचमुच आवश्यकता होगी वह अवश्य आयेगी ३१०, ३५९
˜ ज्यादा निश्चित रूप लेंगी ३४८
˜ या क्रियाएं ऊंची-नीची का विश्वास ३६३
कोई भी, परम प्रज्ञा का यंत्र बन सकती है ३६८
'ऐसी बात लिखिये जिसे मैं सारे साल याद रख सकूं ४११
˜, जो आज नहीं कर सकती, एक दिन कर सकोगी नियमित, आग्रहपूर्ण प्रयासों से ४२६
-ें सभी, में भगवान् से प्रेम ४२७
˜ घटती हैं क्योंकि उन्हें घटना होता है ४४८
हर, परम प्रभु की चरम विजय की ओर ले जाती है ४४८, [३२२]
जैसी हैं उस रूप में उन्हें स्वीकार करना सीखना होगा ४५१

(दे० 'करना', 'सोचना' भी)
चीन
का बना कलम माताजी को उपहार २८०
का आक्रमण भारत पर २८१
चुनाव
शरीर ग्रहण करने या न करने का १३८
अनिवार्य है—सत्य या रसातल ३५२
चुप रहना १२, मौन १८१, २५४
पूरे दिन, जरा ज्यादा है ११, [१६५]
एकदम, की अपेक्षा वाणी पर संयम ११
'चुपचाप बैठना आराम करना है २०
अनुभूति के बाद २६
देश की वर्तमान स्थिति में २८१
जब कहने के लिये अच्छी बात न हो २८३
भगवान् के प्रति निष्ठा, ईमानदारी है २८३
'उत्तर न दो जब कोई अप्रिय चीज कहे ४२५
चेतना १५, २६, ४३, १९५, २४२, ३१४
जो गलत क्रिया से रोक दे ७, ७अ
का विकास : परिणाम ११, २२, ३०, ७६, १०८, ११७, १३३; नीरवता में बढ़ती है ४२९
को शुद्ध, सरल, प्रकाशमय रखना २९
चैत्यरूप से संवेदनशील ३४
की ऐसी स्थिति जिसमें पढ़ते या काम करते हुए पीछे भगवान् की चेतना . . . ३६
साधारण ५२, ६१, [१८४]
आंतरिक, जब रिक्त और विश्राम में ६१; आंतरिक, को विकसित करने में लगाओ समय को ४०६
विशाल [विस्तृत] ६४, ९६
में ऊपर उठना ६६, [९३], ११५, [१३४], १४४, १८४, १८९, ३३३, ४२९
को नीचा न करने के लिये ९४; सामान्य, में न गिरने के लिये १५३
मेरी, बहिर्मुखी क्यों हो गयी ? ९७
को भगवान् की तरफ मोड़ना १०२; को माताजी की ओर मोड़ना १६१; भगवान् की चेतना के साथ एकात्म २४१
को आध्यात्मिक जीवन में वापस लाना ११६
को बदलो १२१; का परिवर्तन और अच्छा काम २२५अ; का परिवर्तन योग से २२६; जबतक नहीं बदलती तबतक कुछ नहीं किया जा सकता ३०३
को सब प्रभावों की ओर से बंद और भगवान् की ओर खुला रखो १२१
की शक्तियां लोलक जैसी १३४
के नये क्षेत्र में प्रवेश १४८अ
का जाग्रत् होना १४९, १९४, [२४२]
का प्रकाश अवचेतन के अंदर १५०
धुंधली, झूठ बोलने से १५५; को ढक देते हो अवांछनीय चीजों को बार-बार करके १९३; को धुंधला बनाता है अहं ४२२
अगर तुम्हारी, भागवत हो तो तुम उसी चेतना को हर जगह देखोगे १५५
[सचेतनता] सच्ची प्रगति है १७१
बाहरी, सक्रिय अतः उपस्थिति से अभिज्ञ नहीं १८१; सतही, से एक कदम पीछे हट जाओ २००; बाहरी, और अभीप्सा की अग्नि २०२; बाहरी चीजों की ओर बिखरी हुई अतः माताजी से दूर २२८
को जो नीचे ले जाये ऐसी हर चीज से बचकर रहना १९२
के अनुसार क्रिया करने की शक्ति का अभाव १९४, [१८९]
के विभिन्न [अनंत] स्तर २४०, २४१
शब्द केवल उसीके लिये सुरक्षित रखना चाहिये जो . . . २४०
तबतक सोयी रहती है . . . २४२
एकमात्र भागवत उपलब्धि पर केंद्रित २५५
की संकीर्णता २५५
साधना के लिये मुक्त रहनी चाहिये २६२
उचित, का अभाव जब शीर्षस्थ व्यक्ति में ३०४
की गहराई में जाओ ३४० दे० 'अंदर' भी
सत्य या मिथ्या होती है ३६३

अपनी, को परम चेतना के साथ एक कर दो . . . तब तुम जो कुछ सोचो, अनुभव करो या करो वह आलोकमय और सत्य हो जाता है ३६३
जिस, से पढ़ाते हो ३६३
(दे० 'अतिमानसिक चेतना', 'उच्चतर चेतना', 'चैत्य', 'निम्न चेतना', 'नयी चेतना', 'भागवत चेतना', 'शारीरिक चेतना' भी)
चैत्य [अंतरात्मा, चैत्य चेतना, चैत्य सत्ता] १०४, २२९, २६८
और केंद्रीय सत्ता ३१, १४५
कब जागता है ? ४३; जागी हुई, और किसी चीज को करने या न करने का निश्चय १०१
और मन-प्राण-शरीर ४८
के साथ संपर्क ५०, १२०, १५०, १५२, १५६, ४१८
से संपर्क और रोना ५०, १२०; के साथ संपर्क से पूर्वजन्मों की स्मृति ४२०
'अंतरात्मा और चैत्य ४८, ४९
अगर मुक्त होना चाहती है ६१
कभी व्यंग्य नहीं करता ६३
द्वारा सच्चा ज्ञान अंदर से ७५
कभी दुःखी नहीं होता ८१, [८२]
भागवत तत्त्व है ८१, १२९, १३९, १४१, ४१२
का सत्ता पर शासन ११६, १३४, १८०, १९५
-केंद्र में अचंचलता को पा सकते हो ११८
में मां हमेशा उपस्थित १२८ दे० 'माताजी' में तुम्हारी भी; और माताजी की उपस्थिति १६२, २०३; और माताजी का प्रेम १६२, १६६-७
और भागवत चेतना १२९
सतह पर १३४, १४८; सतह पर बच्चों में १७७अ
और शरीर १३६; और शरीर-ग्रहण १३८, ४११-२, ४१७अ; शरीर छोड़ चुकी, के साथ संपर्क ४१६-८
-प्रभाव के प्रति खुला भाग १३६
का विकास १३९, १४१
का उस सत्य के प्रति आरोहण जिससे वह निकली है : अर्थ १३९; 'चैत्य उत्स को ढूंढ़ना १५७
कभी भूल नहीं करता १४६
को पाना १५०, १६२अ; को फिर से पाना १८०, २३३
और बुरा व्यवहार १५१
के एकांत में प्रवेश १५९, २३१
और कठिनाइयां १६२
के बारे में सचेतन १६७, १७३, २०३
तुम्हारी, मेरा बालक है १७३
पर एकाग्र होओ १७९
के साथ पहला संपर्क और सत्ता के दूसरे भाग जब अपने क्रिया-कलाप पर वापस लौट आते हैं [१८०]
'चैत्य ज्वाला' नामक फूल २०७
'चैत्य उद्‌घाटन और प्रेम २१५
की तुलना बालक के साथ २१५
का भगवान् के प्रति विश्वास २१५
खुश, प्राण असंतुष्ट २२९
से दूर हटने का कारण २३३
-प्रेरणा की मुक्त क्रिया में बाधा २६९
को कार्य में प्रकट होने दो २६९
की प्रगति पर जोर शिक्षा में ३२७
और चैत्य पुरुष ३९२
और अंतर्यामी भगवान् ३९२
अपनी परिपूर्ति तब पाती है जब वह ऊपर की किसी सत्ता के साथ एक हो जाती है : मतलब ३९७
क्या एक जन्म में लड़का और एक जन्म में लड़की या हमेशा . . . ४११-२
को सामने लाना दे० 'चैत्य पुरुष'
अगर चली गयी होती ४१८
-उपस्थिति का अनुभव ४१८-९
चैत्य अवसाद ८१-२

चैत्य जगत्
में विचाराधीन चैत्य को देखना ४१८
चैत्य जीवन विश्व का १६१
चैत्य जीवन-शक्ति क्या है ? ५०अ
चैत्यपुरुष ४५, १४७
सामने कैसे आता है ? ३८, [४८], ४१९
को कैसे पहचान सकते हैं ? ४३अ
और मन-प्राण-शरीर ४८
को सामने ला कर प्राण को शुद्ध . . . ५१
और सत्य [ज्ञान] १४०
और अतिमानस १४१
के चारों ओर सत्ता को एकत्र . . . ३७०
चैत्य प्रेम ७४
क्या है ? ४७
किसी व्यक्ति के लिये ४७अ
सौदेबाजी नहीं करता १६७
और माताजी की उपस्थिति २०४
चैत्य भक्ति कहां से आती है ? ४५
चैत्य वाणी [चैत्य संदेश]
और मानसिक पुरुष की वाणी १४५-६
सुन सकने के लिये १४६
और भागवत वाणी १४६अ
चैत्य शांति क्या है ? ५५अ

छह कविताएं २६०
छुटकारा [पिंड छुड़ाना]
मन-प्राण-शरीर में भय से कैसे ? ३७
अंधकार के शासन से कैसे ? ३९
स्त्री-स्पर्श-जनित भाव से ४४
तमस् से कैसे ? ६२
मानव आसक्ति से ७३
दुर्भावना और अवसाद से १३४
(दे० 'मुक्ति', 'अहं', 'कामना' भी)
छुट्टियां [हॉलीडेज] २७५-६

जगत् [संसार, दुनिया]
कितने हैं जिनमें मनुष्य स्वप्नों में जा सकता है ? ५८
में रहते हुए शुद्धि और विकास १६८
अभी जैसा उसमें कौन-सी चीज बिना मिश्रण के हो सकती है भला ? २३८
खेलते हुए दिव्य बालक का परिणाम २४२
में जिन वस्तुओं को भेजा है वचन [काम] पूरा करने के लिये २४२
दो विरोधी शक्तियों में विभक्त . . . २४४
के बारे में निराशाजनक दृष्टि २७३, [३१६]
'सृष्टि-निर्माण और माताजी ३५८
आगामी कल की और विगत कल की ३७७
और नवीन सृष्टि ३७८
एक बड़े परिवर्तन की तैयारी कर रहा है ४१६
में दिव्य रूपांतर का विरोध ४३७
(दे० 'धरती', 'विश्व' भी)
जन्म दे० 'नवजन्म', 'चैत्य'
जप अस्वस्थता अनुभव होने पर ४०६
जागना
समय पर, और परम प्रभु ११
के बाद बिस्तर पर पड़े रहना १३
'जागो अंदर गहराई में २५०
जागरूकता [जाग्रत्, चौकन्ना, सावधान] ८, २९, ३२, ७९, १४६, १६९, १९५, [२६७], २८३, ३३५, ४४६
(दे० 'सचेतनता' भी)
जादू-टोना का उपचार ४५८अ
जानना २१७
कि तुम कुछ नहीं जानते १३१, ३११
जब किसी बात को आवश्यक . . . २३६
कि कृपा कभी निराश न करेगी ३६४, [४३५]
(दे० 'समझना' भी)
जीवन
जीना औचित्य के मानदंड के अनुसार ४२
में उतारना संकल्प को ५५
इस तरह के, का अंत कब ? १६०अ, [१५२]

पार्थिव, का लक्ष्य १६१, ३८४, [४२४]; हमारे, का सच्चा कारण ४२८
भौतिक, में ही शुद्धि और विकास १६८
दूसरे, के बारे में सोचना १७४
इसी, में भगवदुपलब्धि के लिये प्रयास १७४
भौतिक, की बाहरी व्यवस्था अंदर से २२३अ
बाहरी, और साधना (पूर्णयोग में) २७४
परिश्रम के बिना २७७
जीना लंबा [२८४], ४२७
अहं के बिना ३५५
शांत और सुखी ४२७, [३५५]
अपने, के बारे में फैसला करने की हर एक को छूट ४६०
जीवन-ऊर्जा का क्या अर्थ ? ६२अ

ज्ञान १०, १५, ९७, १३६, २४२, ३१४, ३३५, ४२३
चेतना के विकास से २२
सच्चा, अंदर से ३८, ७५; सच्चा, और नीरवता ४२१; 'सत्य ज्ञान और दूसरों पर टिप्पणी २१४
में रस लो ४४, ४५
आध्यात्मिक, और संसार की चीजों से अनभिज्ञता ४६
का कमल ७५
और उसका व्यावहारिक प्रयोग ८५अ
हमारे अंदर है, ज्ञान अंतरात्मा प्राप्त करती है—दो विचार १४०
श्रीअरविंद द्वारा प्रकट ३५१
'सामान्य ज्ञान ३६७अ
होना महान् व्यक्तियों का ३६७अ
(दे० 'समझ' भी)

झगड़ा (लड़ाई-) २९०-१, [२९९अ], ३०२, ४२५
करने का अर्थ ६

झूठ बोलना ११४, १५५, १९८, ३३९अ

डॉक्टर
'डॉक्टरी सुझाव की शक्ति २४७
के कहे अनुसार करना २५०
के शब्दों से विचलित न होओ २५०
जितने कम हों उतने कम २५२
के पास जाना शारीरिक कष्ट में २९२
कौन-से, की चिकित्सा करें ? ४४८
पर विश्वास महत्त्वपूर्ण ४४८
ढोंग [पाखंड] १२४, १९१, ३३७, ४००
(दे० 'कपट' भी)

तनाव (मानसिक) २३३, २५२, २६८-९
तपस्या ४४, २६७
का अर्थ ४९
तपस्वी और आश्रमवासी ३६०
तमस् ३१४
है यह ५७अ, १२०
से छुटकारा ६२; पर विजय ३०३, को बदलना ३४३
और पढ़ाई १४३, २११
तामसिक उत्तर १५९
मानसिक २३२, [२११], ३४६
नहीं है स्थिर शांत रहना २७४
तर्क परस्पर-विरोधी, में करणीय ३४०
तादात्म्य [एकात्म]
और पृथक्ता के भाव को खोना—इनमें क्या अंतर है ? २३५अ
के अंदर कई सोपान २३६
के बाद भी क्या मनोवृत्ति भगवान् को उस तरह कार्य नहीं करने देती जिस तरह वे चाहते हैं ? २३६
(दे० 'भगवान्', 'माताजी' भी)
तारीखें विशेष, मनाना ४२०अ
तुलसीदास २८५
तूफान दे० 'पांडिचेरी'

तैयार (करना, होना) ४४, ३०८, ३६८
अपने-आपको [१३३], ४०३, ४१३, [४५०]
(दे० 'जगत्' भी)
त्याग [अस्वीकार] ५३
निरर्थक विचारों का ८; सैक्स के विचारों का ४५; प्रकृति से मन में आनेवाले विचारों का ४९; आक्रमण के विचार का ८८; विरोधी विचारों का ९१; इस विचार का कि कोई बुरी चीज घटनेवाली है १७१
प्राणिक आवेशों का २७; प्राणिक गतिविधियों का २६७
लालसाओं [कामनाओं] का २७, ३०, ४२, ७९; सभी व्यक्तिगत अभिरुचियों का २३६
जो कुछ शुद्ध, प्रकाशमय न हो उसका २९
भयों का ३०, ४४९
अहंकार का ४२, ७९
निम्न प्रकृति के सुझावों का ६४
मानव प्रेम का १२१
'छोड़ दो वह मार्ग जो तुमने लिया है १२१
(दे० 'इंकार करना', 'दूर भगा दो' भी)

थकान २३, ७३अ, ३७५, ४१२
यह भौतिक है या प्राण से ? १०
और अधिक काम १०, १८-९, [५७, ४४०]
और नींद ४१, [१३], २०९-१०
पढ़ाई में २११
मानसिक तमस् से २३२
थियोसोफिकल पाथ ११५

दंभ विनम्रता में बदल जाये ९६
दबाव ११८
जड़-निष्क्रियता का, ध्यान में ७७अ
सिर पर, और पढ़ाई ११०, १११अ
दया [दयालुता] १४, १५, ४३८
अनिवार्य, चेतना के विस्तार के लिये ९६
दर्प [सिर फूलना] २८३
दर्शन (-शास्त्र) ५२, २०३, ३९३, ३९४
दलाई लामा की पुनर्जन्म की दंतकथा ३६१
दवाई
'यूट्रोपीन २५०
-यां जितनी हो सकें उतनी कम २५२
-यां अधिक : हानि २५२
'सूची-वेध २५३
के बारे में माताजी की दृष्टि २५३, ४०५
'नींद की गोलियां ४०४अ, ४०७
-यां आधुनिक, और बच्चे ४५५
दासता १६३
निम्न कामनाओं और आवेगों की १७६
'बुरी चीज है दासता २८९
परहेज की और आवश्यकताओं की २८९
दिन २७५
-प्रतिदिन जीना चाहिये हमें २५५
अच्छे आयेंगे यह आशा रखो २८९
(दे० 'व्यवस्था', 'सोना' भी)
दिनकर (कवि) ३७१
दिव्य विनाश से अछूता रहता है ३१५
दिव्य चेतना दे० 'भागवत चेतना'
दिव्य जीवन दे० 'भागवत जीवन'
दिव्य प्रज्ञा दे० 'भागवत प्रज्ञा'
दिव्य प्रेम दे० 'भागवत प्रेम'
दिव्य शक्ति दे० 'भागवत शक्ति'
दुःख [-कष्ट, -दर्द] २३३, २४९, ४३३
'खेंख और अचेतना २३
'दुःखी होने का फायदा नहीं १०१, [५९]
से बाहर निकालने की प्रार्थना १६०
कामनाओं से १६०, [१५८], २०८; अज्ञान से १८७; सचाई के अभाव से २०८; अपनी मूढ़ता से २०८; मानव प्रेम से ४२५अ
का उपचार १६३-४, २०८
दूसरे के, को सह न पाना १६४
अनिवार्य है क्या प्रगति के लिये ? १७७

अनिवार्य या आवश्यक नहीं १८७
और पूर्णयोग १८७, २०८
'दुःखी न होओ २५१, ४४८
'व्यथित न करो अपने-आपको ३३५
दुर्बलता [कमजोरी] १०, १०७, २६७, ३१२
पर विजय १०९, ११७, १२२, १९१अ
अपनी, को ढूंढ़ निकालना प्रगति है २२१
को जीतने का निश्चय न करो तो . . . २३४; को जीतने का निश्चय और माताजी की शक्ति ४१४
सच्ची बात न कह सकने की ३३७
है अपना-आपा खोना, अशांत होना ४१४
दुर्भावना ११२, १३४, ३६०, ४३५, ४४१
दूर भगा दो [खदेड़ दो, झाड़ दो, निकाल बाहर करो]
ईर्ष्या को २६
अहं को ३१अ
ध्यान में आनेवाले विचारों को ३९
यांत्रिक मन की चीजों को ४७
उदासी को ६०, ७०, १७८
थकान को ७४
गलत सुझावों को १९०
इन छायाओं को २५४
प्राणिक विक्षोभ को २६७
कुप्रभावों को, इंफ्लुएंजा के २८४
(दे० 'त्याग' भी)
दूसरे [और, लोग]
-ों के साथ संबंध ६अ, २०, ८८, ११४, १७९अ, २१३; 'सगे-संबंधी और योग १४; 'कोई किसी का नहीं ४३४
-ों के दोष, भूलें, कमजोरियां ६३, [१६], २२७, २६७
साधकों से मिलना काम के सिवा ७५, ७६
-ों की इच्छा का प्रभाव ८०, ८२
-ों के साथ तुलना करना ८६
-ों के साथ मिलना [संपर्क] ८८अ, ९२, ९३, ९५, १५३, १६०, १९९; से न मिलना, गंभीर रहना २११
-ों के बारे में प्रश्न माताजी से ९५
-ों की प्रगति से वास्ता नहीं . . . ९५, ४२६
-ों के बारे में विचार ९५, [१६]; के बारे में बुरा सोचना २२७
-ों की हंसी उड़ाना ९५अ
-ों में अभिव्यक्त निम्न प्रकृति के आगे भी न झुको १२८
-ों के दुःख-दर्द को सह न पाना १६४
-ों का वातावरण अनुभव करना १७९
-ों के साथ ऐक्य भगवान् में २०६, [७]
-ों के साथ सहानुभूति: २०५-६, या अचंचल तटस्थता २२१अ
-ों की टिप्पणी करना २१३-४
-ों के साथ घनिष्ठता और साधना २३०
-ों की बातों पर विश्वास न करो . . . २६७, [२५४], ४३५
-ों से उन गुणों की मांग न करो जो स्वयं तुम्हारे अंदर नहीं ३०४
-ों का नाराज होना ३४८
-ों के लिये तिरस्कार-भाव ३६०
'सार्वजनिक राय के अनुसार कार्य न करो ३७१
-ों की व्यक्तिगत कठिनाइयां सुनकर थकान ३७५; लोगों के साथ मिलने के बाद चुसा हुआ ४४०
-ों के साथ शांति से रहने के लिये ४२५
ऐसा नहीं कर रहे, का बहाना ४२६
-ों को दोषी ठहराने का स्वभाव ४४५
(दे० 'उचित', 'प्रेम', 'बातचीत', 'सहायता' भी)
दृष्टि
आंतरिक, २८, ५५
-कोण अहंवादी १७२
निराशाजनक २७३, [३१६]
स्पष्ट, यथार्थ ३०४
आत्मनिष्ठ ३४५

देवता [देवी-देवता, देव]
-ों अधिमन के, में भी अहं १०७
-ओं की पूजा, और माताजी व श्रीअरविंद के अनुयायी २९८, ४४२
दोष ३६४, त्रुटि २२८
सबके अपने, होते हैं ६३
स्वीकार करना स्वयं, पूछे बिना १९३
'दोषी वह उतना ही जितना वह मिथ्यात्व और अस्तव्यस्तता से चिपका है ३०१
द्युमान (साधक) ३८४

धन [धन-संपत्ति]
को जो त्याग देता है . . . १७२
के बारे में अहंवादी दृष्टिकोण १७२
'इमारत बनाने पर खर्च २९३
'आर्थिक कठिनाइयां, और लोगों की प्रतिक्रिया २९६-७
को महत्त्व देना (छोटे विद्यार्थियों का) ३००-१
ही प्रभु है इन दिनों ३०१
और सत्य व प्रेम ३०१
का अभाव हो तो सद्भावना . . . ३०३
पर व्याज लेना ३७७, ४४२
'मुनाफा ओरोवील में, नगर को ३७९
और अधिक धन कमाने के लिये नहीं ४४२अ
और नयी सृष्टि ४४३, [३७७]
(दे० 'आश्रम', 'माताजी' भी)
धरती [पृथ्वी] १०
पर जो काम करना है उसे करो १७२
पर ही भागवत कार्य संपन्न करना है १७७
पर हम जिन चीजों को स्थापित करना चाहते हैं ३१४
परम पुरुष का आवास हो सकती है ३५१
को तैयार करने के लिये . . . ३६८
पर परिवर्तन धीमे-धीमे आते हैं ३७७
(दे० 'जीवन' पार्थिव, 'माताजी' भी)
धर्म ३१४
निचले, से ऊपर के धर्म की ओर जाने के लिये अधर्म . . . ५२-३
धारणा ३१, ३४, १३१
धार्मिक सत्ता से आशय २४३
धीरज [धैर्य] ९४, ९७, ११९, १३३, १५६, १६१, १७४, १८४, १९५, २२९, २५१, ३४६, ३४८, ३५७, ३७०, ४०१, ४०६, ४२५, ४५७
(दे० 'अधैर्य' भी)
ध्यान
अपना, किसी और तरफ मोड़ दो २१, ८५
न दो उस पर ७८, ८३, [१०९] १७०, २८९; 'महत्त्व न दो उसे १५१, ३४८
अगर मोड़ें विक्षोभ की ओर या प्रकाश व आनंद की ओर तो . . . १४९
खींच लो अपना, बीमारी से १५१
ध्यान
सच्चा, क्या है ? ३७, ७७
कैसे करूं ? ३८अ
और पढ़ाई ७७
और जड़-निष्क्रियता ७७, ७७अ
जब किसी के साथ २५४
में प्रकाश २६०
में सफलता न भी मिले फिर भी . . . २६७अ
क्रीड़ांगण के सामूहिक, : में क्या आप हमारे साथ होती हैं ? ४११, का तरीका ४११
करते समय भूख लगना ४४७

नमनीयता ७९, १४२, १८०, ३५५
नम्रता [विनम्रता] १४३
चाहिये सीखने के लिये १३१, २२६
माताजी को समझने में १४२
का अभाव अज्ञानी मन में १८८
पहला चरण प्रगति के प्रति २२१, २२६
सबके प्रति या भगवान् के प्रति २०२अ

नयी चेतना
की क्रिया जो जन०'६९ को उतरी ४१६
में जन्म ४२३
नयी सृष्टि [अतिमानसिक सृष्टि] ३१४
का आगमन ३३०, ३३६
और 'क' योगी का योग-विद्यालय ३६८
की यह प्रसव-वेदना कब तक चलती रहेगी ? ३७८
की चेतना इस १९६९ वर्ष के आरंभ से काम में लगी है ३७८, ४१६
की ओर कदम ४२९
और धन ४४३, [३७७]
नरक १६५, ३४५ दे० 'मृत्यु' भी
नलिनीकांत गुप्त [नलिनी] २८७, ३७३
नवजन्म [नूतन जन्म] ४२१, [४२३]
का फूल २५०
नवजात [साधक] ३५२
निम्न १७६
का उच्च के प्रति समर्पण कब ? ६६
'नीचे खींचे जाने से रोकना २१५अ
निम्न चेतना १०३, १०५
से उच्च चेतना में उठना १९२, १९५
में गिरने से बचने और उसमें से बाहर निकलने के लिये १९५
निम्न प्रकृति
इन चीजों से भरी है १६, ६१
के अधीन न होना १६, १२८
और उच्चतर भाग १७
और वैश्व शक्ति २४
और साधक २४
के सुझावों का त्याग ६४
की ओर बहुत न देखना अच्छा ८५, १६५
के विरोध की अपेक्षा अधिक आग्रही बनो २६८
निम्न भाग (सत्ता के) १७१, [१८०], १८६अ, [१९७]
नियंत्रण ४२, १५६
'आत्म-नियंत्रण कैसे रखें ? २८
पुरुष का प्रकृति पर ५६
मनोमय पुरुष का मानसिक प्रकृति पर ६९
का अभाव अपनी क्रियाओं व प्रतिक्रियाओं पर ४२५
नियम ११४, ३६४
-पालन का अनुशासन ३५अ
कठोर, और दिव्य जीवन ९४
कठोर, और सामंजस्यपूर्ण काम ३४०
मन के, और शरीर ३९७
में नहीं बांधा जा सकता अंतरात्मा को ४१२
और आत्मा की मुक्तता (अनुभूति में) ४४१अ
नियमितता २१५, २२३, २२५, ३६६
निराशा ९१, ३२७, ४२६, ४५३
न होना सफल न होने पर १६२, ४१९ दे० 'असफलता' भी
(दे० 'दृष्टि' भी)
निरीक्षण दे० 'अवलोकन'
निर्णय ३८४
लेना माताजी के बारे में १४२
-नें भागवत कृपा के, के प्रति समर्पण २१०
मन के, अज्ञानभरे २२९ [८२]
मन के, और भागवत इच्छा २३१
(दे० 'निश्चय', 'माताजी' भी)
निर्वाण २७७
निश्चय [इरादा] १३३, ४१५
अगर कर लो १२०, १२२, १५८, १६१
का पालन १९७
दुर्बलताओं को जीतने का, और माताजी की सहायता २३४, [४१४]
(दे० 'इच्छा-शक्ति' भी)
निश्चय [निर्णय] २४३
करना दो उत्तरों के बीच १०१, ३२९
करो प्रभाव के अनुसार १३३ दे० 'प्रभाव' क्या भी
निश्चयात्मकता का आध्यात्मिक अर्थ २३८

निश्चेतना वास्तविक क्या है ? २४१
निष्कपटता दे० 'सचाई'
नींद
पूर्याप्त १०
में हमेशा स्वप्न देखते हो २७
में भगवान् को कैसे याद . . . ३६
आने से कौन चीज रोकती है ? ४१
में अवांछनीय शक्तियों और चीजों से संपर्क ६०, २०९
आदत की बात है ९१
और शारीरिक थकान २०९-१०, [१३, ६०]
अगर इतनी अधिक आती है . . . २०९
में हुए की याद, और आत्मा की शोध २४८
अवचेतन, में चेतना लाना २६२
(दे० 'सोना', 'स्वप्न' भी)
नीरवता [निश्चल-नीरवता] ४१, ४९, २४७, २५१, ४२८
क्या है, उसे कैसे बनाये रखें ? २८अ
में अंदर से सुनना ३९, १४६, [२५४]
निष्क्रिय और सक्रिय : अर्थ ६१अ
पाना अभीप्सा द्वारा ६७; में सबसे बड़ी अभीप्सा ४२९
और मन-प्राण-भौतिक की अशुद्धियां ६७
सच्ची, और प्राण की अतृप्ति की ११०
मन में १५९, [३२], १८८, ४२९; मानसिक, में पूर्ण विश्राम पाना ४०५
और शुद्धि व रूपांतर १६६; और रूपांतर ४२२
में माताजी की उपस्थिति से अभिज्ञ १८१, १८५, [२२९], २५४अ, ४१५
को अपने अंदर पाना होगा १८५
में ही मन प्रकाश को ग्रहण . . . १८८
में माताजी की क्रिया की संपन्नता २१७
तनाव की प्रभावकारी दवा २५२
में सहायता सबसे प्रभावकारी २५२, २५३
आध्यात्मिक उपलब्धियों का द्वार २५४
में मेरी शक्ति में से खींचो, यह तुम्हें कभी धोखा न देगी २५४
'नीरवता ! नीरवता ! २८१
में ही महान् कार्य . . . २८१; में ही सबसे अधिक शक्तिशाली क्रिया ४२९
आंतरिक, में ऊपर से पथ-प्रदर्शन पाना ३४०
में आंतरिक भव्यता के साथ एक . . . ४२१
अमूल्य निधि ४२१
और सच्चा ज्ञान ४२१
में शब्दों से अधिक महान् शक्ति ४२२
में चेतना बढ़ती है ४२९
में बड़ी-से-बड़ी भक्ति ४२९
नेहरू (पं० जवाहरलाल)
और सरकार की आलोचना २८१
के देहावसान पर माताजी का संदेश ३००
नैपोलियन २०७
न्याय
और भागवत कृपा १९७, ४३८
'वैश्व न्याय २००

पंजाब में लड़ाई ३२३-४
पक्ष
गलत चीज का नहीं, माताजी का लो १२०
कोई भी, पूरी तरह ठीक या पूरी तरह गलत नहीं होता ३०१, ३८४
पछताना ५; संताप ६९
पढ़ना [पढ़ाई, अध्ययन] १२१, १५७
हल्की, अस्वस्थ चीजें १३, १२९
कहानियां १३, ६९, ७१
के पीछे भगवान् की चेतना ३६
कहानियां, उपन्यास, और योगी ३६
कौन-सी पुस्तकें ? ३६, ४१४
मासिक पत्र-पत्रिकाएं ३७, ६९, ७१, ४१४; किताबें सामान्य जीवन की २१०अ
और सच्चा ज्ञान ३८; हमारा मिथ्यात्व का ढेर ३६७

से मन का विकास ३८, [४४], १४०, २१२; मन के लिये जिम्नास्टिक्स ३६७
शास्त्र, और भगवान् के साथ संपर्क ४४
अखबार ६३अ, ३७९अ, ४१४
इतिहास, विज्ञान आदि के लेख ७१, २०४
और ध्यान ७७
उपन्यास १२६, १२७, १२९, २१६, ४१४
का अनुशासन १२६, १२७, [१३४]; मन तथा प्राण दोनों के लिये अच्छा अनुशासन है २०५
शैली सीखने के लिये १२६, १२७, ४१४
गुजराती साहित्य १२९
और समझना १२६, १२७, १३१; समझने का सबसे अच्छा तरीका १५१; समझने की क्षमता और नियमितता ३६६
श्रीअरविंद की पुस्तकें १२९, २३३, ४१४
पर मन की एकाग्रता : फल १३१, १३९
और अवसाद १३७-८, १७२अ
इसीलिये महत्त्वपूर्ण १३९
मजे के लिये नहीं बल्कि . . . १४०
और तमस् १४३, २११
में रस इसीलिये नहीं १५१
फ्रेंच २०३, २०४
केवल एक विषय एक समय में या . . . [२०४]
और साधना २०५, २१२
'भूगोल, इतिहास के अध्यायों को लिखना आवश्यक है क्या ? २०७
में थकान २११
और मानसिक अचंचलता २१९
गणित २३२
को क्रिया में लाने का इरादा न हो तो . . . २६९
के पीछे आंतरिक वृत्ति ३२८
जगत्-ज्ञान, शैली विकसित करने, सीखने, जीवन व उसके उद्देश्य को समझने के लिये ४१४
(दे० 'आश्रम विद्यालय')
पढ़ाना
में धीरज ३४६
में भूतकाल के प्रति वृत्ति ३५६
का विषय, और चेतना जिससे पढ़ाते हो ३६३
के काम में जान, और पुरस्कार ३७४अ
पथ दे० 'मार्ग'
पथ-प्रदर्शन दे० 'आंतरिक पथ-प्रदर्शन'
परम सत्य ४३३
और भगवान् २५
'हे प्रभो, परम सत्य . . . ४२६
और भागवत प्रेम ४३४
का सूर्य कभी चमकना बंद नहीं . . . ४३४
के अवतरण के लिये तैयार . . . ४५०
(दे० 'भागवत सत्य' भी)
परिणाम १९७, ३८४
तात्कालिक, का स्वाद २३८अ
-ों की शृंखला को तोड़ना २४९
प्रभु के हाथों में छोड़ दो २९५
की परवाह किये बिना आंतरिक विश्वास के अनुसार कार्य करना ३६४, [४३९]
परिवर्तन [बदलना]
स्वभाव का ३३, ४४५, [४२४अ]
अपरिवर्तित भाग का ९७अ
तत्काल [सहसा] १०१, १०२, २४८
आंतरिक, के लिये जो करना चाहिये १८२
की आवश्यकता का सामना करो २७०
साधक को २९७, [३८६]
जिनका, बहुत कठिन है ३०२
मनोवृत्ति में ३५६
मानव पशु को भागवत मनुष्य में ४११
के लिये बाहर जाना (आश्रम से) ४४४अ
चरित्र का, रोग का उपचार ४५२
(दे० 'रूपांतर' तथा 'प्रकृति', 'प्राण' भी)
परिवर्तन-काल दे० 'अंधेरे काल'
परिस्थिति (यों) २४८, ४३५

के मार्ग को बदलना २४७, २४९, [७०]
सभी, में ग्रहणशील रहना ३५७
सभी, में मुस्कुराना जानना ४२२
,विपरीत, में उचित मनोवृत्ति ४३९
को दोषी ठहराने का स्वभाव ४४५
परीक्षा [अग्नि-परीक्षा] १७०
के समय करणीय २१, ४०६
के अंत में है विजय ४३६
(दे० 'प्रहार' भी)
परोपकार [लोकोपकार]
'परोपकारी होना १२७, १७६
'भलाई करना २०३
का काम, और आश्रम २६२
(दे० 'दूसरे' -ों की सहायता भी)
पवित्रता ७७, की ज्वाला २०७
पशु
'खरगोश ५टि०
-ओं के प्रति सच्ची वृत्ति १६३
'कीड़ों को मारना १६३
सहायक था, पशु ही बाधक है १६८
-पक्षी भी क्या भोजन का स्वाद . . . ३०६
'गाय की पवित्रता का आधार ३३४
व्यष्टि रूप नहीं होते, मरने पर वे . . . ३४६
(दे० 'चित्र', 'प्रतीक' भी)
पांडिचेरी
में तूफान : दिसंबर १९३३ में ६७, मई १९६६ में ३४३, नवंबर १९६६ में ३४६
(फ्रेंच भारत), में चिकित्सा कार्य २६१-२
और श्रीअरविंद ४२१
पाकिस्तान दे० 'भारत'
पाखंड दे० 'ढोंग'
पाठ
हर एक को अपना, सीखना होता है २९३, [३४५]
सीखना विनाशों से ३१५
सिखाने के लिये होता है सब कुछ ३५५
पाप ३५१
पॉल रिशार २८५
पीछे हटना ४५, १६४, २००
का क्या अर्थ है ? ५०
पुकार २२३, ३७०, ४२७
उच्चतर चीजों के लिये २६
आध्यात्मिक, का क्या अर्थ है ? ४८
जब सचमुच, आती है . . . ४४६
(दे० 'अभीप्सा' भी)
पुकारना ४२४
'आह्वान भागवत संरक्षण का २१
श्रीरविंद को या माताजी को ९८, १२०, ३५३, ४१५
प्रबुद्ध भाग को १००
'आह्वान भागवत कृपा का १९९
सहायता और सुरक्षा ४४९
पुनर्जन्म दे० 'चैत्य' का शरीर-ग्रहण, 'पूर्वजन्म'
पुरस्कार ३७५
पुरुष
कहते हैं जिसे ५३
का प्रकृति पर नियंत्रण ५३, ५६, ६९
पुरोधा २५९, २८३, २९९, ३००, ३१४, ३१५, ३३८, ३४४, ३४९अ, ३५२अ, ३७७, ३७९, ३८२
पूर्णता १३८, ४०३
आज की, और कल की २३६
सत्ता की, को चरितार्थ करना ४११
'पूर्ण बनाना अपने-आपको ४२४
मानव, को पाने के लिये ४२४अ
पूर्णयोग [अतिमानसिक योग, श्रीअरविंद का योग]
में विभिन्न वर्गीकरण ५१
और दुःख १८७, २०८
को तेजी से करने के लिये २००
और खेल-कूद २१८अ
में साधना और बाहरी जीवन २७४
और देवी-देवताओं की पूजा २९८, ४४२
का मार्ग सरल नहीं ३३३

पूर्वजन्म को याद करना ४२०
पूर्वाभास बुरी चीज का १७०
पृथ्वी दे० 'धरती'
पेड़-पौधे [पौधे]
भगवान् की ओर खुल सकते हैं ५९
-ों के कीड़ों को मारने के लिये मिट्टी का तेल . . . ५९
प्रकाश ११, १५, ५०, ७७, ८२, १०२, १३७, १५०, १५७, १७३, १९५, २३८, २५१, २६०, ३१४
डालो अपरिवर्तित भाग पर ९७अ
प्राण-जगत् के १००
भौतिक चेतना में १४७
भौतिक मन में १८२
को ग्रहण करना १५७, १८८, ४११
का अवतरण स्थिरता में १९१, [१८८]
के साथ नयी प्रगति का आनंद २४९
अवचेतना में लाना २५१
यह, आंखों को नुकसान नहीं पहुंचाता २६०
का दिवस ४१५
और शक्ति के अवतरण से सफाई ४५०
(दे० 'अंधकार', 'ध्यान' भी)
प्रकृति
की शक्तियों को स्वीकृति [अस्वीकृति] २८
'प्राकृतिक शक्तियों का क्या अर्थ है ? ३१
जड़-भौतिक १६६
के भूकंप, ज्वालामुखी, तूफान ३१५
का सहयोग और तूफान ३४६
मूक भाषा में उसीका आवाहन . . . ४४४
और रोग ४५५
प्रकृति (मानव) १५८
अपनी, होती है हर एक की ८६
बाहरी, ९०, ९२
का अपरिवर्तित भाग ऊपर उठ आये तो ९७
को जानना संपर्क में आनेवालों की १७९अ
का परिवर्तन [१६०अ], ३०२, ४१३, ४४५, ४५०
(दे० 'निम्न प्रकृति', 'पुरुष' भी)
प्रगति [आगे बढ़ना] ८०, १३०, १७१, १९१, २४९, ३२७, ४४७
शुरू में तेज या सतत नहीं ४३
अपनी, से वास्ता योग में ९५, [४२६]
नहीं करते ऐसे लोग इसी कारण १२४
के लिये संकल्प है, अग्नि १४१, २०७
के लिये अनिवार्य शर्त १५६; का पहला चरण २२१, [२२६]
करना भगवान् के प्रति सचेतन, १६१
की जब मुझसे मांग करते हो १६५
को रोक देती है यही चीज १७५
'आगे बढ़ना शांति और दृढ़ता के साथ १७६; 'आगे बढ़े चलना है बस, ३७९, ४३९
के लिये दुःख-दर्द अनिवार्य है क्या ? १७७
और आत्म-असंतोष १८०
बालक की १८०
निजी, के बारे में सोचना २०६, २१९, [२३०]
दिखावे की नहीं, सच्ची, स्थिर २१२
स्थायी, के लिये २१३
है अपनी दुर्बलता को ढूंढ़ निकालना २२१
और शेखी बघारना २२६
अविच्छिन्न, २४८; अनंत, ३९४
का अवसर न बन सके ऐसी कोई चीज नहीं २५३; हर व्यक्ति और हर वस्तु में हो सकती है ३४१
तेज है, मेरे नजदीक रहने के लिये . . . २७०
आवश्यक, करना ३१५; के लिये आवश्यक प्रयास करो ४१४
के लिये मानसिक प्रयास जब ३३३
और भूतकाल ३५६
करना पार्थिव जीवन का उद्देश्य ३८४, [१६१], ४२४
करना बंद कर दो तो ३८४
के बिना बीतता हुआ हर क्षण . . . ३८४
में बाधा डालता है अहं ४२२

और महाकाली की सहायता ४२४
और आत्म-नियंत्रण ४२५
प्रणाम (माताजी को) १०८, २५०, २६३, ३९४
के बाद चुप रहना ४३
के समय आंसू ५०; के बाद रोया १२०
के बाद ठहर जाना ८४
के बाद खुशी १०१, २६०
के समय अनुभव १२०, [२६०]
के बाद अवसाद १५७
से पहले खेलना २१४
(दे० 'माताजी' भी)
प्रतिक्रिया ३०२, ३८६
-एं और प्रयास १९२
-ओं अपनी, को वश में करना ४१४
-ओं अपनी, पर नियंत्रण का अभाव ४२५
प्रतिरोध ७८, २१७, ३०१; अवरोध २६८अ
मस्तिष्क में, और जुकाम १४९अ
ही अस्तव्यस्तता पैदा करता है १७०
प्राय: सभी में १७७
अहंकार का, जटिलता का कारण २२६
हठीला है ३२०
मिथ्यात्व का आश्रम में ज्यादा ३३०
(दे० 'विरोध' भी)
प्रतीक (जानवरों के)
ऐंटीलोप १२
कबूतर ८
कुत्ता ४
खरहा ५
तोता ४
पक्षी ४
पेलिकन जलपक्षी ९
बंदर २१७
बकरी १२
बिच्छू १११
बिल्ली ८
मयूर ४
वाहमृग ८
शूकर [सूअर] १२, ३००
सांप ५६, १११
सिंह ३, १७
सील मछली ४
हंस ४
हाथी ४
हिरण ३
प्रतीक
बगीचा और लड़के १६
अज्ञान में चलते साधक की प्रगति ३५
शंख ४८
भौतिक में दिव्य प्रकाश ५०
समुद्र ५८
बत्ती का बुझना ९७
प्रतीक्षा
करनी होगी [करो] १०१, ११२, ११६, १८२, [१८४]
करना पर्याप्त नहीं ११४
प्रभाव ३३, २२०, २८४
अच्छा है या बुरा कैसे जानें? ३२
बुरे, को न घुसने देने के लिये ३२
'प्रभावित होना किसी से ८०, ८२, ८३
के प्रति खुला होना किसी दूसरे के ८२
क्या पड़ता है यह देखना १२९, १३३, [१७५]
माताजी से दूर करनेवाले २१६, २३३
विजातीय, से बचने के लिये २१६
-ों अस्वस्थ, के अधीन २२७
-ों और सब, को छोड़कर पूरी तरह आपके प्रभाव में : सच्चा अर्थ २७२
-ों को मिलाना सहायक नहीं होता ४४६
(दे० 'इच्छा', 'प्राण', 'भगवान्' भी)
प्रभुता और सचेतनता १७१
प्रमाद [आलस्य] ३०३, ३१४, ४००, ४०३
प्रयास [प्रयत्न, कोशिश] १५७
और सफलता २९, १६२, २८३, [४२६]

किये जाना थके बिना ४२
अपना, अच्छे-से-अच्छा करो ८७ दे० 'करो' भी
करना होगा, प्रतीक्षा पर्याप्त नहीं ११४
करना होगा तुम्हें १२०, १५९, २२९
करने का अर्थ १२६; करने का सच्चा रास्ता १९७
चेतना की वृद्धि के लिये १३३
सतत १६२, [३१], १९४; धीरे-धीरे स्थिर रूप से २४८; नियमित और आग्रहपूर्ण ४२६
इसी जीवन में भगवान् की उपलब्धि के लिये १७४
के प्रति प्रतिक्रियाएं १९२
पर्दा हटाने का १९४
, और परम श्रद्धा की मनोवृत्ति २३८
'परिश्रम के बिना जीवन नहीं २७७
व्यवस्था और सामंजस्य के ३२९-३०, ३३४, ३४५, ४३९
सद्भावना, सुव्यवस्था का धन के अभाव में ३३३
मानसिक रूप से, करना जब छोड़ देते हो तो तुम मुझे अपने अंदर कार्य करने देते हो ३३३
गुस्से को वश में करने के लिये ४१४
मानव पूर्णता के लिये ४२४अ
(दे० 'करना', 'मार्ग' भी)

प्रशिक्षित करना
निम्न भागों को १७१
(दे० 'इच्छा शक्ति' भी)

प्रश्न
पूछना श्रीअरविंद से ३३
व्यर्थ के ७७, ८४, [१०५], १२९
दूसरों के बारे में ९५
कि मैं क्या हूं? १३५अ
अज्ञान और अंधकार में डूबा, मैं धरती पर क्यों हूं १५०
बीती चीजों के बारे में १७५
प्रार्थना और ध्यान से संबंधित २३५-४४
-ों के उत्तर सुनना (अंदर से) २५४
दूसरों के लिये पूछे गये ४४४-६०

प्रसन्नता [खुशी] १०५, १४९, १५७, १७७, १८७, २३९, २७३, ३८६
(दे० 'मुस्कराना', 'हर्ष' भी)

प्रहार ५४, ६०, ३०१, ४४१
-ों को परीक्षाओं के रूप में लो ४३३
में उचित वृत्ति ४३८-९, [४३५अ]

प्रह्लाद १३, २१

प्राण [प्राणिक सत्ता]
को बदलना (का परिवर्तन) ११, ६९, ७१, ७९, १७९; को जब बदलने और कामनाओं को छोड़ने को कहा जाता है १२२; को शिष्ट और सुशील बनाना १४५
का समर्पण ११, २८, ६८, ७१
खराब क्यों नहीं है? ३०
में (के आवेग में) बह जाना ३०, ४५, ११८, १३४, १९३
को स्थिर, शांत करना ५१, ६८, १०३, १२९, १७९, १९२
सच्चे, को उभरने दो ५१
भौतिक ५२; भौतिक, का मतलब व कार्य ५२; भौतिक और शरीर ५२, १४३; जड़-भौतिक, का मतलब १४३
का मुख्य कार्य ५२
सूक्ष्म! ५२
मन की क्रिया में गड़बड़ न कर पाये इसके लिये ५३; को प्रभावित कर सकता है मन ८१; पर प्रभाव मन के बदलने का १०२; भी मन को प्रभावित कर सकता है ८१, [९९], ११८; और मन जब अपने-आपको माताजी से अधिक बुद्धिमान् समझे . . . ८३; और मन को खुशी से तैयार होना चाहिये माताजी की इच्छानुसार करने या न करने के लिये १२३; और मन से शुरू होती हैं परेशानियां और अवसाद १७८
'प्राण-तत्त्व और शरीर ५४, १४१
स्थूल देह के साथ नाभि से संबद्ध : अर्थ ५४;

की भौतिक स्तर पर क्रिया १५०
'प्राणिक गतिविधियों (कामना, क्रोध, भय) के स्पंदनों का प्रभाव ५४
की सनक भूख न लगने की ५७
में भगवान् अपना प्रेम कब उंडेल सकते हैं ? ६९
में विद्रोह ७९, ८१, ८८, ८९, १५४; प्रतिकूल १९६; की बाधा [प्रतिरोध] २२७; [१५०], २६०; 'प्राणिक मन का अवरोध २६८अ
'प्राणिक आदान-प्रदान की आशा में मुस्कराना ९४
की चीजें (आवेग, क्रोध आदि) किन-किन में बदल जायें ९६
की अवस्था अभी दुःख, अभी खुशी १०५, [९८], १३४
रात को सोने नहीं देता ११८
जब अज्ञान और मिथ्यात्व से न निकलना चाहे तो सारी सत्ता से अभीप्सा कैसे ? ११९
विक्षुब्ध हो जाता है, मजबूत प्राणिक प्रकृति के लोगों के संपर्क से ११९
का सहयोग देने से इंकार १२२, १७५
की भूल का दंड शरीर को ! १३५
उच्चतर १४४
में हमेशा लाभ पाने की कोशिश १६७
और अवसाद १७५, १७८; के मिजाजों पर ध्यान न देना २२७
की शिकायत : वह यहां जेल में है १७६
जिस स्वतंत्रता का दावा करता है १७६
'प्राणिक संतोष और योग १९२
निम्न, में प्रकाश का प्रवेश होने पर तुम इन सबके बारे में हंसोगे १९५
असंतुष्ट, पर चैत्यपुरुष खुश २२९
-शक्ति कर्म-पथ पर प्रलोभक २३८अ
'प्राणिक उत्तेजना, उग्रता, नाटक से प्रेम करते हैं क्योंकि वे २४०
'प्राणिक गतिविधियों को उचित ठहराना २६७
कुछ का, अस्तव्यस्तता, असामंजस्य और गड़बड़ों को पुकारता है ३०२
प्राण-आत्मा १४१
प्राण-जगत् [प्राण-लोक]
में लड़ाइयां स्वप्न में ५
में सुरक्षा : शर्त ६; के अशुभ संपर्कों से, नींद में, बचने के लिये २०९अ
क्या है ? २७
में/के प्रकाश १००
की सत्ताएं १०४, १०५
में रात्रि और दुःख के प्रदेश ३४५
प्राण-पुरुष
सच्चे, की शक्ति ५१
तभी जागता है १४६
प्राणिक सत्ताएं
और साधना में सहायता १०४, १०५
-ओं से भय अंधेरे में १६८
प्रार्थना ५०, १३१, १६२, ४२९
-एं अपनी, किसी को दिखाना ७
साधक के लिये (माताजी द्वारा लिखित) ६०
रोज, लिखना ८५
माताजी की दी, दूसरों को दिखाना ९४
'सभी विघ्नों पर विजय पानेवाले प्रभो . . . ३२५
'हे प्रभु तेरी जय हो'—के अंत में 'परम उपलब्धिकर्ता' का अर्थ ३३०
विद्यार्थियों की ३९१
तुम्हारी परम प्रभु के पास पहुंचा दी है ४०६
'हे प्रभो, परम सत्य . . . ४२६
परम प्रभु को पाने के लिये ४२८
प्रार्थना और ध्यान
पढ़ने पर अनुभव में भेद ६१
से संबंधित पत्र [प्रश्न] २३५-४४
को तबतक न पढ़ो . . . २६९

प्रेम ३१, ७१टि०, २४२, ३१४, ३१६
पारस्परिक : भागवत उपस्थिति पर आधारित हो ७१, प्राणिक मिलावट से मुक्त हो ७२, को छोड़ने में इतना उग्र होने की आवश्यकता नहीं ७४, पवित्र, संभव है क्या? १५२, और भगवान् से प्रेम १९३, जबर्दस्ती तोड़े गये, से भयंकर प्रतिक्रियाएं तो न होंगी? १९५, १९६
दूसरों से, करने का सबसे ऊंचा तरीका ७४, [२०६]
का समर्पण : राधा की चेतना ८७
'स्नेह में आसक्ति ९९, १००
मानव, और भागवत प्रेम १२१, ४२७; मानव, से बाद में अपने-आपको मुक्त करना कठिन क्यों हो जाता है? १९५; मानव, अस्थिर २१२अ; मानव, और कविता का अध्ययन ३९२-३; मानव, में पहली भूल ४२५अ
विकृत हो आवेश में बदल जाता है १४७
में स्वार्थ १५८-९, ४२७
के स्रोत को इसने सुखा दिया १५८
बदले में कुछ मांगे बिना १५८, ४२६, ४२७
को शुद्ध और चैत्य बनाना १५९
प्राणिक [१६७]
को मजबूत बनाना १७९
कहते हैं मनुष्य जिसे १९३, ३०१
सच्चा, आत्म-विस्मृति है २०१
सच्चा, और तर्क २०२
पाने की अपेक्षा प्रेम करने की अधिक परवाह करो २०५
को पकड़े रखना और उसे सबकी ओर बढ़ाना २०५-६
बालक का अपनी मां के प्रति जैसा २१५
और धन ३०१
की विजय उन्हीं में जो उसकी परवाह करते हैं ३३३
बाहरी क्रिया में अनभिव्यक्त ३३५
करने का अर्थ ४२६
से अन्यथा दुःखद परिणाम ४२६
करने के आनंद के लिये प्रेम करना ४२७
में क्षमा की आवश्यकता नहीं ४३५
(दे० 'चैत्य प्रेम', 'भागवत प्रेम', 'अनुभव', 'आनंद', 'भगवान्', 'माताजी', 'माताजी का प्रेम', 'शांति' भी)

प्रेम और मृत्यु
में चित्रित शाश्वत रात्रि और दुःख के प्रदेश क्या सचमुच हैं? ३४५
में रुरू और प्रियम्वदा क्या सावित्री और सत्यवान् के ही पहले रूप हैं? ३४६

फरासीसी क्रांति ३६७
फूल [पुष्प]
'राधा की चेतना' का ८७
सुंदर, को निहारो तब १६३
'निस्पृह कर्म' का २०६
'चैत्य ज्वाला' का २०७
'सुरक्षा' का २०७
'विश्वास' का २१०
'व्यवस्था' का २१४
'चेरी पुष्प २४४
'भौतिक में अभीप्सा' का २५०
'नवजन्म' का २५०
फ्रांस १२७
और नैपोलियन २०७
'फ्रेंच भारत में चिकित्सा-कार्य २६१-२

बंद दरवाजे
कल्पना का प्रभाव हैं २४७
खोलना २४७
बड़े [बड़े लोग] २९६
-ों का सम्मान करना ६
(दे० 'महान् व्यक्ति' भी)
बड़ा दिन ४१५-६
बनना [होना]
की इच्छा, इस या उस प्रकार का, २४३
(दे० 'बालक', 'सोचना' भी)

बनारसी मां की जालसाजी २८६-७
बल ८६, १९०, २४२, २७१
बाजी प्रभु ३३८
बातचीत [बोलना, चर्चा करना]
निरर्थक [व्यर्थ की] ९, १३, ८८अ, १०७, ११३, १२१, [२८१, ३०३]
'वाणी पर संयम ११, ८८अ, [२८१]
के बारे में सीखने लायक चीज ११
अनुभूति के बाद २६
दूसरों के मामले में ३५, १३५; दूसरों के दोषों के बारे में ६३, [१६]; औरों के बारे में ९३; दूसरों की क्रियाओं के कारणों की ११२
राजनीति के बारे में ४९
'व्यंग्य करना ६३
'मजाक करना ६५
'किसी से कहना कि वह कमजोर है ७३
'गपशप ७५, ७६, २२३, २३०
लंबी, से बचना चाहिये ९५
करते समय अचंचल रहना १०५अ
के साथ अपने को एक न कर लो १०६
बहुत ज्यादा : हानि १०९अ
'उससे न कह कर तुमने ठीक किया १३५
योग के बारे में १४३; आध्यात्मिक चीजों के बारे में २२६
अपनी साधना के बारे में १४४
अपनी शांत अवस्था के बारे में १५४
दूसरों से, हानिप्रद है क्या ? २२६
का ऐसा तरीका होता है जो ठेस नहीं पहुंचाता २३०
'शब्दों की जरूरत नहीं मानती मैं आंतरिक विकास के लिये २५३
किये जानेवाले काम के बारे में ३५८, [१३३]
समझदारी की, जब हम कहते हैं तो हमारे द्वारा श्रीअरविंद बोलते हैं ३८१
'बहस मत करो जब तुम सहमत न हो ४२५
(दे० 'मौन' भी)
बाबू (डॉ०) ७०
बालक [बच्चे]
को बढ़ती उम्र में बारी-बारी से आराम और कड़ी मेहनत की जरूरत २३, [४१२]
अचेतन, जो सचेतन होने की कोशिश कर रहा है १३६
-ों में, चैत्य ऊपरी सतह पर १७७अ
की खुशी जैसे-जैसे वह बढ़ता है... १७७अ
की तरह निष्कपट, नम्र कब बनूंगा ? १७९
के जैसा बनने का क्या मतलब है ? १८०
'बालवत् पथ : १८०, अच्छा है, पर आसान नहीं १८१
की सरल निष्कपटता विलीन हो जाती है जैसे-जैसे मन का विकास होता है १८४
-ों छोटे, का सारे समय खेलना अच्छा है क्या ? २११
का अपनी मां के प्रति जैसा प्रेम २१५
खेलता हुआ दिव्य, २४१अ
मेरे, उठो, खुश हो जाओ २८४
किन्हें माना जाये (अतिरिक्त दूध के लिये) ३४३
-ों को विशेष भोजन की जरूरत ३६०
की शिक्षा जन्म से पहले ही ४२१
अपने योग्य, बनने में सहायता कर हे प्रभो ! ४२६
(दे० 'विद्यार्थी', 'माताजी', 'माता-पिता' भी)
बुद्ध केवल विभूति थे १३७
बुद्धि २६८, ३६६
बुरी
आदत को मान्यता देना ८८
भावना, और पढ़ाई पर एकाग्रता १३१
'दुराचरण से रोकती क्यों नहीं आपकी उपस्थिति ? १६२
चीज का पूर्वाभास १७०-१
(दे० 'अच्छा और बुरा', 'गलत' भी)

बेचैनी ७, ४१, ५९, ८६, ८९, ९१, १२८, २६९, ३७०

भक्त के लिये पाप ३५१
भक्ति ३८, ४२
मानसिक और प्राणिक, क्या है? ४३
सच्ची, चैत्य भक्ति है ४३
चैत्य, कहां से आती है? ४५
भावमय, क्या है? ४७
बड़ी-से-बड़ी नीरवता में ४२९
भगवान् [ईश्वर, परम प्रभु . . .]
क्या पृथ्वी पर कुरूपता और दरिद्रता के प्रतिनिधित्व के रूप में . . . ९
की सहायता से कठिन चीजें सरल . . . १३; में अपना आधार, आश्रय और सहायता पाने की वृत्ति, और थकान १९; की सहायता अग्निपरीक्षा में से निकालने में [४०६]; की सहायता 'उन्हें' पाने में ४२८; के कार्य के लिये उसने क्या किया है जो वह सहायता मांगता है ४५३
हैं कौन और भगवान् की इच्छा क्या है? १८; क्या है २३, २५; का अर्थ क्या 'परम सत्य' है? २३
के आगे समर्पण २०, [३४३]; को हृदय के समर्पण से शांति, ५६; के प्रति समर्पण इतना पक्का कि औरों के साथ संबंध का कोई महत्त्व न हो ८८; के साथ सायुज्य, और समर्पण २३५; के आगे पूर्ण व समग्र समर्पण, और अहं व कठिनाइयां ४५४
पर श्रद्धा २१, २३८; धर्म के, पर श्रद्धा और देहधारी भगवान् पर श्रद्धा ९९ दे० 'श्रद्धा' भी
की ओर जो ले जाये वह अच्छा [उचित] २१, २४; से जो दूर ले जाये ऐसी कोई भी चीज करने से इंकार १२६
के उत्तर को जानना २२
ही हमारे द्वारा कार्य करते हैं, इसमें क्या कुछ सचाई है? २३-४
और निम्न शक्तियों की लीला २४
की परम सत्ता २४
में निवास करते हैं सभी, पर भगवान् के सत्य में नहीं २४
और परम सत्य २५
उस सबसे अधिक भी हैं २५
के हाथों में अपने-आपको दे देना २६ दे० 'आत्मदान' भी
के लिये जीना २६; के लिये जीना और मां-बाप के प्रति कर्तव्य २२१, [१४, ५३]; के अंदर और भगवान् के लिये जीना २३९
के साथ एक कैसे हों? ३०; के साथ तादात्म्य [ऐक्य] ५६, २३९, ३२२, ३३०, ४०६, ४२४, ४२८, [४५४]
में डुबकी कैसे लगाएं? ३०अ; 'अनंत में डुबकी २४८; 'अनंत को श्वास में भरना २३९
को निरंतर याद रखने के लिये ३१
को नींद में कैसे याद रखना ३६
को पढ़ते समय कैसे याद रखना ३६
की ओर मुड़ना [अभिमुख] ३७, ४१, ४३, १०१, १०२, २३९, ४१९
केवल, का अनुसरण ३८
का वास समस्त क्रियाओं में; पर वे मिथ्यात्व और अज्ञान में कैसे रह सकते हैं? ४२
के सिवा और कुछ न मांगना ४३
के साथ संपर्क ४४, ५५; के साथ सतत संपर्क से तुम पूरी तरह स्वस्थ . . . २५२
के लिये प्रेम और पूजाभरा भाव ४७; अपना प्रेम प्राण में कब उंडेल सकते हैं ६९; से प्रेम करने की अपेक्षा मनुष्य से प्रेम करना आसान क्यों है? १९३; से प्रेम और उनके प्राणियों से भी प्रेम ४२७
के प्रति अभीप्सा ४८, २४७, २५५; को चाहना ६९
को खोजने की पुकार ४८, ४२८; को खोजने के लिये न बहुत उत्कंठा होनी चाहिये, न बहुत प्रयास . . . २३७; की खोज उत्कटता के साथ, और परम श्रद्धा में उसकी प्रतीक्षा २३८

के लिये मेरे उत्साह ने मुझे खा लिया है: अर्थ ६४अ
केवल, से ही चीजें लेनी चाहियें ६६
से मांगना ७०
को जो अपने-आपको दे देते हैं और किसी चीज की मांग नहीं करते . . . लेकिन भगवान् से शांति, चेतना इत्यादि के लिये अभीप्सा करना क्या जरूरी नहीं ? ७०
अंदर के, और सच्चा ज्ञान ७५; अंतर्यामी, और चैत्य सत्ता ३९२
का सतत, जागरूक निदिध्यासन ७७
में कोई अवसाद नहीं ८१
के प्रभाव के सिवाय और किसी प्रभाव को स्वीकार न करना ८२, [१२१], १२८, [१८१], २७२
से जो कुछ आया था उसे भगवान् पर एकाग्रचित्त करने के बजाय दूसरों पर नष्ट कर दिया १०९अ
केवल, की ओर खुला रखो चेतना को १२१
का शासन था क्या सब जगह सत्ययुग में १३८
और अतिमानस १४१
अपने-आपको वाणी के द्वारा नहीं, चेतना की अवस्था द्वारा अभिव्यक्त करते हैं १४७; की अभिव्यक्ति है लक्ष्य ३२२, [४२८]
के प्रति सचेतन प्रगति १६१
ने ही हमें अज्ञानी और अचेतन बनाया है क्या ? १६५, १६६
के बारे में सचेतन होने के लिये १६८
की सेवा में शक्ति का उपयोग न करके कामनाओं की तुष्टि में . . . १९४; की सेवा २३८, ४२८
के प्रति विनम्र २०३
में दूसरों के साथ ऐकय २०६, [७]; के साथ ही संबंध स्थायी २१३
पर विश्वास और भागवत कृपा २१०, [२१]; के प्रति विश्वास चैत्य का २१५; पर अविश्वास समस्त मानवजाति का ३५१
पर एकाग्रचित्त होओ २१६
को ही अन्याय का ज्ञान २२९
जो चाहते हैं वही चाहो २४३; हमसे जो चाहते हैं ४२८
क्या हमसे दूर या पीछे हट जाते हैं ? २४३
जानते हैं, वे किसी बेवकूफी में भाग नहीं लेते २७२
का दिन २७५
की है सारी जिम्मेदारी २७८
के कार्य के प्रति निष्ठा है यह चुप रहना २८३; के कार्य करने के तरीके ३३९
के हाथों में छोड़ दो परिणाम २९५
केवल, जानते हैं करते हैं और हैं हम कुछ भी नहीं हैं . . . ३११
सर्वशक्तिमान हैं, और सारी चीज पर नजर रखे हुए हैं ३१६
को जगत् से जैसा व्यवहार मिलता है ३२७
को जीतना : अर्थ ३३३
को पाना ३३३, ४२४, ४२८ दे० 'भागवत उपलब्धि' भी
का विनोद ३३४
मानव रूप में प्रकट हुए, मनुष्यों की तरह व्यवहार किया, खाना खाया —क्या इन कहानियों में कुछ सत्य है ? ३४५
के लिये कोई पाप नहीं होता ३५१
को धन्यवाद ४००
तुम्हारे अंदर हैं ४०६; दूर नहीं, हृदय में हैं ४२८
केवल, के हो कर रहें ताकि ४२३
'अपने सतत आशीर्वाद के बारे में सचेतन बना हे प्रभो ४२६
के अर्पण कर दो अपने-आपको पूरी तरह ४२६
हमेशा हमारे साथ होते हैं हम कभी अकेले नहीं होते ४२९
केवल, ही तुम्हारे होंगे यदि तुम भगवान् के लिये हो ४३४

तुम्हें कभी निराश न करेंगे ४३५, [३६४] दे० 'नीरवता' भी
पर जो भरोसा करता है उसे कहीं कोई भय नहीं ४६०
(दे० 'भागवत...' के अंतर्गत तथा 'अभीप्सा', 'अर्पण', 'सोचना' भी)
भय [डर] ५४, ११९
नहीं चाहिये [डरो मत] १०, ११७, २४९, २५१, ४३४
-ों से पिंड कैसे छुड़ाएं २९३अ, ३७
का त्याग ३०, ४४९
और भागवत संरक्षण ३०, ३७, १६८; और भगवान् पर भरोसा ४६०
अंधेरे में प्राणिक सत्ताओं और भूत-प्रेतों से १६८
रास्ते की बड़ी बाधा है १७६
के बिना कुछ नहीं हो सकता २९१
और रोग ४४९
है सबसे बुरी चीज ४५७
कठिनाइयों को आकर्षित करता है ४५७
भरोसा ३०, ११७, २५३, ३१०, ४६०
भविष्य
अतिमानसिक, १३२
की बहुत चिंता न करो ३१०
और धन-व्यवस्था ३७७अ
ज्योतिर्मय, के लिये ताकि तैयार...४१३
महिमामय, पर श्रद्धा प्रदान कर और उसे चरितार्थ करने की क्षमता भी ४२६
(दे० 'भागवत कृपा', 'भूतकाल' भी)
भविष्यवाणी कलियुग की समाप्ति की १८३अ
भागवत आनंद
और सुख ४०
कैसे पा सकते हैं? ४४, १०७
भागवत इच्छा [भगवान् की इच्छा]
केवल, का पालन २६
को जानना १११, १७२, २३१, [२३६]
मान लेना अपनी अवचेतन इच्छा को १७२
को जब कार्यान्वित करना चाहते हो तो तुम्हारा प्राण... १७५
के साथ अपनी इच्छा को तदात्म... २३९
पर निर्भर रहना और उसे अपने द्वारा कार्य करने देना ३६३
को सारा मामला सौंप देना ३६३
पूरी होने दो ३७३
सदा विजयी होती है ३७३
(दे० 'माताजी की इच्छा', 'चीज' भी)
भागवत उपलब्धि [भगवान् की उपलब्धि]
के लिये प्रयास इसी जीवन में १७४
पर केंद्रित एकमात्र, २५५
(दे० 'भगवान्' को पाना भी)
भागवत उपस्थिति [भगवान् की उपस्थिति, उपस्थिति] २३७, २४१, २९९
पर एकाग्र ७७, ३३७
और रूपांतर ९०, ४२१
बहुत निकट तब १३४
को कभी न भूलो १५३
गहराइयों में हमेशा मौजूद ४२१
वहां इसलिये है कि...४२१
के साथ एक होने के लिये ४२१
से सचेतन होना हमारी जिम्मेदारी ४२९
(दे० 'प्रेम', 'माताजी की उपस्थिति' भी)
भागवत करुणा
को गलत तरीके के ग्रहण करना क्या संभव है? २००, [१९४]
भागवत कार्य
के लिये दोनों को आना ही था ११
धरती पर ही संपन्न करना है १७७
की महानता पर आंखें २८०
जल्दी होगा अगर विरोध करने की जगह लोग सहयोग दें ३७८
भागवत कृपा [कृपा] २७१, ४३०
पर पूर्ण श्रद्धा १०, ३४९; पर श्रद्धा और डॉक्टरी सुझावों के बीच संघर्ष २४७; पर श्रद्धा [भरोसा] और गोलियां व सूचीवेध २५३; पर

श्रद्धा और निराशाजनक दृष्टि २७३; पर निरपेक्ष श्रद्धा-विश्वास रखना सिखा रही हैं ये चीजें ४३३; पर दृढ़ श्रद्धा एकमात्र समाधान ४५७
को कार्य करने देने के लिये ७०; ताकि फिर से अपना रक्षा करने का कार्य कर सके १९८; का कार्य और कपट ४००
पर भरोसा रखो बाकी के लिये ११७; के भरोसे छोड़ दो भविष्य को ३१०
पर विश्वास और कृतज्ञता १५८; पर विश्वास बनाये रखो १९९, [२१०]
और न्याय १९७, ४३८
और कठिनाइयां १९७
की सहायता की शर्त १९८; की सहायता और निष्कपट आह्वान १९९; की सहायता से ऐसी कोई चीज नहीं जो प्रगति के लिये अवसर न बनायी जा सके २५३
पीछे नहीं हटती लोग-बाग ही . . . १९८; ने स्वयं को तुमसे खींचा नहीं है २०१, [२३३]
हमेशा उपस्थित १९९, ४२६
और साधक की इच्छाशक्ति २०९
और भगवान् पर विश्वास २१०, [२१]
दोषों के पीछे भी २५३
अपार है—वह कोई रास्ता ढूंढ़ निकालेगी ३०४; अद्‌भुत और सर्वशक्तिमान् है ३३९; की समर्थता की कहानियां ? ३४७
भी तो है, महाकाली ही नहीं ३१६
के मार्ग में अड़ंगा मन द्वारा ३२९
ज्यादा सहज तब ३३७
मृत्यु के बाद ३४५
का पूर्ण परिणाम पाने के लिये श्रद्धा भी पूर्ण . . . ३४९; का परिणाम है जो भी होता है ४५५
हमेशा सक्रिय अविश्वास के बावजूद ३५१
हमें कभी निराश न करेगी ३६४ दे० 'भगवान्' भी
और आलसी लोग ४०३
प्रभावकारी सच्चे (निष्कपट) के लिये ४२६
(दे० 'विश्वास' भी)

भागवत चेतना [दिव्य चेतना]
की ओर खुलना २९, ३३, [६२], २७२
ही पूरी तरह सच्ची है ३३
को कैसे पा सकते हैं ? ३३
में पहुंचना होगा ६१
की शक्ति परिणामों की शृंखला को तोड़ सकती है २४९
पर ऐकांतिक रूप से एकाग्र २७२
को जीतना कठिन काम है ३३३
के प्रति समर्पण ३४३
परिणाम की व्यवस्था कर लेगी ३८४

भागवत जीवन [दिव्य जीवन]
पर केंद्रित रहना ९४
के सिवा और कुछ न चाहना १२२
में हिस्सा लेने से इंकार करनेवाले भागों से सचेतनता और करणीय १७१
के लिये तैयार करना : उद्देश्य ३०८

भागवत पथ-प्रदर्शन
पर शांत श्रद्धा से सब कुछ सीधा और सरल हो जाता है ३२०
पाना कार्य की कठिनाइयों में ३४०
(दे० 'आंतरिक पथ-प्रदर्शन' भी)

भागवत प्रज्ञा [परम प्रज्ञा] ३९७
और काश्मीर का झमेला ३२२
और 'क' योगी यूरोप में ३६८
की ओर जाने का शीघ्रगामी रास्ता ४२२

भागवत प्रेम [दिव्य प्रेम, प्रेम] २४१, [४०४]
शब्द पर एकाग्रता कैसे ? ४६
नीरव, और अभिव्यक्त १०९-१०
को लोग गलत तरीके से लेते हैं १०९
को बरबाद करना ११०
पाने के लिये बाकी समस्त प्रेम छोड़ देना होगा २२४
ओझल है ३०१
और महाकाली ४२४

मानव अस्तव्यस्तता से प्रभावित नहीं होता ४३४
और अंधकारमय अतीत ४४३
भागवत मुहूर्त
के लिये क्या तुम तैयार हो? २९४
भागवत शक्ति [दिव्य शक्ति, उच्चतर शक्ति, शक्ति] ३३, ६५
में पूर्ण श्रद्धा, और अधिक काम १८
के अवतरण का अनुभव ४९३अ, [१०६]
के अवतरण द्वारा तमस् से छुटकारा ६२
ही मदद कर सकती है दूसरों की ७३
का यंत्र ७३
का कार्य और शरीर में कंपन १०६
को सहने के लिये शरीर को तैयार . . . १०६
को नीरवता और एकाग्रता में ग्रहण करना ११०
मिली, को छितरा देना १३२, [११०, २६२]; मिली, का दुरुपयोग १९४
के साथ पहला संपर्क : परिणाम १८०
को प्रभावशाली रूप से काम करने से रोकनेवाली चीज २३०
को प्रभावकारी बनाने के लिये संकट की जरूरत एक सीमाबंधन है २७९
के दबाव से अहंकार का फूलना २९५
'व्यवस्थापिका शक्ति में श्रद्धा ३४८
'अदृश्य शक्ति पर एकमात्र आशा ३४९
को एकाग्र करो रुग्ण अंगों पर ३५०
की प्रबल और सतत एकाग्रता तुम पर, इसे ठीक तरह ले सको तो . . . ३७१
की प्रभावकारिता और श्रद्धा ३७३
द्वारा ही रूपांतर संभव ४०१, [३३]
की क्रिया, और तुम्हारी ओर से सहमति ४३८
मौजूद है सहायता देने के लिये ४४०
काम करेगी और बाद में कुछ परिणाम आ सकता है ४४८
(दे० 'माताजी की शक्ति' भी)
भागवत शांति
का पृथ्वी पर राज्य १३२
भागवत संरक्षण [सुरक्षा]
पर श्रद्धा परीक्षा के समय २१
और रोग ३४८अ, [३७१]
(दे० 'संरक्षण' तथा 'भय' भी)
भागवत सत्य
और धर्म, सिद्धांत, शास्त्र आदि ५५
(दे० 'परम सत्य' भी)
भागवत सहायता दे० 'भगवान् की सहायता'
भारत
पर चीन का आक्रमण २८१
की वर्तमान स्थिति के बारे में अपनी राय घोषित करना २८१
के लिये उपयोगी होना चाहो तो २८१
का भविष्य ३००
की भारतीयों से रक्षा ३१३, ३३९
और पाकिस्तान की एकता ३२२, ३२४, ३२५
'जम्मू-काश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण ३२२टि०, [४०१टि०]
और पाकिस्तान के युद्ध में हमें क्या वृत्ति अपनानी चाहिये? ४२५
में खाद्यान्न की कमी; प्रधान-मंत्री की अपील, माताजी द्वारा उसका समर्थन ३२८
की राजनीतिक, आर्थिक अवस्था, और भागवत कृपा ३३९
की स्थिति; उसे अपना उद्देश्य पूरा करने में क्या बहुत समय लगेगा? ३५८
भावमय सत्ता १४४
भूतकाल [अतीत]
के बारे में न सोचना ५
'बीती हुई चीजों के बारे में प्रश्न पूछना १७५
भविष्य की ओर छलांग लगाने का तख्ता ३५६
अंधकारमय, को भूल जायें, ताकि ४१३
अंधकारमय, और शाश्वत 'प्रेम' ४४३

भूत-प्रेत १०३-४, १६८
भूल [गलती] १५, १४३, १६४, २३६, २४७, ३०१, ३६०
फ़िर से न दोहराऊंगा ५
के लिये दुःखी हूं ५, २७३; पर पछताना [संताप] ५, ६९
सुधारने का सबसे अच्छा तरीका ५
-यां करना ७६
एक ही, बार-बार करना ११५
प्राण की, का दंड शरीर को! १३५
-ों के बारे में सोचना दूसरों की २२७
-ों और कमजोरियों, दूसरों की, के बारे में चिंता न करनी चाहिये २६७
पहली, मानव प्रेम में ४२५अ
(दे० 'गलत', 'दोष' भी)
भूल जाना
चीजें ७६
दुर्व्यवहार को ४१२अ, [४३३]
भोजन
पर्याप्त १०
और शरीर १०, ५७, ४०४
'मिताहार ४०; 'कम खाना : हानि ४०१, ४०४
'पेटूपन ४०
और खाली पेट का दर्द ४१
'भूख नहीं लगती ५७; भूख लगना ध्यान में ४४७
चबाकर, शांति के साथ २०२
'मछली खाना २२०अ
का स्वाद क्या पशु-पक्षी भी . . . ३०६
पकाने में सोडे का उपयोग ३०७
में इमली का उपयोग ३०७
, मसाले आदि का प्रभाव ३०७अ
'खाने-पीने की चीजों में नौकर . . . ३१३अ
'जैतून का तेल ३१६
'पीने वाले नारियल ३१६
'नारियल का तेल ३१८
'गेहूं पीसना लोहे की चक्की से ३२६
के अपव्यय के विरुद्ध आंदोलन ३२८
'छाछ ४०२
'अंडे का सेवन ४०३
के लोभ को कम करने के लिये ४५३
(दे० 'आश्रम भोजनालय' भी)
भौतिक ११९
में अभिव्यक्त दिव्य प्रकाश लाल-सुनहरा होता है ५०
पर प्रहार ७८, [६४]
का रूपांतर ७९, ४०१
को बदलने के लिये ७९
जब तक प्रबुद्ध न हो जाये १५६
को प्रदीप्त करने के लिये १५७
और प्राणिक शक्तियां विकृत हैं उनका पुनर्नवीकरण करना होगा २३९
में 'अभीप्सा' का फूल २५०
आवश्यकताओं पर बल देना और तपस्वी लोग ३६०
(दे० 'शरीर' भी)
भौतिक चेतना दे० 'शारीरिक चेतना'
भौतिक पुरुष कब जागता है? १४७
भौतिक मन ५२, १४३
प्रदीप्त होता है जिससे ६८
के प्रतिरोध के लिये क्या करना चाहिये? १५०
से अपने को अलग करना होगा १५०
में प्रकाश आये इच्छा करो कि, १८२
'जड़ भौतिक मन और अध्ययन २११
पर आधारित टिप्पणियां २१४
भौतिक सत्ता
आनंद और प्रेम को ज्यादा समय तक नहीं रख सकती जबतक कि . . . १३४
रात के समय अंधकार और निश्चेतना में गिरती है १३४
(दे० 'शरीर' भी)

मकान [इमारत] पर खर्च २९३
मजाक [हंसी-मजाक] ३४, २१९
(दे० 'माताजी', 'विनोद' भी)
मन २४७
अचंचल २७, २९, ३०
नीरव ३२, १५९; प्रकाश को ग्रहण करता है नीरवता में ही १८८; जितना निष्क्रिय तेरा प्रबोधन उतना ही स्पष्ट २३६; में नीरवता अनिद्रा का इलाज ४०५; को नीरव करना नयी सृष्टि के लिये ४२९
के दो भाग ३५, ८१, ९९, १०३अ दे० 'सत्ता', 'समर्पण' भी
और ध्यान ३७, ३९
और व्यर्थ के विचार ४२; को अपना खिलवाड़ करने से कैसे रोकें ? ४५; को भटकने न देने के लिये ९४; को वश में करने का तरीका १३९; मानसिक हलचल कहती हूं मैं इसे १८८
को विकसित करो ४४; विकसित, और तुच्छ संवेदन ४४, [१३१]; को प्रशिक्षित करना है तुम्हें १३१, [१२१]; को मजबूत बनाती है पढ़ाई १३९; 'मानसिक तैयारी बहुत लाभकारी १४५; प्रदीप्त, और प्राण का मूर्खतापूर्ण व्यवहार १५१; को प्रबुद्ध करने के लिये १८८; का विकास पढ़ाई से २१२
'मानसिक समर्पण ४५, ६८
यांत्रिक, और सुने अपशब्द ४७
का मुख्य कार्य ५२
आंतरिक, क्या है ७५; और उसका कार्य क्या है ? ७५
को स्थिर, शांत रखना ७७, १२९, १८८, १९१, १९२, ४५८
के प्रबुद्ध भाग को हमेशा ऊपर कैसे रखूं ? १००
के परिवर्तन को किस तरह बनाये रखा जा सकता है ? १०२
की पढ़ाई पर एकाग्रता : परिणाम १३१, १३९; के लिये जिम्नास्टिक्स है पढ़ाई ३६७
है जो अंतरात्मा को विकसित होते देखने में मजा लेता है १४१
इन प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता १५०
और प्राण जैसे-जैसे विकसित, उससे शुरू होती हैं परेशानियां और अवसाद १७८; का जैसे-जैसे विकास सरल निष्कपटता विलीन १८४
जितना अज्ञानी उतना ही मूल्यांकन और विद्रोह करता है १८८
उच्चतर, में माताजी की उपस्थिति २०१
'मानसिक गतिविधि की अतिशयता, और माताजी की उपस्थिति २२७, [१८१]; कोलाहलपूर्ण, और चैत्य उपस्थिति ४१८, ४२१
दार्शनिक, को विकसित करने के लिये २०३
के अज्ञान से परे निकल जाओ २२९
के निर्णय २२९, [८२]
और आध्यात्मिक जीवन २३१
'मानसिक तमस् २३२, ३४६
'मानसिक तनाव दे० 'तनाव'
की चीज है स्मरण-शक्ति, यहां मन से परे की चेतना बोल रही थी २३६
एक बार काम करना शुरू कर दे तो कृपा के मार्ग में अड़ंगा लगाता है ३२९
चेतना के लिये सीमा-बंधन है ३३३
ही सीमाएं बांधता है ३८०
के नियम और शरीर ३९७
(दे० 'भौतिक मन' भी)
मन-प्राण-शरीर
को शिथिल और शांत करना ४१
को अपनी मरजी के अनुसार न करने देना ४२
और चैत्य पुरुष ४८
की गतियों के साथ अपने-आपको एक न करना ५०
की अशुद्धियां क्या निश्चल-नीरवता के अवतरण से विलीन हो सकती हैं ? ६७
मनुष्य [आदमी, लोग, व्यक्ति] १६८

शिकारी, १७
जब स्वयं भगवान् बन जाता है: मतलब ५६
जो विरोधी विचार लिये फिरते हैं: उनके संपर्क में न आना असंभव ९१, उन्हें कैसे जाना जाये ? ९१
कितनी चीजें बिना किसी सचेतन अभिप्राय के करता है ९७
के अंदर कोई चीज गलत रास्ते पर चलने में मजा लेती है १२०
इस या उस से कतराना १२१
'मैं क्या हूं, यह बताइये १३५अ
दूसरी अपूर्ण सत्ताओं से सहायता क्यों चाहते हैं ? १५२
तुच्छ संघर्षों में अपनी ऊर्जा नष्ट क्यों... १५३
अज्ञानी और अचेतन कैसे हो गये ? १६६
'सच्चे व्यक्ति, हम तभी बनेंगे...१६७, १६८
पूर्णता-प्राप्त, ... १६८
'मानवता से जब हम परे चले जायेंगे तभी मानव बनेंगे: व्याख्या १६८
में सभी चीजों का बीज, लेकिन बीज पनपने से पहले मर सकता है १९७
ऐसे बहुत हैं जिनके पास उनकी आवश्यकता की वस्तुएं नहीं २१३
-ों दो तरह के, से मैं कहती हूं २१७
भला, इन वरदानों से ऐसे क्यों भागते हैं... २३९
मिथ्यात्व और अज्ञान से ऊपर उठना क्यों नहीं चाहते ? २४०
'मानव पशु को भागवत मनुष्य में बदल देना ४११
'हम जो कुछ इस बार नहीं कर सकते उसे अगली बार करेंगे ४२४
'मानव पूर्णता को पाने के लिये ४२४अ
'मानव जीवन का आयुष्य ४२७
के साथ जो कुछ होता है उसका उत्तरदायित्व उसी का है ४४५, [१७०]
की कठिनाइयां दे० 'कठिनाई'
'मानव-संबंध दे० 'दूसरे'
मनोमय पुरुष
का क्या अर्थ है ? ५३
क्या मानसिक सत्ता पर नियंत्रण रखता है ? ६९
के हस्तक्षेप से निर्णय लेना १०१
मनोवृत्ति दे० 'वृत्ति'
महत्त्वाकांक्षा
-ओं को छोड़ना होगा १६०
के खतरे से कैसे बचूं ? १६७
के पीछे एक सत्य होता है २८३
महाकाली [काली]
के बारे में माताजी का वक्तव्य ३१५
समस्त विनाश के पीछे ३१५
और रूपांतर ३१५
एकमात्र शक्ति नहीं, प्रेम और कृपा भी तो है ३१६
के हस्तक्षेप को कपट और पाखंड ने ही आवश्यक बना दिया है ४००
उन सबकी सहायता करती हैं जो...४२४
और दिव्य प्रेम ४२४
अगर अभिव्यक्त हो जायें तो कौन खड़ा रह सकेगा ! ४३८
महान् व्यक्ति [महान् सत्ताएं]
सरल और विनयशील ३६६
-यों का पता होना ३६७अ
मां भगवती [दिव्य जननी]
की ओर जब मुड़ते हो २४
कौन हैं ? ३४
माता १९८, ४४४टि०
माताजी
को सब कुछ कह देना ३, ५, ५९; से कोई चीज गुप्त न रखना ३१, [१९३, २१८]; को सूचित न करना अपनी गतिविधियों को १३८

के निकट ३, १३०, २२३, २६८
के प्रति खुला ५, ३०, ३१, ४०, १८७
को जो पसंद नहीं, ऐसी कोई चीज न करना ५, [१०७]; पसंद नहीं करतीं ६, ७५, ९३, १७८; मना करती हैं १२३अ
कीमती सुंदर कपड़े क्यों पहनती हैं? ९-१०
उपस्थित हैं अतः श्रीअरविंद जगत् में क्यों आये? १०अ
का प्रणाम के समय सिर पर हाथ रखना, कभी जोर से, कभी बस दो अंगुलियां ही २२
के उत्तर 'अगर तुम चाहो' का मतलब २४; जब उत्तर नहीं देतीं १०१, ११३, ११५; के उत्तर सुनने के लिये २५४; का उत्तर मन के द्वारा ४०२अ, [२५१]
के चेहरे के चारों ओर प्रकाश २५अ
के प्रकाश का रंग २७
का संगीत सुनने से हमें क्या मिलता है? २८
का संरक्षण [रक्षा] ३०, १८८, २५४, ३०७; के संरक्षण से बाहर २७०
को हर बार जब देखते हैं तो वे हमें शक्ति देती हैं ३२
की ओर मुड़ो ३३, ४०, १६१, २११
की आज्ञा [कथन] का भंग [अवज्ञा] ३७, [४९], १२४, ३५७
की आज्ञा मानना ३८; मैं केवल उन्हीं को आज्ञा देती हूं जो . . . २९३; मैं आज्ञा नहीं दे सकती ३५७
के लिये भक्ति से चैत्यपुरुष सामने ३८
से मिलने के बाद चुप रहना ४३
'मैं जो करती हूं वह हमेशा भले के लिये होता है अगर यह समझ लो . . . ८०, ८१, ९०
कभी पक्षपात नहीं करतीं यह प्राण को कैसे समझाऊं ८२-३; 'मैं न किसी को दोष देती हूं, न किसी का पक्ष लेती हूं ३०१; 'मैं किसी चीज या व्यक्ति को दोष नहीं देती ३६४
पर पूर्ण श्रद्धा रखना ८२
तुमसे अधिक बुद्धिमान् हैं और जो कुछ करती हैं उसके पीछे कारण होते हैं ८२-३; 'मैं क्या करती हूं और क्यों करती हूं वे समझते हैं वे यह जानने में समर्थ हैं ८९
के निश्चय [निर्णय] ८२, १०८, २३२, ३९९, ४३३; का देखने का तरीका ३०१
का मूल्यांकन करना ८३, १४२
पर हम संदेह, अविश्वास क्यों करते हैं? ९२
की दी प्रार्थना में शक्ति ९४
के पत्रों में शक्ति ९४अ
से दूसरों के बारे में प्रश्न ९५
का बालक १०७, ११०अ, १५३, १७३, २४९, २५४, २७३, ४१५
किशोरी के रूप में भी १११
को पत्र तभी लिखना जब . . . ११३
से प्रेम ११३, १२६, १५८-९, १६६-७, २०१, २०५, २१५
'मैं तुम पर शांति, अचंचलता, स्थिरता उंडेलना बंद नहीं करती—तुम उन्हें स्वीकारते क्यों नहीं? ११८; 'मेरा प्रेम और शांति हमेशा तुम्हारे साथ है, तुम्हें ही उसे ग्रहण करना सीखना होगा १२०, १९१अ; 'मैं तुम्हारे ऊपर प्रकाश को एकाग्र कर रही हूं ग्रहण करना तुम्हारे हाथ में है १५७; 'मेरी चेतना हमेशा काम में लगी रहती है, तुम्हें अपनी इच्छा-शक्ति लगानी होगी, प्रयास करना होगा १५९; 'मैं जो कुछ देना चाहती थी, दे चुकी हूं उसका उचित उपयोग करना तुम्हारे हाथ में है २७३
का पक्ष लो १२०
को पाना १२२, १२८, १५९, १६०, २२९, २३१, २३३, ४३० दे० 'माताजी की उपस्थिति' भी
का भौतिक संपर्क १२५अ, २३१, ३४२; से दूर रहने का सुझाव १६०; से पूरी तरह पीछे हट जाना १७८; से मिलने से बचना २७२
का शरीर-धारण [धरती पर] १२६, १३२, १७७; और धरती १३६; और सृष्टि ३५८; और नयी सृष्टि ३३६

'मैं तुम्हारी चैत्य सत्ता [हृदय] में हमेशा उपस्थित हूं १२८, १८१, १८५, [२६५], ४३०, ४५५

से दूरी का अनुभव १२९, १३०, १७१, १८५, १९०, २१६, २२१, २२३, २२८, २२९, २३३; 'तुम्हें मुझसे दूर ले जा सके किसी में वह शक्ति नहीं २५१

के साथ तादात्म्य [ऐक्य] १३०, १३३, [१३९अ], २२७

'मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं १३१, २५१, २५३, २८३, ४३०

और आश्रम १३२

ने स्वप्न में पूछा : पढ़ाई क्यों नहीं की १३४

का दर्द अपने पर लेने का साधक का भाव १३५

और कृष्ण, बुद्ध, ईसा १३६अ

की क्रिया, और उसे देखने का लोगों का तरीका १३९, १५३अ; की क्रिया हमेशा भागवत मूल से १४२; 'मैं अपनी क्रिया को नीरवता में संपन्न होने देना पसंद करती हूं २१७; 'कोई क्रिया बहुत बड़े पैमाने पर हो रही है . . . ३१७

'बचपन में क्या आपको मालूम था कि आप भागवत अवतार हैं ? १४०

को समझना १४२, [८९]

के पास जाना किसी कामना के साथ १५८; के पास आने के लिये कैसी मनोवृत्ति होनी चाहिये ? १८७; के पास जाना अपने बारे में सोचते हुए २०८अ; के पास रात को जाने का प्रयास २८३

'इसी अग्नि को प्रज्ज्वलित करती हूं तब तुम्हारे अंदर १६५; 'मैं अग्नि को हमेशा प्रज्ज्वलित कर रही हूं, तुम्हें बस . . . १८६

एक साधक को 'भगवान् के लिये जियोगे' १७१, १७९

का वफादार सेवक १७३; सच्चा सेवक २७३; निष्ठावान् सेवक ४०५अ

किसी को जेल में नहीं डालती १७६

'आप किस तरह इस भयंकर अंधकार और अज्ञान में रहना स्वीकार . . . १७७

के काम का प्रतिरोध प्रायः सभी में १७७

'क्या आप मेरे प्राण को शांत नहीं कर सकतीं ? १७९

की बाहों में १८८, १८८अ, २४९, २५४

से जब लोग झूठ बोलते हैं १९८

हम पर निगरानी रखती हैं इससे अभिज्ञ होने के लिये १९९अ

को हृदय में अनुभव करना और सिर के ऊपर अनुभव करना २०१

'जब तुम मुझे पा लोगे तो देखोगे मैं सर्वत्र हूं २१४

'मैं दो तरह के लोगों से कहती हूं २१७

'कितनी सौभाग्यशाली हूं मैं कि मुझे सिखाने के लिये तुम यहां हो २२०

को शाम के ध्यान के समय मच्छर; पंखे से उन्हें उड़ाने की अनुमति ? २३१

को गलत रिपोर्ट २३१; शिकायत २६७; साधक के बारे में अफवाह व दोषारोपण ४३३

'किसी से भी मेरा विश्वास औरों से कुछ सुनकर नहीं डिग सकता २३२, [४३३]

'मैं हटी नहीं हूं २३३; 'मेरी वृत्ति नहीं बदली २७०; 'मैं नाखुश नहीं हूं ४०७

की अनुभूतियों की नकल करना २३७

'अपना काम करने के लिये मुझे जड़-भौतिक जगत् तथा उसकी अपूर्णताओं के साथ तादात्म्य साधना पड़ा २३७

'मैंने यह श्रीअरविंद से पहली भेंट के बाद लिखा था २४१

'मैं आभासों के परे देख सकती और शब्दों के परे समझ सकती हूं २४९; मैं तुम्हारे हृदय में पढ़ और मन में देख सकती हूं ४३३

से नीरवता में कही बात २५१, [४०२अ]

से मुलाकात २५३, २५४

को धन-संपत्ति भेंट रूप में २६३, २६६

के जीवन के बारे में कुछ छापना २६४; के अतीत के बारे में कुछ कहना २८५

के काम के बारे में सोचना, और माताजी के बारे में सोचना २६६

'मेरे नाम से लोग जब कुछ कहें . . . २६७, ३५३; के कहे को लोग तोड़-मरोड़ . . . ३१५

भावी उपलब्धि की ओर तेजी से २७०

के साथ संबंध में बच्चे की तरह सरल और सहज २७२

को गलत चीज के बारे में सूचना देना २७४

को भारतीय भाषाओं के लिये मान २७४

'संस्कृत का अध्ययन २७४; संस्कृत पर ३७१-२, ३८२-३

'मुझे जिनके बारे में कोई खबर नहीं होती ऐसी बहुत-सी बातें होती रहती हैं २७८, ३४३अ, ३४४अ, ३५७, ३९६अ

'हर एक से जो बात कही जाती है अलग ढंग से कही जाती है २७८

ऐसे काम में व्यस्त जो बाहरी व्यवस्था और संगठन से अधिक जरूरी २८०, २८६; एक पंक्ति लिखने के लिये भी समय नहीं ४०७

की आशा हमसे २८०, ३०३, ४५०, [३१२]

को चीन का बना कलम उपहार २८०

का चीन को आशीर्वाद २८०

का नया, रूपांतरित शरीर . . . किसी व्यक्ति में पदार्पण अपेक्षाकृत तेज प्रक्रिया, लेकिन शरीर के कोषाणुओं का उत्साह . . . २८४

की पुस्तक 'सुंदर *कहानियां*' में राम को बनवास . . . २८५

का क्षय के असरवाले नये व्यक्ति को आश्रम में रखना २८६

'बनारसी-मां की चीज जालसाजी है २८६-७

को धोखा देना . . . अगर मैं उनके साथ सख्ती करूं जो मुझे ठगते हैं तो बहुत कम ही . . . २९४-५, [४३८]

'मुझे विश्वास है कि मैं एक दिन सफल होऊंगी (तुम्हें बदलने में) २९७

के हंसी-मजाक [विनोद] २९९-३००, ३३४, ३४०, ३४१

का वक्तव्य आश्रम पर आक्रमण के बारे में ३१४

शक्तिशाली ! ३१६

ने सारे देश की कठिनाई आश्रम के ऊपर ले ली . . . ३१७

'मैं सारी दुनिया को शरण देना चाहूंगी, नगर और साधनों को बढ़ने दो ३१८, ३३७

'श्रद्धा और विश्वास के विकास के लिये ही मैं इतने वर्षों से लगी हूं ३२०; 'मैं हमेशा उस संभव सुधार के लिये काम करती रहती हूं ३४१; 'सामंजस्य की दिशा में किये जानेवाले हर प्रयास के साथ हूं ३४५, ४३९

के हाथों में भीतर से सारा मामला छोड़ देना ३२१; को अपने अंदर कार्य करने देना ३३३; 'निष्क्रिय रूप से विश्वस्त रहो और मुझे सब कुछ करने दो ३७१

को छोटी-छोटी चीजों का ख्याल ३३४

'मेरे शब्द कूटनीतिपूर्ण नहीं होते ३३७

'जबसे मैं 'निवृत्त' हुई हूं . . . ३४४अ

के लिये शक्कर का उपयोग बंद ३५५

'मुझे भी आरकाटबंधु के बारे में पता न था ३६७

और कविता ३९३

की कृपा से मेरे दवाखाने का काम बढ़ गया है ४००

के पत्र-व्यवहार का मानसिक तरीका ४०२अ

'जिन सत्ताओं का एक जीवन में आपके साथ संपर्क स्थापित हो जाता है नये जीवनों में क्या वे आपके पास आती हैं ? ४२०

'मेरे एकमात्र पथप्रदर्शक हैं परम प्रभु ४३३

'मेरा एकमात्र लक्ष्य है परम सत्य ४३३

के साथ संपर्क और साधुओं के साथ संपर्क ४४६

ने हमें आश्रम में स्वर्गिक स्थितियों में रखा है ४५१

(दे० 'माताजी और श्रीअरविंद' तथा 'दवाई', 'प्रणाम', 'शिक्षा', 'संदेश', 'स्वप्न' भी)
माताजी की इच्छा ३९
का पालन करो २८
की स्थापना अहंकार और कामना के स्थान पर ७९
को जानने के लिये १११
के विरुद्ध कार्य करना ११७, १२४
के अनुसार कार्य कर सकोगे तब १३०
साधक के लिये १७२, १७६, १९५, [२५३]
के प्रति समर्पण : फल १८९
माताजी की उपस्थिति २७४
का अनुभव १२५, १२९, २५४अ, २७४
से सचेतन [अभिज्ञ] १३१, दे० 'नीरवता' भी
का अनुभव करने से रोकनेवाली चीजें १५४, १८१, २२७
और दुराचरण १६२
को फिर से पाने के लिये १८०, [१८५], १९१, २१०
एकदम ठोस है प्रबुद्ध चेतना के लिये १८९
उच्चतर मन में २०१
का अनुभव चैत्य के अलावा मन-प्राण-भौतिक को भी २०३
का अनुभव और चैत्य प्रेम २०४
(दे० 'माताजी' में तुम्हारी भी)
माताजी का प्रेम १८७
और बार-बार एक ही भूल करना ११५
को अनुभव न करने का कारण १२४अ, १२५
पर शंका मत करो १६१
को अनुभव करने के लिये २०५
के बारे में अभिज्ञ होने के लिये २०८अ
माताजी की शक्ति
के प्रति अपने-आपको खोलो ३०, ३३, ६४
(दी हुई), का उपयोग ३२; का उपयोग भागवान् की सेवा में न कर अपनी कामनाओं की संतुष्टि में १९४
क्या है ? ३३
के दबाव का संवेदन ६८
को सहने के लिये शरीर को कैसे तैयार करूं ? १०६
को पुकारना १२०
की सहायता १२१
साथ है कमजोरियों और कठिनाइयों को जीतने के लिये १२२, १९१अ
और सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है १५७
, प्रेम, आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं ४०७
तुम्हारे साथ होगी, इसका उपयोग करो ४१४
और परिस्थितियां ४३५अ
(दे० 'नीरवता' भी)
माताजी की सहायता ५, ११६, १३८, १५७, १६०, १६२, १८८, १८९, १९१, २४९, २५५, २६९, २७०, २८३, ३१२, [३१३], ४१५, ४१९, ४२३, ४२८, ४३५, ४३९, ४४७
का दुरुपयोग १९४, [२००]
निष्फल तबतक २३४
की प्रभावकारिता तभी ३७०
'मुझे बुलाते समय जरा-सी एकाग्रता रखो ३७५
(दे० 'मार्ग' भी)
माताजी और श्रीअरविंद
'दोनों को आना ही था भागवत कार्य के संपादन के लिये १०अ
के पत्र किसी और को दिखाना ४६३अ
के उद्धरण पुरोधा में बिना हवाला दिये २९९
के नाम का उपयोग करने का अवसर किसी संस्था को तभी ३२५
से कक्षा के विद्यार्थियों की प्रार्थना ३९१
(दे० 'देवता', 'स्वप्न' तथा 'आश्रम' के अंतर्गत हमारा और हम के वाक्य भी)
माता-पिता [मां-बाप]
के प्रति कर्तव्य न निभाना २२१, [१४, ५३]

और रोगी बच्चे ४५७, ४५९
मानव जाति ३५१
अब भी पशु के स्तर पर है १६८
मानस ५१-२
मानसिक पुरुष जाग्रत् १४६
मानसिक रचना [मानसिक रूपायण] ४४१
-ओं से मुक्त कैसे हों ? ३०
विरोधी शक्ति की बनायी १६९
मार्ग [पथ, रास्ता]
अपने, पर चलता है हर एक ८६
सीधे, पर लाना भटक गयी सत्ता को १२१अ
'बालवत् पथ १८०
क्या कोई ऐसा है जिसमें शुरू से ही प्रयास करने की जरूरत नहीं पड़ती ? १८२
पर माताजी की सहायता १८९, [८०, ३३३], ४१५, ४२३
'योग-पथ निष्कपटता के बिना . . . २१०
आलोकित विजय की निश्चिति से २४७
लंबा है ४२५ दे० 'समय' भी
मिथ्यात्व १६५, २८७, ३०१, ३१४, ३६७, ३७३, ३८०, ४४५
और अज्ञान में भगवान् कैसे रह सकते हैं ? ४२
और अज्ञान से जब प्राण और भौतिक न निकलना चाहें . . . ११९
इतने व्यापक रूप में फैला है . . . ३०४
का प्रतिरोध सत्य के विरुद्ध ३३०
की दुनिया में रहते हैं हम ३९६
मिथ्याभिमान १६, ९६
मुक्ति
के लिये निम्न प्रकृति से परे जाना अनिवार्य : मतलब ६१
ईर्ष्या से ८०
सामाजिक बंधनों से २५५
(दे० 'छुटकारा' भी)
मुक्तिदाता परसियस ३३८
मुस्कराना [मुस्कुराना]
स्त्री के सामने ८७-८, ९३अ
'मुस्कान के साथ लो सारी बात को ३०५
जानना सभी परिस्थितियों में ४२२
मूर्खता [मूढ़ता] ८३, ९६, ११९, १२४, १५१, ३७९
मूल्यांकन करना
माताजी का ८३, १४२
और अज्ञानी मन १८८
मृत्यु १३
'मर कर स्थूल देह से सूक्ष्म देह में . . . ५४
'लोग मरते क्यों हैं ? ५६
'मर कर नहीं, जी कर तुम प्रेम को चरितार्थ कर सकते हो ११३
'मरने का कोई प्रश्न नहीं १२२, [१७१]
के बाद यातनाएं व नरक १६६, ३४५
के बाद पशु . . . ३४६
मौन दे० 'चुप रहना'

यंत्र ७९, ३६८
भागवत शक्ति का ७३
क्षणभंगुर तथा नश्वर २४१
युग
'सत्य युग १३८, ३३६
चार—३३६
युद्ध दे० 'कुरुक्षेत्र', 'भारत', 'लड़ाई'
योग ३८, १७१
और मां-बाप व परिवार की देखभाल १४, [५३, २२१]
का ज्ञान क्या अपने-आप नहीं आता ? ३८
में व्यक्ति का भिन्न-भिन्न भागों और उनकी क्रियाओं के साथ व्यवहार ५२
में किसी से चीजें लेना ६५अ
में गहरे नहीं उतरा हूं ११२
अनुशासन के बिना असंभव १३४
के बारे में लोगों से बातें करना १४३
शुरू एक भाग में, जब कि दूसरे भाग

रूपांतरित होने से इंकार . . . १५३
    और प्राणिक संतोष १९२; और साधारण जीवन न छोड़ सकना २२२
    समर्पण के बिना असंभव २१०
    के लिये सच्ची पुकार है उनमें, यह उन्हें साबित करने दो २२२अ
    से ही चेतना का परिवर्तन २२६
    (दे० 'पूर्णयोग', 'प्रगति' भी)
योग-पथ दे० 'मार्ग'
योग-शक्ति और परिणामों की शृंखला २४९
योग-समन्वय ३९१, ३९३
योगी १००, २२०
    को क्या वृत्ति अपनानी चाहिये ? २९
    और कहानी की किताबें व उपन्यास ३६
    और साधक में क्या फर्क है ? ३६अ
योजना
    बनाना इतना आगे से २४८, [२५५]
    -एं महत्त्वाकांक्षाभरी, से अच्छा है धीरे-धीरे चलना ३५०

रस
    स्त्रियों में ४१
    ज्ञान में ४४, ४५
    पढ़ाई में, नहीं १५१
    दल के काम में, नहीं ४२२अ
रहस्य महान् १९७
राजकुमार (नाटक) २७८-९
राजनीति ४९ दे० 'आश्रम' भी
रात दे० 'सोना'
राधा
    की चेतना' फूल का अर्थ ८७
    और कृष्ण के गीत ३०२अ
    का अस्तित्व था या नहीं ? ३३९
राम
    को बनवास २८५
    संगी-साथियों के साथ सरयू नदी में . . . आत्मघात का पाप ? ३५१
रामकृष्णाश्रम २६२
रामायण ३५१
रूढ़िवाद २४४, ३२७
रूपांतर १०१, १०९, १५३, १५८, १५९, १६७अ, ४२५, ४२८
    भौतिक का ७८अ; भौतिक शरीर का ४०१, [६३]
    बाहरी प्रकृति का ९०
    और भागवत उपस्थिति ९०, ४२१
    और निश्चल-नीरवता १६६; और एकाग्रता की नीरवता ४२२
    का रहस्य २३९
    और काली ३१५
    का दरवाजा खोल देगी यह ४१४
    स्वभाव का ४२४अ
    का विरोध हो रहा है संसार में ४३७
    (दे० 'परिवर्तन' भी)
रोग [बीमारी, शारीरिक कष्ट] ३१
    और धारणा ३१
    'दर्द खाली पेट का ४१
    का उपचार १०३, १२४, १२७, २५२, २९९, ३५०, ३६३, ३७०, ३७१, ४०६, ४५२ दे० नीचे -मुक्ति और श्रद्धा भी
    काल्पनिक १२३, १२४; काल्पनिक, तो सुदर्शन चूर्ण खाना क्यों ? १२७
    को भूल जाना १२३, १५१
    से पिंड छुड़ाने का अचूक तरीका १५१, ४५०
    और अवसाद १७५
    और अवचेतना के सुझाव २१६, २९१
    का निरपवाद प्रतिरोध तभी २२४अ
    निराशा व मानसिक तनाव के कारण २३३; मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की आवश्यकता के कारण २६९-७०; मानसिक सुझाव (कल्पना) से ३१२; बेचैनी व उत्तेजना के कारण ३७०; कुढ़ने के कारण ४५१; निराशा व असंतोष के कारण ४५२अ

वसंत के, और चेरी पुष्प २४४
'कोई चीज अपरिहार्य नहीं, हर क्षण हस्तक्षेप हो सकता है २४७; सब कुछ हो सकता है ३८०
-मुक्ति और श्रद्धा २४७, २५३, ३४८अ, ३७३-४, ४०२, ४०४, ४५०, ४५३
'वृक्कशोथ २५०
कभी गंभीर नहीं होते २५०
का अच्छा उपयोग २५०, २६९
स्नायविक २५२
'पूरी तरह स्वस्थ : हो जाओगी अगर भगवान् के साथ तुम्हारा सतत संपर्क हो २५२, रहना चाहिये शक्ति को ठीक तरह ले सको तो ३७१
और शरीर की ग्रहणशीलता २८४अ, ३५०, ३७४, ३८०
और भय २९१
में डॉक्टर के पास जाना २९१अ
'बीमार से सहानुभूति होने पर अपने शरीर में भी उसी के लक्षण—ऐसे में सबसे अच्छी चीज २९८अ
और भागवत संरक्षण ३४८अ, ३७१
'रुग्ण अंगों पर शक्ति को एकाग्र करो ३५०
'सारा मामला भगवान् की इच्छा को सौंप देना ३६३, [३७१]
'शांति को नीचे उतारो ३७०
'प्रार्थना से फोड़ा अपने स्थान से तीन इंच दूर हट गया ३८०
'चिकित्सा अगर अनुकूल नहीं ४०१
'अनिद्रा का एकमात्र इलाज ४०५; 'अनिद्रा और नींद की गोलियां ४०५, ४०७
में भौतिक उपचार (दवा) ४०५, [१२७]
'अस्वस्थता में जपनीय जाप ४०६
'अर्बुद मस्तिष्क के ४४०
'हृदय के दौरे ४४०अ
का गुह्य कारण हो तो उपचार ४४९
'प्रकृति को अवसर दिया जाये तो . . . ४५५
(दे० 'दवाई' भी)

लक्ष्य [उद्देश्य] ४३३
हमारा ७६, [३१४], ४११
के प्रति जबतक सब-के-सब सच्चे नहीं बन जाते, कोई सच्चा काम नहीं किया जा सकता ३१२
तक जल्दी पहुंचाने के लिये होता है जो कुछ होता है ३२२, [४४८]
है . . . ३२२
(दे० 'जीवन' भी)
लड़ाई किन चीजों के विरुद्ध ३१४
लड़ाई-झगड़ा दे० 'झगड़ा'
लाइफ डिवाइन [दिव्य जीवन] ३९१
का हिंदी अनुवाद ३७६
लालबहादुर शास्त्री ३२८
लोभ ३७६
और अर्बुद ४४०
भोजन के, को कम करने के लिये ४५३

वनस्पति दे० 'पेड़-पौधे'
वरदानों जिन, से लोग भागते हैं २३९
वर दे कि . . . १९, ८०, ८१, ९६, ११२, १२८, १५९, १९७, २१४, २३१, २४१, २८४, ४२३, ४२८, ४४३, ४५१
वाणी दे० 'बातचीत'
वातावरण १७९
(आंतरात्मिक), में जब शरण ५८
तुम्हारे, में कोई विदेशी प्रभाव . . . २१६
हानिकर, में ध्यान करना २५४
(दे० 'काम' भी)
वास्तविकता शब्द का अर्थ २४०
विकर्षण ७२
विकास
आध्यात्मिक, भौतिक जीवन में ही १६८
आंतरिक, के लिये शब्द जरूरी नहीं २५३
और आगे, अतिमानस के पूर्ण आविर्भाव के बाद ३९४

अपने, को पूर्ण बनाते जाना ४०३
(दे० 'प्रगति' भी)
विचलित होना दे० 'क्षोभ'
विचार ३१, ५२, ५५, १३१, १३७
-ों निरर्थक, से छुटकारा कैसे ? ८
अच्छा है या बुरा कैसे जानें ? २१
-ों को (ध्यान में आनेवाले) दूर भगा दो ३९
व्यर्थ के और अहितकर नहीं आते मन के रूपांतर के बाद ४२
कहां से आते हैं ? ४७
-ों को जानना दूसरे के ४८
-ों को मन में आने से कैसे रोकें ? ४९
'वैचारिक क्रिया बुद्धि की क्रिया है ५१
'वैचारिक क्रिया को शांत करना ५१
को पकड़ कर संवेदन के पदार्थ में बदल देता है मानस : व्याख्या ५१-२
वैश्व प्रकृति से आ रहे हैं या अंदर से, कैसे जानें ? ५८
को स्थिर रखना पवित्रता, प्रकाश, शांति पर ज्यादा अच्छा ७७, [८५]
निराशा और अवसाद के ९१
-ों इन विरोधी, के आक्रमण से कैसे बचें ? ९१
-ों से दूर रहना, लोगों के बारे में ९५
गहरे, में प्रवेश करना सीखो १२६
तुच्छ रुग्ण, और पढ़ाई १३१
(दे० 'त्याग' भी)
विचार और झांकियां २५१, ३९५
विजय १२१, ३४१, ४३९
स्त्री-विषयक दुर्बलता पर ७९
ईर्ष्या पर ८०
विचलित होने की दुर्बलता पर १०९
कमजोरियों पर ११७
की इच्छा-शक्ति को कभी न खोओ १२३
अवसाद पर १७३
पानी होगी बुरे असर पर १७५
'जीतने का निश्चय अपनी दुर्बलताओं को जबतक न करो . . . २३४
अवचेतना पर २४०
की निश्चिति, और मार्ग २४७
अपनी सीमाओं पर पाना सिखाने के लिये है यह बुरा समय २८०
तमस् और प्रमादपूर्ण लापरवाही पर ३०३
सत्य की दे० 'सत्य'
में श्रद्धा प्रदान कर ३२५
प्रेम की, उन्हीं में ३३३
सचाई और अध्यवसाय के साथ, निश्चित है ३३३
लाती है कठिनाई ३४१
कठिनाइयों पर ३६४
स्वयं अपने ऊपर ४२३
अग्नि-परीक्षा के अंत में ४३६
विजयादशमी ४२३
विद्यार्थी [बच्चे]
की शिकायत अध्यापक के अत्याचारी होने की ३२६-७
जो सच्चे नहीं ३६२
-यो के साथ एक-सा व्यवहार करने के पक्ष में नहीं ३६५अ
जो काम करना चाहते हैं और जो पढ़ाई-लिखाई से कतराते हैं उन्हें . . . ३६६
में बुद्धि और समझने की क्षमता नियमित होने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण ३६६
-यों पर अध्यापक का अपनी इच्छा चलाना ३७८ दे० 'अधिकार' भी
-यों का समाचार-पत्र पढ़ना ३७९अ
(दे० 'आश्रम विद्यालय' भी)
विद्रोह १७७
प्राणिक दे० 'प्राण'
और उपस्थिति १५४
और अज्ञान १८८, १९९
'विद्रोही भाग को समर्पण के लिये मनाना १९९

विनाश
और रूढ़िवाद, दो शक्तियां २४४
पूरा-पूरा, सत्य के आने का परिणाम ३०४
का स्वागत नहीं, उससे पाठ सीखना ३१५
समस्त, के पीछे काली की शक्ति ३१५
से ऊपर और अछूता रहता है वह ३१५
अपूर्णता का परिमाण बताता है ३१५
को रोकने का तरीका ३१५
विनोद सच्चा ३३४
विनोबा (भावे) ३७१
विराट्-पुरुष २४
विरोध
करने की जगह अगर लोग सहयोग दें ३७८
-ों, दीखनेवाले, की परवाह न करो ३८६
-ों और प्रतिकूलताओं के बावजूद आग्रह के साथ उचित वृत्ति में लगे रहना ४३९
(दे० 'प्रतिरोध', 'निम्न प्रकृति' भी)
विरोधी शक्तियां/यों ९७, ४४१
से आये विचार [सुझाव] २१, ९०
और अचेतना के क्षण २३
और अवतरण [अवरोहण] ६०, ४५४
का प्रहार [आक्रमण] ६०, ६७; के आक्रमण (परीक्षा) के रूप में लो अपने अंदर इस सारे विक्षोभ को ३८६; की परीक्षाओं के रूप में लो प्रहारों को ४३३
तब कुछ नहीं कर सकतीं ६०; उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं . . . ४३७
कैसे काम करती हैं ? १६९
का यंत्र प्रेम के कारण बदल . . . २७९
के अप्रतिरोध का आराम नहीं २८४
की उपयोगिता ४५४
विरोधी सुझाव दे० 'सुझाव'
विवाह [शादी]
विवाहित लोगों की कठिनाइयां अविवाहित लोगों से ज्यादा होती हैं क्या ? ६३
की आश्रम में अनुमति क्यों ? ४१५
के बारे में फैसला ४५९अ
विवेक
आंतरिक, से ही ये चीजें जानी जा सकती हैं ४७, ९१
सच्चा, पाने के लिये ९२अ, [३७५]
विशाल चेतना के लिये अभीप्सा करो ६४
विशालता के भाव में स्नान करो २४८
विश्राम दे० 'आराम'
विश्व
का चैत्य जीवन १६१
से ऊपर उठने में क्या वैश्व न्याय हमें रोकता है ? २००
विश्वास
रखो कि मैं जो करती हूं वह तुम्हें पथ पर आगे बढ़ाने के लिये होता है ८०
और अंधकारमय अवस्था ११६
रखो (अपने में) १५९
की कमी ही चेतना पर पर्दा . . . १५९
की कमी से प्राण के परिवर्तन में देर १७९
संदेह रहित, बालवत् पथ पर १८०
बनाये रखो भागवत कृपा में १९९
भागवत कृपा में, और उपस्थिति २१०
नाम का फूल २१०
पूरा, भगवान् में नहीं, तो भागवत कृपा पूरी तरह फलप्रद नहीं . . . २१०
बालक का, अपनी मां के प्रति २१५
चैत्य का, भगवान् के प्रति २१५
रखो कि हमारी सहायता . . . २४७, २४८, २४९
अटल, की शांति में निवास करो २५४
न करो लोगों की बातों पर २६७, [२५४], ४३५
बनाये रखें और सहन करें मेरे साथ इस वस्तुस्थिति से जूझनेवाले ३१२
'विश्वस्त और शांत रहना [रहो] ३१३, ३७१, ४०६, ४३६
कि जो कुछ होता है वह ठीक वही होता है जो होना चाहिये ३२२ दे० 'सब कुछ' भी

कि रसातल को रास्ते से हटा दिया जायेगा ३५२
पुराना कि जीवन में कुछ चीजें या क्रियाएं ऊंची हैं और कुछ नीची ३६३
आंतरिक, के अनुसार कार्य करना ३६४ दे० 'आंतरिक पथ-प्रदर्शन' भी
केवल भगवान् पर रखो ४३५
माताजी की शक्ति में ४३५अ
(दे० 'श्रद्धा' भी)
विश्वासघात ३८६
वृत्ति [मनोवृत्ति, भावना]
सच्ची, काम और थकान के प्रति १९; में कुछ भूल, अगर काम में बल और कृपा अनुभव नहीं करते २७०अ; ठीक, काम में कठिनाइयों के प्रति २७४; और काम ३३७; उत्तम, काम के लिये और स्वयं साधक के लिये भी ३४२
आंतरिक, सच्ची-निष्कपट चाहिये ११४
सच्ची, के लिये प्रयास करना होगा—प्रतीक्षा करना पर्याप्त नहीं ११४
उस क्षण की, के अनुसार लोगों की माताजी के बारे में धारणा १५३अ, [१३९]
पशुओं के प्रति, हमारे योग में १६३
कैसी अपनानी चाहिये ताकि कोई भी चीज मुझे नुकसान न पहुंचा सके १६७
माताजी के पास जाने के लिये १८७
उचित, और कृपा १९८
खेल के पीछे की २१४, २१९
परम श्रद्धा में प्रतीक्षा की, और प्रयास २३८
अपना अच्छे-से-अच्छा करने और परिणाम को प्रभु के हाथों में छोड़ देने की २९५
'उचित चेतना का अभाव जब शीर्षस्थ व्यक्ति में ३०४
'ठीक स्थिति, आक्रमण का सामना करने के लिये ३१३
पढ़ाने के पीछे ३२७अ, ३५६
भूतकाल के प्रति ३५६
भारत-पाक युद्ध के बारे में ४२६
मैत्रीपूर्ण भावना की ४५६
(दे० 'विरोध' भी)
वैयक्तिक चेतना
में अगर हम बंद होते २४८
वैयक्तीकरण
के परे चले जायेंगे तभी हम सच्चे व्यक्ति बनेंगे १६७
वैश्व शक्ति २४
व्यक्ति दे० 'मनुष्य', 'वैयक्तीकरण'
व्यक्तित्व
और अहं १६७
मेरा, लुप्त हो जाये ४४३
व्यवस्था ३०३
काम की, और थकान १९
दिन की, अगर समझदारी से ५७; दिनचर्या की २१५; इतने दिन पहले से २५५, [२४८]
का पुष्प २१४
है . . . २१४
का पहला कदम २१५
भौतिक जीवन की २२३
श्रीमान् 'ज्ञ' की, और लोगों के अहंकार का प्रतिरोध २२६
एक नयी और अच्छी, इस अस्तव्यस्तता में से २७३, इसे देख सकने के लिये २७३
और समस्या का समाधान ३३४
जब अव्यवस्था को जीत लेगी ३४५
उचित, मुझे बहुत पसंद है ३४८
जो करते हैं उनसे अपेक्षित चीजें ३४८
(दे० 'अव्यवस्था' भी)
व्यवहार
बुरा [६], ८८; अपमान ४५२
बड़ों की प्रति ६
में लाना संकल्प को ५५
में उतारना आदर्श को १४९
बुरा, करने से रोकनेवाली चीजें १५१
इस तरह करना इस योग में . . . २००

अस्पष्टवादिता का, खलबली का कारण २१७-८
अशिष्ट २१८
दर्शकों से २९२
गड़बड़ करनेवालों के साथ ३०२
'पुराने दुर्व्यवहार को भूल जाना ४१२अ, [४३३]
व्यापार ईमानदारी के साथ करना ३०८

शक्ति १०, १३, १४, १३६, २२४, २४२, ४३८
भगवान् की इच्छा के नियंत्रण में और उस नियंत्रण के बिना जब १७
जितनी, दुःखी होने में नष्ट करते हो, उसका अच्छा उपयोग . . . १०१
तुम्हारे अंदर है अपनी कमजोरियों पर विजय पाने के लिये ११७
'सर्व-शक्तिमत्ता का रहस्य २३९
को आध्यात्मिक चेतना और जीवन के निर्माण-कार्य पर एकाग्र करने की जगह उसे सामान्य स्तर पर बिखेरना २६२
(दे० 'भागवत शक्ति', 'माताजी की शक्ति', 'ऊर्जा' भी)
शक्तियां/यों
की गतिविधि को स्वीकृति [अस्वीकृति] २८
और आंतरिक दृष्टि २८
सूक्ष्म, क्या है ? २९
जो तूफान के (पांडिचेरी के) पीछे थीं ६७, ३४३, ३४६
के पुनर्नवीकरण का रहस्य २३९
द्वारा कठपुतली की तरह नचाया जाना ३३०
हमेशा इस प्रतीक्षा में कि कोई उन्हें ग्रहण करे ४२०
(दे० 'विरोधी शक्तियां', 'प्रकृति' भी)
शब्द २५३, और नीरवता ४२२
शरीर ६२
को संतुलित रखना १०
और भोजन १०, ५७, [४०१], ४०४
में श्रद्धा नहीं, उसे आराम . . . १९
और भौतिक प्राण [प्राण] ५२, १४१, १४३
सूक्ष्म ५२, ५४
जब घिस जाता है ५६
पर बहुत-से आक्रमण ६४, [७८]
को तैयार किस तरह करूं आपकी शक्ति को सहने के लिये १०६
को छोड़ना कोई हल नहीं १२२
से बाहर रहना रोगों का उपचार नहीं १२४
के विश्वास के लिये उपचार १२७; को विश्वास, डॉक्टर के पास जाने से २९२; और भौतिक उपचार (दवा) ४०५
-ों नये, में आत्मशुद्धि : अर्थ १६८
को भी योग में लेना है इससे लोगों ने समझा . . . ३६०
और मन के नियम ३९७
का रूपांतर ४०१, [७८अ]
शारीरिक काम के योग्य नहीं रहा तो आंतरिक काम . . . ४०५अ
और हृदय के दौरे ४४०अ
की 'शक्ति' के प्रति ग्रहणशीलता भूख में अनूदित ४४७
से बाहर निकल जाने पर वापस आने की कठिनाई ४५६-७
से बाहर जाओ और पीड़ा के स्थान पर केंद्रित होओ—का प्रयोग; फिर सोते समय दर्द क्यों हुआ ? ४५९
(दे० 'भौतिक', 'भौतिक सत्ता', 'शारीरिक . . .' के अंतर्गत तथा 'चैत्य', 'रोग' भी)
शांति ४४, ४९, ५०, ७७, ११८, ११९, १३४, १७६, १८२, २३२, २३८, २३९, २४७, २५३, २९८, ३१४, ३९६, ४०७, ४२३
का अनुभव अच्छा है या बुरा २२
शुरू में, ज्यादा समय नहीं रहती ३७
'शांत रहना [रहो] ४१, ११०, ११४,

११७, १५२, १५४, १६१, १६५, १७७अ, १८७, २७८, ३१३, ३२५, ४१४, ४२१, ४३६, ४५१, ४५८, दे० 'प्राण', 'मन' भी
'शांत करना वैचारिक क्रिया को ५१
चैत्य, क्या है? ५५अ
और स्थिरता में क्या भेद है? ६२
कब उतरती है? ६२
से ही नहीं, सुख से भी भरपूर नीरवता और एकाग्रता ११०
, अचंचलता और स्थिरता को स्वीकारने के लिये क्या करना चाहिये? ११८
और प्रेम प्रवेश करते हैं, जब हृदय खुलता है १४६; ये शुद्ध हों यह जरूरी नहीं १४६
और प्रेम ऊपर से भी आ सकते हैं १४६; ये मन-प्राण में विकृत नहीं हो जाते क्या? १४७
जड़ता में बदल जाती है १४७
, प्रेम और आनंद क्या सत्ता के तैयार होने से पहले उतर सकते हैं? १४७
'शांत अवस्था के बारे में बोलना १५४
आंतरिक, में ही उत्सर्ग पूर्ण . . . १५५
आंतरिक, और साधना १५५अ
आंतरिक, और प्रगति १५६
और प्रेम कहीं नहीं मिल रहे १६८अ
और सुख की एक बूंद दे दीजिये १७४
, सुख और प्रेम के काल आते थे, पर अब कुछ महीनों से . . . १७७
को प्राण ने ऊब के चोगे की तरह झाड़ फेंका १७९
को अपने अंदर पाना होगा १८५, [१७४]
का आवाहन विक्षोभ अनुभव होने पर २२३
दृढ़ और ज्योतिर्मय, में प्रवेश करो तो २२७
शाश्वतता की, मृत्यु जैसी लगती है २४०
अटल विश्वास की, में निवास २५४
'स्थिर शांत रहना तमस् नहीं है २७४
में ही ठीक चीज की जा सकती है २७४
स्थिर, मैं जिसे कहती हूं २७४
से लो चीज को २८९
नहीं, जबतक अहंकार से छुटकारा नहीं ३५५
और सामंजस्य का राज्य हो आश्रम में ३७९
प्रतिष्ठित करो हृदय तथा सिर में ४११
और उपस्थिति ४२१
पूर्ण, प्राप्त हो जाती है तब ४२७
परम पावन, का रस तब ४२९
(दे० 'भागवत शांति', 'अचंचलता', 'स्थिरता', 'अशांति' भी)

शारीरिक चेतना [भौतिक चेतना]
में रहने का अर्थ ६४
में हर एक रहता है—जबतक शरीर है ७४, ७८
में रहना, और चैत्य व दूसरे भागों में निवास ७८अ
पर शुष्क, नीरस स्थिति आरोपित करता है तब प्राण १२२
में जब प्रकाश उतर आये १४७
में है यह अंधकार १५६
को अनुशासित करना अंदर से २२३अ

शास्त्र ५५ दे० 'पढ़ना' भी

शिक्षा को तबतक न पढ़ो . . . २६९

शिक्षा
पर माताजी ३२७-८, ३६३, ३६५-६, ३७४अ, ३७८

शिथिल करना [होना] ४१, ४२८

शिथिलता ३६

शुद्धि [शुद्ध करना] २८, २९, ४४, १०९, १६५, ४५४
और माताजी के साथ एकत्व १३०
की ज्वाला १४१
सर्वांगीण, लंबा श्रमसाध्य कार्य १६५
और निश्चल-नीरवता १६६
'आत्मशुद्धि भौतिक जीवन में ही १६८

शुष्कता [नीरसता]
का कारण १२२, १७०, २५५
का उपचार २५५

शेखी बघारना और प्रगति २२६
श्रद्धा ३२, १३४, ३४८, ४०१
भागवत शक्ति में, और काम में थकान १८-९, [२७०अ]
अपने बल पर, और अधिक काम १८
सक्रिय चेतना में है, शरीर में नहीं १९
का महत्त्व (प्रह्लाद) २१
भागवत संरक्षण पर २१, ३७
कि भगवान् जो इच्छा करते हैं वही सबसे अच्छा होता है २१ दे० 'भगवान्' भी
माताजी पर ८२
कि सब कुछ ठीक हो जायेगा ११९
बौद्धिक १८२अ
चैत्य सत्ता की १८३
'अंध-श्रद्धा १८३
मानसिक १८३
अविचलित १८३
का स्रोत : आध्यात्मिक सद्‌गुण १८३
निश्चयात्मक २३८
की कमी : परिणाम २७१, ३२०
अव्यवस्था के समय २९१; मुश्किल के समय ३०४, ३६४, ३७६; भारत-पाक युद्ध के समय ४२६
-विश्वास के विकास के लिये ही मैं इतने वर्षों से लगी हूं ३२०
ही हमारी सहायता और सुरक्षा है ३२२, [२९१, ३०४] ४५७
प्रदान कर अपनी विजय में ३२५; प्रदान कर महिमामय भविष्य पर ४२६
सिखाने के लिये आती हैं ये चीजें ३५९, ४३३
सच्ची, अगर सौ में से एक में भी है . . . ३६१
का परम कार्य करना चाहिये हमें तब : मतलब ३६४
बनाये रखना विपरीत प्रमाणों के बावजूद ३६४
और विश्वास रखो यही चाहती हूं ४३०
कि भगवान् सत्य और असत्य में विभेद करके रहेंगे ४३३
सच्ची, जिनमें विरोधी शक्तियां उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं ४३७
सच्ची : जो कोई मांग नहीं करती ४५०
और विश्वास के साथ स्थिति का सामना ४५८
(दे० 'विश्वास' तथा 'अभीप्सा', 'भागवत कृपा', 'रोग' भी)
श्रीअरविंद २२८, ३०३, ३३६, ३४५, ३६०, ३६७, ३७८
के फोटो के चारों ओर काले बादल २५
के पत्रों को कैसे ग्रहण . . . २९; के पत्रों की व्याख्या . . . १०९
से प्रश्न पूछना ३३, ३४, ३५
की सहायता ३५, ११५, ३५३
के अक्षरोंवाले कागज कूड़ेदान में ८९
का जन्मदिन मेरे लिये . . . ११२
की पुस्तकें पढ़ा करो १२९, २३३; की कृतियों का केवल अध्ययन, और उनका तुल्नात्मक अध्ययन ३९३; की पुस्तकों का मूल पाठ, और उनकी व्याख्या [टीका-टिप्पणी] ३९५; की पुस्तकें सबसे अच्छी हैं ऐसे लोगों के लिये ४१४; की पुस्तकें सस्ते रूप में छापना ४३७, उन्हें जनता के लिये सुलभ बनाने की योजना ४४३; की पुस्तकें जन-साधारण के लिये नहीं ४३७, ४४३
के पास, दर्शन-दिवस पर, जाना १७३
'माताजी का लिखना मेरे लिखने के बराबर है १८२
का शिष्य होना, और आश्रम में निवास २४८
का पृथ्वी पर कार्य २५१
का नाम अपनी दुकान के साथ जोड़ना २९९
भी ऐसे अभियोगों से नहीं बच सकते ३२७
की कहानियां अपने शब्दों में छापना ३३८-९

द्वारा प्रकट ज्ञान ३५१
को पुकारो सहायता के लिये ३५३
की जीवनी (पुस्तक), और भारत सरकार ३७६अ
हमारे द्वारा बोलते हैं तब ३८१
की शिक्षा में ये कड़े भेद-भाव नहीं ३९२
के 'विचार और झांकियां' के हिंदी अनुवाद में भूलें ३९५; की शिक्षा का गलत प्रस्तुतीकरण बंगला और हिंदी पत्रिकाओं में ३९६अ
के पांडिचेरी आने की ६०वीं जयंती ४२०अ
की शताब्दी मनाना ४२७
की उपस्थिति तब अधिक सक्रिय ४२७
के अयोग्य है कोई और मनोवृत्ति ४५६
के नाम का आह्वान जादू-टोने के निराकरण के लिये ४५९
(दे० 'माताजी', 'माताजी और श्रीअरविंद' भी)
श्रीअरविंदाश्रम दे० 'आश्रम'
श्रीअरविंद ऐक्शन ३८२
श्रीअरविंद का योग दे० 'पूर्णयोग'
श्रीकृष्ण [कृष्ण]
की अर्जुन को युद्ध में सलाह १४, १५
अवतार थे १३७
और राधा के गीत ३०२अ

संकट-काल दे० 'अंधेरे काल'
संकल्प १८९
और भगवान् के साथ संपर्क ४४
का उपयोग करो मन और प्राण पर ४५
और ऊर्जा को जब एकाग्र . . . ४९
और स्वभाव ५५
को जीवन में उतारना ५५
अधिकाधिक निष्कपट बनने का ११७, १९७
(अपने-आपको ऊपर उठाने के), का दृढ़ बने रहना सबसे महत्त्वपूर्ण १९३
शांत, दृढ़, और उपस्थिति २१०
(दे० 'इच्छा-शक्ति', 'निश्चय' भी)
संकल्प-शक्ति
आग्रही और दृढ़निश्चयी, चैत्य चेतना को पाने के लिये १६३
(दे० 'इच्छा-शक्ति' भी)
संगठन ३०३
ठीक तरह से चल सके इसके लिये आवश्यक शर्तें ३०४
संगीत निःशब्द, २३७
संघर्ष १५३
मानव, में हमेशा सत्य और मिथ्यात्व का मिश्रण १४
अपने अंदर, और करणीय २६७, २६८अ
संतुष्टि [संतोष] १२६, १६७, १८०, ४०७
संदेश
'क्या तुम तैयार हो ? २९४
नेहरू के देहावसान पर ३००
भारत के प्रधान-मंत्री के नाम ३२४
नववर्ष १९६७ का ३५२; यह, उनके लिये है . . . ३५२
विद्यालय को ३५६
बुरे समय के लिये ३६४
विद्यार्थियों को समाचार-पत्र पढ़ने के बारे में ३७९अ
नववर्ष १९७० का ४१६
मानसिक, एक साधक को ४३४
संदेह [शंका, संशय] ९०, २६९
-ों की छूत ८४अ
माताजी पर ९२, [८१]; माताजी के प्रेम पर कभी न करो तो १६१
पर चर्चा १०६अ
से मुक्ति १०६अ
और भागवत कृपा की सहायता १९८
अनुभूति पर ३१३
संपत्ति दे० 'धन'
संपर्क दे० 'भगवान्', 'माताजी'
संबंध दे० 'दूसरे'

संभव
'सब कुछ हो सकता है ३८०, [२४७]
सब कुछ है ४२०
संभवन
की शाश्वतता में हर संभव मामले को घटना चाहिये ४१२
संभावना को उपलब्धि में बदलना २२९
संयम
वाणी पर २८१
सैक्स पर ३३३अ
संरक्षण [रक्षा, सुरक्षा]
और भागवत कृपा १९८
का फूल : मतलब २०७
(दे० 'भागवत संरक्षण', 'माताजी', 'श्रद्धा' भी)
संवेदन ५२, १३७
को सुंदर ढंग से व्यक्त करने का तरीका क्या है ? २६
-नें तुच्छ, से बचाते हैं ये ४४, [१३१]
माताजी की शक्ति के दबाव का ६८
(दे० 'विचार', 'सैक्स' भी)
संवेदनशीलता ३४
संस्कृत पर माताजी ३७१-२, ३८२-३
सचाई [निष्कपटता] ६, ३२, ६८, ७१, १०७, १२१, २०६, २२५, ३६३, ४२४
क्या है ? ३८, १९०
'सच्चा [निष्कपट] : बनने की अभीप्सा ६०, और ईमानदार अधिकाधिक ११७, पूर्णरूप से १९६अ, अधिकाधिक पूर्णरूप से १९७
बालक की सरल, के स्थान पर चैत्य निष्कपटता १८४
इसकी मांग करती है कि . . . १९३
और भागवत कृपा की सहायता १९९, ४२६
के अभाव के कारण कष्ट २०८
के बिना योग-पथ खतरनाक २१०
और अध्यवसाय के साथ विजय निश्चित ३३३
सहज, के विकास के लिये है सब कुछ ३४६
और ईमानदारी की कमी ३९७
जिसके अंदर, नहीं उसे सचाई देना . . . ३९८
अपने प्रति ४२५, ४४९, [११४]
(दे० 'कपट' भी)
सचेतनता [सचेतन होना] २८, ७३, १६९, १९७
सतत, कैसे ? २७
रात और दिन से कैसे ? ३०
'सचेतन बनो ५३, [६८], १४४, १५३
और उसका व्यावहारिक प्रयोग ८५अ, [१८९]
अंधेरे से १५६
और प्रभुता १७१
(दे० 'जागरूकता')
सत्ता
के दो भाग १७ दे० 'मन', 'अभीप्सा' भी
का कौन-सा भाग अंदर किसी गड़बड़ को अनुभव करता है ? ७३
पूर्ण, का मतलब १२९
बाहरी, १२९; बाहरी, और माताजी की उपस्थिति १६२
के अधिक गंभीर भाग हैं जिनमें . . . १३६
को उच्चतम अभीप्सा के चारों ओर एकाग्र करना १४२
का एक भाग प्रकाश और आनंद में, दूसरा विक्षोभ और अंधकार में एक ही समय में १४९
के दूसरे भाग अपने पुराने क्रिया-कलाप पर वापस लौट आते हैं १८०, [१०२]
के अप्रबुद्ध भाग राई से पहाड़ बनाने में मजा लेते हैं १९७
केंद्रीय चैत्यपुरुष के चारों ओर एकत्र नहीं ३७०
की पूर्णता चरितार्थ करना : लक्ष्य ४११
सत्प्रेम ३९८

सत्य १९७, २९९, ३०१, ३१४, ३६३, ४०६, ४३३
के बाद क्या आता है? १२
और मिथ्यात्व का मिश्रण हमेशा मानव संघर्ष में १४
भगवान् की परम सत्ता है २४
गतिविधियां ही रह जायेंगी तब २८
और सामंजस्य ३२
की ओर भगवान् हमें कब . . . ४४
को खोजना और क्रियान्वित करना दैनिक जीवन की एक-एक गतिविधि में २७४
और धन ३०१
को हम अभिव्यक्त होने के लिये नहीं बुला सकते ३०४
की विजय अवश्य होगी ३१२
की विजय के लिये लड़ रहा है भारत ३२४
की क्रिया के विरुद्ध मिथ्यात्व का प्रतिरोध ३३०
या रसातल ३५२
हर वक्तव्य के पीछे ३६१
को खोजना विरोधों के पीछे ३८६
में ताकि तेरी सेवा कर सकें ४२८
की संपूर्ण चेतना में हम वही करते हैं जो हमें करना चाहिये ४३९
पर आंखें गड़ाये आगे बढ़ेंगे, विजय प्राप्त करेंगे ४३९
(दे० 'परम सत्य', 'भागवत सत्य' भी)
सत्य चेतना [सच्ची चेतना]
क्या है? ३३
में जन्म २५०, ४२३
सत्ययुग १३८, ३३६
सत्यवादिता ६, [३३७]
'वचन का पालन ४५६
सद्भावना १३४, २१७, ३०३, ३०५, ३४०, ४५२, [४५६]
के साथ अग्नि की रक्षा करना १८६
अज्ञानमय, से हमारी रक्षा कर ४२८
सफलता २९, ४२७
(दे० 'असफलता', 'निराशा', 'प्रयास' भी)
सफेद गुलाब २७८
सब कुछ
ठीक हो जायेगा १०८, ११९, २४९, ३५३, ३७०, ३७५, ३८६, ४५८; 'बाकी सब हो जायेगा ३४८, [११७]
बहुत सीधा-सरल हो सकता है ३२०
'जो कुछ होता है वह वही होता है जो होना चाहिये ताकि वह हमें जल्दी लक्ष्य तक पहुंचा सके ३२२, [४४८, ४५५]
सहज सचाई के विकास के लिये है ३४६
हमें पाठ सिखाने के लिये होता है ३५५
हो सकता है ३८०; संभव है ४२०
'जो कुछ हो रहा है तुम्हारी चैत्य सत्ता के लिये अच्छे-से-अच्छा है ४०६
'जो कुछ भी होता है वह कृपा का परिणाम है ४५५
सभ्यता ३१४
महानतर, की ओर चढ़ें नीचे गिरने की जगह २९०-१
समझना [समझ] ५२, १३१, २१४
कि कामनाएं मूर्खताभरी, व्यर्थ हैं १२२
अपने-आपको २१५
(दे० 'जानना' तथा 'पढ़ना' भी)
समता
की ओर (काम में) ३४७
के अभ्यास के लिये मनोवैज्ञानिक कठिनाइयां उत्तम अवसर ४४४
समय
नष्ट न करो १३, १२१, [३०३]; नष्ट करना मनोविनोद में २७६
नहीं मिलता आराम करने का ५७
बचाने की अपेक्षा उसे खोते ज्यादा हो अस्थिर होकर १३३
बरबाद न होगा तब १३९अ
बुरे, को जल्दी खत्म करने के लिये १५२

लगता है इसमें . . . २६२, [२२९]
निकालना अपने अंदर जाने के लिये २७५अ
आजकल बुरा है २८०; कठिन, में से गुजर रहे हैं हम ३७४ दे० 'जगत्' की स्थिति भी
यह, हमें अपनी सीमाओं पर विजय पाना सिखाने के लिये है २८०
यह, ऊर्जाएं इकट्ठी करने का है २८१
तेजी से क्यों चलता मालूम . . . ३०२
आ गया है . . . ३६३, ३७९
लंबा, लगेगा रूपांतर की प्रक्रिया में ४०१; [लंबा, शुद्धि में १६५]
को आंतरिक चेतना को विकसित करने में लगाओ ४०५अ

समर्पण ३२, १४५, १८०, २९३
प्राणिक ११, २८, ६८, ७१
से आनंद २०
का अर्थ २६
माताजी के प्रति ३८, ३९; माताजी की इच्छा के प्रति १८९
मानसिक ४५, [६८]
काम का ६६, [२०६]
प्रेम का ८७
और अहं १०७-८, ४५४
अगर एक भाग करे, लेकिन दूसरा भाग . . . १९८अ
के बिना योग-पथ असंभव २१०
तथा सायुज्य २३५
आंतरिक, और बाहरी क्रिया २५९अ
की इच्छा, और अवरोध के बीच संघर्ष २६८अ
(दे० 'अर्पण', 'आत्मदान', 'भगवान्' भी)

समस्या १४४
-ओं से जल्दी निकल आओगे तब १५२
ऐसी कोई, नहीं जिसका समाधान न हो सके ३३४
का समाधान पाने की आदर्श स्थिति ३४०

समाचार-पत्र दे० 'पढ़ना' अखबार

समाज दे० 'अधर्म', 'मुक्ति'

समाधान
सामंजस्यपूर्ण, एक बड़ी विजय ३४१
आसानी से, सद्भावना और अनासक्ति के साथ ४५२
एकमात्र सच्चा, कठिनाइयों में ४५७
(दे० 'समस्या' भी)

समाधि ३९३

समानता १६७

सरलता ३६६; ऋजुता २१८
'सीधा १०७
में महानतम शक्ति २३८

सलाह
न देना अच्छा ९२, १४४
मिले तो लाभ उठाओ ९२
बुरी, पर कान मत दो १२८

सहनशीलता [सहन करना] ३१२, ३७६, ३८६, ४३६
क्या है ? ४२
की शक्ति अचंचलता और स्थिरता में १०६

सहयोग ३०५, ३७८, ४३८

सहायता [मदद] १५२, ३२२
करना दूसरों की ७३, १०५, १०९, १२७, १३९, १५४, १७६, १७७, ४२६*
पाने के लिये सर्वोत्तम तैयारी २४७
सबसे अधिक प्रभावकारी २५२, २५५
तो हमेशा रहती है लेकिन उसकी क्रिया की प्रभावकारिता . . . ३७०; देने के लिये शक्ति मौजूद है, अपने बारे में नहीं केवल भगवान् के बारे में सोचो ४४०
कैसे कर सकते हैं बड़े परिवर्तन में ४१६
करती हैं काली उन सबकी . . . ४२४
(दे० 'भगवान्', 'भागवत कृपा', 'माताजी की सहायता', 'श्रीअरविंद' भी)

साधक
'पहले बहुत कुछ करना है १५
और निम्न प्रकृति २४

की इच्छा और बल का भागवत इच्छा और बल में मिल जाना कब ? ६५
'हर एक को हमेशा दृढ़ता के साथ आगे बढ़ना चाहिये निम्न अवस्थाओं में फिर से गिरे बिना १७६
में क्या ऐसा समय आता है जब अच्छे भाग पृष्ठभूमि में और सतह पर केवल निम्नतर हिस्से . . . ? १८६अ
का साधारण लोगों के साथ संबंध २१२
-नें से माताजी को आशा दे० 'माताजी'
'हर एक अपनी पसंदों-नापसंदों को जीतने की कोशिश करे तो . . . २३०
'हर एक अपना काम अधिक-से-अधिक क्षमता के साथ करे, और आंखें भागवत कार्य पर लगी रहें २८०
'हर एक अपना अतिक्रमण करे ३०३
कोई हथियार डाल दे मैं नहीं चाहती ३०३
सिद्धि की ओर : हम कुछ भी नहीं हैं, कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं करते केवल परम प्रभु जानते हैं, करते हैं और हैं ३११
'हर एक को अपने अनुभवों से सीखना होगा ३४५
'हर एक जितना अच्छे-से-अच्छा कर सकता है करता है ३६४
'क्या हम यहां कठिनाइयों पर विजय पाने के लिये नहीं हैं ? ३६४
'हर एक बिना किसी रोक-टोक के जो मर्जी हो वही कर रहा है ३९७
'हर एक पहले अपने लिये जिम्मेदार है ४२६
'हम कभी अकेले नहीं होते, भगवान् हमेशा हमारे साथ होते हैं ४२९
की जिम्मेदारी ४२९
किसी, को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के बारे में ४३५
जब यह समझ लेंगे कि उनके लिये क्या अच्छा है यह मैं उनसे ज्यादा अच्छी तरह जानती हूं तो उनकी अधिकतर कठिनाइयां विलीन हो जायेंगी ४३६
हर एक आवश्यकता की ऊंचाइयों तक उठे ४५०

साधक (पत्रों के लिखनेवाले)
कुर्ता-कमीज बनवाने के लिये झगड़ा ६
एक स्टूल चाहता हूं २२
समय पर दातौन लेना भूल गया ३५
'क्ष' के नाराज होने पर कांपना ५४
लोगों के साथ हुई बातचीत रिपोर्ट में लिखने के बाद छुटकारे का अनुभव ५९
'क' मुझसे बात का संयोग ढूंढ़ती रहती है ६५, ६६अ
बहन से मिलना ७६; बहन के साथ न मुस्कराना ८७
'च' से बात करने में हिचकिचाहट ८०
मेरी प्रकृति 'ब' से घटिया है ८६
'ह' को देखकर कंपकंपी ९२
भूगोल की पुस्तकें घर ले जा सकता हूं क्या ? ९९
गला खराब होने पर चाय या कॉफी की सलाह १०३
आरूमे की छत से फ्रेंच गणतंत्र दिवस देखने जाना १०८
महिलाओं के साथ संपर्क ११३, ११५
'क' के साथ बातचीत, फिर बुखार १२०अ
'क' ने पान दिया १२३अ
'ज' की सलाह और उदाहरण १२८
'क्ष' की लिखी कविताएं पढ़ने उसके घर जाना ठीक है क्या ? १३३
कलम खोलने के लिये मना किया, पर खोल लिया १४७अ
पूर्वजन्म में रूपांतर पाये बिना प्रयास तो इस जीवन में . . . १६७अ
भगवान् के लिये जिओगे १७१, १७९
भगवान् की उपलब्धि कर पाओगे १७४
'क्ष' के साथ टहलने जाना १७४-५

'प' और मेरे बीच इस पचड़े में आप क्यों नहीं पड़ना चाहतीं ? १८९अ

क्या मैं पहले से बुरा हो गया हूं ? १९७

मीटर रीडिंग के लिये लोगों के कमरों में जाना १९९

'ज्ञ' से मित्रता कट २१२अ

अनुमति मांगने से पहले श्रीमती 'क' को लिखा २१७-८

गोलकुंड का काम २२५

गलतियों के बारे में श्रीअरविंद ने किसी को लिखा २२८-९

लंबे बाल कटवाना २३३

दो रुपये मासिक जेबखर्च की मांग २३४

बंबई जाने और यहां की तुलना में बाहरी जीवन को जानने की इच्छा २३४

मद्रास का शहर देखने की इच्छा २३४

बैंकर के यहां भोजन २५३

तकिये व मच्छरदानी का उपयोग नहीं २६६

भगंदर के रोगी की चिकित्सा करने और दवाई के पैसे माताजी को . . . २६६

काम के बारे में किसी ने शिकायत . . . २६७

काम—माताजी के लिये उपयोगी २६९, २८०, [३४१], ३८६

रोमांतिका (खसरा) २६९-७०; इंफ्लुएंजा २८३अ; दाहिनी टांग में स्नायु सुत्र २८४-५; शारीरिक कष्ट, डॉक्टर के पास जाने की सलाह २९१-२; दाहिनी बांह में चोट ३३६अ; हाथ कैसा है ? ३४१अ; वंक्षण और पैर में सूजन ३५०; रात को अस्वस्थ प्रातः ठीक ३६२-३; अस्वस्थ—वमन और विरेचन ३६९-७०; पैर में फाइलेरिया ३७३; गुदाद्वार के पास फोड़ा ३८०

मुझे छोड़ न दो २७०, ३८६

नियम क्रीड़ांगण में वितरण के समय २७१-२

काम की व्यवस्था २७२, २७७-८, २७९-८०, २९४

जन्मदिन पर बुलाये जाने पर भी क्रीड़ांगण नहीं गया २७३

हिंदी पढ़ाना २७४-५, २८९, २९५, ३२६-७, ३२९, ३४६, ३५६, ३६३, ३७८

स्वप्न में माताजी आयीं और किसी ने दरवाजा खटखटा दिया २८०-१

माताजी के पास रात को पहुंचने की कोशिश २८३

लेखक बनने की महत्त्वाकांक्षा और पुरोधा का संपादन २८३; पुरानी महत्त्वाकांक्षा और सम्मेलन में भाषण ३८१

कमरे में पंखा २८९, ३७३

इस वर्ष तुम्हें डांट की जरूरत न थी २९१

श्रीअरविंद सोसायटी और ओड़िया दल के बीच सेतु २९३

'क्या तुम तैयार हो ?' २९४

आखिर हम कहां हैं ? २९७

उग्र पंजाबी युवक से सामना २९८

जब 'क' या उसके लोग मुझसे नाराज होते हैं तो आप मेरी ही भूल निकालती हैं, क्यों ? ३०१-२

जब मैं तुमसे कुछ चाहती हूं तो सीधा तुमसे कहती हूं, किसी और के द्वारा नहीं ३२०

युद्धजनित आर्थिक कठिनाई: आश्रम कोषाध्यक्ष के पास ब्लांशिसरी के जमा रुपयों को यदृच्छया उपयोग कर लें ३२४-५

माताजी के विरोध में कोई बोले तो महाकाली की-सी अनुभूति ३२५

दो विचार : ब्लांशिसरी के बिलों को चुकाने के लिये पैसा अपने पास रखना, और पैसा माताजी को दे देना ३२९

श्रीअरविंद के दर्शन एवं माताजी के साथ काम करने में वृत्ति ३४२

काम में रस खोता जा रहा हूं ३४७

एक विभाग का विभागाध्यक्ष होने का प्रस्ताव ३४८

शरीर की ग्रहणशीलता ३५०, ३७४, ३८०
ध्यान, समर्पण आदि पर लेख ३५२
दर्शन के काम के बाद थकान ३५७
भोजनालय की व्यवस्था का काम ३५९अ, ३६४-५, ३७२, ३८३
माताजी से आंतरिक संबंध ३६४-५
श्रीअरविंद की पुस्तकों का अनुवाद-कार्य ३६८; श्रीअरविंद की जीवनी की मांग भारत सरकार की ओर से ३७६अ
छत पर वर्षा के समय गिर पड़ा ३७१
आपके लिये पेय तैयार करना ठीक है क्या, जब मैं स्वस्थ न होऊं? ३७२
जर्मन सीखने का अवसर ३८०
कुछ काम हो तो स्वयं आकर पूछूं या लिखकर पूछूं? ३८४

प्रणाम के लिये आने के दिनों को कम करने का प्रस्ताव ३९४
'क्योर हाउस' के लिये फर्नीचर ३९६
थकान अधिक व्यायाम के कारण ३९७
बिजली की मालिश की चिकित्सा ४००-१

छोटे भाई का दिनभर की पढ़ाई और तीसरे पहर की कसरत के बाद रात को स्पोर्ट्स ग्राऊंड में काम करना ४१२
'क' ने नौ वर्ष पहले शरीर छोड़ा था क्या उसने नया जन्म ले लिया है? ४१६
की चैत्य सत्ता ४२१-२
का हृदय ४२२
का जन्मदिन ४२३

अफवाहें तथा अभियोग ४३३, ४३५-६
में आध्यात्मिक प्रगति ४३३
के कार्य की निष्कपटता ४३४
वह अनुभूति जिसे मां चाहती थीं ४३४
दुःखी : यहां से प्रभावित दर्शक को विवश जाना पड़ा ४४८

साधना २३३
और निश्चल-नीरवता ६७; और आंतरिक शांति १५५अ
और प्रेम ७१; और किसी के साथ घनिष्ठता २३०
में उतार-चढ़ाव ८६, ९८ दे० 'चेतना' की शक्तियां भी
अपनी, के बारे में बोलना १४४; अपनी, के बारे में जानने की इच्छा रखना २३०
और पढ़ाई २१२
के निर्णायक अनुभवों में से एक २६०
में बाधा देनेवाली, और उसे आगे बढ़ाने वाली चीजें २६९
कार्य के द्वारा २६९
में रस नहीं, केवल काम में रस २६९, २७०
और बाहरी जीवन पूर्णयोग में २७४
को तीव्रतर बनाने के लिये प्रहार ४३३
और सैक्स-संबंध ४४९
के अंधेरे काल दे० 'अंधेरे काल'
सामंजस्य २३८, २९९, ३०१, ३३२, ३३५, ३४०, ३७९, ४१२
क्या है? ३२
एक, समस्त आभासों के पीछे २३७
वैश्व, के संपर्क में जब, तो समय की गति . . . ३०२
गड़बड़झाले का मालिक होगा ३४५
के प्रयासों के बावजूद प्रहार—उसमें उचित वृत्ति ४३८-९, [३२९-३०]
(दे० 'असामंजस्य', 'प्रयास' भी)
सामान्य ज्ञान ३६७अ
साहस ८६, ३१२, ३३५, ३३७, ४०७
'हिम्मत १२३
सीखना १४०, ३४५
लायक चीज वाणी पर संयम में ११
के लिये चाहिये नम्रता १३१, २२६
में क्षमता की अपेक्षा अभ्यास . . . २२९
सुंदर कहानियां २८५

सुख १३४
और आनंद ४०
आध्यात्मिक, का क्या अर्थ है ? ५४अ
सच्चा, क्या है और कब आता है ? ६१
साधारण ६१
-भोगों से परे चले जायेंगे तभी आनंद प्राप्त होगा १६६
'चिर सुख ४३०
(दे० 'शांति' भी)
सुझाव
विरोधी शक्तियों से ९०
औरों के ९०
विरोधी [गलत] १०४, १६०, १६९, १९०
विरोधी, कहती हूं मैं इसे १६९
ये, मेरे अंदर कैसे आये ? १९०
आश्रम से जाने का ४४४अ, ४४७
(दे० 'डॉक्टर', 'निम्न प्रकृति', 'रोग' भी)
सुमित्रानंदन पंत (कविवर) ३७७
सुरक्षा दे० 'संरक्षण'
सृष्टि दे० 'जगत्'
सेवा दे० 'भगवान्', 'माताजी'
सैक्स ४४९
के विचार ४५
'लैंगिक संवेदन ४५अ, ३८१
की कठिनाइयां क्या उसमें न होंगी जो बचपन से यहीं रहा हो ? ५९
-केंद्र को आंतरिक प्रकाश में बदलना १३७
'संतति-निग्रह ३३३अ
'विद्यार्थी का एक लेख ३४९
की इच्छा को कम करने के लिये ४५३
सोचना ५, ११, १२६, ३६३
प्रभु के बारे में हर समय १२
नहीं, उनके बारे में २१, ७३
'सोचो किसी और (उपयोगी) चीज के बारे में ४४, ४७, ७९
बहुत, अपनी अशुद्धियों की बारे में ७७, [८५]
'सोचते तुम जो हो वही बन जाते हो ८५
चाहिये शक्ति, निष्कपटता . . . के बारे में ८५, [७७]
'सोचे बिना किसी चीज को करना ९७; क्रिया करने से पहले १४०
कि बीमार हो १२३, [३१२]
सच्ची तरह से १२४; उचित तरीके से गहनतर सत्य के अनुरूप १९७
अपने बारे में कुछ ज्यादा ही १३८, [२१९]
नहीं अपने बारे में १५९, २१९-२०; अपने बारे में नहीं, केवल भगवान् के बारे में ४४०, ४५२
दूसरों के दुःख-दर्द के बारे में १६४
दूसरों की भूलों के बारे में २२७
काम के बारे में २२८
माताजी के काम के बारे में और माताजी के बारे में २६६
(दे० 'ध्यान' भी)
सोना
'रात को न सोना ३, ८; अपनी रात और अपने दिन से सचेतन कैसे हों ? ३०; रात को देर तक काम करना [जागना] ९१, ९८, ११८; रात को सोने नहीं देता प्राण ११८
दिन में ८, १३ दे० 'आराम' भी
के लिये आधी रात से पहले के घंटे . . . १३
अच्छी तरह, के लिये ४१, १०३
'सो जाना दस बजे तक ९१
'सो कर उठने पर स्थिति बदलना १३४
तुम्हें सात घंटे चाहिये २०५, [१०]
से पहले इच्छा-शक्ति का प्रयोग . . . २१०
(दे० 'नींद', 'स्वप्न' भी)
सौंदर्य १०, १४३अ
स्तर
होते हैं सभी वस्तुओं में २३६
चेतना के अनंत, हैं २४१
स्त्री [महिला]
-यों के बारे में दुर्बल २०, ७९

का स्पर्श २०, २१, ४४
-यों के बारे में विचार २०अ
-यां अभी भी अच्छी लगती हैं, मुझे क्या करना चाहिये? ४१, [४४]
और पुरुष का आकर्षण : इलाज १०२
-ओं के साथ संपर्क ११३, १२१
'इश्कबाजी से तो कहानी लिखने . . . १२४
-यां पुरुषों के कमरे में न जायें १५६
के कमरे में झांकना खिड़की से २१८
स्थिति
के जटिल बनने का कारण २२६
उग्र, का सामना जब २९८
की रक्षा सतर्क श्रद्धा करेगी ३०४
का सामना मन और हृदय को शांत रखकर ४५८
का सामना श्रद्धा-विश्वास के साथ ४५८
(दे० 'अवस्था', 'घटना', 'चीज' भी)
स्थिरता ६७, ८६, ११४, ११८, २२५, ४५७, ४५८; अस्थिरता १२९, १३३
के लिये क्या करना चाहिये? २९
नकारात्मक और सकारात्मक ६२
'स्थिर बने रहो १२९, १४२, २७८
में ही सत्ता का एकत्रीकरण १४२
में ही प्रकाश का अवतरण १९१
'स्थिर जो बने रहेंगे . . . ३७४
'टिके रहना ३८६, ४४७
(दे० 'अचंचलता', 'शांति' भी)
स्पंदन २८
कामना, क्रोध, भय आदि के ५४
आक्रामक, से संबंध काट लो २९८
-नें अव्यवस्था और विक्षोभ के, के स्थान पर भागवत उपस्थिति, सत्य . . . २९९
-नें की राशि है समस्त जीवन ३०१
मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्यवस्था के, और सत्य व सामंजस्य के ३०१
स्पष्टवादिता ५, २१८, [३३७]
स्मरणशक्ति २३६
स्वतंत्रता
'स्वतंत्र रहना चाहिये हर एक को ८०
तथाकथित १७६
सच्ची, का रहस्य २३९
'छूट, अपने जीवन का फैसला . . . ४५९अ
(दे० 'मुक्ति' भी)
स्वप्न [सपना]
-नें के बारे में सचेतन होना ३
में लड़ाइयां प्राण-जगत् में ५
में देखे लोगों के साथ सादृश्य रखना ६अ
जब किसी व्यक्ति का ९
'कुछ लड़के बगीचे में आये . . . एक लड़का . . . १५-६
'एक स्त्री ने अंदर बुलाया . . . १६अ
का वर्णन ठीक-ठीक करना १७
-नें कुछ, का अर्थ होता है, कुछ का नहीं—क्यों? २७
हम किस अवस्था में देखते हैं? २७
को स्पष्ट या अस्पष्ट देखना किस पर निर्भर ३०
'नदी में प्रार्थना-पुस्तक और पत्र बह गये . . . ४६
में माताजी या श्रीअरविंद को देखना : कैसे पता लगे कि कोई और सत्ता आपका रूप धारण किये हुए नहीं है? ४७
'आश्रम से दूर किसी शहर में साधकों के साथ खेल रहा था . . . ५४
'सांप गोल-गोल घूमता हुआ ५६
'माताजी के दर्शन की बारी बार-बार खोना ५७
'समुद्र की प्रचंड लहर मेरे पास आ रही थी, मैं दौड़कर ध्यान के कमरे में चला गया, समुद्र सूख गया ५८
'एक बगीचा, उसमें 'आत्मदान' के फूलों से लदा एक पौधा ६५
क्या दिखाते हैं कि चीज होगी, हो रही है या हो चुकी है? ६६

पूर्वसूचक ९०

'रात को कविता लिख रहा था, 'क' ने लैंप और बत्ती बुझा दी ९७

मेरे, अंधेरे होते हैं १००

जेल में बंद कर दिये जाने का १०२अ

'बगीचे से फूल चुनते हुए तीन महिलाएं आयीं, मुझसे फूल मांगे . . . १०४अ

बिच्छू और सांप के १११

में मैंने आपको मुझे आलिंगन में भरते देखा १८८

'पपीते के पेड़ पर पके फल खाने के लिये कौए और बंदर २१६अ

में काला आकार गला घोंट . . . २९१

भोजनालय में सूअर मारे जाने का ३००

कम्यूनिस्टों ने कमरे पर हमला . . . ३३६

का अर्थ 'एक देवता का श्रम' में ४१३

माताजी छज्जे पर दर्शन के लिये, नीचे गड़बड़ करनेवाले लोग ४३७

मुंह से धागे की-सी कोई अंतहीन चीज निकलती . . . ४३८

ढेर सारे फीते-जैसे मुख से निकलना ४४०

स्वभाव

पुराना ६अ

और माताजी की शक्ति ३३

का परिवर्तन ३३, ४४५, [४२४अ]

और संकल्प ५५

दूसरों की सहायता करने का १३९

का निकट से निरीक्षण ४२४

झींखने का ४४५

स्वामी

प्रणिक आवेशों व कामनाओं के कैसे ? २७

अपने, कैसे बन सकते हैं ? २८

-यों दो, को एक साथ संतुष्ट करना २३३

स्वार्थ ७१, १५९, ३३५

-परता आत्मोत्सर्ग में बदल जाये ९६

'स्वार्थी होने से परोपकारी होना अच्छा १२७

स्वास्थ्य ३१, २४८

'स्वस्थ २५२, ३३५, ३७१

अच्छा ३३५

स्वीकृति [सहमति] २८, ४३८

हंस (मासिक पत्रिका) २६३

हंसना नहीं, यह जरा ज्यादा है ११

हमारा योग और उसके उद्देश्य ७०, ३३६

हर्ष २२अ, ६२

हस्तक्षेप १००, ३०४

उच्चतर लोक से २४७

हवि देकर अग्नि को प्रज्वलित रखना १८५

हॉलीडेज (या छुट्टियां) २७५-६

हिंदी २८८, २९५, ३६३, ३८२, ३८३

-विरोधी आंदोलन के बहाने आश्रम पर आक्रमण ३१२-३

हिंदी-भाषी २८८, २९५

हिंसा, युद्ध, क्रांति के पीछे काली ३१५

हृदय ४५, ४८, ४२८, ४५८

के भगवान् को समर्पण से शांति ५६

की गहराइयों में: माताजी १२८, ४५५, चैत्य १५७

का अर्थ १४४

जब खुलता है . . . १४६

को खुला रखने के लिये १४७, १९७

खुला है यह किन लक्षणों से . . . १४८

में माताजी से चैत्य संपर्क २०१

हमेशा जागरूक, ज्ञान के लिये प्यासा ३३५

का आघात या दौरा ४४०अ

(दे० 'अंदर', 'अभीप्सा', 'माताजी' में तुम्हारी भी)

होना दे० 'बनना'

उद्धरण

आर्य ५०अ, ५५, ६४, ६६, ७५

एक देवता का श्रम ४१३

गीता-प्रबंध १४

प्रार्थना और ध्यान २३५-४४, ३२५

माता ४४४

यौगिक साधन ५१, ५२अ, ५४, ५५, ५६

विचार और सूत्र १६६, १६७, १६८

सावित्री ४४४

हमारा योग और उसके उद्देश्य ७०

विषय-सूची

पत्रमाला १ (१९३२-१९४९) ३

ये पत्र एक युवा साधक को लिखे गये थे जो यहां श्रीअरविंदाश्रम में तेरह वर्ष की उम्र में १९३० में आया था। अपना अध्ययन समाप्त कर वह आश्रम के कई विभागों में काम करता रहा। बहुत वर्षों तक आश्रम-विद्यालय में अध्यापक रहा। फिर १९९३ तक मृत्युपर्यंत आश्रम के स्वागत विभाग में काम करता रहा।

पत्रमाला २ (१९३७-१९४१) २४७

ये पत्र एक फ्रैंच महिला को लिखे गये थे जो छयासठ वर्ष की उम्र में १९३७ में आश्रम में रहने के लिये आयी थी।

पत्रमाला ३ (१९३८-१९७१) २५९

ये पत्र एक साधक को लिखे गये थे जो यहां आश्रम में इक्कीस वर्ष की उम्र में १९३८ में आया था। विगत पचास वर्षों में उसने अनेकविध कार्य किये हैं। वर्तमान में वह हिंदी के अध्यापन और अनुवाद का कार्य करता है, दो हिंदी पत्रिकाओं का संपादक है और आश्रम के कई विभागों की देखभाल करता है।

पत्रमाला ४ (१९४२-१९७०) ३९१

ये पत्र एक साधक को लिखे गये थे जो इकतीस वर्ष की उम्र में १९३१ में आश्रम में आया था। १९४० के बीच तक उसने गृहनिर्माण-विभाग में काम किया, फिर फर्नीचर विभाग का अध्यक्ष बन गया। १९७० तक मृत्युपर्यंत वह वहां काम करता रहा।

पत्रमाला ५ (१९६०-१९७३) ४११

ये पत्र एक साधिका को लिखे गये थे जो आठ वर्ष की उम्र में १९४४ में यहां आश्रम में आयी थी। ग्यारह वर्ष की उम्र में वह यहां के शारीरिक शिक्षण-विभाग के प्रथम कप्तानों में से एक बन गयी। करीब तीस वर्षों तक उसने इस विभाग में काम किया।

पत्रमाला ६ (१९६१-१९६८) ४३३

ये पत्र एक साधक को लिखे गये थे जो इक्कीस वर्ष की उम्र में १९३९ में आश्रम में आया था। पहले वह आश्रम के सचिव के साथ काम करता रहा। फिर आश्रम की अतिथिशालाओं की देखभाल करने लगा। बाद में १९९३ तक मृत्युपर्यंत वह लिखने, भाषण देने और तीन पत्रिकाओं के संपादन का काम करता रहा।

अनुक्रमणिका ४६१

उद्धरण ५२६

ISBN 81-7060-086-3